विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र की भूमिका

भूमिका

१ सूत्र का सामान्य परिचय

'**विमलकीर्तिनिर्देश**' बौद्ध धम दशन का एक अतिप्राचीन, प्रसिद्ध एव प्रामाणिक ग्र थ है। यह वपुल्य (विस्तृत) कोटि का एक महायान सूत्र है। विमलकीर्ति एक पुरुष का नाम है निर्देश का अर्थ है उपदेश अथवा शिक्षा। सूत्र के अनुसार भगवान् शाक्यमुनि बुद्ध के समय मे वशाली नगरी मे विमलकीर्ति नामक एक धनी एव धर्मात्मा महापुरुष रहते थे। वह एक उपासक अर्थात बौद्ध गहस्थ थे, जो बोधिसत्वयान के अनुयायी और आचाय थे। इस सूत्र मे अधिकाशत उ ही का उपदेश है, अतएव इसे **विमलकीर्तिनिदशसूत्र** कहा जाता है। अनेक दृष्टियो से यह एक असाधारण ग्र थ है। यह कहना उचित होगा कि **विमलकीर्तिनिर्देश** न केवल बौद्ध धार्मिक साहित्य का एक अनमोल रत्न है, वरन् यह सम्पूण विश्व के धार्मिक व दाशनिक साहित्य मे एक अद्वितीय ग्रन्थ रत्न है।

विमलकीर्तिनिर्देश मूलरूप मे भारत मे बौद्ध सस्कृत में लिखा गया था। परन्तु इसका सस्कृत मूल काला तर मे भारत मे नष्ट हो गया। चीनी, तिब्बती (भोटीय) तथा एशिया की अ य भाषाओ मे इसके अनुवाद सुरक्षित हैं। प्रस्तुत सस्करण सूत्र के तिब्बती अनुवाद पर आधारित है। **विमलकीर्तिनिर्देश** के साहित्य व उसके इतिहास की विस्तृत चर्चा आगे के पृष्ठो मे की जायेगी। लगभग बारह शताब्दियों से यह सूत्र भारत मे अज्ञात रहा है। इसलिये इसका कुछ सामा य परिचय यहाँ पर दिया जा रहा है।

विमलकीर्तिनिर्देश के तिब्बती अनुवाद मे बारह अध्याय है जि हे परिवत कहा गया है। एक बार तथागत शाक्यमुनि वशाली नगर के आम्रपालीवन मे एक विशाल परिषद् में धर्मोपदेश कर रहे थे। रत्नाकर नामक एक लिच्छवि कुमार ५०० अ य लिच्छवि युवको के साथ तथागत के पास आते हैं और श्रद्धापूवक उनका अभिन दन करने के पश्चात् बुद्धक्षेत्र की विशुद्धि के विषय मे भगवान् की शिक्षा सुनते हैं। उसी समय वशाली में रहने वाले महान बौद्ध उपासक बोधिसत्व विमलकीर्ति ने अपने घर पर अपने रुग्ण होने

का उपाय कौशल्य दर्शाया था। भगवान् बुद्ध अपने प्रमुख शिष्यो–शारिपुत्र, मौद्गल्यायन, महाकाश्यप, सुभूति, उपालि, आनन्द इत्यादि महाश्रावको–को विमलकीर्ति के पास उनके स्वास्थ्य का समाचार पूछने के लिये जाने का आदेश देते हैं। परन्तु कोई भी महाश्रावक विमलकीर्ति के पास जाने को उद्यत नही होता है। इसी प्रकार बोधिसत्त्व मैत्रेय, लिच्छविकुमार प्रभाव्यूह, बोधिसत्त्व जगतीधर तथा दानवीर अनाथपिण्डद भी विमलकीर्ति के सामने जाने मे असमर्थता प्रकट करते हैं। ये सभी महापुरुष विमलकीर्ति के पास क्यो नही जाना चाहते हैं? इस प्रश्न का उत्तर तृतीय परिवर्त मे विस्तारपूर्वक दिया गया है जहाँ पर इन महापुरुषो व विमलकीर्ति के मध्य हुई पहले की धर्म चर्चा का वर्णन है। यह वर्णन अत्यन्त रोचक व आकर्षक है।

तत्पश्चात भगवान् बुद्ध विख्यात बोधिसत्त्व मंजुश्री को विमलकीर्ति के पास भेजते हैं। मंजुश्री एक अपार परिवार–बोधिसत्त्वो, अर्हतो, लिच्छविकुमारो, देवताओ आदि–के साथ विमलकीर्ति की कोठी में प्रवेश करते हैं। विमलकीर्ति जानबूझ कर अपने घर को उपस्करहीन (फर्नीचर रहित) बनाकर स्वयं एक चारपाई मे बीमार की तरह पड़े रहते हैं। ऐसी स्थिति मे उस घर मे हुई बोधिसत्त्व मंजुश्री व बोधिसत्त्व विमलकीर्ति के बीच गम्भीर धर्म चर्चा चौथे परिवर्त में पठनीय है। पाँचवें परिवर्त मे विमलकीर्ति अपनी रुग्णशय्या मे से एक अचिन्तनीय ऋद्धिविधि के प्रयोग से मेरुध्वजप्रदीप नामक तथागत के लोकधातु से असाधारण सिंहासनो को मंगवाकर अतिथियो को बैठाते हैं। गम्भीर धर्मचर्चा चलती रहती है। छठे व सातवें परिवर्तों मे विमलकीर्ति व मंजुश्री, शारिपुत्र व देवी के मध्य तथा अन्य श्रावको व बोधिसत्त्वो के धार्मिक व दार्शनिक प्रश्नोत्तर होते हैं। आठवें परिवर्त मे अद्वयपरमार्थ विषयक गम्भीर चर्चा है। इस चर्चा का समापन तब होता है जब मंजुश्री अद्वयधर्म मुखप्रवेश के बारे मे विमलकीर्ति से प्रश्न करते हैं और विमलकीर्ति मौन हो जाते हैं। नवें परिवर्त मे सर्वगन्धसुगन्धा लोकधातु से एक निर्मित बोधिसत्त्व द्वारा अतिथियों के लिये भोजनादान होता है। और इस असाधारण भोज के समय भी बोधिसत्त्व विमलकीर्ति का माध्यमिक दर्शन विवेचन महाश्रावको को सुनना पड़ता है। दशवें परिवर्त मे महापरिषद् के सभी सदस्य विमलकीर्ति की कोठी से साथ आम्रपालीवन मे भगवान के दर्शन करने के लिये जाते हैं। यहाँ पर भी श्रावकों व विमलकीर्ति के प्रश्नोत्तर होते हैं और भगवान् तथागत द्वारा क्षयाक्षय विषयक असाधारण उपदेश होता है। ग्यारहवें परिवर्त मे धर्मकाय की गम्भीरता पर प्रकाश डाला गया है और सम्पूर्ण परिषद् को तथागत अक्षोभ्य व अभिरति लोकधातु के दर्शन होते हैं। अंतिम परिवर्त मे इस सूत्र

के पठन, प्रकाशन व सरक्षण का महत्त्व दर्शाया गया है। धमपूजा की विस्तृत चर्चा और बोधिसत्त्वपिटका तगत निबद्ध सूत्रो के महत्त्व पर भी समुचित प्रकाश डाला गया है।

उपर्युक्त पक्तियो मे प्रस्तुत साराश अत्यल्प है। हास्य, न्यग, नाटकीय स्थिति व गम्भीर चिन्तन का, श्रावको तथा बोधिसत्त्वो के विचारादर्शों के स्वरूप व अन्तर का, माध्यमिक दृष्टि से परमाथ सत्य के विवेचन का, तथा वोधिसत्त्व के धमदशन का जो अनुत्तर वणन **विमलकीर्तिनिर्देश** मे मिलता है वह इसे पढने से ही ज्ञात हो सकता है। यह सूत्र पाठको के सामने है—तिब्बती, सस्कृत व हिन्दी भाषाओ मे—इसका परिचय इसको पढने से ही हो सकता है।

२. बौद्ध सस्कृत शास्त्रों में सुरक्षित अंश

प्राचीन भारत मे **विमलकीर्तिनिर्देश** की प्रामाणिकता तथा लोकप्रियता इस तथ्य से ज्ञात होती है कि लगभग दस बौद्ध शास्त्रकारो ने अपने शास्त्रो मे इस सूत्र के अश उद्धृत किये थे। उपलब्ध बौद्ध शास्त्रो मे सुरक्षित **विमलकीर्तिनिर्देश** के अश मूल बौद्ध सस्कृत म है। यहाँ पर प्रकाशित सस्कृत पुनरुद्धार एव हिन्दी अनुवाद की पाद टिप्पणियो म उपलब्ध सस्कृत ग्रन्थों के उन स्थलो की सूचना दे दी गई है जहा पर इस सूत्र के उद्धरण मिलते हैं। कुछ बौद्ध शास्त्र, जिनमे हमारे इस सूत्र के उद्धरण हैं, अब मूलरूप मे अनुपलब्ध है। परन्तु ऐसे शास्त्रो की और उनमे उद्धृत अशो की सूचना हमे उनके चीनी व भोटीय अनुवादो से प्राप्त होती है।

सूत्रसमुच्चय नामक एक बौद्ध शास्त्र में **विमलकीर्तिनिर्देश** से तीन उद्धरण दिये गये हैं। यह शास्त्र मूल सस्कृत मे अप्राप्य है। इसके चीनी तथा भोटीय अनुवाद सुरक्षित हैं। श्रद्धेय भिक्षु थिच हुयेन वी जी ने इसका चीनी से फ्रान्सीसी भाषा मे तथा श्रद्धेय भिक्षु प्रासादिक जी ने तिब्बती से अग्रजी भाषा में अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया है।[1] हमारा विश्वास है कि **सूत्रसमुच्चय** के लखक व सकलनकर्ता आचाय नागाजुन थ। तिब्बती परम्परा इस विश्वास का समथन करती है और **बोधिचर्यावतार** (५ १०५–१०६) तथा **बोधिचर्यावतार पजिका** (पृ० ८०) में भी नागाजुन को

1 (a) Bhikkhu Pāsadika, 'Nagarjuna's Sūtrasamuccaya' in *The Journal of Religious Studies* Vol VII, no 1 (1979),
(b) Thich Huyen-Vi "Le Sūtrasamuccaya" in *Linh-Son Publication d etudes Bouddhologiques* nos 2-7 (1977-78)

सूत्रसमुच्चय का रचयिता कहा गया है। आचार्य कमलशील ने **तृतीयभावनाक्रम** (पृ० २७) में स्पष्ट कहा है कि उनके **सूत्रसमुच्चय** में प्रज्ञा एवं उपाय दोनों की समान महत्ता का विचार **विमलकीर्तिनिर्देश** से लिया गया है, अर्थात् आचार्य नागार्जुन ने इस सूत्र से उद्धरण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार आचार्य कमलशील भी **सूत्रसमुच्चय** को आचार्य नागार्जुन की कृति मानते थे। चीनी बौद्ध परम्परा से ऐसा प्रतीत होता है कि 'धर्मकीर्ति' अथवा 'शान्तिदेव' ने **सूत्रसमुच्चय** की रचना की थी। परन्तु यह परम्परा सन्दिग्ध है।

आचार्य शान्तिदेव द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रन्थ **शिक्षासमुच्चय** में **विमलकीर्ति निर्देशसूत्र** के लगभग नौ अंश सुरक्षित हैं। देखिये **शिक्षासमुच्चय** पृ० ७,८०,८५,१४०, १४३, १४४ (दो बार), १४५, तथा १७२। पृ० १७२-१७३ में उद्धृत अंश बौद्ध संस्कृत गाथाओं में है। इन गाथाओं में बोधिसत्त्व के गुणों का वर्णन किया गया है।

आचार्य चन्द्रकीर्तिविरचित **प्रसन्नपदामध्यमकवृत्ति** (पृ० १४८) में **विमलकीर्तिनिर्देश** का एक गद्यांश सुरक्षित है जिसमें गन्धसुगन्धा लोकधातु से प्राप्त सुगन्धित भोजन का वर्णन है।

रत्नगोत्रविभागमहायानोत्तरतन्त्रशास्त्र (पृ० ६७) में एक संक्षिप्त कथन सूत्र का नाम दिये बिना ही उल्लिखित है—"तत उच्यते। चित्तसंक्लेशात् सत्त्वाः संक्लिश्यन्ते चित्तव्यवदानाद्विशुध्यन्त इति।" कुछ वर्ष पूर्व डॉ० अकिरा यूयामा ने इस कथन की पहचान की थी और कहा था कि यह **विमलकीर्तिनिर्देश** से उद्धृत है। इसके पहले डॉ० जिकिडो ताकासाकी ने सूचित किया था कि उक्त कथन से साम्य रखने वाला एक वाक्य **विमलकीर्तिनिर्देश** के चीनी अनुवाद में मिलता है।[1]

---

1 Akira Yuyama, The *Vimalakirtinirdeśa* quoted by Kamalaśila in his *Bhāvanākrama* (in Japanese) in *Tohogaku* no 38 Tokyo, 1969 pp 105-90 This information was based on facimiles of the ms of the Third *Bhāvanākrama* which was published by Professor Giuseppe Tucci in 1971 which we have cited above See also Jikido Takasaki, *A Study on the Ratnagotravibhāga* Rome, 1966, p 272, fn 77-'The source of this quotation is unknown, but we have a similar expression in the *Vimalakirti-nirdeśa* (Taisho, XV, 563 b)'

श्री र्यूशो सोइदा ने सूचित किया है कि हमारे इस सूत्र का एक उद्धरण **सर्व तथागततत्त्वसंग्रह** नामक तन्त्र में उपलब्ध है[1]।

आचार्य कमलशील द्वारा भोटदेश में जाकर लिखे गये भावनाक्रमो मे भी **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** के कुछ महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलते हैं। **प्रथमभावनाक्रम** (पृ० १९४ १९५) मे प्रज्ञा एव उपाय की समान महत्ता दिखाने के लिये **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** की साक्षी प्रस्तुत की गई है। इसी उद्देश्य से इसी विषय पर **तृतीयभावनाक्रम** (पृ० २२ एव २७) मे भी दो बार हमारे सूत्र का उल्लेख किया गया है। एक और स्थान पर कमलशील **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** का उद्धरण देते हैं। यहाँ पर (**तृतीय भावनाक्रम**, पृ० १३) का वह अश उद्धृत है जिसमें कहा गया है कि तथागतकाय अप्रमेय पुण्यो से प्राप्त होती है। आचार्य अद्वयवज्र ने अपने लघु ग्र थ **कुदृष्टिनिर्घातन** (**अद्वय वज्र सग्रह**, पृ० २) मे **विमलकीर्तिनिर्देश** का एक कथन उदधृत किया है जो प्रज्ञा एव उपाय दोनो के सहयोग की आवश्यकता विषयक है।

प्रोफेसर लामात[2] ने सूचित किया है कि **विमलकीर्तिनिदश** का उल्लेख तथा इसके कुछ वाक्याश उन अनेक भारतीय मूल के बौद्ध शास्त्रो के चीनी व तिब्बती अनुवादो मे मिलते हैं जो अब सस्कृत मे अप्राप्य हैं। इन शास्त्रो के नाम हैं—आचार्य सारमति विरचित **महायानावतारशास्त्र**, आचार्य वसुब धु कृत **रत्नकूटचतुर्धर्मोपदेश**, आचार्य बोधिरुचि द्वारा चीनी मे अनूदित **मैत्रेयपरिपृच्छोपदेश**, आचार्य श्वान च्वाङ् द्वारा अनूदित **विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि**, आचार्य श्वान-च्वाङ द्वारा अनूदित **नन्दिमित्रावदान** तथा आचार्य नागार्जुन द्वारा लिखी गई और चीनी भाषा मे आचार्य कुमारजीव द्वारा अनूदित **महाप्रज्ञापारमितोपदेशशास्त्र** (तशो इस्सक्यो, क्र० स० १५०९) नामक **पञ्चविंशति साहस्रिका प्रज्ञापारमिता** की विस्तृत टीका। इस विशालकाय ग्रन्थ मे नौ बार **विमलकीर्तिनिर्देश** से छोटे बडे उद्धरण दिये गये है। प्रोफेसर लामौत ने इस ग्र थ के चीनी अनुवाद का फ्रासीसी भाषा मे उत्तम अनुवाद किया है जो २०५१ पृष्ठो मे चार

---

1 Ryusho Soeda, 'A Quotation of the *Vimalakirtinirdeśa Sutra* in the *Tattavasamgraha sutra* in *Journal of Indian and Buddhist Studies* vol XXVI no 2 (1978), pp 674–675

2 Etienne Lamotte, *L Enseignement de Vimalakirti* Louvain, 1962, pp 91–93 The quotation in the *Ratnagotravibhaga* is not noted, though

खण्डो मे प्रकाशित होने पर भी अभी अधूरा है।[1] इस असाधारण शास्त्र को देखने से ही ज्ञात हो जाता है कि यह बौद्ध धम, दशन, योग व पुराकथाओ का सम्भवत सबसे बडा कोश है।

३. विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र की साहित्यिक परम्परा

यह सम्भव है कि प्राचीन भारत म **विमलकीर्तिनिर्देश** के एक से अधिक सस्करण प्रचलित थे। इस सूत्र के चीनी व भोटीय अनुवादो के तुलनात्मक अध्ययन से तथा तिब्बती अनुवाद के उन अशो से जो बौद्ध सस्कृत शास्त्रो म अब उपलब्ध है, ऐसा प्रतीत होता है कि इस सूत्र के अनेक सस्करण प्राचीन युग मे प्रचलित थे।

एशिया तथा यूरोप की अनेक भाषाओ मे **विमलकीर्तिनिर्देश** के अनुवादो एव इससे सम्बन्धित अध्ययन कार्यों के प्रकाशन से सम्बन्धित सक्षिप्त सूचना इस स्थान पर देना आवश्यक है।

यह सूत्र चीन मे इतना अधिक लोकप्रिय था कि आठ बार इसको चीनी भाषा मे अनूदित किया गया था।

पहला चीनी अनुवाद १८८ ईस्वी मे लो यग नगर मे येन-फो तिआओ नामक चीनी विद्वान ने किया था। यह प्राचीन अनुवाद अब अप्राप्य है।

दूसरा चीनी अनुवाद २२२ व २२९ ईस्वी के मध्य में नानकिंग नगर में त्चे कीन नामक विद्वान ने किया था। यह अनुवाद वेइ मो की किंग (**विमलकीर्तिसूत्र**) नाम से अभी सुरक्षित है। (तशो इस्सक्यो, क्र स ४७४)।

तीसरा चीनी अनुवाद त्चो चौ-लुन नामक व्यक्ति ने २९१ या २९६ ईस्वी मे किया था। यह अनुवाद भी अब लुप्त है।

चौथा चीनी अनुवाद तुचैग इन नगर मे ३०३ ईस्वी मे भारतीय बौद्ध विद्वान धमरक्ष ने किया था। यह अनुवाद भी अब अप्राप्य है। एक और अनुवाद (संक्षिप्त रूप) भी उसी आचाय धमरक्ष द्वारा किया गया था। यह भी लुप्त है।

---

1 Ftienne Lamotte, *La Traité de la Grand Veitu de Sagesse de Nāgār juna (Mahāpıajñāpāramitāśāstıa)* Louvain, tomes I & II (1949) tome III (1970), tome IV (1976)

पाँचवी बार त्चे मिन तौ नामक व्यक्ति ने इस सूत्र को २९० व ३०७ ईस्वी क बीच अनूदित किया था। यह अनुवाद भी काला तर मे लुप्त हो गया।

छठी बार की तो मी (गीतमित्र) नामक एक (भारतीय ?) विद्वान ने जो अनुवाद किया था वह भी अब नही मिलता है।

वेइ–मो–की–किंग (**विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र**) का सर्वाधिक प्रचलित अनुवाद आचाय कुमारजीव ने त्च गन (त्चग इन) नगर मे ४०६ ईस्वी मे किया था। यह अनुवाद सुरक्षित है (तैशो इस्सैक्यो, क्र स ४७५, नान्जियोकृत कटलॉग, क्र स १४६)।[1]

विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र का आठवाँ और अतिम चीनी अनुवाद स्वनामधन्य आचाय श्वान च्वाङ ने ६५० ईस्वी मे त्चग–इन नगर मे किया था। यह अनुवाद भी सुरक्षित है (तशो इस्सक्यो, क्र स ४७६, नाजियोकृत कटलाग, क्र स १४९)।

आर्यविमलकीर्तिनिर्देशनाममहायानसूत्र का भोटीय भाषा मे अनुवाद नवी शती ईस्वी मे आचाय धमताशील (छोस–जिद–त्शुल रिन्नम्स = छायनिद छुल्टिम) नामक विद्वान ने किया था। यह अनुवाद क जुर (कह्–ग्युर) मे सुरक्षित है। और भोटीय बौद्ध धमग्र थो के सभी सस्करणो–ल्हासा, नाथग, देर्गे तथा पीकिंग–मे उपलब्ध है। कन्जुर की ल्हासा सस्करण की पोथियो मे 'म्दो–मड'–फ (१४) के अ तगत इस सूत्र की क्रम सख्या १७७ है।[2] कन्जुर के पीकिंग सस्करण के चौतीसवें खण्ड मे इसकी क्रम सख्या ८४३ है।[3]

विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र का एक अ य भोटीय अनुवाद भी हुआ था जिसके चार खण्डाश मध्यएशिया मे तुन–हुआंग से प्राप्त हुये भोटीय भाषा के ग्रन्थो के सग्रह मे मिले थे। ये खण्डाश अब पेरिस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। इस तिब्बती अनुवाद तथा ल्हासा पीकिंग आदि सस्करणो मे उपलब्ध अनुवाद में कुछ अ तर हैं।[4]

---

1 Bunyiu Nanjio, *A Catalogue of the Chinese Translation of the Buddhist Tripitaka* Oxford, 1883 pp pp 48 and 56,

2 R Tokuoka *A Catalogue of the Lhasa Edition of the Bkah-hgyur of the Tibetan Tripitaka* Nalanda, 1968 p 140

3 D T Suzuki (ed) *The Tibetan Tripiṭaka Peking Edition, Catalogue and Index* Tokyo, 1962, p 129

4 J W de Jong, 'Fonds Pelliot tibetain Nos 610 et 611" in *Studies in Indology and Buddhology in Honour of Prof S Yamaguchi*, Kyoto,

मध्यएशिया की मरुभूमि मे नीचे उत्खनन करने के पश्चात अनेक प्राचीन बौद्ध अव शेष प्रकाश मे आए थ। इन अवशेषो मे कुछ खण्डित पाण्डुलिपियाँ भी थी। इ ही खण्डित बौद्ध ग्र थो मे **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** के कुछ पृष्ठ सोग्दियन भाषा तथा कुछ पृष्ठ खोतानी भाषा मे अनूदित मिले हैं। ये खण्डाश भी प्रकाशित हो चुके हैं।[1]

इस प्रकार ऊपर दी गई सूचनाओ से ज्ञात होता है कि **विमलकीर्तिनिर्देश** प्राचीन एशिया मे सस्कृत, चीनी, खोतानी, सोग्दियन, तिब्बती आदि भाषाओ म अनेक सस्करणो में प्रकाशित किया गया था। प्रोफेसर लामोँत ने इस सूत्र के फ्रा सीसी अनुवाद में (पृ० २१–३०) बडे परिश्रम के साथ इन सभी सस्करणों का तुलनात्मक अध्ययन तालिकाओं मे सकेतात्मक रूप से प्रस्तुत किया है।

प्राचीन चीन एव जापान मे इस सूत्र के अध्ययन तथा अध्यापन मे बडी रुचि थी। कुमारजीव द्वारा किया गया अनुवाद चीन मे बहुत प्रभावशाली व लोकप्रिय था। सुविदित है कि **विमलकीर्तिनिर्देश** को पढ़ने के पश्चात् से ग–चाओ (चतुथ शती ईस्वी) ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। कुमारजीव ने इस सूत्र पर एक विस्तृत एव प्रामाणिक टीका की रचना की थी (तशो इस्सैक्यो क्र स १७७५)। यह टीका चीन में मध्यमक चिन्तन पद्धति का महत्त्वपूण ग्र थ था।[2]

क फ्यूशियन विचारादर्शों से प्रभावित चीनी समाज के सम्भ्रा त एव शिक्षित वर्ग के लोगों के लिये गृहस्थ–उपासक–आचाय विमलकीर्ति के व्यक्तित्व, उसके वाक्चातुर्य, एव गम्भीर दर्शन–चि तन का प्रभावशाली आकषण था। यही कारण था कि इस सूत्र के आठ विभिन्न चीनी अनुवाद किये गये थे और अनेक चीनी बौद्ध विद्वानों ने इसकी टीकाएँ व इसके सक्षेप लिखे थे। चीनी भाषा मे **विमलकीर्तिनिर्देश** की विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पणियो

1955 pp 58–67, F Lamotte, *L Enseignement de Vimalakirti* pp 15–20

1 H Reichelt, *Die Sogdischen Handschriftenreste des Britischen Museums* I Teil *Die Buddhistischen Texte*, Heidelberg, 1928 pp 1–13, F Weller, 'Bemerkungen zum Sogdischen Vimalakīrtinirdeśasūtra" in *Asia Major* vol X 1935, pp 314–367, H W Bailey, *Khotanese Buddhist Texts* London, 1951, pp 104–113

2 Richard H Robinson, *Early Mādhyamika in India and China* Madison, 1967, pp 88, 123, Kenneth K S Chen, *Buddhism in China* Princeton, 1964, pp 209, 382–385,

मे से गचाओ कृत टीका (तशो क्र स १७७५), हुई–युआन कृत टीका (तैशो क्र स १७७६), त्चे–यि कृत टीका (तशो क स १७७७), कि–त्सग कृत टीका (तशो क्र स १७८० व १७८१) त्चन–जन कृत टीका (तैशो क्र स १७७८) तथा त्चे–युआन कृत टीका (तैशो क्र स १७७९) अति प्रसिद्ध है।

कोरिया, जापान तथा वियतनाम के बौद्धो मे भी **विमलकीर्तिनिर्देश** बहुत प्रामाणिक एव लोकप्रिय शास्त्र था। जापान के प्रथम महान शासक एव बौद्ध नेता शोतोकु (छठी शती ईस्वी) ने इस सूत्र की एक टीका[1] लिखी थी जिसने कुलीन जापानी परिवारो मे बौद्ध धम–दशन का प्रसार करके असाधारण सफलता प्राप्त की थी। तब से आज तक जापान मे बौद्ध भिक्षुओं तथा गहस्थ बौद्धो मे इस सूत्र के अध्ययन की परम्परा बनी हुई है। स्वनामधय प्रोफेसर दसेत्ज तेइतरो सुजुकी[2] की कृतियो से ज्ञात होता है कि जेन (चान, ध्यान) सम्प्रदाय तथा सामायरूपेण सारे महायान बौद्ध सम्प्रदायो की चि तन एव साधना पद्धतियो मे विमलकीर्ति की विचारधारा का गहरा प्रभाव पडा था। विमलकीर्ति का धर्मोपदेश सावभौम एव सवजनहिताय था।

आधुनिक युग में भी **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** एशिया, यूरोप व अमेरिका के बौद्ध विद्या‍यसनियो का प्रिय ग्र थ है। जो विद्वान शू यता, प्रज्ञापारमिता, जेन, त त्र, बोधिसत्त्व तथा मध्यमक दशन मे रुचि रखते हैं वे सभी इस सूत्र का महत्त्व जानते हैं। प्रोफेसर टी आर वी मूर्ति को यदि यह सूत्र सुलभ होता तो वह अपने ग्र थ मे सम्भवत परिवतन एव सुधार करना आवश्यक समझते।

विमलकीर्तिनिर्देश के कुमारजीवकृत चीनी अनुवाद के आधार पर आधुनिक विद्वानो ने पर्याप्त एव महत्त्वपूण काय प्रकाशित किया है। अनेक भाषाओ मे प्रकाशित विमलकीर्ति–साहित्य की सूचना हमने ग्र थ के अ त मे सहायक पुस्तको व लेखो की

---

1 *The Prince Shotoku s Commentary on the Wei mo ching* 2 vols edited by J Saeki Tokyo, 1937

2 Masaharu Anesaki, *History of Japanese Religion* London, 1930, Vermont 1963 pp 60–63 Daisetz Teitaro Suzuki, *Essays in Zen Buddhism* First Series pp 1–388 (1949) Second Series pp 1 367 (1953) Third Series pp 1–396 (1953), *Zen and Japanese Culture (1959)* Heinrich Dumoulin S J *A History of Zen Buddhism* New York, 1963, pp 42–44

सूची मे दे दी है। यहाँ पर केवल कुछ विशेष महत्त्व के कार्यों का सक्षिप्त उल्लेख करना उपयुक्त होगा।

जापानी विद्वान के० ओहारा ने कुमारजीव के चीनी अनुवाद का अग्रजी अनुवाद १८९८ व १८९९ मे जापान में प्रकाशित किया था। एच० इद्जुमी नामक जापानी पण्डित ने भी कुमारजीव कृत चीनी से अग्रेजी में इस सूत्र का अनुवाद १९२४ व १९२५–१९२८ में 'इस्टन बुद्धिस्ट' नामक पत्रिका में प्रकाशित किया था। जे० फिशर एव टी० योकोटा नामक दो विद्वानो ने इस सूत्र का जमन भाषानुवाद (**वास सूत्र विमलकीर्ति**) टोक्यो से १९४४ म प्रकाशित किया था। कनाडा के प्रसिद्ध बौद्ध शास्त्री रिचड हुफ रॉबि सन ने इन पक्तियो के लखक को १९७० मे हावड विश्वविद्यालय म सूचित किया था कि उनके द्वारा कुछ वष पूव तयार किया हुआ अग्रजी अनुवाद कोलम्बिया विश्वविद्यालय मे यन्त्रस्थ है। यह अनुवाद भी कुमारजीव के चीनी सस्करण पर आधारित है और अभी तक अप्रकाशित है। रॉबि सन का एक लेख ('दि रिलीजन ऑफ दि हाउसहोल्डर बोधिसत्त्व') हिंदू विश्वविद्यालय की पत्रिका **भारती** म १९६६ मे छपा था। यह लेख विमलकीर्ति की शिक्षा पर आधारित है। जापानी बौद्ध शास्त्री सुसुमु यामागुची ने **विमलकीर्तिनिर्देश** सूत्र के बुद्धक्षेत्रपरिवत (प्रथम परिवत) की व्याख्या को १९५० व १९५१ में ओतानी विश्वविद्यालय की एक पत्रिका म प्रकाशित किया था। यह अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण लेख है।

अनेक जापानी लेखकों ने चीनी सस्करणो के आधार पर **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** के विविध पहलुओ पर छुट पुट लेख लिख हैं जो जापानी भाषा मे टोक्यो विश्वविद्यालय से प्रकाशित होने वाली पत्रिका **"इण्डोगकु बुक्योगकु केंक्यु"**[1] के विभिन्न अको मे प्रकाशित हुये हैं। जापानी व चीनी भाषाओ का ज्ञान न होने के कारण इस भूमिका का लेखक उन जापानी लेखों की सामग्री का प्रयोग नही कर सका है।

---

1 *Journal of Indian and Buddhist Studies (Indogaku Bukkyogaku Kenkyu)*—see vol I, no 1 (1952), vol II, no 1 (1953), vol II, no 2 (1954), vol V, no 1 (1957), vol VI, no 2 (1957), vol VII, no 1 (1959), vol VIII, no 1 (1960), vol IX, no 2 (1961), vol XVIII, no, 1 (1969), vol XVIII, no 2 (1970), vol XIX, no 2 (1971), vol XXI, no 2 (1973), vol XXII, no 2 (1974), vol XXIV, no 1 (1975), vol XXIV, no 2 (1976), vol XXVI, no 1 (1977), vol XXVII, no 1 (1978)

विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र का एक जापानी भाषानुवाद यामादा मुमोन रोशी ने तीन भागो मे १९५५, १९५७ व १९५९ ईस्वी मे कोबे तथा क्योटो से प्रकाशित किया था। दूसरा जापानी अनुवाद चीनी सस्करण के साथ फुकउर शोबुन नामक जापानी लेखक ने क्योटो से १९६४ मे प्रकाशित किया था। एस० पोतीना ता नामक लेखक ने थाई भाषा मे इस सूत्र का अनुवाद बगकौक से १९६३ ईस्वी मे प्रकाशित किया था। उक्त सभी अनुवाद सूत्र के चीनी सस्करण से किये गये हैं। चार्ल्स लुक (लु कुआन यु) नामक एक चीनी बौद्ध विद्वान ने **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** के कुमारजीव कृत चीनी अनुवाद का अग्रजी रूपान्तर भी प्रकाशित किया है। यह अग्रजी अनुवाद श्री लका से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका **वर्ल्ड बुद्धिज्म** के १४ अको मे (अप्रैल १९७१ से मई १९७२ तक) क्रमश प्रकाशित हुआ था। पुस्तक के रूप मे भी यह अनुवाद प्रकाशित हो चुका है।[1]

विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र के तिब्बती अनुवाद का भी अध्ययन कुछ विद्वानो ने किया है। जसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रोफसर लामात महाशय ने इस सूत्र का जो उत्कृष्ट फ्रासीसी अनुवाद प्रकाशित किया है वह मूलत तो तिब्बती (भोटीय) सस्करण पर ही आधारित है, परन्तु उन्होने बहुधा श्वान च्वाङ द्वारा किये गये चीनी अनुवाद से महत्त्वपूर्ण अन्तर वाले अशो का फ्रासीसी अनुवाद भी किया है। प्रथम बार सूत्र के तिब्बती सस्करण का किसी आधुनिक भाषा मे अनुवाद करने का श्रेय प्रोफेसर लामात को है। यह अनुवाद लुवें विश्वविद्यालय के प्राच्यविद्या सस्थान से १९६२ ईस्वी मे प्रकाशित हुआ था। चार सौ अठासी पृष्ठो के इस महान एव महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मे लामात महाशय ने अधिकतम सूचना का सकलन किया है। इस ग्रन्थ की जर्मनभाषा मे समीक्षा करते हुये गौटिंगन विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध बौद्ध–विद्याचार्य हाइन्ज़ बेशर्ट महाशय ने इसकी समुचित श्लाघा की है। लामात कृत फ्रासीसी अनुवाद का अंग्रेजी अनुवाद भी हुआ है जो प्रकाशित हो चुका है।[2]

---

1 Charles Luk (Lu K'uan yu) *The Vimalakirti Nirdesa Sutra* Berkeley, 1972, *World Buddhism* vol XIX, no 9 (1971) to vol XX no 10 (1972)

2 See Heinz Bechert's review of Lamotte's *L Enseignement de Vimalakirti* in *Zeitschrift der Deutschen Morgelandischen Gesellschaft* Band 131–Heft 2 (1971), Gadjin Nagao's review of

जापानी विद्वान जिस्शु ओशिका[1] महाशय ने **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** के तिब्बती (भोटीय) अनुवादो का वज्ञानिक ढग से अध्ययन करके एक प्रामाणिक सस्करण प्रकाशित किया है। यह सस्करण नाथग, देर्गे तथा पीकिंग के सस्करणो के तुलनात्मक पाठ पर आधारित है। यह रोमन लिपि मे है। हाल ही मे ओशिका ने सूत्र के चारो तिब्बती सस्करणो की एक समनुक्रमणिका (कौकॉर्डे स) भी प्रकाशित की है। इस समनुक्रमणिका के साथ उन्होने सूत्र की भोट शब्द सूची भी प्रस्तुत की है।[2]

जर्मनी के सुविदित बौद्ध भिक्षु तथा बौद्ध आगमो के कुशल पण्डित प्रासादिक (पासादिक) जी ने **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** के तिब्बती अनुवादो का स्वतन्त्र रूप से तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् १९७१ मे रोमनाक्षरो मे एक सुन्दर भोटीय सस्करण तैयार किया था। १९७२–१९७३ ईस्वी मे उन्होने इस सूत्र का तिब्बती से सस्कृत में भी उद्धार कर दिया था। परन्तु रोमन लिपि मे लिखा गया यह भोटीय सस्करण तथा सस्कृत उद्धार अभी तक अप्रकाशित रहे हैं। इसमे कोई सन्देह नहीं कि श्रद्धेय भिक्षु प्रासादिक जी ने इस महान सूत्ररत्न का सस्कृत मे पुनरुद्धार करके हम सभी को अपना ऋणी बना दिया है। जब प्रासादिक जी ने भोटीय संस्करण तथा सस्कृत पुनरुद्धार का कार्य लगभग पूरा कर लिया था, तब हमे जापान से रोमन लिपि मे प्रकाशित ओशिका के भोटीय संस्करण की सूचना प्राप्त हुई थी। प्रासादिक जी का सस्करण प्रमुखत ल्हासा की पोथी पर आधारित है जब कि ओशिका का सस्करण प्रमुखत देर्गे की पोथी पर आधारित है, तथापि दोनो ने अपने अपने स्वतन्त्र सस्करणो मे पीकिंग व नार्थंग

Lamotte s *L Enseignement de Vimalakirti* rendered into English by Sara Boin, The *Teaching of Vimalakirti* (London, Pali Text Society, 1976) in *The Eastern Buddhist* new series vol XI no 1 (1978) pp 109 111 wherein Robert Thurman's English Translation (see next page note 1) is also reviewed

1 *Tibetan Text of Vimalakirtinirdeśa* edited by Jisshu Oshika in *Acta Indologica*, Vol I, Naritasan Shinshoji, 1970, pp 145 240

2 'Appendices to the Tibetan Translation of the Vimalakirtini rdeśa ', "Concordance of Four Translations and Corrigenda", pp 164–195, and "An Index to the Tibetan Translation of the Vimala kirtinirdeśa ', pp 201–352, all these published in *Acta Indologica* vol III, 1973–1975

की पोथियो मे उपलब्ध पाठ भेदो को ध्यान मे रखकर सूत्र के तिब्बती पाठ निर्धारित किये हैं।

अमरीकी बौद्ध विद्वान रौबट थमन[1] महाशय ने भी **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** का तिब्बती से अग्रजी मे अनुवाद १९७६ में प्रकाशित करके विमलकीर्ति साहित्य की अभिवृद्धि की है। उनका अनुवाद सिफ ९३ पृष्ठो मे है यद्यपि सम्पूर्ण ग्र थ का विस्तार १६६ पृष्ठो में है। ओशिका महाशय तथा प्रासादिक जी द्वारा सम्पादित भोटीय सस्करणो के साथ तुलना करने पर ज्ञात होता है कि थमन महाशय का अनुवाद अनेक स्थलो पर मनमाना है और कुछ स्थलो पर लामात के फ्रासीसी अनुवाद व कुमारजीव के चीनी अनुवाद के निकट है। चार्ल्स लुक द्वारा प्रकाशित चीनी से अंग्रेजी मे अनूदित सूत्र के सस्करण की प्रासादिक जी द्वारा पुनर्निर्मित सस्कृत सस्करण के साथ तुलना करने से स्पष्ट हो जाता है कि चीनी तथा भोटीय अनुवादो मे ध्यान देने योग्य अनेक अ तर हैं।

विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र की साहित्यिक परम्परा के अब तक के दीघकालीन इतिहास के अन्त में प्रस्तुत हमारा यह त्रिभाषिक सस्करण प्रकाशित हो रहा है। भिक्षु प्रासादिक द्वारा रोमन लिपि में सम्पादित भोटीय सस्करण तथा उन्हीं का किया हुआ सस्कृत उद्धार मेरे पास १९७६ से सुरक्षित रहा है। प्रासादिक जी की इच्छा थी कि मैं इसका हिन्दी अनुवाद करूँ और आवश्यक टिप्पणियो व विस्तृत भूमिका के साथ तीनो भाषाओं में इसका प्रकाशन भारत मे ही करने का दायित्व अपने ऊपर ले लू। मैंने यह काय करने की जिम्मेदारी लेने के पश्चात् अनुभव किया कि यह एक अत्यन्त कठिन काय है। इस सस्करण का महत्त्व अभी तक प्रकाशित विमलकीर्ति साहित्य के अध्ययन से स्वय सिद्ध है। भोटीय लिपि मे भोट सस्करण, नागरी लिपि मे पुनर्निर्मित सस्कृत सस्करण, भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी मे इसका सटीक अनुवाद, तथा किसी आधुनिक भारतीय भाषा मे इसकी समीक्षा का प्रथम बार इन पृष्ठो मे प्रकाशन हो रहा है। भारत और विश्वभर मे बौद्धविद्याध्ययन के क्षेत्र मे इस सूत्ररत्न के अद्वितीय महत्त्व को

---

1 *The Holy Teaching of Vimalakirti A Mahāyāna Scripture* translated by Robert A F Thurman, University Park and London, 1976.

ध्यान मे रखते हुये मैंने यह् काय यथाशक्ति अप्रमादपूवक सम्पन्न करने का प्रयत्न किया है। इस सस्करण मे जो दोप रह गये हो उनका दायित्व मेरे ऊपर है इसमे जो अच्छाइयाँ हैं उनका श्रेय उन सभी प्राचीन व अर्वाचीन विद्वानो व लेखको को प्राप्त है जिन्होने **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** क अध्ययन अनुवाद व्याख्या तथा प्रकाशन करने मे सहयोग दिया है।

४ विमलकीर्तिनिर्देश की परिवर्तव्यवस्था एवं शैली

प्राचीन भारतीय बौद्धाचार्यों—शान्तिदेव चन्द्रकीर्ति तथा कमलशील ने अपने शास्त्रो में हमारे इस सूत्र को 'आयविमलकीर्तिनिर्देश' नाम से उल्लिखित एव उद्धृत किया है। सूत्र के अन्त मे इसके तीन नामो का उल्लेख है—"विमलकीर्तिनिर्देश' "यमकव्य त्यस्ताभिनिर्हार" तथा "अचिन्त्यविमोक्षपरिवत"। तिब्बती अनुवाद मे इसे "आयविमल-कीर्तिनिर्देशनाममहायानसूत्र" (फापा टिमा-मेपर-ठगपे-तम्पा शेच्यावा थेग्पाछे पोइ दो = अफगस-पा द्रिमा मेद-पर ग्रग्स-पम् बस्तन-पा शेस-ब्या-वा थेग-पा छेन-पोई म्दो) कहा गया है। चीनी अनुवादो व टीकाओ मे यह् सूत्र अनेक नामो से विदित था—"विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र" (वेइ-मो-की सो-चोउओ), "अचिन्त्यधर्मपर्याय" (पोउ को स्सेउ यि फा मेन), "अचिन्त्यविमोक्षधमपर्याय "(पोउ-को-स्सेउ यि किअइ-तो फा-मेन) तथा "अचिन्त्यविकुर्वणविमोक्षधर्मपर्याय "(पोउ-को स्सेउ-यि त्सेउ-त्सी-चेन-पीन किअइ-तो फा-मेन)।

विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र के तिब्बती अनुवाद में द्वादश परिवर्त अथवा अध्याय हैं। अतएव यहाँ प्रकाशित तीनो सस्करणो में यही सख्या-व्यवस्था रखी गई है। चीनी भाषा मे उपलब्ध सभी सस्करणो में इन परिवर्तो की सख्या चतुदश (चौदह्) है। त्चे-कीं'न, कुमारजीव तथा ह्वान-च्वाङ्ग क अनुवादों में तृतीय परिवत को दो स्वतन्त्र परिवर्तों में विभाजित किया गया है। 'श्रावको को विमलकीर्ति के पास भेजने की समस्या' तृतीय परिवत मे तथा 'बोधिसत्वों को विमलकीर्ति के पास भेजने की समस्या' चतुर्थ परिवर्त मे वर्णित है। इसी प्रकार बारहवें परिवत को भी दो स्वतन्त्र परिवर्तों मे विभक्त किया गया है। 'धर्मपूजा' तेरहवें तथा 'मैत्रेय परीन्दना' चौदहवें परिवर्त के अन्तर्गत हैं। कन्जुर मे तथा चीनी अनुवादों मे परिवर्तव्यवस्था विषयक अन्तर[1] नीचे की तालिका स्पष्ट करती है—

---

1 F Lamotte L Enseignement de Vimalakirti p 79

भोटीय संस्करण में	चीनी सस्करण में
१ बुद्धक्षेत्रपरिशुद्धि निदानम्	१ बुद्धक्षेत्रम् (अथवा निदानम)
२ अचिन्त्योपायकौशल्यम	२ उपायकौशल्यम् (अथवा उपाया)
३ श्रावकबोधिसत्त्वप्रोषणोक्तम	३ श्रावका
४ ग्लानसम्मोदनकथा	४ बोधिसत्वा
५ अचि त्यविमोक्षनिर्देश	५ धमवचनम् (अथवा मजुश्रीग्लानपृच्छा)
६ देवी	६ अचि त्यम्
७ तथागतगोत्रम्	७ सत्वस दर्शन
८ अद्वयधममुखप्रवेश	८ तथागतगोत्रम (अथवा बोध्यगानि)
९ निर्माणभोज्याऽदानम	९ अद्वयधममुखप्रवेश (अथवा अद्वयप्रवेश)
१० क्षयाक्षयन्नाम धमयौतकम	१० सुगन्धकूटस्तथागत
११ अभिरतिलोकधात्वादानम तथागता क्षोभ्यस दशनञ्च	११ बोधिसत्त्वचर्या
	१२ अक्षोभ्यस्तथागत
१२ पूवयोग सद्धमपरीन्दना च	१३ धमपूजा
	१४ मत्रयपरी दना (अथवा परी दना)

इस प्रकार यद्यपि भोटीय सस्करण की तुलना मे चीनी सस्करणो में परिवर्तों की सख्या अधिक एवं उनके शीषक कुछ भिन्न हैं, तथापि सामा यरूपेण दोनों अनुवादों में विषय वस्तु की दृष्टि से मूलभूत अ तर नही है। भाषा एव अनुवाद की दृष्टियो से अवश्य कुछ ध्यान देने योग्य अन्तर हैं। यह कहना समीचीन होगा कि कुमारजीव तथा ह्वान–च्वांङ ने अपने चीनी अनुवादो मे सस्कृत सूत्र की भाषा पर अधिक ध्यान न देकर पारिभाषिक शब्दो के अथ की तथा धम–दशन की महायानी व्याख्या की दृष्टि से कुछ स्वतत्रता दिखाई है। भोट अनुवाद सस्कृत मूल के प्रति श्रद्धाबद्ध प्रतीत होता है।

ऊपर कहा गया है कि इस सूत्र का एक विशिष्ट नाम "यमकव्यत्यस्ताभिनिर्हार" है। इस प्रकार के नाम का क्या अभिप्राय हो सकता है ? इस नाम मे तीन शब्दो का गठजोड है—'यमक', 'व्यत्यस्त' तथा 'अभिनिर्हार' (निर्हार अथवा आहार)। हि दी अनुवाद मे मैंने 'यमकव्यत्यस्ताभिनिर्हार' को परस्पर विरोधी रहस्यों के समवाय की सिद्धि कहा है। यह बहुत स तोषप्रद अनुवाद नही कहा जा सकता है। अतएव इस पेचीदे नाम की साथकता यहाँ पर विचारणीय है।

आहार' का सामा य अथ 'भोजन' या 'खाद्य' है। परन्तु यह अर्थ प्रस्तुत प्रसंग मे अविचारणीय है। 'आहार' यहाँ पर 'अभिनिर्हार' का पर्याय समझना चाहिये।

महायानसूत्रो मे बोधिसत्त्वो के अठारह आवेणिक (असाधारण, विशिष्ट) धर्मों या गुणो मे से एक गुण यह भी है कि वे 'यमकव्यत्यस्ताहारकुशल' होते है। **महाव्युत्पत्ति**, ७९८ (पृ० ६१) मे दिये गये भोटानुवाद मे 'आहार' का समानार्थक भोटीय शब्द 'र्ग्युद' अर्थात तन्त्र है। एडजर्टन महाशय का कहना है कि यहाँ पर आहार का अर्थ 'तन्त्र' अथवा 'रहस्यमय पद्धति' ('मिस्टिक टैकनीक') अथवा 'एक साथ उत्पन्न करना'[1] हो सकता है। हमारे वर्तमान मन्त्र के भोटीय अनुवाद के अनुसार 'अभिनिर्हार' (म्डोन-पर स्ग्रुब-पा) का अर्थ 'उत्पन्न करना' होता है। 'यमक' शब्द सुविदित है— 'दो बातो का जोडा' अथवा दो शब्दो या विचारो या वस्तुओ को एक साथ करना या रखना। इस प्रकार 'यमकप्रातिहार्य' का अर्थ है दो परस्पर विरोधी चीजो को एक साथ उत्पन्न करने वाली ऋद्धि विधि। 'यमक' एक प्रकार की योगविधि अथवा रहस्यमयविधि को भी कहते हैं जिसका प्रयोग तान्त्रिक साधना मे होता है। परन्तु यह अर्थ स्पष्ट नहीं है।

'व्यत्यस्त' का प्रयोग अनेक अर्थों मे हुआ है। इसका शाब्दिक अर्थ 'उल्टा', 'विरोधी' अथवा 'प्रतिकूल' है। महायान ग्रन्थों मे व्यत्यस्त एक समाधि का, एक लोकधातु का, तथा एक प्रकार की योगविधि का नाम भी है। **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** मे प्रयुक्त 'व्यत्यस्त' का अर्थ विरुद्ध, उल्टे, प्रतिकूल, अथवा प्रतिद्वन्दी के रूप म समझना चाहिये। उपरियुक्त चर्चा से स्पष्ट हो जाता है कि 'यमकव्यत्यस्ताभिनिर्हार' का अर्थ है दो परस्पर प्रतिकूल शब्दो को प्रस्तुत करना, दो विरोधी विचारो अथवा आदर्शों को उत्पन्न करना, द्वयभाव सिद्ध करना, अथवा कि ही दो परस्पर विपरीत धारणाओ का प्रसग दिखाकर द्वय का निषेध करके अद्वय धर्म का प्रकाशन करना। इस क्रिया मे उपायकौशल्य मे निष्णात् बोधिसत्त्व कुशल एव सफल होते हैं। अत उन्हे 'यमकव्यत्यस्ताहारकुशला' कहा जाता है। ऐसे श्रेष्ठ बोधिसत्त्वो की कोटि मे विमलकीर्ति अग्रणी हैं। अतएव उनके निर्देश अथवा उपदेश का नाम 'यमकव्यत्यस्ताभिनिर्हार' बहुत सार्थक है। क्योकि **विमलकीर्तिनिर्देश** मे प्रारम्भ से लेकर अन्त तक द्वयभाव का निराकरण किया गया है, चुन-चुन कर दो परस्पर उल्टी और एक दूसरे की विरोधी धारणाओ को आमने सामने रखकर विमलकीर्ति अपने श्रोताओ को हास्यास्पद स्थिति मे ला कर रख देते हैं। धर्म

1 Franklin Edgerton *Buddhist Hybrid Sanskrit Dictionary* pp 112 (*āhāra*) 444 (*yamaka*) 514 (*vyatyasta*)

के साथ अधम, भिक्षु के साथ गृहस्थ, ससार के साथ निर्वाण, नरक के साथ स्वर्ग, स्त्री के साथ पुरुष, शाति के साथ उपद्रव, दु ख के साथ सुख, अर्हत् के साथ पृथग्जन, शील के साथ दु शील, प्रज्ञा के साथ अविद्या, इत्यादि परस्पर विपरीत धर्मों (= बातो) को प्रस्तुत करना, उनका समवाय दिखाना व उनके अतिक्रमण का मार्ग प्रशस्त करना इस सूत्र की शैली की एक प्रमुख विशेषता है। लामात महाशय ने चीनी बौद्ध शास्त्रो की साक्षी के आधार पर 'व्यत्यस्त' शब्द के अर्थ पर पर्याप्त प्रकाश डाला है जो पठनीय है।[1]

विमलकीर्तिनिर्देश न केवल वैचारिक गम्भीरता एव यमक-व्यत्यस्तता की दृष्टि से असाधारण सूत्र है, अपितु यह हास्य एव व्यग से भी भरपूर है। महाज्ञानी, विनयधर एव बुद्धशासन के चोटी के नेताओ—यथा शारिपुत्र, महाकाश्यप, महामौद्गल्यायन, उपालि, सुभूति पूर्णमैत्रायणीपुत्र, आनन्द आदि को विमलकीर्ति पुन पुन हास्य और व्यग की स्थिति मे डाल देते है। जिस बात की श्रद्धालु श्रोतागण आशा नही करते और जिस बात को लज्जा व सकोच के कारण हम कह नही सकते, उसी बात को एक चारपाई पर पडा हुआ गृहस्थ उपासक अभिज्ञाप्राप्त और कृतकृत्य महाश्रावको के सामने कह देता है। आधुनिक काल का कोई स्थविरवादी बौद्ध भिक्षु अथवा पालितिपिटकाचरिय जब **विमलकीर्तिनिर्देश** को पढ़ेगा तो वह अवश्य अप्रसन्न एव क्रुद्ध होकर यह निष्कर्ष निकालेगा कि इस सूत्र मे अर्हतो का अपमान किया गया है। वास्तव मे इस सूत्र के अनुसार यह कहा जायगा कि 'अपमान' एव 'मान' समान है, अपमान करने वाला तथा अपमानित होने वाला दोनो ही वन्ध्यापुत्र अथवा मायाजन्य पुरुष के समान असत् हैं। आचार्य नागार्जुन के द्वारा लिखे गये शास्त्रो में तथा प्रज्ञापारमितासूत्रो मे जो विचार विश्लेषण पद्धति एव दृष्टिमीमासा का ढग मिलता है लगभग उसी शैली मे यह सूत्र रचा गया है।

५. विमलकीर्ति की ऐतिहासिकता का प्रश्न

इस सूत्र के पाठक पूछ सकते है— विमलकीर्ति कौन है? क्या वह एक ऐतिहासिक पुरुष हुए है? उनका स्थान कहाँ और उनका समय क्या है?

इन प्रश्नो के उत्तर भारतीय मूल की बौद्ध परम्पराओ मे ढूढने पर मिल सकते हैं। यहाँ पर यह कहना उपयुक्त होगा कि किसी व्यक्ति विशेष अथवा मानवजाति का

---

1 See Fr Lamotte, *L Enseignement de Vimalakirti*, pp 33-37

भौतिक व लौकिक इतिहास एक चीज है, मानवजाति में विकसित श्रद्धामूलक विचारादर्शों का इतिहास दूसरी चीज है। यीसु मसीह (जिसस क्राइस्ट) का सृष्टिकर्ता ईश्वर के इकलौते पुत्र के रूप में दुनियाँ मे अवतार लेना, क्रास पर आत्मोत्सग करना, भूमि के भीतर गाड दिया जाना और पुन जीवित होकर अपने पिता सृष्टिकर्ता ईश्वर मे लीन हो जाना, साधारण मानव इतिहास की दृष्टि से "अविश्वसनीय" घटनायें है। परन्तु पश्चिमी देशो की प्रमुख सभ्यता व सस्कृति का पिछली दो सहस्राब्दियो का भौतिक व मानवीय इतिहास इन्ही "अविश्वसनीय" घटनाओ पर आधारित है। अनतिहासिक होते हुये भी जिस व्यक्ति, घटना, अथवा विचार का परिणाम ठोस ऐतिहासिक हो क्या उसको हम ऐतिहासिक *'सत्य'* एव *वास्तविक घटना नही कहेंगे ?*

विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र मे बुद्धवचन की जो व्याख्या प्रकाशित हुई थी उससे प्रभावित होकर जो नर नारी पाप का माग छोड़ कर पुण्य के मार्ग पर अग्रसर हुये थे, एशिया की सभ्यता के स्थायी स्वरो की दुन्दुभी बजाने का जो कार्य विमलकीर्ति के निर्देश ने सफलतापूवक किया था, अज्ञान के अ धकार को समाप्त करके प्रज्ञारश्मियो को विकीण करने की दिशा मे इस लिच्छवि उपासक के सिंहनाद को जो सफलता प्राप्त हुई थी, परात्मसमता और सर्वजनहिताय धर्मचर्या के उनके आदर्शों ने दान, शील, क्षान्ति, करुणा, वैराग्य एव पवित्रता के विकास में जो महत्त्वपूर्ण भूमिका एशिया के देशो के इतिहास में निभाई थी, नागार्जुन, च द्रकीर्ति, शा तिदेव, कमलशील, कुमारजीव, हुइ युआन, सेन्ग-जुई, सेन्ग-चाओ, श्वान-च्वाङ, शोतोकु आदि महान विचारकों ने जिस ग्रथ को अपने जीवन-दर्शन का आधार बनाया था, और महाकारुणिक तथागत के धर्म से उत्पन्न हुये बोधिसत्त्वो की बहुजनहिताय बहुजनसुखाय बोधिचर्या का क्षेत्र जिस सूत्र ने इस पीड़ित एवं सतप्त प्राणिजगत को निश्चित किया था, क्या हम ऐसे विमलकीर्ति को अनैतिहासिक कह कर मृषावाक का समर्थन कर सकते हैं ? विमलकीर्ति के जीवन व व्यक्तित्व का चित्रण करने वाली चीन व जापान की मूर्तिकला व चित्रकला क्या ऐति हासिक नहीं है ?

विमलकीर्ति नामक एक लिच्छवि उपासक बौद्ध वस्तुत ऐतिहासिक पुरुष थे अथवा वह एक काल्पनिक और अनैतिहासिक निर्माण मात्र थे, यह विशेष महत्त्व का प्रश्न नहीं है। **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** एक ऐतिहासिक धर्मग्रन्थ है और इसमे प्रति पादित विचारादर्शों का समूह धर्मकाय का मानवीय एव ऐतिहासिक प्रतिनिधित्व करके वास्तविक बौद्ध इतिहास व सस्कृति का विकास करने मे सफल रहा है। इसलिये सच्चे

अथ मे विमलकीर्ति एक ऐतिहासिक पुरुष थे, और आज भी वह जीवित हैं। उनकी ऐतिहासिक सत्ता उनके नाम से प्रसिद्ध धर्मोपदेश की महत्ता से सिद्ध होती है। विमल कीर्ति एक व्यक्ति नही अपितु सद्धम की विचारतरगिणी है, हाड मास का बना व्यक्ति नश्वर होता है एव अनित्यता के बहाव मे बहकर लुप्त हो जाता है। विमलकीर्ति का व्यक्तित्व धमज और धममय था, उन्होने जो धमकाय किया है वही उनकी ऐतिहासिक सत्ता व महत्ता की कसौटी है।

विमलकीर्तिनिर्देश के अनुसार विमलकीर्ति का समय वही है जो गौतमबुद्ध का समय है। सवमान्य तथ्य है कि शाक्यमुनि गौतमबुद्ध ने आज से दो हजार छ सौ वष पूव छठी शती ईसा से पूव पूर्वोत्तर भारत मे धर्मोपदेश किया था। इस निर्देश मे ऐतिहासिक स्थलो व व्यक्तियो के प्रसग भी आए हैं।

तथागत शाक्यमुनि वैशाली नगर की बाह्य सीमा पर स्थित आम्रपालीवन मे एक विशाल भिक्षु परिषद् के साथ विराजमान थे। वशाली लिच्छवि गणराज्य की राजधानी थी। यह प्राचीन भारत की एक प्रमुख नगरी थी। आजकल जिसे बसाढ़ कहते हैं वही प्राचीन वशाली का क्षेत्र था। यह स्थान बिहार प्रदेश के मुजफ्फरपुर जनपद मे है। आम्रपाली वशाली की एक प्रसिद्ध महिला थी। वेश्यावृत्ति का परित्याग करके, बुद्ध, धम, एव सघ की शरण में जाकर के उसने पवित्र व सदाचारी जीवन प्रारम्भ करते समय अपना विशाल एव सुदर उद्यान भगवान् तथागत के सघ को सादर भेंट किया था। इस उद्यान को आम्रपालीवन कहते थे।

लिच्छवि जाति उस युग मे ख्यातिप्राप्त थी। इस समुदाय के नर नारी स्वतत्रता के प्रेमी, शूर वीर, दानी, समृद्ध एव श्रमणो की धार्मिक शिक्षाओ को मानते थे। लिच्छवि गणराज्य को वृजिगण भी कहा जाता था। विमलकीर्ति एक लिच्छवि वशीय बौद्ध उपासक थे जो वैशाली नगर मे बुद्ध काल में रहते थे। वह धनसम्पन्न, वभवशाली, ज्ञानवान, भाषण करने व तक करने में कुशल, दान देने व धार्मिक काय करने में अग्रणी थे। वह अवदातवसन अर्थात्, श्वेतवस्त्र धारण करने वाले, त्रिरत्न के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा रखने वाले गृहपति थे। सूत्र के अनुसार उनकी एक पत्नी थी और एक पुत्र था। सवगुणसम्पन्न विमलकीर्ति की शील, समाधि एव प्रज्ञा रूपी सम्पदा सभी अर्हतो व बोधिसत्त्वो की सवप्रकार की सम्पदाओ से कही अधिक मूल्यवान् एव श्रेष्ठ थी। सूत्र में वर्णित प्रसिद्ध धमचर्चा वैशाली महानगर में स्थित विमलकीर्ति के निवासगृह में हुई थी।

वह भगवान् बुद्ध के साथ भेंट करने और उनको प्रणाम करने के लिये आम्रपालीवन में भी गये थे।

विमलकीर्तिनिर्देश में जिन सुविदित ऐतिहासिक व्यक्तियों के साथ विमलकीर्ति का वार्तालाप, प्रश्नोत्तर और बुद्धविद्या के रहस्यों का विवेचन हुआ था उनमें निम्नलिखित नाम इस सूत्र में गिनाये गये हैं —

तथागत गौतमबुद्ध, महास्थविर शारिपुत्र, महास्थविर मौद्गल्यायन, महास्थविर महाकाश्यप, महास्थविर सुभूति महास्थविर अनिरुद्ध, महास्थविर उपालि, आयुष्मन्त राहुल, भदन्त आनन्द, महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय, लिच्छविकुमार प्रभाव्यूह तथा सुदत्त अनाथपिण्डद।

महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय (मेत्तेय्यो) **दीघनिकाय** (खण्ड ३ पृ० ६०) में उल्लिखित है। शाक्यमुनि बुद्ध मैत्रेय के भविष्य में तथागत होने की भविष्यवाणी करते हैं। **सुत्त निपात** (गाथा १००७) में एक शिष्य मैत्रेय (तिस्स मेत्तेय्य) का नाम आया है। यह सम्भव है कि बोधिसत्त्व मैत्रेय का सम्बन्ध बुद्ध के शिष्य मेत्तेय्य से है। प्रभाव्यूह भी एक ऐतिहासिक लिच्छवि युवक का नाम प्रतीत होता है। अन्य सभी महास्थविर व भिक्षु भगवान् शाक्यमुनि के समकालीन शिष्य थे। इनके संक्षिप्त जीवन परिचय के लिये मललसेकर महाशय कृत **पालि व्यक्तिवाचक नामों का कोश** द्रष्टव्य है। श्रीमती रीजडेविड्स ने भी कुछ स्थविरों का संक्षिप्त परिचय एक ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है।[1]

प्राचीन भारत, भोटदेश (तिब्बत), मध्यएशिया, चीन, मंगोलिया, वियतनाम, कोरिया तथा जापान के श्रद्धालु बौद्धों की दृष्टि में विमलकीर्ति एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे। वह बुद्ध के समकालीन थे और वैशाली नगर में रहते थे। उनको महासत्त्व, बोधिसत्त्व, कुलपुत्र, सत्पुरुष, लिच्छवि, गृहपति एवं उपासक कहा गया है। चीनी भाषा में सुरक्षित बौद्ध ग्रन्थों में विमलकीर्ति के घर व परिवार के विषय में कुछ सूचनाएँ उपलब्ध हैं।

पंचम शती ईस्वी के प्रथम दशक में चीनी बौद्ध परिव्राजक फा हियान (फा श्यान) भारत आया था। उसने वैशाली का, वहाँ के आम्रपालीवन का, तथा आम्रपालीवन में

1 G P Malalasekera *Dictionary of Pali Proper Names* 2 vols, London, 1960 (reprint), C A F Rhys Davids, *Psalms of the Brethren (Theragatha)*, London, 1964 (reprint)

निर्मित बौद्धविहार का वणन किया है। ईस्वी सन् ५२७ मे ली दाओ युआन नामक चीनी बौद्ध लेखक ने अपने ग्रन्थ **शुइ चिंग चु** मे वशाली नगर का और वहाँ पर स्थित विमलकीर्ति के घर का उल्लेख किया है। सातवी शती ईस्वी के उत्तरार्द्ध मे चीनी बौद्ध शास्त्रकार एव तीथयात्री श्वान् च्वाँङ ने भारत में बहुत वप बिताए थे। उसने वशाली की भी यात्रा की थी। वह उस स्थान का उल्लेख करता है जहाँ पर रत्नाकर के साथ सैकडो लिच्छवियो ने तथागत को बहुमूल्य छत्र रत्न भेंट किये थे और जहाँ पर पि मो लो कि किंग' (**विमलकीर्तिनिर्देश**) का प्रकाशन हुआ था। उसने विमलकीर्ति के निवासगृह के खण्डहर और वहाँ पर निर्मित स्तूप का भी वर्णन किया है।[1] शीलादित्य हषवद्धन के समय (सातवीं शती ईस्वी के मध्य) मे भारत मे चीनी राजदूत वाग हुइयेन त्से ने भी वशाली की यात्रा की थी और विमलकीर्ति की कोठी मे उस कक्ष की माप की थी जिसमे विमलकीति ने धर्मोपदेश किया था। उसके अनुसार विमलकीति का कमरा १० क्युबिट लम्बा और १० क्युबिट चौडा था। चीनी मे इस दस क्युबिट लम्बे व चौड कक्ष को 'फन चग' कहा गया है। एक क्युबिट की लम्बाई मनुष्य की एक बाँह की पूरी लम्बाई, कन्धे के जोड से उङ्गलियो तक, लगभग २० २२ इच के बराबर होती है। सातवीं शती के अन्तिम वर्षों मे प्रसिद्ध चीनी बौद्ध विनयशास्त्री एव तीथयात्री ई त्सिङ्ग ने भी वैशाली नगर मे स्थित उस कक्ष के दशन किये थे जिसको 'फन चग' अथवा 'दस भुजा वर्गाकार' कक्ष कहा जाता था।[2] चीन मे प्रमुख बौद्ध भिक्षुओ के लिये कोठरियो के निर्माण के समय विमलकीर्ति का 'फन चग' प्रामाणिक माना जाता था।

प्रोफेसर लामात ने सूचित किया है कि चीनी अनुवादो मे सुरक्षित **महासन्निपात, मूर्धाभिषिक्तराजसूत्र, महायानमूर्धाभिषिक्तराजसूत्र, विमलकीर्तिपुत्रसूत्र, क्षीर प्रभबुद्धसूत्र, सुचिन्तकुमारसूत्र,** तथा **चन्द्रोत्तरादारिकापरिपृच्छा** आदि ग्रन्थो से

---

1 James Legge, *A Record of Buddhist Kingdoms* New York 1965 (reprint) p 72, Luciano Petech *Northern India According to the Shui ching chu* Rome, 1950 pp 28 30, Thomas Watters, *On Yuan Chwang s Travels in India* Delhi, 1961 (reprint), vol II, pp 63-68, Samuel Beal, *Si yu ki* or *Buddhist Records of the Western World* Calcutta 1958 (reprint) pp 308-309

2 J Takakusu, *A Record of the Buddhist Religion by I tsing* Delhi, 1966 (reprint), p XXXIII, note 2

विमलकीर्ति के विषय मे सूचना मिलती है।[1] भारतीय मूल से चीनी अनुवादो मे बचे हुये इन ग्र थो से ज्ञात होता है कि विमलकीर्ति की पत्नी का नाम विमला था। उनके पुत्र का नाम भद्रचि त अथवा सुचि तकुमार तथा उनकी लडकी का नाम च द्रोत्तरादारिका था। यहाँ पर यह उल्लेख्य है कि **चन्द्रोत्तरादारिकापरिपृच्छा** नाम के एक महायानसूत्र से चौदह श्लोक शा तिदेव ने **शिक्षासमुच्चय** (पृ० ४७ ४८) मे उद्धृत किये हैं। जिस्शु ओशिका महाशय ने इस ग्र थ तथा विमलकीर्तिनिर्देश के बीच के सम्ब ध को अपने एक लेख का विषय बनाया है। यह लेख जापानी मे प्रकाशित है।[2] पिता, पुत्र तथा पुत्री, तीनो के नाम से तीन सूत्र—**विमलकीर्तिनिर्देश, सुचिन्तकुमारसूत्र** तथा **चन्द्रोत्तरादारिकापरिपृच्छासूत्र**—प्राचीन भारत म प्रकाशित होकर चीनी म अनूदित हुये थे।

६. विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र की तिथि

महायानसूत्रो की तिथियाँ निश्चित करना एक कठिन काय है। **विमलकीर्तिनिर्देश** का मूल सस्कृत रूप अप्राप्य होने के कारण कठिनाई और भी बढ गई है। बौद्ध परम्परा का विश्वास है कि यह सूत्र उतना ही प्राचीन है जितना कि गौतमबुद्ध। इस सूत्र मे स्वय तथागत शाक्यमुनि के कुछ "वचन" हैं, उनके प्रमुख शिष्यों के "विचार" हैं, और उनके "समकालीन" गृहपति बोधिसत्त्व विमलकीर्ति के भी उपदेश हैं। परन्तु बौद्ध इतिहास के हम विद्यार्थी इस परम्परागत तिथि को स्वीकार नहीं कर सकते हैं। इसका अर्थ यह नही है कि बोधिसत्त्वयान के विचारादर्श तथागत शाक्यमुनि की प्रज्ञापूर्ण सर्वजनहिताय देशना से नि सृत नही हुये थे। महायानसूत्रो में प्रतिपादित धर्म दर्शन महाकारुणिक बुद्ध भगवन्त के ही उपदेशों की नवीन एव गम्भीर व्याख्या का परिणाम है। इस व्याख्या की परम्परा का विकास शनै शनै महापरिनिर्वाण की शताब्दी से ही प्रारम्भ हो गया प्रतीत होता है। बोधिसत्त्वचर्या ही बौद्धमत का हृदय है और इसकी सिद्धि प्रज्ञा एव करुणा की सम्यक पूर्णता से होती है—इस परम निष्कर्ष तक पहुँचने मे प्राचीन बौद्ध मनीषियों को लगभग तीन सौ वर्ष लग गये होगे। इस प्रकार प्राचीनतम महायानसूत्र ईसा से पूर्व दूसरी शती में लिपिबद्ध होकर भारतीय विहारो के पुस्तकालयों मे पहुँच गये प्रतीत होते हैं। (१) बौद्ध सम्प्रदायों के विकास क्रम, (२) सम्राट अशोक के प्रयत्नों

---

1 Etienne Lamotte, *L Enseignement de Vimalakīrti* pp 85 89

2 Jisshu Oshika, "The Candrottarā-dārikā-paripṛccha-sūtra" in *Journal of Indian and Buddhist Studies,* vol XVIII, no 2, March 1970 pp 966–977

के फलस्वरूप सम्पूण भारत मे बौद्धधम का प्रसार (३) अभिलेखो तथा मूर्तिकलाकृतियो से ज्ञात बौद्ध पूजा व भक्ति का विकास, (४) महासाघिक लोकोत्तरवादी एव सर्वास्तिवादी आगमखण्डो मे प्रस्तुत विचारादर्शों तथा (५) चीनी भाषा मे सबसे पहले अनदित होने वाले महायानसूत्रो पर विचार करने से हम इस निष्कष पर पहुचने के लिये बाध्य हो जाते हैं कि बोधिसत्त्वयान के कुछ प्रमुख सूत्रो की रचना "बौद्ध सस्कृत' भाषा तथा मागधी किस्म की "बौद्ध प्राकृत' भाषा मे ईसापूव की दूसरी शता दी में हो चुकी थी। ईसापूव प्रथम शताब्दी मे अनेक महायानसूत्र "बोधिसत्त्वपिटक" के अन्तगत सकलित "धमपर्याय" के रूप मे सम्पूण भारत के बौद्ध विहारो के पुस्तकालयो में पहुँच गये प्रतीत होते हैं। दक्षिणापथ (विशेष रूप से आन्ध्रप्रदेश) प्राच्यदेश (विशेष रूप से मगध का क्षेत्र), तथा उत्तरापथ (विशेष रूप से गान्धार प्रदेश) के बौद्ध पुस्तकालयो मे इस साहित्य का अधिक सग्रह हुआ था।

विमलकीर्तिनिर्देश एक अति प्राचीन महायानसूत्र है। इसमे सन्देह नही प्रतीत होता है कि यह प्राचीनतम बौद्ध सस्कृत धमपर्यायो म से एक धमपर्याय है। मेरा अपना विश्वास है कि इसकी रचना १०० ईस्वी पूव मे हो गई होगी। इस विश्वास के मूल मे निम्नलिखित बातें विचारणीय हैं—

१ प्राचीनतम एव प्राचीनतर महायानसूत्रो की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उनमें 'श्रावकयान' व 'प्रत्येकबुद्धयान' की 'बोधिसत्त्वयान' के साथ इस प्रकार की तुलनात्मक चर्चा बडे उत्साह और प्रबल तक के साथ की गई है जिससे 'बोधिसत्त्वयान की श्रेष्ठता सिद्ध होती है। ज्यो ज्यो समय बीता और महायान का प्रभाव बढ़ा इस प्रकार की तुलनात्मक साम्प्रदायिक चर्चा कम होती गई। **विमलकीर्तिनिर्देश** में श्रावकों अर्हतों व विनयशील महानस्थविरो को बोधिसत्त्वो की तुलना मे अपूर्ण सन्त एव प्रादेशिक धमचारी के रूप मे चित्रित किया गया है। बोधिचित्तोत्पाद का महत्त्व, उपायकौशल्य की गरिमा, और सवधमस्वभावशून्यता की प्रभुता इस चर्चा के मुख्य विषय हैं जो स्थविरों के अभिधम चिन्तन एव प्रव्रजित भिक्षु जीवन को तुलनात्मक दृष्टि से दरिद्र साबित करते दिखाई देते हैं। बोधिसत्त्वयान की श्रेष्ठता स्थापित करने के प्रयत्न **विमलकीर्तिनिर्देश** की प्राचीनता के द्योतक हैं।

२ **सूत्रसमुच्चय** नामक एक महायानशास्त्र मे **विमलकीर्तिनिर्देश** के कुछ कथन वचन उद्धृत हैं। भारतीय तथा भोटदेशीय साहित्यिक प्रमाणो के अनुसार **सूत्रसमुच्चय**

की रचना आचार्य नागार्जुन ने की थी।[1] आचार्य नागार्जुन का समय विवादास्पद होने पर भी उनका जीवनकाल प्रथम शताब्दी ईस्वी के पश्चात् कदाचित् नहीं माना जा सकता है। जिस सूत्र के उद्धरण प्रथम शताब्दी ईस्वी में नागार्जुन द्वारा रचित **सूत्रसमुच्चय** में समाविष्ट हों, उसकी रचना का समय नागार्जुन के समय से सौ पचास वर्ष पूर्व माना जाना चाहिये। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि **विमलकीर्तिनिर्देश** का रचना काल नागार्जुन के जीवनकाल से पहले, लगभग १०० वर्ष ईसापूर्व है। जो आधुनिक लेखक नागार्जुन को दूसरी शती ईस्वी का आचार्य मानते हैं उन्हें भी **विमलकीर्तिनिर्देश** का समय पहली शती ईस्वी स्वीकार करना होगा।

३ भाषा, शैली एवं शब्दावली की दृष्टि से **विमलकीर्तिनिर्देश, सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमितासूत्र** तथा **काश्यपपरिवर्त** जैसे धर्मपर्यायों के बहुत निकट है। अपने मूल रूप में ये तीनों महायानसूत्र दूसरी शती ईसापूर्व की रचनाएँ प्रतीत होती हैं। **सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र** के प्रक्षिप्त परिवर्त पहली व दूसरी शती ईस्वी के हो सकते हैं। यह साधारणतया सभी आधुनिक विद्वान स्वीकार करते हैं कि **अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमितासूत्र** प्राचीनतम प्रज्ञापारमितासूत्र है। प्रज्ञापारमिता साहित्य के विकास क्रम का विस्तृत विवेचन हमने अपने **वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमितासूत्र** के नवीन **द्विभाषिक** संस्करण की 'भूमिका' में किया है। अतः उसकी यहाँ पर पुनरावृत्ति नहीं हो सकती है।[2]

विमलकीर्तिनिर्देश के प्रकाशन का स्थान वैशाली नगर (आम्रपालीवन तथा विमलकीर्ति के घर में उसका कक्ष) था। भगवान् के उपदेश को श्रवण करने वाली परिषद् में, अन्य सत्त्वों के अतिरिक्त "आठ हजार भिक्षु" और 'बत्तीस हजार बोधिसत्त्व" उपस्थित थे।

अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमितासूत्र का प्रकाशन राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर हुआ

---

1 *Bodhicaryāvatāra* v 105 106 and *Pañjikā* p 80, Third *Bhāvanā krama* p 13, D T Suzuki (ed), *The Tibetan Tripiṭaka Peking Edition Catalogue and Index* Tokyo, 1962, p 650, text no 5330, "*Mdokun las btus-pa* (*Sūtrasamuccaya*) A Nāgārjuna"

2 *Vajracchedikā Prajñāpāramitā-sūtra with the commentary of Asaṃga* edited and translated into Hindi by L M Joshi, Sarnath, 1978, pp. 1–25

था। भगवान् की इस परिषद् मे अन्य श्रोताओ के अतिरिक्त "साढ़े बारह सौ भिक्षु" उपस्थित थे।

काश्यपपरिवर्त[1] का प्रकाशन भी राजगृह मे गृध्रकूट पवत पर हुआ था। यहाँ पर इस परिषद् मे अन्य श्रोताओ के अतिरिक्त 'आठ हजार भिक्ष तथा सोलह हजार बोधिसत्त्व" उपस्थित थे।

सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र के प्रकाशन का स्थान भी राजगृह मे गृध्रकूट पवत था। इस सूत्र के श्रोताओ की परिषद् में अन्य प्राणियो के अतिरिक्त ' एक हजार दो सौ भिक्षु ' जो सभी अर्हत थे दो हजार अन्य भिक्षु शक्षाशक्ष सहित" छ हजार भिक्षुणियाँ," तथा 'अस्सी हजार बोधिसत्त्व" उपस्थित थे।

उपर्युक्त चारों सूत्रो मे परिषदो के सदस्यो की सख्या पर विचार करने से ज्ञात होगा कि **अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितासूत्र** की देशना वाली परिषद् मे भिक्षुओ की सख्या केवल एक हजार दो सौ पचास" कही गई है। यह सख्या विश्वसनीय मानी गई है। **अष्टसाहस्रिका** निःस देह सबसे प्राचीन महायानसूत्र है। विषय वस्तु की चर्चा की दृष्टि से इस सूत्र ने विमलकीर्ति को अशत प्रभावित किया था ऐसा कहा जा सकता है। दूसरी ओर **काश्यपपरिवर्त, सद्धर्मपुण्डरीक** तथा **विमलकीर्तिनिर्देश** का श्रावको के प्रति एकसा रुख है। **सद्धर्मपुण्डरीक** मे उपदेशपरक कथाओ व दृष्टान्तो का जो रोचक समागम है, बुद्धभक्ति, श्रद्धा तथा पूजा की जो महत्वपूण चर्चा मिलती है, वे इस सूत्र की विशेषताएँ हैं। **विमलकीर्तिनिर्देश** तथा **काश्यपपरिवर्त** मे स्पष्टवादिता, हास्य एव व्यग हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं जब कि **सद्धर्मपुण्डरीक** मे बुद्धमाहात्म्य की प्रबलता एव उपायकौशल की महत्ता पाठक को प्रभावित करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि **काश्यपपरिवर्त** तथा **विमलकीर्तिनिर्देश** समकालीन ग्रन्थ हो सकते हैं और **सद्धर्मपुण्डरीक** उनके शीघ्र पश्चात् की रचना प्रतीत होती है।

इन सूत्रो का समय निश्चित करने मे इनके चीनी भाषानुवाद बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। अनुवाद की तिथियाँ लगभग निश्चित हैं। किसी भारतीय बौद्ध ग्रन्थ का चीन मे पहुँचना और उसका चीनी में अनूदित होना तब सम्भव है जब वह ग्रन्थ कम से कम दो

---

1 *The Kāśyapaparivarta A Mahāyāna sūtra of the Ratnakūta Class* edited in the original Sanskrit, in Tibetan and in Chinese, by Baron A v Stäel Holstein, Shanghai, 1926

सौ वर्ष पहले से लिखित रूप मे भारत के विभिन्न बौद्ध पुस्तकालयो म प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका हो। मुद्रण क्रिया के अभाव मे एव सचार साधनो की कमी व धीमी गति के कारण इस प्रकार का कार्य बहुत समय लेता था।

अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमितासूत्र का प्रथम चीनी अनुवाद १७९–१८० ईस्वी मे और दूसरा अनुवाद २२५ ईस्वी म हुआ था। प्रोफसर नलिनाक्ष दत्त, प्रोफेसर एडवर्ड कॉंज आदि विद्वानो न इस सूत्र को प्रथम शती ईस्वीपूर्व का माना है। हमारा विश्वास है कि यह सूत्र ईस्वीपूर्व दूसरी शती का हो सकता है। **काश्यपपरिवर्त** का पहला चीनी अनुवाद १७८ व १८४ ईस्वी के मध्यकाल म सम्पन्न हो गया था। **सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र** का प्रथम चीनी अनुवाद २२५ ईस्वी म हुआ था जो अब अप्राप्य है, इसका दूसरा अनुवाद २८६ ईस्वी मे हुआ था। प्रोफसर विण्टरनित्स ने इस सूत्र के मूल रूप को प्रथम शती ईस्वी का स्वीकार किया है। **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** का पहला चीनी अनुवाद २२२ व २२९ ईस्वी के मध्यकाल म सम्पन्न हुआ था। परन्तु जैसा कि सुविदित है नागार्जुन के सूत्रसमुच्चय मे सद्धर्मपुण्डरीक तथा विमलकीर्तिनिर्देश दोनो के कुछ अश उद्धृत किये गये हैं।[1] अतएव यह निष्कर्ष तर्कसगत प्रतीत होता है कि **विमलकीर्तिनिर्देश** की रचना प्रथम शती ईस्वीपूर्व मे हुई होगी।

७. विमलकीर्तिनिर्देश और पालि त्रिपिटक

यद्यपि थेरवाद अथवा स्थविरवाद की दृष्टि से **विमलकीर्तिनिर्देश** में प्रतिपादित अनेक विचार क्रान्तिकारी हैं तथापि इस सूत्र की कुछ महत्त्वपूर्ण सामग्री पालि त्रिपिटक के ग्रन्थो में उपलब्ध विचारो एव आस्थाओ के साथ समानता रखती है। इस महायानसूत्र का मूल सस्कृत सस्करण सम्भवत सदा के लिये समाप्त हो गया है, इसलिये इसके भोटीय अनुवाद तथा उस पर आधारित सस्कृत पुनरुद्धार एवं हिन्दी व्याख्या की प्रामाणिकता की दृष्टि से मैंने अपने अनुवाद की पादटिप्पणियों में यथाशक्ति

---

1 Bunyiu Nanjio *A Catalogue of the Chinese Translation of the Buddhist Tripitaka* pp 27, 44, 47-48, Maurice Winternitz *History of Indian Literature* vol II, pp 303 and 314 Edward Conze, *Thirty Years of Buddhist Studies* London 1967, pp 168 169, Baron A v Stael Holstein (ed), *Kāśyapaparivarta* Introduction, p vii, Nalinaksha Dutt, *Aspects of Mahāyāna Buddhism* London 1930, p 323

यह प्रयत्न किया है कि पालि ग्र थो से सम्बद्ध अथवा तुलनीय सामग्री की सूचना दे दी जाय।

अनुवाद की पादटिप्पणियो को पढ़ने से ज्ञात होगा कि हमारे सूत्र का सकलनकर्ता व लेखक प्राचीन बौद्ध निकायो अथवा आगमो से सुपरिचित था। इन पादटिप्पणियो मे त्रिपिटकान्तगत चौदह पालि ग्र थो से पचहत्तर से अधिक तुलनीय उद्धरण व सूचनाए एकत्रित की गई हैं। लामौत महाशय ने अपने **विमलकीर्तिनिर्देश** के फ्रेंच अनुवाद की भूमिका मे पालि त्रिपिटक के पाच ग्र थो से बाईस तुलनीय स्थलो की सूची प्रस्तुत की है जिनकी पूण सूचना उनके ग्र थ की पादटिप्पणियो मे प्रकाशित हैं। लामात द्वारा एकत्रित स दभ विवरण त्रिपिटक के पालि टेक्स्ट सोसाइटी द्वारा प्रकाशित रोमन सस्करण मे द्रष्टव्य हैं। हमारे स दभ उल्लेख नाल दा नागरी सस्करण के पृष्ठो के अनुसार हैं। उनके काय से प्रेरणा लेकर हमने इस प्रकार की और अधिक तुलनीय सामग्री के सकलन का विशेष प्रयत्न किया है जिसका परिणाम नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जाता है। पालि ग्र थो के उल्लेखो की पूण सूचना तथा उल्लेख का विषय सक्षप मे दिखाया गया है। **विमलकीर्तिनिर्देश** मे तुलनीय स दभ ढूढने के लिये परिवत की सख्या तथा पादटिप्पणी की क्रम सख्या भी साथ दे दी गई हैं।

पालि ग्रन्थ विषय	विमलकीर्तिनिर्देश
१ दीघनिकाय	
खण्ड १ पृ० १२ खण्ड २ पृ ३०—धम की गम्भीरता	=परिवत १२ टिप्पणी १०।
खण्ड १ ब्रह्मजालसुत्त—६२ दृष्टियाँ	=परिवत ४ टिप्पणी ४।
खण्ड १ पृ० ४५—५१—छ तीर्थिक आचाय	=परिवत ३ टिप्पणी २०।
खण्ड १ पृ० ६३—पाँच नीवरण	=परिवत ७ टिप्पणी ८।
खण्ड १ पृ० ६८—६९—ऋद्धिविधियाँ	=परिवत ३ टिप्पणी ७२।
खण्ड १ पृ० १०९—१२७—धमयज्ञ	=परिवत ३ टिप्पणी ८२।
खण्ड १ पृ० १८७—स तुषित देवपुत्र	=परिवत ३ टिप्पणी ५१।
खण्ड २ पृ० ४—पूवप्रादुभूत बुद्ध	=परिवत १२ टिप्पणी १७।
खण्ड २ पृ० ८०—आचायमुष्टि का अभाव	=परिवत ६ टिप्पणी ७।
खण्ड २ पृ० ८१—आन द के लिये गम्भीर बुद्धवचन समझना कठिन	=परिवत १० टिप्पणी ८ ब।
खण्ड २ पृ० ९५—शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति	=परिवत २ टिप्पणी १०।

खण्ड २ पृ० १०९–स्त्रियो के प्रति दृष्टिकोण = परिवत ६ टिप्पणी २२ ।
खण्ड २ पृ० १२०–सस्कार अनित्य हैं = परिवत १ टिप्पणी २७ ।
खण्ड २ पृ० २१७–एकायन माग = परिवत ३ टिप्पणी १६ ।
खण्ड ३ पृ० ६०–मत्रेय भावी बुद्ध = परिवत ३ टिप्पणी ५२ ।
खण्ड पृ० १२६–सप्तविध धमधन = परिवत ७ टिप्पणी १७ ।
खण्ड ३ पृ० १९४–१९५–विज्ञान की सात स्थितियाँ = परिवत ७ टिप्पणी ९ ।
खण्ड ३ पृ० २०२–आठ प्रकार के विमोक्ष = परिवत ३ टिप्पणी ११ ।
खण्ड ३ पृ० २०३–नौ प्रकार की आघात वस्तुएँ = परिवर्त ७ टिप्पणी ११ ।

२ मज्झिमनिकाय

खण्ड १ पृ० ७–निर्वाण की अकथनीयता = परिवत ५ टिप्पणी ४ ।
खण्ड १ पृ० ३०–३१–तीन विद्याएँ = परिवत टिप्पणी ७० ।
खण्ड १ पृ० ११९–पाँच कामगुण = परिवर्त ७ टिप्पणी १४ ।
खण्ड ५ पृ० २४१–धर्म और प्रतीत्यसमुत्पाद समानार्थक = परिवर्त १२ टिप्पणी १३ ।
खण्ड २ पृ० १८१–१८२–तथागत विज्ञानमुक्त हैं = परिवत ११ टिप्पणी १ ।

३ संयुत्तनिकाय

खण्ड १ पृ० ३७–चित्त की महत्ता = परिवर्त ३ टिप्पणी ३६ ।
खण्ड २ पृ० १५९–अखण्ड श्रद्धा = परिवर्त ३ टिप्पणी ७३ ।
खण्ड २ पृ० २६२–राग, द्वेष, मोह का क्षय निर्वाण = परिवर्त ६ टिप्पणी १६ ।
खण्ड २ पृ० ३४०–३४१–बुद्ध एव धर्म की एकता = परिवत ३ टिप्पणी ३६ ।
खण्ड २ पृ० ३६०–शरीर फेनपिण्ड के समान है = परिवर्त २ टिप्पणी ६ ।
खण्ड ३ पृ० १५६–१५९–आसीविसोपमसुत्त स्कन्धक्षय = परिवर्त २ टिप्पणी ९ ।

४ अंगुत्तरनिकाय

खण्ड १ पृ० १०–आगन्तुक मलों से चित्त क्लिष्ट = परिवर्त ३ टिप्पणी ३६ ।
खण्ड १ पृ० २३–दिव्यचक्षुवन्तों में अनिरुद्ध श्रेष्ठ = परिवर्त ३ टिप्पणी ३५ ।
खण्ड १ पृ० २३–प्रज्ञावन्तो में शारिपुत्र श्रेष्ठ = परिवर्त ६ टिप्पणी १३ ।
खण्ड १ पृ० २६–दायकों मे अनाथपिण्डद श्रेष्ठ = परिवर्त ३ टिप्पणी ८१ ।
खण्ड १ पृ० २७–२८–असम्भव बातें = परिवर्त ४ टिप्पणी ८ ।
खण्ड १ पृ० २९–स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण = परिवत ६ टिप्पणी २२ ।

खण्ड १ पृ० ६० अशैक्ष भी समादरणीय = परिवत ११ टिप्पणी ४ ।
खण्ड १ पृ० ५७ ५८ नेयाथ नीतार्थ = परिवत १२ टिप्पणी १५ ।
खण्ड १ पृ० ६८ सूत्रो की गम्भीरता शून्यता विषयक सूत्र = परिवत १२ टिप्पणी ९ ।
खण्ड १ पृ० १२५ १२६–श्रावकयानी सडे बीज की तरह = परिवत ५ टिप्पणी १० ।
खण्ड १ पृ० १५१–१५२–तीन बौद्ध विद्याए (तीन वेद) = परिवत ३ टिप्पणी ७० ।
खण्ड २ पृ० ४१–बुद्ध पुण्डरीक के समान हैं = परिवत १ टिप्पणी १८ ।
खण्ड २ पृ० ५४–५५–विपरियास (विपर्यास) = परिवत ७ टिप्पणी ७ ।
खण्ड २ पृ० ५४–ऋषि (बुद्ध) की ध्वजा धम है = परिवत ७ टिप्पणी १८ ।
खण्ड २ पृ० ७५–धम और बुद्ध की एकता = परिवत ११ टिप्पणी १ ।
खण्ड २ पृ० ८४–बुद्ध अचिन्तनीय है = परिवत १० टिप्पणी ९ ।
खण्ड २ पृ० २७४–धम की शरण अन्य की शरण नही = परिवत ५ टिप्पणी १ ।
खण्ड ३ पृ० १८४–विज्ञान की सात स्थितियाँ = परिवत ७ टिप्पणी ९ ।
खण्ड ४ पृ० ३२–शरीर अपवित्र एवं नश्वर है = परिवत २ टिप्पणी ७ ।

५ धम्मपद

गाथा ५०–दूसरे के दोष नही, अपने कृताकृत देखो = परिवत ९ टिप्पणी ११ ।
गाथा ९० निर्वाण (तथागत) सर्वग्रन्थिप्रहीण है = परिवत ११ टिप्पणी ११ ।
गाथा १४२–अलकृत होने पर भी यथार्थ भिक्षु = परिवत २ टिप्पणी ३ ।
गाथा १४८–शरीर अशुभ एव मरणधर्मा है = परिवत २ टिप्पणी ५ ।
गाथा १८३–अपुण्य व पुण्य कार्यों के भेद = परिवत ८ टिप्पणी १५ ।
गाथा २००–प्रीतिभक्षण = परिवत २ टिप्पणी २ ।
गाथा २०४ विश्वास (श्रद्धा) का महत्त्व = परिवत ३ टिप्पणी ७३ ।
गाथा २०७–मूख व पापी मित्रो का साथ वजन = परिवत ३ टिप्पणी ८० ।
गाथा २७७–२७९–अनित्य, दुःख व अनात्म = परिवत ३ टिप्पणी ३२ तथा परिवत १० टिप्पणी १७ ।
गाथा ३५४–धर्मदान, धमयज्ञ की श्रेष्ठता = परिवत ३ टिप्पणी ८२ ।
गाथा ३५४–धमदान, धर्मपूजा की श्रेष्ठता = परिवर्त १२ टिप्पणी ७ ।
गाथा ३६१–काय, वाक, चित का सवर = परिवत ८ टिप्पणी १४ ।

६ सुत्तनिपात

गाथा १४९–सभी प्राणियो के प्रति असीम मैत्री = परिवर्त ६ टिप्पणी ४ ।

गाथा ८८४ सत्य एक ही है, दूसरा नहीं, अद्वय = परिवर्त १० टिप्पणी ८( )।

गाथा १०७६–निर्वाण प्राप्त करने वाले के विषय में अभिलाप नहीं हो सकता = परिवर्त ६ टिप्पणी १४।

७ उदान

८ २ ६–(खुद्दकनिकाय खण्ड १ पृ० १६२)–तथागत (निर्वाण) असंस्कृत, अजात, अभूत, अकृत है = परिवर्त ११ टिप्पणी १५।

८ मङ्गलसुत्त

गाथा २–मूर्खों का साथ न करना मङ्गल है = परिवर्त ३ टिप्पणी ८०।

९ खुद्दकपाठ

शिक्षापद ८–माला गन्ध आदि वर्जन = परिवर्त ६ टिप्पणी ११।

१० महावग्ग

पृ० ६–धर्म गम्भीर तथा तर्क से परे = परिवर्त ३ टिप्पणी ६।
परिवर्त ३ टिप्पणी ५८
परिवर्त १२ टिप्पणी १०।

पृ० १५–धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ = परिवर्त ५ टिप्पणी ७।

पृ० २३–धर्म सबके हित के लिये है = परिवर्त ६ टिप्पणी ७।

११ महानिद्देस

पृ० २७१–सद्धर्म पूजा का वर्णन = परिवर्त १२ टिप्पणी ८।

१२ थेरगाथा

गाथा ३६३–सदोष एवं सड़ा हुआ बीज नहीं उगता = परिवर्त ५ टिप्पणी १०(ब)।

गाथा ४६९–बुद्ध रूप एवं घोष में नहीं है = परिवर्त ११ टिप्पणी १ (ब)।

गाथा १०१४–शारिपुत्र प्रज्ञावन्तों में अग्रणी = परिवर्त ६ टिप्पणी १३(ब)।

१३. चुल्लवग्ग

पृ० ४०९–आनन्द को सूत्रपिटक कण्ठस्थ = परिवर्त १० टिप्पणी १०।

१४ अपदान(बुद्ध अपदान)

गाथा ८२–बुद्ध अचिन्तनीय है = परिवर्त १० टिप्पणी ९।

इन त्रिपिटकान्तर्गत पालि ग्रन्थों के अतिरिक्त हमारी टिप्पणियों में मिलिन्दप्रश्न, महावंश तथा विशुद्धिमार्ग से भी यत्र-तत्र कुछ सूचनाएं समाविष्ट हैं। पालि निकायों में परिश्रमपूर्वक गवेषणा करने पर और भी अधिक ऐसी सामग्री मिल सकती है जिसका

समथन अथवा खण्डन **विमलकीर्तिनिर्देश** में हुआ है। ऊपर के पृष्ठो मे यह कहा जा चुका है कि सूत्र के तीसरे परिवत में जिन दस महाश्रावको के साथ विमलकीर्ति का समय समय पर सम्वाद हुआ था वे पालि त्रिपिटक तथा त्रिपिटकेतर साहित्य से सुविदित हैं।

चित्त गहपति विमलकीर्ति का पूर्वगामी ?

भिक्षु प्रासादिक जी ने यह मत व्यक्त किया है कि विमलकीर्ति के बहुत से तथा कथित 'असाधारण एव अचानक' रूप से कहे गये उपदश 'नवीन शीशी में पुरानी सुरा की तरह' हैं। श्री पोतीना ता त **विमलकीर्तिनिर्देश** के अपने थाई भाषानुवाद की भूमिका में तथा श्री प्रासादिक जी ने[1] अपने एक लेख म यह सुझाव रखा है कि पालि त्रिपिटक के कुछ ग्र थो से सुविदित चित्त नामक एक उपासक बौद्ध गृहपति को विमलकीर्ति का पूवगामी कहा जा सकता है।

अगुत्तरनिकाय (खण्ड १ पृ० २६) में कहा गया है कि मच्छिकासण्ड का रहने वाला चित्त गहपति (चित्र गृहपति) उपासक धर्मोपदेशको में प्रमुख था। इसी आगम में दूसरे स्थान पर कहा गया है कि श्रद्धालु उपासक श्रावको को चित्र गृहपति की तरह का श्रेष्ठ उपासक होना चाहिये (वही पृ० ८१)। **चुल्लवग्ग** (पृ० ३२ ३५) में भी इस महान उपासक का वणन हुआ है। सुधम नामक एक भिक्षु चित्र के साथ जब ईर्ष्या की भावना करने लगा था और क्रोध करने लगा था तो सघ ने सुधम को दोषी घोषित किया था और उसको चित्र गृहपति से क्षमायाचना करनी पडी थी।

संयुत्तनिकाय (खण्ड ३ पृ० २५२ २७०) में **चित्तसयुत्त** के अ तगत चित्र गृहपति के दस उपदेश सकलित है। इन लघु सूत्रो में यह उपासक बौद्धाचाय धम के गम्भीर पहलुओ पर कुशलता के साथ चर्चा करता है। कुछ स्थविर उसके प्रश्नो का उत्तर नही दे पाते, निग्र न्थ श्रमण भगवान महावीर उसके प्रश्नो का उत्तर सुनकर चिढ़ जाते हैं, कस्सप (काश्यप) नामक एक श्रमण तीस वष तक नग्न परिव्राजक रहने के

1 *Wi ma la gear ti nittesa sut* translated into Thai by S Potinanta, Bangkok, 1963, Introduction, Bhikkhu Pasadika, "Some Notes on the *Vimalaki timirdesa sutra* in *Jagajjyoti A Buddha Jayanti Annual*, Calcutta, 1972, pp 23–26

पश्चात् चित्र का उपदेश सुनकर बौद्ध भिक्षु हो जाता है। भिक्षु ऋषिदत्त (इसिदत्त) व चित्र गृहपति के बीच हुआ सम्वाद पर्याप्त गम्भीर प्रश्नो पर केन्द्रित था। चित्र भी अपनी मृत्यु से पहले देवताओ और अपने मित्रो बान्धवो को धर्मोपदेश करता है। अट्ठकथाओ से ज्ञात होता है कि उपासक चित्र गृहपति श्रावस्ती के निकट मच्छिकासण्ड नामक ग्राम का एक धार्मिक, दानशील एव धनी व्यक्ति था[1]। वह तथागत शाक्यमुनि का समकालीन था।

८. विमलकीर्तिनिर्देश और बौद्ध संस्कृत साहित्य

विमलकीर्तिनिर्देश की विषय वस्तु का सस्कृत म लिखे गये बौद्ध धार्मिक साहित्य के साथ गहरा सम्बन्ध है। बौद्ध सस्कृत साहित्य के अन्तर्गत सस्कृत त्रिपिटक, महायानसूत्र, महायानशास्त्र, बौद्ध स्तोत्र ग्रथ, महासाघिक विनय ग्रन्थ, सर्वास्तिवाद सम्प्रदाय के शास्त्र, तथा बौद्ध तन्त्र ग्रन्थ सम्मिलित हैं। अनुवाद की पाद टिप्पणियो मे हमने साम्प्रदायिकता का अतिक्रमण करके बौद्ध परिवार की विविध परम्पराओ के ग्रन्थो से यत्र तत्र तुलनीय अथवा प्रसगानुकूल ध्यान देने योग्य वाक्यांशों की सूचना प्रस्तुत की है। नागार्जुन, सारमति, चन्द्रकीर्ति, शान्तिदेव, तथा कमलशील द्वारा रचित बौद्ध शास्त्रो मे **विमलकीर्तिनिर्देश** के अनेक अंश उद्धृत हैं। इस तथ्य का सक्षिप्त उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से सूत्रो एव शास्त्रों मे उपलब्ध सम्बद्ध विचारों व कथनो की सूचना भी पादटिप्पणियो मे बिखरी हुई है। यहाँ पर इन तुलनीय एव सम्बन्धित बातो का **विमलकीर्तिनिर्देश** के विभिन्न परिवर्तों मे आये हुये वाक्यो की टिप्पणियो के साथ तालमेल दिखाने का विशेष प्रयत्न किया गया है जिससे इस सूत्र के समन्वित अध्ययन में कुछ सरलता और सहायता होगी। चूंकि अभी अप्रकाशित अवस्था में यह तालिका बनाई जा रही है, पृष्ठों की सख्या न देकर हिन्दी अनुवाद के प्रत्येक परिवर्त की पादटिप्पणियो की क्रमसख्या दी गई है। इस विधि से **विमलकीर्तिनिर्देश** के सस्कृत एव हिन्दी अनुवादो में वे स्थल आसानी से ढूंढे जा सकेंगे जिनसे तुलनीय अश अन्य शास्त्रों मे नीचे दी गई तालिका में विस्तृत सूचना के साथ दिये गये हैं।

---

1 For some more details about Citra Gṛhapati (Citta Gahapati) see G P Malalasekera, *Dictionary of Pali Proper Names*, London 1960 (reprint) pp 865 866.

विमलकीर्तिनिर्देश	विषय	बौद्ध संस्कृत सूत्र एवं शास्त्र
परिवर्त १		
टिप्पणी ४-५	लक्षण और अनुव्यंजन-	१ अर्थविनिश्चयसूत्र, २६-२७
		२ धर्मसंग्रह, ८३-८४
टिप्पणी ६	बोधिसत्त्व के दस बल-	धर्मसंग्रह, ७५
टिप्पणी ७	चार वशारद्य-	१ धर्मसंग्रह, ७७
		२ अर्थविनिश्चय, २३
टिप्पणी ८	अठारह आवेणिक धर्म-	१ अर्थविनिश्चय, २५
		२ धर्मसंग्रह, ७९
टिप्पणी ९	पाँच (अथवा छ गतियाँ)-	धर्मसंग्रह, ५७
टिप्पणी ११ श्लोक ७	अस्ति नास्ति का निषध-	१ समाधिराजसूत्र, ९ २७
		२ मूलमध्यमककारिका, १५ १० ११
		३ कात्यायनाववादसूत्र- प्रसन्नपदा, पृ० ११८
		४ रत्नावली, १ ६२
टिप्पणी १२ श्लोक १२	त्रिविधधर्मचक्र प्रवतन-	सेकोद्देशटीका, पृ० ३-४
टिप्पणी १३	बुद्ध वद्यराज के रूप मे-	१ ललितविस्तर, १ १-५
		२ बुद्धचरित, १३-६१
टिप्पणी १४	बुद्ध का समताचित्त-	१ शतपञ्चाशत्कस्तोत्र, ४७
टिप्पणी १५	बुद्ध के दस बल-	१ धर्मसंग्रह, ७६
		२ अर्थविनिश्चयसूत्र, २२
टिप्पणी २१	दान की महिमा-	रत्नमेघसूत्र शिक्षासमुच्चय, पृ० २२
टिप्पणी २२	दस कुशलकर्मपथ- द्र० दस अकुशलकमपथो की सूची-	धर्मसंग्रह, ५६
टिप्पणी २४	चार सग्रह वस्तुए-	धर्मसंग्रह, १९
टिप्पणी २५	सतीस बोधिपाक्षिक धम-	१ धर्मसंग्रह, ४३-५०
		२ अर्थविनिश्चय, १३-१९

विमलकीर्तिनिर्देश	विषय	बौद्ध संस्कृत सूत्र एवं शास्त्र
टिप्पणी २६	आठ अक्षण–	१ गण्डव्यूहसूत्र, पृ० ६०
		२ धर्मसंग्रह, १३४
		३ शिक्षासमुच्चय, पृ० ८
		४ बोधिचर्यावतार पञ्जिका, पृ० ४-५
टिप्पणी २७	संस्कारों की अनित्यता–	संस्कृत महापरिनिर्वाणसूत्र, पृ० ३६८
टिप्पणी २८	धर्मों की सत्ताहीनता–	वज्रमण्डाधारणी प्रसन्नपदा, पृ० १७

परिवर्त २

टिप्पणी १	धारणियाँ	१ धर्मसंग्रह, ५२
		२ महाव्युत्पत्ति, ७४७–७५८
टिप्पणी ६	पाँच स्कन्धों का मिथ्यात्व–	प्रसन्नपदा, पृ० १३ (सूत्रवचन)
टिप्पणी ७	शरीर की नश्वरता–	महावस्तु, खण्ड २ पृ० ४६६
टिप्पणी)	चार सौ चार व्याधियाँ–	बोधिचर्यावतार पञ्जिका, २ /५
टिप्पणी ६	स्कन्ध धातु आयतन का स्वरूप–	प्रथमभावनाक्रम, पृ० २२२
टिप्पणी १०	तथागतकाय के कारणभूत तत्त्व– (धर्मकाय बुद्ध)	१ रत्नकूट प्रसन्नपदा, पृ० १६
		२ धर्मसंग्रह, २३
		३ महाव्युत्पत्ति, १०४–१०८
		४ वज्रच्छेदिका, अध्याय २६
		५ समाधिराजसूत्र, २२ २२, २४ ७ १०
		६ अष्टसाहस्रिका, पृ० ४८
		७ सुवर्णप्रभाससूत्र, पृ० ६
टिप्पणी ११	तथागतकाय असंख्यपुण्यज है–	तृतीयभावनाक्रम, पृ० १३

परिवर्त ३

टिप्पणी ५	धर्मों की नैरात्म्यता–	वज्रच्छेदिका, पृ० ३८
टिप्पणी ६	निर्वाणधर्म अनभिलाप्य है–	१ ललितविस्तर, पृ० २८६
		२ प्रसन्नपदा, पृ० २१७
		३ वज्रच्छेदिका, पृ० ३१
		४ बोधिचर्यावतार पंजिका, पृ० १७५

विमलकीर्तिनिर्देश	विषय	बौद्ध सस्कृत सूत्र एव शास्त्र
टिप्पणी ७	धम की यथाथ स्थिति–	पचविंशतिसाहस्रिका, पृ० १६८
टिप्पणी ८	धमता अचल है–	१ अष्टसाहस्रिका, पृ० २५३ २ अष्टादशसाहस्रिका, पृ० १०६–१०७
टिप्पणी ९	धम देशना व श्रवण से परे है–	वज्रच्छेदिका, पृ० ४०
टिप्पणी १०	पिण्डदान व पिण्डग्रहण की शून्यता–	१ वज्रच्छेदिका, पृ० ४३ २ बोधिचर्यावतार, पृ० ९ १६८ ३ पंचविंशतिसाहस्रिका, पृ० १८

परिवर्त ३

टिप्पणी ११	आठ विमोक्ष–	१ पचविंशतिसाहस्रिका, पृ० १६६–१६७ २ धर्मसग्रह, ५९ ३ महाव्युत्पत्ति, १५११–१५१८
टिप्पणी १२	बुद्ध ससार व निर्वाण से परे हैं–	१ धर्मसंगीतिसूत्र–शिक्षासमुच्चय, पृ० ७१ २ मूलमध्यमककारिका, २५ २० ३ प्रसन्नपदा, पृ० २२८
टिप्पणी १४	बुद्ध की तथता सवधमतथता है–	अष्टसाहस्रिका, पृ० २५३
टिप्पणी १६	एकायन अथवा एकयान–	सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० २८, ३१
टिप्पणी १७	विद्या एव मुक्ति–	१ सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० ९१ २ प्रमाणवार्त्तिक, १ २५३ ३ चतु शतक, १२ २३
टिप्पणी १८	पाँच जघ य अपराध–	धर्मसग्रह, ६०
टिप्पणी २३	विविध मार–	धर्मसग्रह, ८०
टिप्पणी २४	छ क्लेश–	धर्मसंग्रह, ६७
टिप्पणी २६	धम माया के समान है–	अष्टसाहस्रिका, पृ० २०

विमलकीर्तिनिर्देश	विषय	बौद्ध संस्कृत सूत्र एवं शास्त्र
टिप्पणी २७	अक्षर एवं अनक्षर अभिन्न हैं–	१ सत्यद्वयावतारसूत्र–प्रसन्नपदा, पृ० १५६
		२ शिक्षासमुच्चय, पृ० १३७ (सूत्रवचन)
		३ वज्रच्छेदिका, पृ० ३२
टिप्पणी ३१	अववादकसूत्र (?)	१ मूलमध्यमककारिका, १५ ७
		२ प्रसन्नपदा, पृ० ११७–११८
टिप्पणी ३२	चार महावाक्य–	धर्मसंग्रह, ५५
टिप्पणी ३३	अनित्यता उत्पत्ति–च्युति रहित है–	मूलमध्यमककारिका, १८ ७
टिप्पणी ३४	शान्ति का अर्थ–	तथागतगुह्यसूत्र–प्रसन्नपदा, पृ० १५४

परिवर्त ३

टिप्पणी ३६	चित्तक्लेश एवं चित्तशुद्धि–	रत्नगोत्रविभागशास्त्र, पृ० ६७
	चित्त की प्रभास्वरता–	पंचविंशतिसाहस्रिका, पृ० १२१–१२२
टिप्पणी ३७	चित्त शून्यतालक्षण है–	बोधिचर्यावतार–पंजिका, पृ० १८८
टिप्पणी ३८	विपर्यास संकल्प की उपज है–	मूलमध्यमककारिका, २३ १
टिप्पणी ३९	धर्मों की सत्ता स्वप्नवत है–	१ वज्रच्छेदिका, अन्तिम श्लोक
		२ लंकावतारसूत्र, २ १६४
		३ प्रसन्नपदा, पृ० १३, २४०
		४ बोधिचर्यावतार, ९ १५०–१५४
टिप्पणी ४६	मनुष्य जीवन की दुर्लभता व बुद्धोत्पाद की दुर्लभता	१ ललितविस्तर, पृ० ७४
		२ गण्डव्यूहसूत्र, पृ० ९०
		३ सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० २७
		४ बोधिचर्यावतार पंजिका, पृ० ४ ५
		५ शिक्षासमुच्चय, पृ० ५
		६ सूत्रसमुच्चय, प्रथम परिवर्त

विमलकीर्तिनिर्देश	विषय	बौद्ध संस्कृत सूत्र एवं शास्त्र
टिप्पणी ४७	धर्मकाय बुद्ध–	१ अष्टसाहस्रिका, पृ० ४८, २५३
		२ समाधिराजसूत्र, २२ २२
		३ सुवर्णप्रभाससूत्र, पृ० ९
		४ वज्रच्छेदिका, पृ० ४१ अध्याय २६
		५ मूलमध्यमककारिका, २२ १५
		६ दृढाध्याशयपरिवर्त–रत्नगोत्रविभाग, पृ० २
		७ अनूनत्वापूर्णत्वनिर्देश–रत्नगोत्रविभाग, पृ० ३
टिप्पणी ४८	पाँच कषाय–	धर्मसंग्रह ९१
टिप्पणी ४९	बुद्ध का लोकानुवर्तन–	१ सुवर्णप्रभास १ ३०–३१
		२ महावस्तु, खण्ड १, पृ० १२९
		३ सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० २८, १९०–१९१
टिप्पणी ५२	मैत्रेय भावी बुद्ध–	सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० १८४
टिप्पणी ५३	समय विषयक धारणा मिथ्या–	१ मूलमध्यमककारिका, कालपरीक्षा
		२ तत्त्वसंग्रहकारिका, १७८५–१८५५
टिप्पणी ५५	तथता न उत्पाद है न निरोध है–	१ अष्टसाहस्रिका, पृ० २५३
		२ लंकावतारसूत्र, १० १७४
टिप्पणी ५६	धर्मों की अनुत्पादता, अजातिवाद–	१ रत्नमेघसूत्र–प्रसन्नपदा, पृ० ९८
		२ वैपुल्यसूत्र–अभिधर्मसमुच्चय, पृ० ८४
		३ बोधिचर्यावतार, ९ १५१
		४ मूलमध्यमककारिका, प्रकरण २१
		५ प्रसन्नपदा, पृ० १८६
टिप्पणी ५७	बोधि की परमार्थता–	१ पञ्चविंशतिसाहस्रिका, पृ० १९८
		२ बोधिचर्यावतार पंजिका, पृ० १७१

विमलकीर्तिनिर्देश	विषय	बौद्ध संस्कृत सूत्र एवं शास्त्र
टिप्पणी ५८	धर्म की सूक्ष्मता—	ललितविस्तर, पृ० २८६
टिप्पणी ६५	द्वादशांग प्रतीत्यसमुत्पाद—	१ अर्थविनिश्चय, ५
		२ शालिस्तम्बसूत्र, पृ० १००
		३ प्रतीत्यसमुत्पादविभंगनिर्देश, पृ० ११७
		४ मध्यमकशालिस्तम्बसूत्र, १०८–११६
टिप्पणी ७१	पारमिताएँ—	१ धर्मसंग्रह, १७–१८
		२ महाव्युत्पत्ति, ६१४–९२०
टिप्पणी ७२	सिद्धियाँ—	गुह्यसमाजतन्त्र, १८ १२७–१३६
टिप्पणी ७३	श्रद्धा का महत्त्व—	१ दशधर्मसूत्र शिक्षासमुच्चय, पृ० ६
		२ सूत्रसमुच्चय, प्रथम परिवर्त
		३ शिक्षासमुच्चयकारिका, २
टिप्पणी ७५, ७६, ७७	स्कन्ध, धातु, आयतन—	१ अर्थविनिश्चय, २, ३, ४
		२ धर्मसंग्रह, २२, २४, २५
टिप्पणी ७८	महापुरुष लक्षण–अनुव्यंजन—	१ धर्मसंग्रह, ८३–८४
		२ अर्थविनिश्चय, २६–२७
टिप्पणी ८३	सभी प्राणियों की सेवा—	बोधिचर्यावतार, ३ १८

परिवर्त ४

विमलकीर्तिनिर्देश	विषय	बौद्ध संस्कृत सूत्र एवं शास्त्र
टिप्पणी २	तथागत गमनागमनरहित है—	१ अष्टसाहस्रिका, पृ० २५३
		२ मूलमध्यमककारिका, प्रकरण २, २२
टिप्पणी ३–४	शून्यता, निर्विकल्पता एवं दृष्टि—	१ अष्टसाहस्रिका, पृ० १७७
		२ मूलमध्यमककारिका, १३ ८
टिप्पणी ७	धर्मों की अनित्यता—	महापरिनिर्वाणसूत्र, पृ० ३९८
टिप्पणी ९	प्रज्ञा एवं उपाय दोनों आवश्यक—	१ प्रथमभावनाक्रम, पृ० १९४
		२ तृतीयभावनाक्रम, पृ० २२, २०
		३ अद्वयवज्रसंग्रह, पृ० २

विमलकीर्तिनिर्देश	विषय	बौद्ध संस्कृत सूत्र एवं शास्त्र
परिवर्त ५		
टिप्पणी २	धर्म अनक्षर एवं अप्रपंच है–	१ मूलमध्यमककारिका, २५ २४ २ प्रसन्नपदा, पृ० २३६ (बुद्धवचन)
टिप्पणी ३	सत्यचतुष्टय का रहस्य–	अध्यायितमुष्टिसूत्र प्रसन्नपदा, पृ० २२५
टिप्पणी ४	धर्म की अग्राह्यता–	वज्रच्छेदिका, पृ० ३१, ३६
टिप्पणी ५	धर्म न देशना का विषय है न श्रवण का–	१ प्रसन्नपदा, पृ० ११५ (भगवद्वचन) २ बोधिचर्यावतार पंजिका, पृ० १७७
टिप्पणी ६	धर्म न संस्कृत है न असंस्कृत–	बोधिचर्यावतार पंजिका, पृ० १७५
टिप्पणी ८	बोधिसत्त्व का अतितनीय विमोक्ष–	गण्डव्यूहसूत्र, पृ० ८२–८६
परिवर्त ६		
टिप्पणी १	सभी प्राणी फेनपिण्डवत् हैं–	१ प्रसन्नपदा, पृ० १३, २४० (भगवद्वचन) २ ललितविस्तर, १३ ९७–९८ ३ बोधिचर्यावतार, ९ १५०–१५४
टिप्पणी ५	अर्हत का अर्थ–	१ आलोकव्याख्या, पृ० २७३ २ लङ्कावतारसूत्र, पृ० ४९
टिप्पणी ६	स्वयम्भू–	१ सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, १ ६७ २ ललितविस्तर, पृ० ३०७
टिप्पणी ७	बुद्ध एवं बोधिसत्त्व आचार्यमुष्टिरहित हैं–	१ ललितविस्तर, पृ० १३० २ काश्यपपरिवर्त, पृ० २ ३ बोधिसत्त्वभूमि, पृ० २८
टिप्पणी ८	बोधिसत्त्व की चर्या–	शिक्षासमुच्चय, पृ० ८०–८१ (विमलकीर्तिनिर्देश)
टिप्पणी ९	राग का मूल–	मूलमध्यमककारिका, १८ ५

विमलकीर्तिनिर्देश	विषय	बौद्ध संस्कृत सूत्र एवं शास्त्र
टिप्पणी १०	अभूतपरिकल्प और अप्रतिष्ठान का मूल-	शिक्षासमुच्चय, पृ० १४० (विमलकीर्तिनिर्देश)
टिप्पणी १२	निर्विकल्प-	१ अष्टसाहस्रिका, पृ० १७७ २ तथागतगुह्यसूत्र प्रसन्नपदा, पृ० २३६ ३ वज्रच्छेदिका, पृ० ३५
टिप्पणी १५	विमोक्ष धर्मों की समता है-	सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० ९१
टिप्पणी १७	यानत्रय-	१ सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० २७ २ प्रज्ञापारमितास्तुति, १६
टिप्पणी १८	वस्तुत एक ही यान है-	१ सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, २ ५४-५५ २ लंकावतारसूत्र, २ २०१-२०३ ३ शिक्षासमुच्चय, पृ० ५६
टिप्पणी १९	आश्चर्यमय गुण-	शिक्षासमुच्चय, पृ० १४३ (विमलकीर्तिनिर्देश)
टिप्पणी २०	चार अक्षयनिधियाँ-	१ दिव्यावदान, पृ० ३७ २ महावस्तु, खण्ड ३, पृ० ३८३
टिप्पणी २१	तथागतगुह्यसूत्र अथवा तथागतगुह्यधर्ममुखप्रवेश	१ प्रसन्नपदा, पृ० १५३-१५४, २३६ २ शिक्षासमुच्चय, पृ० ८, ७१, ८९, १३०, १४६, १६८, १९१ ३ बोधिचर्यावतार पंजिका, पृ० ६३, २३१
टिप्पणी २२	स्त्री का इन्द्रिय परिवर्तन-	सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० १६१
टिप्पणी २३	सभी धर्म प्रपञ्चरहित हैं-	महायानकरतलरत्नशास्त्र, पृ० ९९
टिप्पणी २४	धर्मों की धर्मता उत्पत्ति-च्युतिरहित है-	१ प्रसन्नपदा, पृ० १८६ (भगवद्वचन) २ मूलमध्यमककारिका, १८ ७
टिप्पणी २५	अभिसंबोधि का स्वरूप-	वज्रच्छेदिका, पृ० ३१-३२

विमलकीर्तिनिर्देश	विषय	बौद्ध संस्कृत सूत्र एवं शास्त्र
परिवर्त ७		
टिप्पणी १	धूतगुण–	१ धर्मसंग्रह, ६३
		२ महाव्युत्पत्ति, ११२८–११३९
टिप्पणी ६	महाबली नारायण	१ ललितविस्तर, ७ ६१, ६६
		२ महाव्युत्पत्ति, ८२१४
टिप्पणी ७	चतुर्विध विपर्यास–	शिक्षासमुच्चय, पृ० १०९
टिप्पणी १३	सुमेरुसमान सत्कायदृष्टि–	१ शिक्षासमुच्चय, पृ० ७ (विमलकीर्तिनिर्देश)
		२ रत्नकूटसूत्र प्रसन्नपदा, पृ० १०८
टिप्पणी १५	प्रज्ञापारमिता बुद्धो व बोधिसत्वो की मा है–	प्रज्ञापारमितास्तुति, ६–७
टिप्पणी १६	छै पारमिताए–	१ बोधिसत्त्वभूमि, पटल ९–१४
		२ बोधिचर्यावतार, परिच्छेद १–९
टिप्पणी १९	बोधिसत्वो की जीवनचर्या–	शिक्षासमुच्चय, पृ० १७२–१७४ (विमलकीर्तिनिर्देश)
टिप्पणी २०	बोधिसत्त्व सब प्राणियो के दास–	बोधिचर्यावतार, ३ १८
परिवर्त ८		
टिप्पणी ३	सास्रव व अनास्रव का भेद द्वय है–	तुल० अभिधर्मकोश, १ ४
टिप्पणी ४	आकाश की तरह निर्लिप्त–	१ प्रज्ञापारमितास्तुति, २
		२ गुह्यसमाजतन्त्र, २ ६–७
टिप्पणी ५	ससार व निर्वाण का भेद द्वय है–	१ मूलमध्यमककारिका, २५ १९–२०
		२ हेवज्रतन्त्र, खण्ड २, पृ० ३८
टिप्पणी ६	आत्मवाद व अनात्मवाद द्वयग्रस्त है–	१ मूलमध्यमककारिका, १८ ६
		२ रत्नावली, २ ३
टिप्पणी ७	विद्या व अविद्या का भेद द्वय है–	१ हेवज्रतन्त्र, खण्ड २, पृ० २८
		२ मूलमध्यमककारिका, प्रकरण ४

विमलकीर्तिनिर्देश	विषय	बौद्ध संस्कृत सूत्र एवं शास्त्र
टिप्पणी ११	दान ही बोधि है–	रत्नमेघसूत्र शिक्षासमुच्चय, पृ० २२
टिप्पणी १२	बुद्ध धर्म व संघ अभिन्न है–	१ वज्रच्छेदिका, अध्याय २६
		२ प्रज्ञापारमितापिण्डार्थ, १
		३ आलोकव्याख्या, पृ० २८२
		४ शालिस्तम्बसूत्र, १
टिप्पणी १३	अद्वय न उत्पन्न होता है न नष्ट	१ मूलमध्यमककारिका, मंगलश्लोक
		२ चतुःशतक, १२ १३
परिवर्त ८		
टिप्पणी १७	अद्वय में न बंधन है न मोक्ष–	मूलमध्यमककारिका, १६ ५, १०
टिप्पणी १८	अद्वय न सत्य है न मृषा–	वज्रच्छेदिका, पृ० २६
टिप्पणी १९	अद्वयज्ञान वस्तुतः शून्यता है–	महायानविंशिका, १
टिप्पणी २०	अद्वय प्रपञ्चातीत है–	१ अष्टसाहस्रिका, पृ० २१
		२ मूलमध्यमककारिका, २५ २४
टिप्पणी २१	विमलकीर्ति का मौन होना– (अद्वय की मौन व्याख्या)	१ प्रसन्नपदा, पृ० १९
		२ तथागतगुह्यसूत्र प्रसन्नपदा, पृ० २३६
		३ पितापुत्रसमागमसूत्र बोधिचर्यावतार पंजिका, पृ० १७७
परिवर्त ९		
टिप्पणी ६	सर्वगंधसुगंधा लोकधातु से लाया हुआ अक्षय भोजन	१ प्रसन्नपदा, पृ० १४३ (विमलकीर्तिनिर्देश)
		२ शिक्षासमुच्चय, पृ० १४४ (विमलकीर्तिनिर्देश)
टिप्पणी ७	तथागत शब्द द्वारा उपदेश नहीं करते–	१ तथागतगुह्यसूत्र प्रसन्नपदा, पृ० २३६
		२ तथागतगुह्यसूत्र बोधिचर्यावतार पंजिका, पृ० १९९

विमलकीर्तिनिर्देश	विषय	बौद्ध संस्कृत सूत्र एवं शास्त्र
टिप्पणी १०	बोधिसत्त्व द्वारा पुण्यदान–	१ बोधिचर्यावतार, ९ ६
		२ प्रथमभावनाक्रम, पृ० १९३
परिवर्त १०		
टिप्पणी १	बोधिसत्त्वो की असाधारण घ्राणेन्द्रिय–	सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० २१३
टिप्पणी २–३	सुगंधित भोजन पचाने की योग्यता–	शिक्षासमुच्चय, पृ० १४४ (विमलकीर्तिनिर्देश)
टिप्पणी ४	सुगन्धित भोजन क्लेश नष्ट होने पर पचता है–	रत्नकूटसूत्र प्रसन्नपदा, पृ० १०८–१०९
टिप्पणी ६	बुद्ध के एक घोष से अनेक घोष–	दशभूमिकसूत्र, पृ० ५२
टिप्पणी ७	अभिलाप द्वारा बुद्धक्षेत्रो म उपदेश नही होता है–	लकावतारसूत्र, पृ० ४३
परिवर्त १०		
टिप्पणी ८	सभी बुद्धो का बुद्धत्व एक समान है–	१ सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० ९१
		२ दशभूमिकसूत्र, पृ० ५३
		३ रत्नगोत्रविभाग, १ ८७
		४ प्रज्ञापारमितापिण्डार्थं १
		५ रत्नावली, १ ८७
		६ चतुःशतक, १२ १३
टिप्पणी ९	बुद्ध एव धम अचिन्तनीय हैं–	१ वज्रच्छेदिका, पृ० ३७
		२ प्रसन्नपदा, पृ० १८६ (सूत्रवचन)
टिप्पणी ११	धमयौतक–	रत्नावली, १ ६२
टिप्पणी १२	बोधिसत्त्व के विमोक्ष का पथ–	मूलमध्यमककारिका, २५ ३
टिप्पणी १३	बोधिसत्त्व द्वारा सवस्व का त्याग–	१ बोधिसत्त्वप्रातिमोक्ष तथा

विमलकीर्तिनिर्देश	विषय	बौद्ध संस्कृत सूत्र एवं शास्त्र
		२ नारायणपरिपृच्छा बोधिचर्यावतार पंजिका, पृ० ४१-४२
टिप्पणी १६	असंख्य कल्पों तक ब्रह्मचर्या-	१ बुद्धचरित, १३ ५८ २ तत्त्वसंग्रहकारिका, ५ ३ सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० २६८
परिवर्त ११		
टिप्पणी १	तथागत की तथता एवं अकथनीयता –	१ अष्टसाहस्रिका, पृ० ४८ २ पञ्चविंशतिसाहस्रिका, पृ० १४६ ३ वज्रच्छेदिका, पृ० ४१ ४ समाधिराजसूत्र, २२ ११, १८ ५ मूलमध्यमककारिका, परिवर्त २२ ६ बोधिचर्यावतार-पंजिका, पृ० २००
टिप्पणी ५	तथागत हेतु-प्रत्यय के क्षेत्र के बाहर है–	मूलमध्यमककारिका, १८ ९
टिप्पणी ६	तथागत लक्षण रहित है–	अष्टादशसाहस्रिका, पृ० १५१
टिप्पणी ७	तथागत अविकल्पित है–	१ अष्टसाहस्रिका, पृ० १७७ २ प्रसन्नपदा, पृ० २३६
टिप्पणी ८	तथागत चर्चा का विषय नहीं–	१ प्रसन्नपदा, पृ० १५९ २ पितापुत्रसमागमसूत्र बोधिचर्यावतार पंजिका, पृ० १७७ ३ बोधिचर्यावतार-पंजिका, पृ० १७५
परिवर्त ११		
टिप्पणी १०	बुद्ध गमनागमनरहित है–	अष्टसाहस्रिका, पृ० २५३
टिप्पणी १२	बुद्ध और सर्वज्ञ समानार्थक हैं–	अभिसमयालंकारवृत्ति, पृ० ३७

विमलकीतिनिर्देश	विषय	बौद्ध सस्कृत सूत्र एव शास्त्र
टिप्पणी १३	बुद्ध का कोई प्रिय या अप्रिय नही-	अष्टादशसाहस्रिका, पृ० ५५
टिप्पणी १४	बुद्ध मे दोषों का सवथा अभाव है-	शतपञ्चाशत्कस्तोत्र, १
टिप्पणी १५	तथागत अजात, असम्भूत, अकृत है	चतु शतकवृत्ति, पृ० ५६
टिप्पणी १६	बुद्धत्व (अभिसमय) निष्प्रपञ्च है-	अष्टादशसाहस्रिका, पृ० १७९
टिप्पणी १७	सभी धम मायोपम हैं-	१ अष्टसाहस्रिका, पृ० २०
		२ अष्टादशसाहस्रिका, पृ० १४३
		३ पञ्चविंशतिसाहस्रिका, पृ० ४-५
टिप्पणी १९-२०	सूत्रपाठ का माहात्म्य-	१ वज्रच्छेदिका, पृ० ३६, ५८
		२ सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० १७२, २३३

परिवर्त १२

टिप्पणी ६	आयुप्रमाण की दीघता-	सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० ९७
टिप्पणी ९	सवलोकविप्रत्यनीक धम-	१ अष्टसाहस्रिका, पृ० १५२
		२ सद्धर्मपुण्डरीक, पृ० १४५
		३ ललितविस्तर, पृ० २८९
टिप्पणी १०	धर्म गम्भीर एव अतर्कावचर है-	१ ललितविस्तर, पृ० २८९
		२ प्रसन्नपदा, पृ० २१७
		३ आलोकव्याख्या, पृ० ४५५
टिप्पणी १४	धर्मपूजा दृष्टिग्राहरहित है-	१ चतु स्तव, २ २१
		२ मूलमध्यमककारिका, १३ ८, २७ ३०
टिप्पणी १५	प्रतिशरण और अनुसरण नेयार्थ और नीतार्थ- सन्धाभाषा और अभिसन्धिविनिश्चय-	१ धर्मसंग्रह, ५३
		२ महाव्युत्पत्ति, १५४६-१५४९
		३ अक्षयमतिनिर्देशसूत्र प्रसन्नपदा, पृ० १४
		४ अभिधर्मसमुच्चय, पृ० १०७
टिप्पणी १६	रत्नार्चि तथागत-	पञ्चविंशतिसाहस्रिका, पृ०१५
टिप्पणी १७	भद्रकल्प के बुद्ध-	१ सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० १२८
		२ भद्रकल्पिकसूत्र
		३ महावस्तु, खण्ड १, पृ० १-२, २४०

विमलकीर्तिनिर्देश	विषय	बौद्ध संस्कृत सूत्र एवं शास्त्र
टिप्पणी १८	तथागत का आयु प्रमाण–	१ सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० १८६–१९०
		२ सुवर्णप्रभाससूत्र, पृ० ६५
टिप्पणी २०	मैत्रेय और सूत्रों का प्रसार–	अध्याशयसञ्चोदनसूत्र– शिक्षासमुच्चय, पृ० १२
टिप्पणी २२	सूत्रों और धर्म की गम्भीरता–	आलोकव्याख्या, पृ० ४५५
टिप्पणी २३	सम्यकसंबोधि की प्राप्ति का अन्तसमय–	सद्धर्मपुण्डरीक, पृ० २७८

९ विमलकीर्तिनिर्देश, 'चान', 'जेन' एवं तन्त्र

इसमे कोई सन्देह नही कि भारतभूमि पर तथागत की शिक्षाओ की जो अनेक व्याख्याए प्राचीन बौद्धाचार्यों ने की थीं उनमे महायानी व्याख्या गम्भीरतर थी और इसका सम्पूर्ण प्राचीन विश्व मे सामान्यरूपेण परन्तु एशिया के देशो मे विशेषरूपेण गहरा प्रभाव पड़ा था। चीन देश मे और कोरिया व जापान मे ध्यान (पालि 'झान' चीनी 'चा'न', जापानी 'जेन') पर आधारित बोधिपथ का जो विकास हुआ वह शतप्रतिशत भारतीय मूल का था परन्तु उसकी व्यावहारिक तकनीक व व्याख्या चीन व जापान के बौद्ध सन्तो ने अपने ढंग से की थी। 'चा'न' व 'जेन' परम्परा के बौद्ध विहारो एव विद्यालयो में जो सूत्र विशेषरूप से प्रामाणिक, लोकप्रिय तथा पठनीय थे उनमें **प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र, वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमितासूत्र, सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, (महायानी) महापरिनिर्वाणसूत्र, लंकावतारसूत्र, अवतंसकसूत्र, रत्नकूटसूत्र** तथा **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र**, सम्मिलित थे। प्रोफेसर डी टी सुजुकी ने जो विस्तृत साहित्य अंग्रेजी भाषा में जेन परम्परा की व्याख्या की दृष्टि से प्रकाशित किया है उससे ज्ञात होता है कि **विमलकीर्तिनिर्देश** में प्रतिपादित विचारो एव विमलकीर्ति के व्यक्तित्व का जेन मनीषियों की जीवन–चर्या पर गहरा प्रभाव पड़ा था। चीन व जापान में विमलकीर्ति के प्रभाव की विस्तृत चर्चा प्रोफेसर पॉल देमियविल् ने अपने एक लेख में की है।[1]

---

1 Paul Demiéville, "Vimalakirti en Chine" in *L Enseignement de Vimalakirti* pp 438–455

चा'न एव जेन में न केवल प्रमुख महायानसूत्रों का अपितु बौद्ध तन्त्रों का भी गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। डा० रिचर्ड रॉबिन्सन ने चा'न सम्प्रदाय के द्वितीय आचार्य हुइ-को (ई ४८७ ५९३) की शिक्षाओं पर टिप्पणी करते हुये लिखा है "ये सभी विचार हमने भारतीय शून्यवाद तथा वज्रयान में देखे हैं—ससार एव निर्वाण का तादात्म्य, तथागतगर्भ को बुद्धत्व का नसर्गिक रत्न मानना, इस शरीर को बुद्धकाय समझना, तथा अन्य वस्तुओं में से एक वस्तु के रूप मे निर्वाण की गवेषणा करने की निष्फलता। ध्यान सम्प्रदाय के आचार्यों ने तान्त्रिक कवियों की भाँति ही, कोई नवीन विचारों को जन्म नहीं दिया, अपितु उन्होंने एक व्यापक रूप से प्रचलित साहित्य से सर्वाधिक शक्तिशाली धार्मिक विचारों को सकलित करके उनका निचोड़ प्रस्तुत किया।"[1]

भिक्षु प्रासादिक ने दो भिन्न-भिन्न लेखों में सन्तोषजनक रूप से और प्रामाणिक सामग्री की तुलनात्मक समीक्षा करके यह दर्शाया है कि **विमलकीर्तिनिर्देश** में प्रगट विचारों से चा'न, जेन व तान्त्रिक सम्प्रदायों के अनेक मूलभूत विचार असन्दिग्ध रूप से प्रभावित हुये थे।[2] डॉ० रॉबर्ट थर्मन ने भी **विमलकीर्तिनिर्देश** में तान्त्रिक विचारों व पद्धतियों को देखने व दिखाने का यत्न किया है।[3] यह कहना उचित है कि **विमलकीर्तिनिर्देश** में प्रतिपादित अनेक क्रान्तिकारी विचारों का जेन आचार्यों तथा वज्रयान के सिद्धों की शिक्षाओं पर स्थाई प्रभाव पड़ा था। परन्तु डा० थर्मन का यह मत कि "विमलकीर्ति वास्तव मे गुह्यसमाज की ही भाँति का तान्त्रिक मार्ग प्रतिपादित करता है", अतिशयोक्तिपूर्ण है।

विमलकीर्तिनिर्देश के कुछ वाक्यांशों की तुलना बौद्ध तान्त्रिक ग्रन्थों के कुछ अंशों से की जा सकती है। इस दिशा मे अभी तक किसी लेखक ने कोई प्रयत्न नहीं किया है। अतएव यहाँ पर कुछ तुलनीय अंश उद्धृत करना उचित जान पड़ता है।

---

1 Richard H. Robinson, *The Buddhist Religion* Belmont 1970, p 89

2 Bhikkhu Pāsādika, (i) "Some Remarks on the Origins of the Zen School" in *The Journal of Religious Studies* vol IV, no 1 (1972) pp 115–124, (ii) *The Vimalakīrtinirdeśa sūtra* and Tantra" in *Jagajjyoti, A Buddha Jayanti Annual* Calcutta, 1976 pp 33–42

3. Robert A F Thurman, *The Holy Teaching of Vimalakīrti* (1976), Introduction, pp 1–8.

विमलकीर्तिनिर्देश के चौथे परिवर्त मे कहा गया है कि उपाय के बिना प्रज्ञा बन्धन का कारण है और उपाय के साथ प्रज्ञा मुक्तिदात्री है। उपाय का अर्थ करुणा है। करुणा की भावना करना बोधिसत्त्व का प्रमुख कार्य है। दान, शील, प्रेम, अहिंसा, त्याग, क्षान्ति, नम्रता, परात्मसमता तथा परात्मपरिवर्तन आदि सभी कार्य करुणा से ही सम्भव है। उपायकौशल्य का व्यापार करुणा पर आधारित है। अत कोरी प्रज्ञा को अपूर्ण मार्ग कहा गया है। प्रज्ञा का अर्थ शून्यता है। शून्यता ज्ञान की पराकाष्ठा है। इसे पारगता प्रज्ञा अथवा प्रज्ञापारमिता कहा जाता है। सर्वधर्मसमता का ज्ञान प्रज्ञा है। सभी धर्मों का स्वभाव नि स्वभावता है। इसी को धर्मता और तथता कहा जाता है। प्रज्ञा एव उपाय का सामजस्य बोधिचर्या का हृदय है। यह विमलकीर्ति का एक महत्वपूर्ण उपदेश है।

तान्त्रिक आचार्यों अथवा सिद्धो की रचनाओ मे इस उपदेश को साधना दर्शन का केन्द्र बिन्दु माना गया है। निर्वाण को 'प्रज्ञोपाय' एव 'युगनद्ध' की सज्ञा देकर सिद्धों ने वस्तुत लिच्छवि उपासक के विचार को आगे बढ़ाया था। 'प्रज्ञोपाय' की तान्त्रिक बौद्ध ग्रन्थों में पुन पुन व्याख्या हुई है। इस विषय पर निम्नलिखित पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—"प्रज्ञोपायात्मको धर्मात्मा योग इत्युच्यते।" (सेकोद्देशटीका पृ० ५)। 'कालचक्र' का विचार प्रज्ञा (शून्यता) तथा उपाय (करुणा) की एकता पर ही आधारित है—

> अनादिनिधनो बुद्ध आदिबुद्धो निरन्वय ।
> करुणाशून्यतामूर्ति काल सवृत्तिरूपिणी ।
> शून्यताचक्रमित्युक्तं कालचक्रोऽद्वयोऽक्षर ॥
>
> — नामसंगीति-सेकोद्देशटीका पृ० ७८

'बोधिचित्त', 'प्रज्ञोपाय', 'अक्षर', 'कालचक्र', 'सहज' समानार्थक हैं।

'शून्यताकरुणाभिन्नं बोधिचित्त यदक्षरम्।" वही पृ० २४। अद्वयवज्र ने प्रज्ञोपाय को त्रिकाय का मूर्तरूप मानकर उसे प्रणाम किया है—

> प्रज्ञोपायात्मकं वन्दे बुद्धत्रिकायरूपिणम्।
> प्रभावात् ज्ञायते यस्य भवनिर्वाणमुत्तमम् ॥
>
> —अद्वयवज्रसंग्रह पृ० ४६

निम्नलिखित श्लोको मे भी विमलकीर्ति की पुष्टि की गई है—

भूतकोटिं ततो विष्द्वा युगनद्धपद गत ।
युगनद्धस्थितो योगी सत्त्वार्थैकपरो भवेत् ॥

—**वही** पृ० ५०

सिद्ध नडपाद (नारोप) ने पुण्डरीकपाद (सम्भवत कम्बलपाद) का निम्न लिखित श्लोक भी उद्धृत किया है—

शू यताकरुणाभिन्नो रागारागविवर्जित ।
न प्रज्ञा नाप्युपायोऽसौ काय स्वाभाविकोऽपर ॥

—**सेकोद्देशटीका** पृ० ७१

जिस प्रकार **विमलकीर्तिनिर्देश** मे प्रज्ञा को माता और उपाय को पिता कहा गया है (सातवा परिवत), उसी प्रकार त त्रो मे प्रज्ञोपाय व युगनद्ध अथवा भोटीय भाषा में 'यवयुम को माता-पिता का 'योग' अथवा सहजावस्था कहा गया है । तथापि महासुख अथवा परमाथ न स्त्री है न पुरुष- 'अकारसम्भव सम्यक्सम्बुद्ध प्रज्ञोपायात्मको वज्रसत्त्वो नपुसकपद सहजकाय इत्युच्यते । ज्ञानज्ञेयात्मको हेतुफलयोरभेदत्वात । स च कालचक्रो भगवान् परमाक्षर सुखपदम् ।" **सेकोद्देशटीका** पृष्ठ ६६ ।

विमलकीर्तिनिर्देश मे ससार की महत्ता प्रकाशित की गई है क्योकि बोधिसत्त्व की धमचर्या ससार पर निभर करती है । परमाथत न ससार है और न निर्वाण क्योकि परमाथ अद्वय है, निष्प्रपञ्च है । ससार व निर्वाण के विचार द्वयग्रस्त हैं । अत दोनो मे कोई अ तर नही है । त त्रों में इस विचार ने बडा जोर पकडा और सिद्धो ने भी विमल कीर्ति एव नागार्जुन से प्रेरणा लेकर ससार-निर्वाण की यमक यत्यस्तता को अपने दशन का आधार माना । ससार को स्वीकार कर लेने पर ससार के सभी तत्त्वो को अपनाना पडेगा-अविद्या, राग, द्वेष, मोह, अहकार, सत्काय-दृष्टि, तृष्णा, पाप, क्लेश, नरक, तियगगति, और निर तर ज म-मरण की परम्परा— सभी बोधिचर्या के सम्बल हैं । विमलकीर्ति धक्कामार भाषा का प्रयोग करते हैं—सिद्धो की भाषा भी धक्कामारने वाली है—और कहते हैं कि तथागत का गोत्र अविद्या, भवतृष्णा, सत्कायदृष्टि, राग, द्वेष, मोह, विपर्यास, नीवरण, सयोजन, सक्षेप मे बासठ दृष्टियाँ, तथागतगोत्र हैं । ससार ही तथागत का कायक्षेत्र है । ससार नही होगा तो निर्वाण की आवश्यकता ही क्या होगी ?

इस विचार को त त्रो और सिद्धों ने प्रभावशाली ढग से अपनाया और व्यक्त किया है—

त्रैधातुकमहासत्त्व पूज्यमान स पश्यति ।
बुद्धैश्च बोधिसत्त्वैश्च पञ्चकामगुणैरपि ॥

—गुह्यसमाजतन्त्र १५ १२२

येन येन हि बध्यन्ते जन्तवो रौद्रकर्मणा ।
सोपायेन तु तेनैव मुच्यन्ते भवबन्धनात् ॥

—चित्तविशुद्धिप्रकरण ६

× × ×

वज्रामितमहाराज निर्विकल्प खवज्रधृक ।
रागपारमिताप्राप्त भाष वज्र नमोऽस्तु ॥

—गुह्यसमाजतन्त्र १७ ४

× × ×

ससार चैव निर्वाणं मन्यन्तेऽतत्त्वदर्शिन ।
न ससार न निर्वाणं मन्यन्ते तत्त्वदर्शिन ॥

—चित्तविशुद्धिप्रकरण २४

× × ×

तद्वत्पात्रीकृत चित्तं प्रज्ञोपायविधानत ।
भुञ्जानो मुच्यते कामो मोचयत्यपरानपि ॥

—चित्तविशुद्धिप्रकरण ४१

तस्मात्सहज जगत्सर्वं सहजं स्वरूपमुच्यते ।
स्वरूपमेव निर्वाण विशुद्धाकारचेतसा ॥

—हेवज्रतन्त्र २ २ ४४

एवमेव तु संसार निर्वाणमेवमेव तु ।
ससाराद् ऋते नान्यन्निर्वाणमिति कथ्यते ॥

—हेवज्रतन्त्र २ ४ ३२

वरं हि भावसकल्पो न स्वभावप्रकल्पना ।
निर्वाति ज्वलितो दीपो निर्वृत का गतिं व्रजेत् ॥

× × ×

न द्वय नाद्वयं शान्तं शिव सर्वत्र संस्थितम् ।
प्रत्यात्मवेद्यमचलं प्रज्ञोपायमनाकुलम् ॥

—प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि १ ९, १०

निरालम्बपदे प्रज्ञा निरालम्बा महाकृपा ।
एकीभूता धिया सार्द्धं गगने गगनं यथा ॥

—प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि ४ ११

सम्भोगार्थमिदं सर्वं त्रैधातुकमशेषतः ।
निर्मितं वज्रनाथेन साधकानां हिताय च ॥

—प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि ५ ३१

कर्मणा येन वै सत्त्वाः कल्पकोटिशतान्यपि ।
पच्यन्ते नरके घोरे तेन योगी विमुच्यते ॥
महोपायसमायुक्तो योगी लोकार्थकारकः ।
नाकार्यं विद्यते तस्य सर्वसत्त्वजुगुप्सितम् ॥
× × ×
भक्ष्याभक्ष्यविनिर्मुक्तः पेयापेयविवर्जितः ।
गम्यागम्यविनिर्मुक्तो भवेद् योगी समाहितः ॥

—ज्ञानसिद्धि १ १५–१६, १८

रागतुल्यं सुखं नास्ति तज्जिनेभ्यः समाददन् ।
भुञ्जीत सर्वकामांश्च जुगुप्सां नैव कारयेत् ॥

—ज्ञानसिद्धि ७ ५

अप्रतिष्ठितनिर्वाणं निर्निमित्तं निरालयम् ।
व्यापकं सर्वसत्त्वेषु सम्बोधिं परमं पदम् ॥

—अद्वयसिद्धि २९

छडगइ सअल सहावे सूध ।
भावाभाव वलाग न छुध ॥

—कान्हुपाद, चर्यागीतिकोश पृ० ३०

राग द्वेष मोह लाइअ छार ।
परम मोख लवए मुत्तिहार ॥

—कृष्णाचार्यपाद, चर्यागीतिकोश पृ० ३८

भवेयं भवखिन्नानां शरणं सर्वदेहिनां ।
संसरामि भवे यावत्तावत्सुगतिजः पुमान् ॥

—चण्डमहारोषणतन्त्र ३ २४–२५, पृ० २१

ऊपर लगभग एक दजन तान्त्रिक ग्रन्थो से कुछ चुने हुये उद्धरण इस अभिप्राय से दिये गये हैं कि पाठको को तान्त्रिक बौद्ध दर्शन एव साधना के चरम लक्ष का कुछ परिचय मिल सके। उपयुक्त श्लोको की भाषा द्वारा भ्रान्ति होने का डर है, ये सभी कथन परमार्थ के दृष्टिकोण से समझ जाने चाहिये। इनका शाब्दिक अर्थ मात्र पकडने से अनर्थ होगा। तात्पर्य यह है कि अन्तिम योग अथवा परममुक्ति मे शुभाशुभ या पुण्यपाप या बन्धमोक्ष की तरह का कोई द्वत अथवा प्रपञ्च नही होता है। और जब तक परममुक्ति प्राप्त नही होती, तब तक सभी प्राणियो को अपने समान समझ कर उनको सुखी, शुद्ध एव मुक्त करने का उपायकौशल्य जारी रखना है। इसी अर्थ मे 'बोधिचर्या' को 'रागचर्या' कहा गया है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सिद्धो व तन्त्रो के "मैथुनयोग" अथवा "शक्तिसाहचर्य" का लेशमात्र भी संकेत विमलकीर्ति के उपदेशों में नही मिलता है। यह तो विशुद्ध तान्त्रिक विशेषता है। विमलकीर्तिनिर्देश एक तान्त्रिक पुस्तक नही है यह तो प्रथम श्रेणी का महायानसूत्र है। तन्त्रों की एक अन्य विशेषता मन्त्रविद्या है। यह विशेषता भी हमारे सूत्र में अनुपलब्ध है। परमार्थसाधन मे गृहस्थ व भिक्षु का भेद महत्त्वपूर्ण नही है, निर्वाण सर्वत्र, सब के द्वारा, और सभी अवस्थाओं में प्राप्त हो सकता है यदि चित्त शोधन द्वारा परिनिष्पन्नता का साक्षात्कार हो गया हो और प्रज्ञा द्वारा अहंकार-ममकार का विनाश हो चुका हो। विमलकीर्तिनिर्देश का यह उपदेश सिद्धों एवं मध्यकालीन वैष्णव सन्तो के जीवन दर्शन का आधार था।

१०. विमलकीर्तिनिर्देश का धर्म एवं दर्शन

(क) बुद्ध

बौद्ध धर्म-दर्शन के विस्तृत साहित्य में जिस गम्भीर 'बुद्धविद्या' का विकास एव प्रतिपादन हुआ है उसका अध्ययन आधुनिक काल में अभी तक हुआ नहीं है। 'बुद्धविद्या' बौद्धविद्या का एक भाग अथवा पहलू है। बौद्धविद्या के अन्तर्गत बौद्ध धर्म, दर्शन, आचार-प्रणाली, पूजा, भक्ति, मन्त्र, ध्यान, योगाभ्यास, तन्त्र, तर्कशास्त्र, शिल्पकलाएँ, मूर्तिकला, चित्रकला, ज्योतिष, चिकित्साशास्त्र पालि, सस्कृत, प्राकृत, बौद्ध संस्कृत, भोटीय, चीनी, जापानी, सिंहली, स्यामी, बर्मी, नेवाड़ी आदि अनेक अन्य भाषाओं में बौद्ध साहित्य, बौद्ध जगत के पुरातत्त्वावशेष, बौद्ध धर्म-दर्शन का अन्य धार्मिक व दार्शनिक परम्पराओ के साथ तुलनात्मिक परिशीलन, समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र की दृष्टियों से बौद्ध

समाज व्यवस्थाओ का अध्ययन तथा अ य सम्बधित विद्याएँ सम्मिलित है। परन्तु 'बुद्ध विद्या' का विषय बुद्ध के बुद्धत्व का वैज्ञानिक अध्ययन करना है। बुद्ध के विषय मे विचारों, विश्वासो, धारणाओं आस्थाओ, पुराकथाओ, तथा श्रद्धा सस्कृति मूलक मूल्यो का विधिवत विश्लेषण एव अध्ययन करना 'बुद्धविद्या' का प्रमुख विषयक्षेत्र है। इस अथ मे बुद्धविद्या आधुनिक बौद्धविद्वानों मे अभी लोकप्रिय नही हुई है।[1]

विमलकीर्तिनिर्देश सूत्र बुद्धविद्या का एक अमूल्य स्रोत है। यह सुविदित है कि शाक्यमुनि गौतम बुद्ध का भगवत्, अर्हत, सम्यक्सबुद्ध, सुगत लोकवित् तथागत, देवताओ व मनुष्यो के गुरु, महाश्रमण, देवातिदेव महावैद्य, धर्मस्वामी, महाकारुणिक, आदि नामो से प्राचीन ग्र थो मे अभिन दन किया गया है। बौद्ध सस्कृत साहित्य मे, विशेषरूप से महायानी सूत्रो व शास्त्रो मे बुद्ध के और अनेक ऐसे नामो का प्रयोग किया गया है जो बद्धत्व के किसी न किसी पहलू पर प्रकाश डालते हैं। यहाँ पर इन नामो की चर्चा करना सम्भव नही है। यहाँ पर **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** मे प्रस्तुत बुद्ध के स्वरूप का कुछ अश उल्लेखनीय है। यह स्वरूप इसी सूत्र की विशेषता नही है, सभी महायानसूत्रो मे यह न्यूनाधिक रूप मे मिलता है और बहुताश मे यह पालि निकायो के पृष्ठो मे भी देखा जा सकता है।

बुद्ध रूपकाय, सम्भोगकाय, तथा धर्मकाय इन तीनो रूपो मे प्रकट होते हैं, परन्तु धमकाय ही परमार्थत बुद्धकाय है। बुद्ध अनेक हुये हैं और भविष्य में भी होगे, बुद्धो की सख्या गङ्गानदी के वालुकणों के समान असख्य है। परन्तु सभी बुद्धो का बुद्धत्व अथवा बोधि एक ही है। बुद्धत्व की एकता को अद्वयज्ञान, तथता, धमधातु भूतकोटि परमार्थ, निर्वाणधम, अचिन्त्यविमोक्ष, सर्वज्ञता आदि नामों से सकेतित किया गया है। परमाथत बुद्ध अवाच्य, अनभिलाप्य, अतर्कावचर अकल्पनीय एव मन वाणी के कार्य क्षेत्र के बाहर, निराकार एव सर्वव्यापी तत्त्व है। परन्तु बुद्ध का स्वरूप सृष्टिकर्ता ईश्वर अथवा ब्रह्म का जैसा नही है। बुद्ध के स्वरूप मे शील, समाधि, प्रज्ञा, मुक्ति, मुक्तिज्ञानदशन का, महापुरुष के बत्तीस लक्षणो एव अस्सी अनुव्यजनो का, छ अभिज्ञाओं का चार सत्यो के ज्ञान का, प्रतीत्यसमुत्पाद, दु ख, अनित्य एव अनात्म के ज्ञान का चार वैशारद्यो दस बलो, एव अठारह आवेणिक (खास विशिष्ट) बुद्धगुणो का, सर्वज्ञता, अनन्त उपायकौशल्य, अनन्त

1 See L M Joshi, "Prolegomena on Buddhology" in *Papers of International Seminars on Buddhism and Jainism* Cuttack, Institute of Oriental and Orissan Studies, 1976, pp 121-124

महामैत्री एवं तीनों लोकों मे निरन्तर क्रियाशील महाकरुणा का, ज्ञानसम्भार एवं पुण्य-सम्भार का, ऐसा अनुत्तर एवं परिपूर्ण विकास सन्निहित होता है कि बुद्ध के स्वरूप की व्याख्या स्वयं बुद्ध भी नहीं कर सकते हैं। देखिये लिच्छविकुमार रत्नाकर की बुद्धस्तुति, प्रथम परिवर्त, गाथाएँ १—३१।

(ख) धर्म

बौद्ध परम्परा में बुद्ध, धर्म, एवं संघ को त्रिरत्न कहा गया है। बुद्धरत्न की झलक ऊपर दिखाई पड़ गई। धर्मरत्न क्या है ? धर्म शब्द के इस परम्परा में तीन प्रमुख अर्थ हैं। (१) प्रत्येक प्राणी, पदार्थ, वस्तु अथवा घटना को धर्म कहा गया है। स्वलक्षण धारण करने के कारण कोई वस्तु धर्म कहलाती है। अभिधर्मदर्शन के विशाल साहित्य में धर्मों का विश्लेषण, वर्गीकरण तथा अध्ययन मिलता है। सभी धर्म अनित्य हैं, दुःख हैं, अनात्म हैं, प्रत्ययाधीन होने से निःस्वभाव हैं, शून्य हैं। (२) धर्म शब्द का दूसरा अर्थ बुद्ध की वह शिक्षा है जो सुखप्राप्ति का मार्ग है। दुर्गतियों (पशुगति, प्रेतगति तथा नरकगति) में जाने से जो रोकता है वह धर्म है। दसकुशलकर्मपथ कुगतिगमन का निवारण करता है अतः समस्त शीलसम्पदा को धर्म कहा जाता है। पञ्चशील, दसशील, पारमिताएँ, करुणा, मैत्री, मुदिता, उपेक्षा, संग्रहवस्तुएँ आदि धर्म के अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं। (३) संसार की पाँचों गतियों सुगतियों (देवगति व मनुष्यगति) तथा दुर्गतियों में जाने से जो रोकता है उसे भी धर्म कहा जाता है। जन्म मरण व्यवस्था का विधारण करने के कारण, संसार को निराधार करने के कारण, और संसार को समाप्त करके मोक्ष की प्राप्ति से उपलब्ध होने के कारण निर्वाण को भी धर्म कहा जाता है। 'धर्मं शरणं गच्छामि' कहने वाला इसी परमधर्म अथवा निर्वाणधर्म की शरण में जाता है। इस अर्थ में बुद्ध और धर्म एक ही हैं। बुद्ध ही धर्म है, धर्म ही बुद्ध है। विमलकीर्ति भदन्त शारिपुत्र से जिस धर्म की व्याख्या करते हैं वह यही धर्म है जो अतर्कावचर, सूक्ष्म, अनभिलाप्य, गम्भीर तथा कालातीत है।

(ग) संघ

तीसरा रत्न संघ है। संघ केवल भिक्षुओं का समुदाय नहीं है। भिक्षुसंघ बौद्ध संघ का और संघरत्न का एक पहलू या अंग है। चतुर्भुज संघ में भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक एवं उपासिका इन चार कोटियों के सदस्य शामिल हैं। इसे श्रावकसंघ भी कहा जाता है, भगवान् तथागत के श्रावक भिक्षु एवं गृहस्थ दोनों ही हैं। परन्तु जो सर्वोत्तम अथवा

परमार्थत संघ है वह तो बुद्धों का संघ है। जो निर्वाणप्राप्त कर चुके हैं कृतकृत्य हैं, मुक्त एवं विशुद्ध हो चुके हैं, वे वास्तविक संघ के सदस्य हैं।[1]

बौद्ध संघ का जो स्वरूप अधिकांश बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है उसमें मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के प्राणी भी सम्मिलित हैं। पालि निकायों में भी इन्द्र, ब्रह्मा, अन्य देवता, नाग, यक्ष, गन्धर्व, अप्सराएँ देवकन्याएं, मार और उसके परिवार के सदस्य, बुद्ध के पास आते हैं, उनसे शिक्षा लेते हैं, उनका सत्कार करते हैं। महायान सूत्रों में जब बुद्ध धर्मोपदेश करते हैं तो उनकी परिषद् में न केवल स्त्रियों एवं पुरुषों, भिक्षुणियों एवं भिक्षुओं, अर्हतों एवं महाश्रावकों की ही अपार संख्या एकत्रित होती है, अपितु बड़ी संख्या में अनेक लोकधातुओं के बोधिसत्त्वों, अनेक देवलोकों के देवतागणों, नागों, यक्षों, गन्धर्वों, किन्नरों, किम्पुरुषों, महोरगों, असुरों तथा दिग्पालों के विशाल समूह भी सम्मिलित होते हैं। बहुधा एक से अधिक बुद्ध भी एकसाथ एक परिषद् में मिलते हैं। बौद्ध संघ राष्ट्रीयता, जातिवाद अथवा मनुष्यवाद का अतिक्रमण करता है। यह प्राणिमात्र का संघ है, सभी राष्ट्रों, देशों लोकों एवं लोकधातुओं के सब प्रकार के प्राणी इस विश्व संघ के सदस्य होते हैं।

(घ) बोधिसत्त्व का धर्म

बोधिसत्त्व कौन है? सभी प्राणियों के हित एवं कल्याण के लिये बुद्धत्वप्राप्ति का निश्चय करने के पश्चात् जो व्यक्ति बोधि की प्राप्ति के लिये निरन्तर प्रयत्न करता है उसको बोधिसत्त्व कहते हैं। सर्वजनहिताय बोधि की प्राप्ति का प्रणिधान करना बोधिचित्तोत्पाद कहलाता है, बोधिचित्त का विकास करना और उसकी पूर्णता के लिये प्रस्थान करना अर्थात् बोधिचित्त की रक्षा एवं पुष्टि करना बोधिसत्त्व का धर्म है। उसका अभिप्राय बोधि है, उसका अध्याशय बोधि है, उसकी अधिमुक्ति बोधि है। बोधिसत्त्व को महासत्त्व भी कहा जाता है। उसका मार्ग महायान और बुद्धयान कहलाता है। "सकल जगतो हिताय बुद्धो भवेयम"—यह बोधिसत्त्व की महान महत्त्वाकांक्षा है। दस पार

---

1 An excellent discussion of Buddha, Dharma and Sangha will be found in Sangharakshita's *The Three Jewels* London, Rider & Company, 1967 My own discussion of Buddhology in *God's Alternative* chapter vi, pp 208 268, written in 1974, is unfortunately still unpublished

मिताओ का अनुगमन करते रहना, दस भूमियो मे उत्तरोत्तर अग्रसर होते रहना,[1] निरन्तर असख्य प्राणियो का अनुत्तर सम्यक्सबोधि के लिये परिपाचन करते रहना, और स्वय अपनी परममुक्ति को तब तक स्थगित करते रहना जब तक संसार की व्यवस्था समाप्त नही हो जाती है, यह है बोधिचर्या का कार्यक्रम।

जो बोधि चाहता है वह सब के लिये सब कुछ चाहता है, क्योकि बोधि ही सब कुछ है। बोधिसत्त्व सभी प्राणियों को बुद्धत्व मे स्थापित करना चाहता है अतएव वह सभी प्राणियो के सुख के लिये काय करता है, क्योकि परमसुख ही बुद्धत्व है। उसका प्रथम एव अन्तिम लक्ष्य दूसरो को सुख पहुँचाना है, अतएव दूसरो की सेवा एव सहायता करना बोधिसत्त्व का परम धम है।

बोधिसत्त्वो का कार्यक्षेत्र ससार है। जिस प्रकार आकाश मे बीज नही उगते हैं परन्तु भूमि पर उगते हैं, उसी प्रकार असस्कृत (निर्वाण) की प्राप्ति में नियत प्राणियो में बुद्धगुणो का विकास नहीं होता है। बोधिसत्त्वो का मार्ग क्लेशो का मार्ग है। महासागर में प्रवेश किये बिना अमूल्य रत्न प्राप्त नहीं हो सकते हैं, इसी प्रकार क्लेशो के सागर मे प्रवेश किये बिना बुद्धत्व रूपी रत्न प्राप्त नहीं हो सकता है। संसार क्लेशों का सागर है। इसी सागर में प्रवेश करके बोधिसत्त्व बोधिचित्त रूपी चिन्तामणि को प्राप्त करके बुद्धकाय सम्पन्न करता है।[2]

---

1 See Har Dayal, *The Bodhisattva Doctrine in Buddhist Sanskrit Literature* Delhi, 1970, chapters v and vi, pp 165 ff and 270; *Bodhisattvabhūmi* edited by Nalinaksha Dutt Patna 1966, *Daśabhūmikasūtra* edited by P L Vaidya, Darbhanga, 1967 The *Bodhicaryāvatāra* and the *Śikṣāsamuccaya* of Śāntideva and the *Bhāvanākramas* of Kamalaśila are well known manuals of Bodhisattva career A comprehensive summary of the religion and philosophy of the Bodhisattvas will be found in my *Studies in the Buddhistic Culture of India*, second revised edition, Delhi, 1977, chapter V, pp 91 120, and in Edward Conze, *Thirty Years of Buddhist Studies*, Oxford, 1967 pp 48-86

2 Cf D. T. Suzuki, *Studies in the Lankāvatāra Sūtra* London Routledge and Kegan Paul, 1930, section entitled "Life and Works of a Bodhisattva", pp 202-236,

सातवें परिवत की गाथाओं मे विमलकीर्ति बोधिसत्त्व सवरुपस दशन से इस प्रकार अपने परिवार एव बधु बान्धवो का वर्णन करते हैं—

बोधिसत्त्वो की माता प्रज्ञापारमिता और पिता उपायकौशल्य है, उनकी पत्नी धमप्रीति है, उनकी पुत्रियाँ करुणा एव मत्री हैं धम एव सत्य उनके पुत्र हैं। शून्यतार्थ चि तन उनका घर है, सारे क्लेश उनके शिष्य हैं, बोध्यग उनके मित्र हैं पारमिताएँ उनकी सहेलियाँ हैं, सग्रहवस्तुएँ उनके अत पुर अथवा नारीभवन हैं धर्मोपदेश उनका सगीत है। उनका रथ महायान, सारथि बोधिचित्त, वाहक अभिज्ञाए, माग शान्ति, लक्षण एव अनुव्यजन उनके आभूषण, कुशलाशय एव लज्जा उनके वस्त्र हैं, सद्धम उनका धन है जिसका व्यापार उनका व्यवसाय है, पवित्र प्रतिपत्ति उनका लाभ है, बोधिप्राप्ति उनका परिणाम। वे अमृत का भोजन और निर्वाणरस का पान करते है। शील उनका इत्र विलेपन है और शुद्धाशय उनका स्नान है। मार के साथ युद्ध मे विजयी होकर बोधि की ध्वजा फहराने वाले ये बोधिसत्त्व स्वेच्छा से ससार मे ज म लेते हैं और सभी बुद्धक्षेत्रो में सूय के समान प्रकाशित होते हैं।

(ङ) बोधिसत्त्व का चिन्तन—नैरात्म्य

बोधिसत्त्व का दशन चिन्तन किस प्रकार का होता है ? बोधिसत्त्व के धम का दाशनिक आधार क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर इस सूत्र का एक प्रमुख विषय है।

बोधिसत्त्व के दर्शन चिन्तन को एक शब्द द्वारा यक्त किया जा सकता है और वह शब्द है 'प्रज्ञा'। प्राणियो एव वस्तुओ के विषय मे यथाभत ज्ञान को प्रज्ञा कहते हैं। प्रज्ञा दु ख का नाश करके सुख प्रदान करती है, यह बोधिदात्री एव मुक्तिदायिनी है। प्रज्ञा के अर्थ एव प्रज्ञापारमिता वाङ्मय की विस्तृत चर्चा हमने अ यत्र की है।[1] यहाँ पर **विमलकीर्तिनिर्देश** के कथनो का कुछ स्पष्टीकरण मात्र करेंगे।

अनित्यता का ज्ञान होना प्रज्ञा का प्रथम लक्षण है। ससार परिवर्तनशील है, इसके सभी प्राणी एव सारी वस्तुएँ अनित्य हैं। इस तथ्य का बोध प्रज्ञा की पहचान है। दूसरे परिवर्त मे शरीर की अनित्यता, नश्वरता एव परमाथत शरीर के मिथ्यात्त्व का स्पष्ट

---

1 *Vajracchedikā Prajñāpāramitāsūtra* edited and translated into Hindi by L M Joshi, Bhūmikā, pp 1-25

वणन किया गया है। यह शरीर आत्मारहित है। सभी प्राणी और सभी धर्म अनात्मक एव निरात्मक हैं। यहाँ कोई चीज ऐसी नही है जिसको कोई व्यक्ति 'अपना', 'मेरा' अथवा 'मैं' कह सकता है। आत्मा की सत्ता का विचार एक भयकर भ्रान्ति है, एक महामारी है, जिससे प्राणी पीडित एव परेशान रहते हैं। यही विचार अहङ्कार एव ममकार का मूल स्रोत है और सारे क्लेश इसी विचार से उत्पन्न होते हैं। निर्वाण अथवा मोक्ष की प्राप्ति के लिये आत्मवाद से छुटकारा होना परमावश्यक है। आपके सामने दो विकल्प हैं आत्मा और मोक्ष। दोनो मे से आप एक को चुन सकते हैं। ससार मे भ्रमण करना और दुःख सुख भोगना पसन्द है तो आत्मवाद अपनाइये, अकथनीय, अचिन्तनीय एव निर्विकल्प शान्ति का साक्षात्कार करना पसन्द है तो मोक्ष की गवेषणा कीजिये। मोक्ष मे न तो आत्मा है और न शरीर। जहाँ आत्मा का ही अस्तित्व नही रहता वहाँ परमात्मा का विचार उत्पन्न ही नहीं हो सकता है। अतएव सुख और दुःख, आत्मा और परमात्मा, जीवन और जगत, कर्म और फल, पुण्य और पाप, मैं और आप, ससार और निर्वाण आदि के भेद मोक्ष मे नहीं होते हैं। नैरात्म्यदर्शन ही प्रज्ञा है। यही बोधिसत्त्व के चिन्तन का हृदय है। नैरात्म्य को शून्यता भी कहते हैं क्योंकि वह विकल्पों, प्रपञ्चो, धारणाओ एव गुणो से सर्वथा मुक्त है। नैरात्म्य अथवा शून्य कोई चीज या वस्तु नहीं है, उसमें या उसकी कोई चीज या वस्तु नहीं है। उसको आप 'कुछ' भी नही कह सकते हैं। कुछ भी कहना प्रपञ्च करना है, वह मन व वाणी का विषय नहीं है। सभी मतो, दृष्टियो, विचारों, कल्पनाओ, रूपों एव संकेतो का अतिक्रमण करके यह नैरात्म्य अथवा शून्य अथवा परमार्थ नामो से अभिहित निर्वाण अथवा मोक्ष सिद्ध होता है।

प्रश्न उठता है जब आत्मा की ही सत्ता नही है तो निर्वाण किसका होता है? यह प्रश्न अविद्या, अहङ्कार एवं भय के मिश्रण से हुई स्थिति में उत्पन्न होता है। 'मेरी आत्मा', 'मेरी आत्मा की रक्षा', 'मेरी आत्मा की मुक्ति' आदि इस प्रकार के विचार अविद्या की उपज हैं। आत्मा की सत्ता का लोप होते देखकर हम डर जाते हैं। यही कारण है कि भारत मे, जहाँ आत्मवाद का साम्राज्य प्राचीन काल से पनपता रहा है, अनात्मवाद अथवा नैरात्म्य का विचार एक अजीब, अनहोनी और असहनीय बात के रूप में रह गई। प्रत्येक व्यक्ति, शिक्षित व अनपढ़, धनी व गरीब, योगी व गृहस्थी, पण्डित व मजदूर, दार्शनिक व कवि, प्रोफेसर व बुकसेलर, प्रत्येक को 'आत्मा' चाहिये, 'अपना', 'मैं' और 'मेरा', ये उसके महावाक्य हैं, मनुष्यों को उनका 'आत्मभाव' चाहिये, यहाँ भी और वहाँ भी, ससार में भी, मोक्ष मे भी।

प्रज्ञामूर्ति बुद्ध ने महाकृपा से प्रेरित होकर भारत के और विश्व के विचारको के सामने सिंहनाद करते हुये कहा था कि आत्मवाद अविद्या है और नैरात्म्य विद्या है। लोक में प्रचलित सभी मतो व व्यवहारो के विरुद्ध, नैरात्म्यदर्शन का यह सूक्ष्म एव गम्भीर उपदेश भगवान् तथागत के धम दशन की अद्वितीय विशेषता है। सूत्रो मे ठीक ही कहा है—"सर्वलोकविप्रत्यनीकोऽय धर्मो देश्यते।" नरात्म्य का सिद्धा त इसलिये भी परमावश्यक है कि इसके बिना दान, त्याग, वैराग्य, करुणा, सेवा, क्षान्ति, शील एव सम्पूण धमचर्या अधूरी और थोथी होती है। आत्मवाद के साथ यह सब स्वाथसम्पादन के साधनमात्र होकर रह जाते हैं। आत्मा के लिये अपनी आत्मा के लिये, कल्याण काय करना स्वाथपूण उद्योग करना है। अपनी आत्मा की मुक्ति के लिये बडे से बडा त्याग भी अशुद्ध एव क्षुद्र है क्योकि उसमे आत्मदृष्टि का मल शेष है। शुद्ध एव महान त्याग आत्मभाव का त्याग है। जिसका आत्मस्नेह समाप्त हो गया हो वही बुद्ध है, बोधिसत्त्व है, प्रज्ञावन्त है, एव मुक्त है। यही बोधिसत्त्व के जीवन दशन का रहस्य है। यही बौद्धदशन का निष्णात् विचार है। परन्तु इस विचार का सत्कार करना अधिकाश लोगो के भाग्य मे नही है। आचाय देव ने लिखा है—

> अद्वितीय शिवद्वार कुदृष्टीना भयकरम्।
> विषय सवबुद्धानामिति नैरात्म्यमुच्यते ॥
>
> —चतु शतककारिका २८८।

बोधिसत्त्व दशन अद्वयवादी है। इसके अनुसार नैरात्म्य एकमात्र सत्य है। इसी नरात्म्य को नि स्वभावता शू यता, अद्वयज्ञान, प्रज्ञापारमिता, धमधातु, भूतकोटि, परमाथ एव निर्वाण कहते हैं। यह सत्य निराकार, अन त, सव यापी एव कालातीत है। यही बोधिसत्त्व का आदश एव चरम लक्ष्य है।

आत्मदृष्टि का प्रहाण करके बोधिसत्त्व महासत्त्व होता है। क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या, हिंसा, मान, लोभ और कपट आदि की खेती केवल आत्मभाव के खेत मे होती है। 'मैं' और 'तुम', 'मम', और 'पर' का भेद आत्मा की असत्य धारणा के कारण होता है। अत आत्मदृष्टि को मिथ्यादृष्टि कहा गया है। आत्मभाव तिरोहित होने के कारण बोधिसत्त्व सर्वसत्त्वसमता का दशन करता है। मेरा अपनापन है नहीं, किसी अन्य का भी अपनापन नही है, अत मेरे और अन्य के बीच कोई अन्तर नहीं है। मेरा आत्मा मायोपम एव स्वप्नोपम है, इसी प्रकार अ य सभी का आत्मा भी मायोपम एव स्वप्नोपम है। ऐसी

स्थिति मे स्वाथ एव पराथ का भेद कसे सम्भव है ? इस चिन्तन का परिणाम परात्म समता और परात्मपरिवतन के विचार हैं जो बोधिसत्त्व के दशन मे अन्तर्निहित हैं ।

नरात्म्य अथवा नि स्वभावता ही परमार्थदशन है । स्वभाव को ही आत्मभाव कहते हैं । चूकि इसकी सत्ता नही है, अत यह उपलब्ध नही होता है । जिसकी सत्ता नही है उसकी उत्पत्ति और च्युति कसे हो सकती है । सभी प्राणी अनुत्पन्न हैं, अजात हैं, अभूत हैं । इसी प्रकार सभी धम भी अनुत्पन्न एव अजात हैं । जो इस तथ्य को हृदयङ्गम करता है और निर्भीकतापूवक आत्मत्याग करता है उसको अनुत्पत्तिक धर्मक्षान्ति का लाभ होता है । जो अनुत्पन्न है उसका विनाश कसे हो सकता है । जो अनुत्पन्न एव अनिरुद्ध है वही नैरात्म्य है । इस सत्य को जो अधिगत कर लेता है वही गम्भीरधर्मक्षान्ति का लाभी है । परमार्थ सत्य की दृष्टि से बोधिसत्त्व के दर्शन का परिणाम शून्यताविहार करना होता है । शून्यता में न दु ख हैं और न दु खी जीव हैं, न बोधिसत्त्व है और न ससार । शून्यता का कोई लक्षण नही है, कोई स्वभाव नहीं है । वह निरालम्ब एव निष्प्रपञ्च है । बोधिसत्त्व का तत्त्व दशन प्रपञ्चातीत है ।

(ख) अद्वयपरमार्थ की मौन व्याख्या

बौद्ध दर्शन अथवा बोधिसत्त्वो के अनुसार 'तत्त्व' क्या है ? इस प्रकार का प्रश्न पूछने वाला व्यक्ति ऐश्वरिक एव आत्मवादी दार्शनिक परम्पराओं की पृष्ठभूमि की दृष्टि से सौगतसमय में भी आत्मा, ब्रह्म, ईश्वर, 'गॉड,' अल्लाह, प्रकृति, पुरुष, इत्यादि की भाँति का कोई 'तत्त्व' ढूढना चाहता है । तत्त्व के स्वरूप की चर्चा करना केवल प्रपञ्च मात्र है । किसी पुरुष अथवा सर्वोच्च सत्ता को ससार का सृष्टि-कर्ता स्वीकार करने मे जो कठिनाइयाँ बौद्धिक, तार्किक एव धार्मिक दृष्टियो से उत्पन्न हो जाती हैं उनका विशद विवेचन प्राचीन बौद्ध मनीषियों ने अपने ग्रन्थो में किया है । हम इस प्रपञ्च में नहीं पड़ेंगे ।

बोधिसत्त्वो ने जिस तत्त्व का अधिगम किया था उसके स्वरूप की आंशिक चर्चा ऊपर हो चुकी है । **विमलकीर्तिनिर्देश** के आठवें परिवर्त में इकत्तीस बोधिसत्त्वों ने 'अद्वयधम' अथवा 'परमार्थतत्त्व' के स्वरूप पर इकत्तीस दृष्टियों से प्रकाश डाला है । जब बोधिसत्त्व मञ्जुश्री ने उपासक लिच्छवि गृहपति से 'अद्वयधर्म' पर अपना मत प्रगट करने की प्रार्थना की थी तो विमलकीर्ति ने मौन धारण कर लिया था । क्योंकि अक्षरों, शब्दो, वचनों, विचारो तथा सकेतो से अद्वयपरमार्थ की व्याख्या नहीं हो सकती है ।

बौद्ध चिन्तनपरम्परा के अनुसार तत्त्व अद्वय है और परमार्थसत्य है। परन्तु वह न आत्मा है न परमात्मा है न सृष्टिकर्ता है न संहारकर्ता है न स्त्री है न पुरुष है। वह जीवन व मृत्यु, सुख व दुःख, संसार व निर्वाण, जड़ व चेतन, उत्पत्ति व विनाश, रंग व रूप आदि के प्रपञ्चों से सर्वदा मुक्त है। जो इस तत्त्व का वर्णन करते हैं वे इसे जानते नहीं हैं।

(छ) बुद्धक्षेत्र का अर्थ और संसार का महत्त्व

बोधिसत्त्वयान के सूत्रों एवं शास्त्रों में बुद्धक्षेत्रों की विस्तृत चर्चा की गई है। बुद्धक्षेत्र का अर्थ है बुद्ध का कार्यक्षेत्र, बुद्धकार्य करने की भूमि, बोधिसत्त्वों की बोधिचर्या पूरी करने का क्षेत्र। बुद्धक्षेत्र को लोक या लोकधातु भी कहते हैं। जिस लोकधातु में बुद्ध रहते हैं और धर्मोपदेश करते हैं उसे बुद्धक्षेत्र कहते हैं। कुछ बुद्धक्षेत्र ऐसे भी होते हैं जो बुद्धशून्य अथवा बिना बुद्ध के हैं। वहाँ भी बुद्ध कार्य होता है, बोधिसत्त्व गण सभी बुद्धक्षेत्रों में जाकर बुद्ध कार्य करते हैं। अनुत्तर सम्यकसंबोधि के निमित्त जिस क्षेत्र अथवा लोक में कार्य होता है वह लोक बुद्धक्षेत्र कहा जाता है। **विमलकीर्तिनिर्देश** के प्रथम परिवर्त में बुद्धक्षेत्र के अर्थ की स्पष्ट व्याख्या की गई है।

जिस लोक में हम रहते हैं इसे सहालोकधातु कहा गया है। यह शाक्यमुनि तथागत का बुद्धक्षेत्र है। यह एक अपरिशुद्ध बुद्धक्षेत्र है क्योंकि यहाँ के प्राणी पाँच दोषों (पञ्च कषाय) से दूषित एवं पीड़ित हैं। आयुकषाय कल्पकषाय सत्त्वकषाय, दृष्टिकषाय तथा क्लेशकषाय, इन पाँच दोषों के होते हुये भी महाकारुणिक तथागत शाक्यमुनि ने इसी लोक को अपना बुद्धक्षेत्र चुना। बोधिसत्त्व अपने प्रणिधान के अनुसार किसी क्षेत्र या लोक को चुन सकता है। अत्यधिक करुणा से प्रेरित होने के कारण शाक्यमुनि ने सहालोक के प्राणियों के सुख व हित के लिये इसे अपना बुद्धक्षेत्र निश्चित किया था। अमिताभ अथवा अमितायु बुद्ध का बुद्धक्षेत्र सुखावती है जो परिशुद्ध एवं सुख का आकर है। पद्मोत्तर बुद्ध का बुद्धक्षेत्र पद्मा कहलाता है जो अत्यन्त परिशुद्ध एवं प्रभामय है। अमिताभ बुद्ध के बुद्धक्षेत्र का वर्णन **सुखावतीव्यूहसूत्र** में तथा पद्मोत्तर तथागत के बुद्धक्षेत्र का वर्णन **करुणापुण्डरीकसूत्र** में पठनीय है। तथागत सुगन्धकूट के बुद्धक्षेत्र सर्वगन्धसुगन्धालोकधातु का तथा तथागत अक्षोभ्य के बुद्धक्षेत्र अभिरतिलोकधातु का वर्णन **विमलकीर्तिनिर्देश** (परिवर्त ९ व ११) में पठनीय है। बुद्धक्षेत्रों की संख्या अगणित है। बुद्धों की संख्या भी अगणित है। बोधिसत्त्वों की संख्या तो अगणित होती ही है। बुद्धक्षेत्रों में बोधिसत्त्व रहते हैं, वे वहाँ

पर तथा अन्य क्षेत्रो मे बुद्धकार्य करते हैं। सहालोकधातु अथवा शाक्यमुनि बुद्ध के बुद्धक्षेत्र के अतिरिक्त अन्य किसी बुद्धक्षेत्र मे श्रावकों एव प्रत्येकबुद्धों के मार्गों (यानो) का अनुगमन नही होता है। यानत्रय का उपायकौशल्य शाक्यमुनि ने पञ्चकषाययुक्त बुद्धक्षेत्र के प्राणियो के परिपाचन के लिये अपनाया था।

बुद्धक्षेत्रो के प्राणिरत्न बोधिसत्त्व हैं। बोधिसत्त्वों को अपना प्रणिधान चरितार्थ करने के लिये ससार की परिशुद्धि करनी पड़ती है। ससार अथवा लोक की परिशुद्धि का यह कार्य बुद्ध कार्य कहलाता है। जहाँ यह कार्य होता है वह स्थान अथवा भू भाग बुद्धक्षेत्र हो जाता है। इस धर्म दर्शन मे ससार का असाधारण महत्त्व है। शून्यता, नि स्वभावता, नैरात्म्य एव अनित्यता की बौद्ध शिक्षाओ के कारण बौद्धदर्शन के विषय मे भयकर भ्रान्ति का प्रसार हुआ है। इस भ्रान्ति के कारण बहुधा शिक्षित व्यक्ति भी संसार के हित के लिये किये गये बुद्ध के महान कार्यों को भूलते दिखाई देते हैं। बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात् भगवान शाक्यमुनि ने सर्वजनहिताय कार्य किया था। अविद्या, अन्धविश्वास, निर्जीव एव व्यर्थ के कर्मकाण्डों, एव नाना प्रकार के क्लेशों से पीड़ित लोगो को उन्होंने करुणावश सद्धर्म का उपदेश करके उनको कल्याण का मार्ग दिखाया था। संसार और उसके प्राणियो व धर्मों का स्वभाव निश्चय ही अनित्य, दु ख एव नैरात्म्य की मुद्राओ से मुद्रांकित है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता है कि सद्धर्म का पुजारी और बुद्ध का पुत्र संसार को निर्वाण बनाने का, दु खी प्राणियो को सुखी बनाने का, क्रोध को मित्रता से परास्त करने का, अविद्यान्धकार को प्रज्ञाप्रकाश से दूर करने का, हिंसा एव क्रूरता के स्थान पर मैत्री एव प्रेम फलाने का, स्वार्थोन्मुखी प्रवृत्तियो के स्थान पर परार्थोन्मुखी विचारादर्शों का प्रसार करने का और ऊँच-नीच व छुआछूत को हटाकर समानता एव पवित्रता के आदर्शों की स्थापना करने का, प्रयत्न नहीं करता है। वास्तव मे त्याग और सन्यास का, करुणा और मैत्री का, दान और सेवा का, श्रद्धा और पूजा का, विद्या एव शिल्प का, शान्ति एवं सौहार्द का, समानता एवं सहयोग का, प्राणिमात्र के प्रति दया, सहानुभूति एव प्रेम का जितना अधिक प्रचार और प्रसार विश्व में बौद्धधर्म-दर्शन के कारण हुआ है उसकी तुलना किसी अन्य परम्परा के अच्छे परिणामों के साथ करना कठिन है। दुनिया की सभी प्रमुख धार्मिक परम्पराओ ने दुनियाँ के लोगों के हित मे न्यूनाधिक योगदान किया है। इसमें सन्देह नहीं है, तथापि बौद्ध साहित्य मे महाप्रज्ञा एव महाकरुणा का जो अद्भुत एव सार्वभौम स्वरूप निखरता है वह विश्वभर के धर्मों के साहित्यिक भण्डारो में सुरक्षित विचारो

दर्शों में अद्वितीय स्थान रखता है। यह तथ्य इस सम्पूर्ण जगत के लिये गौरव का विषय है।

अतएव बुद्धक्षेत्र कोई काल्पनिक वस्तु नही है, यह हमारा ससार, हमारा विश्व है। बुद्ध का आविर्भाव इस जगत के कल्याण के लिये हुआ था, सद्धर्म का डका इसी दुनिया के अन्धकार, प्रमाद एव अज्ञान के वशीभूत लोगों को प्रकाश, जागरूकता एव ज्ञान का सन्देश देने के लिये बजाया गया था। बौद्ध धर्म एव बोधिसत्त्व की जीवनचर्या का महत्त्व हमारे इस सांसारिक जीवन के कारण है। धर्म की आवश्यकता संसार के कारण है। संसार नही होता तो बुद्ध का प्रादुर्भाव नहीं होता, ससार के प्राणी दुखी नही होते तो बोधिसत्त्वो की चर्या की कोई आवश्यकता नही होती। जब तक संसार रहेगा तब तक सद्धर्म की उपयोगिता बनी रहेगी।

स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म न ससार से विमुख है और न समाज के प्रतिकूल है। भिक्षु-जीवन संसार मे रहकर संसार से निर्लिप्त रहने का एक मार्ग है। भिक्षु हो अथवा गृहस्थ, उसे शील का पालन करना है। अहिंसा का पालन करना, चोरी न करना, झूठ न बोलना, मैथुन विषयक भ्रष्टाचार न करना, सुरापान आदि प्रमादकारी खाद्य पेय से विरत रहना आदि नियमों का पालन समाज में रहकर ही हो सकता है। जनशून्य स्थान अथवा एकान्त वन मे शील का कोई महत्त्व या औचित्य नही हो सकता है। करुणा, मैत्री, मुदिता, एव उपेक्षा सामाजिक जीवन में भावनीय गुण हैं, दसकुशलकर्म पथो का अनुगमन तथा दस पारमिताओ का अभ्यास आकाश में या जनशून्य जंगल में असम्भव है, इनका औचित्य और महत्त्व मानव समाज मे और प्राणि-जगत में ही है। बोधिसत्त्व का उपायकौशल्य प्राणियो की सेवा करने की एक तकनीक है।

विमलकीर्तिनिर्देश के प्रथम परिवर्त मे लिच्छविकुमार बोधिसत्त्व रत्नाकर का अन्य पाँच सौ लिच्छविकुमारो के साथ भगवान् शाक्यमुनि के पास जाकर बुद्धक्षेत्र की परिशुद्धि की विधि के विषय में प्रश्न करने का उल्लेख है। इस प्रश्न के उत्तर में तथागत ने जो कुछ कहा उसके सारांश के साथ हम इस भूमिका का समापन करना चाहते हैं।

जगत के अद्वितीय बन्धु बुद्ध ने उन लिच्छविकुमारों से इस प्रकार कहा—

"कुलपुत्रो, बोधिसत्त्व का बुद्धक्षेत्र सत्त्वो के हितार्थ क्रियाओ के कारण से ही होता है। बुद्धक्षेत्र वस्तुत आशयक्षेत्र है, बुद्धक्षेत्र उदारचित्तोत्पाद है, बोधिचित्तोत्पाद है, बुद्धक्षेत्र दानक्षेत्र है, शीलक्षेत्र है, बुद्धक्षेत्र क्षान्तिक्षेत्र एव वीर्यक्षेत्र है, बुद्धक्षेत्र ध्यानक्षेत्र

एव प्रज्ञाक्षेत्र है, यह करुणा, मैत्री, मुदिता एव उपेक्षा की अपरिमित भावनाओ का क्षेत्र है। इस प्रकार के बुद्धक्षेत्र में अध्याशययुक्त, उदारचित्त एव बोधिचित्त वाले प्राणी उत्पन्न होते हैं, ऐसे बुद्धक्षेत्र मे दानी, शीलवान, ध्यानी, वीर्ययुक्त एवं प्रज्ञावन्त प्राणी उत्पन्न होते हैं। ऐसे बुद्धक्षेत्र मे अपरिमित भावनाओ वाले प्राणी उत्पन्न होते हैं। बोधिसत्त्व का परिशुद्ध बुद्धक्षेत्र उसके परिशुद्ध आचरण का परिणाम होता है। बुद्धक्षेत्र सैंतीस बोधिपाक्षिक धर्मों का और उपायकौशल्य का क्षेत्र है।' इस क्षेत्र के क्षेत्रज्ञ बोधिसत्त्व हैं जो बोधि की कृष्टि करते हैं, इस क्षेत्र मे श्रद्धा के बीज उगाये जाते हैं, धर्म के वृक्ष रोपे जाते हैं और निर्वाण रूपी फल लगते हैं। बुद्धक्षेत्र की परिशुद्धि के लिये हम सबको अपने चित्त की परिशुद्धि करनी चाहिये। बुद्धक्षेत्र परिशुद्ध चित्त का परिणाम है।

विमलकीर्तिनिर्देशनाममहायानसूत्रम्

(बौद्धसंस्कृत पुनरुद्धार)

आर्यविमलकीर्तिनिर्देशो नाम महायानसूत्रम्

१ बुद्धक्षेत्रपरिशुद्धिनिदानम्

नमः सर्वातीतप्रत्युत्पन्नानागतेभ्यो बुद्धबोधि-
सत्त्वार्यश्रावकप्रत्येकबुद्धेभ्यः ।

एवं मया श्रुतम्—एकस्मिन् समये भगवान् वैशाल्यां विहरति स्माम्रपालीवने महता भिक्षुसंघेन सार्धम् अष्टाभिर्भिक्षुसहस्रैः, सर्वैरर्हद्भिः क्षीणास्रवैर्निःक्लेशैर्वशीभूतैः सुविमुक्तचित्तैः सुविमुक्तप्रज्ञैराजानेयैर्महानागैः कृतकृत्यैः कृतकरणीयैरपहृतभारैरनुप्राप्तस्वकार्थैः परिक्षीणभवसंयोजनैः सम्यगाज्ञासुविमुक्तचित्तैः सर्वचेतोवशितापरमपारमिताप्राप्तैः ।

द्वात्रिंशता च बोधिसत्त्वसहस्रैः सार्धम्—अभिज्ञानाभिज्ञातैर्बोधिसत्त्वैः (ला० २७०ख) र्महाभिज्ञापरिकर्मनिर्यातैर्बुद्धाधिष्ठानाधिष्ठितैर्धर्मनगरपालैः सद्धर्मपरिग्राहकैर्महासिंहनादिभिर्दशदिक्षु सुगर्जितनादैरनध्येषित सर्वसत्त्वानाम् कल्याणमित्रभूतैस्त्रिरत्नगोत्रानाच्छेद्यकारिभिर्निर्वृतमारप्रत्यर्थिकैः सर्वपरप्रवाद्यनभिभूतैः स्मृतिबुद्ध्यवबोधसमाधिधारणीप्रतिभानसम्पन्नैः सर्वावरणपर्युत्थान-विगतैरनावरणविमोक्ष उपस्थितैरनाच्छेद्यप्रतिभानैर्दानदमनियमसंयमशीलक्षान्तिवीर्यध्यानप्रज्ञोपायकौशल्यप्रणिधानबलज्ञानपारमितानिर्यातैरनुपलब्धिधर्मक्षान्तिसमन्वागतैरवैवर्तिकधर्मचक्रप्रवर्तयद्भिरलक्षणमुद्रामु-

---

१ द्रष्टव्य त्रिंशिकाविज्ञप्तिमात्रतासिद्धि, कारिका २१—
अचित्तोऽनुपलम्भोऽसौ ज्ञान लोकोत्तर च तत ।

द्रितैः सर्वसत्त्वेन्द्रियज्ञानकुशलैः (ला० २७१ क) सर्वपर्षदनभिभूतस्य वैशारद्येन निष्क्रामिभिर्महापुण्यज्ञानसंभारसंचितवद्भिः सर्वलक्षणानुव्यंजनालंकृतकायैर्वरिष्ठरूपधारिभिश्चालंकारापगतैः सुमेरूनतशिखर इव यशः-कीर्त्यभ्युद्गतैर्वज्रदृढाध्याशयेन बुद्धधर्मसंघेऽभेद्यश्रद्धाप्रतिलब्धैर्धर्मरत्नरश्म्याऽमृतवृष्टिं सुप्रवर्षयद्भिः सर्वसत्त्वानां शब्दवागंगस्वरशब्दविशुद्ध्युपेतस्वरैर्गम्भीरधर्मप्रतीत्यसमुत्पादे प्रतिपद्यान्तानन्तदृष्टिवासनानां सन्धिसमन्तच्छेदैर्निर्भयसिंहसदृशैर्घोषाभिनिर्नादिभिर्महाधर्ममेघस्वरनादिभिः समविसमधर्मसमतिक्रान्तैर्धर्मरत्नस्य प्रज्ञापुण्यसंभारसमुदागमस्य महासार्थवाहैः; उत्थापनस्य च शान्तसूक्ष्मश्लक्ष्णस्य च दुर्दृशस्य दुरवगाह्यस्य धर्मस्य नये विचक्षणैः; सर्वसत्त्वागमनिर्गमसत्त्वाशयगत्यनुप्रवेश-(ला० २७१ ख) ज्ञानविषयसमर्पितैः; असमसमबुद्धज्ञानेऽभिषेकेणाभिषिक्तैर्दशबल वैशारद्य आवेणिकबुद्धधर्मे (ष्व-) अध्याशयेन प्रतिपन्नैः; सर्वापायभैरवदुर्गति विनिपातभयस्य परिखाया उत्तीर्य, संचिन्त्य सम्भवस्य गत्युत्पत्तिदेशिकैर्महावैद्यराजैः सर्वसत्त्वविनयस्य विधिविद्भिः सर्वसत्त्वानां सर्वक्लेशरोगावबोधैः; यथायोग धर्मभैषज्ययुक्तिसुप्रयुक्तवद्भिर्गुणानन्त्‌ आकरसमर्पितैरनन्तबुद्धक्षेत्राणि गुणव्यूहेन स्वालंकृतवद्भिरमोघदर्शनश्रवणैरवन्ध्यपादोत्सर्गैः; कोटिनयुतशतसहस्राप्रमेयकल्पे(ष्व-)पि गुणान् परिवर्णयेत्, गुणौघोऽनन्तोऽधिगतः। तद्यथा—

समदर्शिनाम बोधिसत्त्वेन च समासमदर्शिना च समाधिविकुर्वितराजेन च धर्मेश्वरेण च धर्मकेतुना च प्रभाकेतुना च प्रभाव्यूहेन च रत्नव्यूहेन (ला० २७२क) च महाव्यूहेन च प्रतिभानकूटेन च रत्नकूटेन च रत्नपाणिना च रत्नमुद्राहस्तेन च नित्यप्रलम्बहस्तेन च नित्योत्क्षिप्तहस्तेन च नित्यतपसा च नित्यनन्दहासेन्द्रियेण च प्रामोद्यराजेन च देवराजेन

च प्रणिधानव्यसनानुप्राप्तेन प्रतिसंवित्प्रसाधनप्राप्तेन च गगनगंजेन च रत्नप्रदीपधरेण च रत्नवीरेण च रत्ननन्दिना च रत्नश्रिया चेन्द्रजालेन च जालिनीप्रभेण चानुपलब्धिध्यानेन च प्रज्ञाकूटेन च रत्नमुक्तेन च मारहन्त्रा च विद्युद्देवेन च विकुर्वणराजेन च निमित्तकूटसमतिक्रान्तेन च सिंहगर्जिताभ्यवघोषणस्वरेण च गिर्यग्रसमुद्घातराजेन च गन्धहस्तिना च गन्धकुंजरनागेन च नित्योद्युक्तेन चानिक्षिप्तधुरेण च प्रमतिना च सुन्दरजातेन च पद्मश्रीगर्भेण च पद्मव्यूहेन चावलोकितेश्वरेण च महास्थामप्राप्तेन च ब्रह्मजालकेन च रत्नश्वेतासनेन च मारजिता (ला० २७२ ख) च समक्षेत्रालङ्कारेण च मणिरत्नच्छत्रेण च मणिचूडेन च मैत्रेयेण च मञ्जुश्रीकुमारभूतेन च तैरित्यादिभिर्द्वात्रिंशदा बोधिसत्त्वसहस्रैः (सार्धम्) ।

चतुष्क महाद्वीपाशोक-(नाम)-लोकधातोर्ब्रह्मशिख्यादयो दशसहस्रम् ब्रह्मणां भगवतो दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय चागताः । तेऽपि तस्यां पर्षद्येव संनिपतिताः । नानाचतुष्कमहाद्वीप् (एभ्यो)ऽपि द्वादशसहस्रं शक्राणाम् आगतम् । तेऽपि तस्या पर्षद्येव सनिपतिताः । एवम् अन्यच्च महेशाख्यमहेशाख्या ब्रह्मा कौशिकश्च लोकपालदेवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगा अपि तस्या पर्षद्येच संनिपतिता अभूवन् । एवमेव चतुष्परिषद्भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिका अपि तत्र संनिपतिता आसुः ।

अथ भगवांश्रीगर्भे सिंहासने निषण्णोऽनेकशतसहस्रपर्षदा परिवृतः पुरस्कृतो धर्मं देशयति स्म । सुमेरुरिव पर्वतराजः समुद्रा-(ला० २७३क) भ्युद्गतः सर्वाः पर्षदोऽभिभूय, भासते तपति विरोचते स्म श्रीगर्भे सिंहासने निषण्णः ।

ततो लिच्छविकुमारो रत्नाकरो बोधिसत्त्वो लिच्छविकुमाराणाम्

पञ्चशतमात्रश्च सप्तरत्नच्छत्रं समादाय, वैशाल्या महानगर्या निश्चर्य, येनाम्र-पालीवनंच येन भगवांस्तेनोपसङ्क्रान्ताः। उपसङ्क्रम्य, भगवतः पादयोः शिरसा वन्दित्वा, भगवति सप्तकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य, ते रत्नच्छत्रं यथा धारिणो भगवन्तम् अभित्रायन्ते स्म। अभिपालयित्वैकान्ते स्थुः।

तानि निर्यातितानि रत्नच्छत्राणि समनन्तरं सद्यो बुद्धानुभावेनैकी-भूत्वा, तेन रत्नच्छत्रेणायं सर्वत्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातुः संछादितः प्रति-भाति स्म। स त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातुपरिणाहश्च तस्यैव महारत्न-च्छत्रस्य मध्ये प्रभासितो(ऽभूत्)। (ये)ऽस्मिन् त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातौ केचन (पर्वताः) स्युः—सुमेरुः पर्वतराजश्च हिमवन्तपर्वतश्च मुचिलिन्दपर्वतश्च महामुचिलिन्द-(ला० २७३ ख) पर्वतश्च गन्धमादनश्च रत्नपर्वतश्च काल-पर्वतश्च चक्रवाडश्च महाचक्रवाडश्च—सर्वे तेऽपि तस्यैव महारत्नच्छत्रस्य मध्ये प्रभासिता (अभूवन्)। यदस्मिन् त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातौ किंचिज् (जलं) स्यात् महासमुद्रसरस्तडागपुष्करणीनदीकुनदीपल्वलनिर्झं—सर्वम् तदपि तस्यैव महारत्नच्छत्रस्य मध्ये प्रभासितम् (अभूत्)। अस्मिन् त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातावादित्यचन्द्रविमानाश्च तारकारूपाणि देवभव-नानि च नागपुराणि च यक्षगन्धर्वासुरगरुडकिंनरमहोरगावासाश्च चतु-र्महाराजप्रासादाश्च ग्रामनगरनिगमराष्ट्रराजधान्यो यावतकाः स्युः, सर्वास्ता अपि तस्यैवैकाकिनो महारत्नच्छत्रस्याभासं गच्छन्ति स्म। दशदिग्लोके भगवताम् बुद्धानां या धर्मदेशनोत्पन्ना, साऽपि तस्मादेकाकिनो महारत्न-छत्रान् निर्गते स्वरे नदति स्म।

अथ भगवतोऽस्मिन् एवं रूपे महाप्रातिहार्ये (ला० २७४ क) दृष्टे, सा सर्वावती पर्षदाश्चर्यप्राप्ताऽभूत्। तुष्टोदग्रात्तमनाः प्रमुदिता प्रीति-सौमनस्यजाता तथागतम् अभिवन्द्यानिमिषाभ्यां नेत्राभ्यां पश्यन्त्यस्थात्।

ततो रत्नाकरो लिच्छविकुमारो भगवत इदम् एवं रूपं महाप्रातिहार्यं दृष्ट्वा, दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्या प्रतिष्ठाप्य, येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य, भगवन्तम् आभिर्गाथाभिरभ्यनन्दत्—

"विशालनेत्र शुद्धरुचिरपद्मदलवत् । शुभाभिप्राय शमथपारगत परमप्राप्त ॥ कुशलकर्माचितवनप्रमेयगुणसागर । नमस्तुभ्यं श्रमणाय शान्तिमार्गसंनिश्रिताय ॥ पुरुषवृषभस्य यूथनायकस्यर्द्धिविधिम् पश्यत । सुगतस्य सर्वाण्यपि क्षेत्राणि प्रवरव्यक्तानि दृश्यन्ते ॥ तव धर्मकथोदारामृतगा । तानि सर्वाण्यस्मिन् गगनतले दृश्यन्ते ॥ तवोत्तमधर्मराज्यम् इदम्, धर्मराज । जिनेन च जगद्भ्यो धर्मधनम् प्रदलितम् ॥ धर्मप्रभेदनविज्ञाय परमार्थसंदर्शकाय । धर्मेश्वराय धर्मराजाय तुभ्यं शिरसा नमः ॥ 'अस्तिनास्त्य–(ला० २७४ ख)पगताः[२] सर्वे इमे धर्मा हेतून् प्रतीत्यसमुत्पन्नाः । एष्वात्मवेदककारका न सन्ति । कुशलपापकर्म किंचिदविप्रणाशम्' इति वचनेनोपदर्शयसि ॥ त्वया मुनीन्द्र, मारातिबलबलं संजित्य । परमप्रशान्तबोध्यमरणक्षेमं प्राप्तम् ॥ तत्त्वत्र निर्वेदनचित्तमनोऽप्रचारैः । सर्वतीर्थिककुगणैरज्ञातम् ॥ अद्भुतं धर्मराजदेवमनुष्याणामभिमुखम् । त्रिपरिवर्तं बह्वाकार प्रशान्तस्वभावविशुद्ध धर्मचक्रं प्रवर्तयसि । तदनन्तरं

---

२ द्र० समाधिराजसूत्र १ २७–२८, प्रसन्नपदा पृ० ११८—

अस्तीति नास्तीति उभेऽपि अन्ता शुद्धी अशुद्धी इमेऽपि अन्ता ।
तस्मादुभे अन्त विवर्जयित्वा मध्येऽपि स्थान न करोति पण्डित ॥
अस्तीति नास्तीति विवाद एष शुद्धी अशुद्धीति अयं विवाद ।
विवादप्राप्त्या न दुःख प्रशाम्यति अविवादप्राप्त्या च दुःख निरुध्यते ॥

रत्नावली १ ६२, प्रसन्नपदा पृ० १२०—

धर्मयौतकमित्यस्मादस्ति नास्ति व्यतिक्रमम् ।
विद्धि गम्भीरमित्युक्त बुद्धाना शासनामृतम् ॥

त्रिरत्नम् उपदिश्यते ॥ ये धर्मरत्नेन सुविनीताः। तेऽवितर्का नित्यप्रशान्ताः ॥ त्वं हि जातिजरामरणान्तगो वैद्यो वरः। अप्रमेयगुणसागराय शिरसा नमः ॥ सत्कारसुकृतैस्सुमेरुरिवाप्रकम्प्य'। शीलवत्सु च दुःशीलेषु च समम् मैत्री ॥ ममतासंप्रस्थितो मनश्चाकाशवत्। अस्मै सत्त्वरत्नाय कुर्यात् पूजाम् कः? महामुने, इमा हि पर्षदः संनिपतिताः। तव मुखं सुप्रसादमनसा प्रेक्षन्ते (ला० २७५ क) ॥ सर्वैरपि जिनः स्वाभिमुखे दृष्टः। तद्ध्रुवम् जिनस्यावेणिकबुद्धलक्षणम् ॥ भगवत एकवाक् प्रवर्तिता, परं तु (सा)। पर्षद्भिर्नानावाक्षु विज्ञायते ॥ विज्ञायते सर्वजगता स्वकार्थो यथा। तद्ध्रुवम् जिनस्यावेणिकबुद्धलक्षणम् ॥ तेनैकवाक्स्वरघोषणकार्येण। केचिद् वासनापरिभाविताः, केचित् प्रतिपन्नाः ॥ (या) विमत्याकांक्षाः, ता नायकः प्रतिप्रस्रम्भयति स्म। तद्ध्रुवम् जिनस्यावेणिकबुद्धलक्षणम् ॥ दशबलनायकविक्रामिणे तुभ्यं नमः। नमस्तेऽभयाय भयविप्रमुक्ताय ॥ आवेणिकधर्मानवश्यं सुप्रतिपन्नाय। सर्वजगन्नेत्रे तुभ्यं नमः। नमः सर्वसंयोजनबन्धनच्छेदकाय ॥ पारगताय स्थलस्थिताय नमः। खिन्नजगत्तारकाय तुभ्यं नमः। नमः संसारप्रवृत्त्याम् अप्रतिष्ठिताय ॥ सत्त्वगतिसंप्रस्थितः सर्वसहचरः। परं तु (ते) सर्वगतिविमुक्तमनः ॥ परिशुद्धपद्ममुदके जातमुदकेन पर्यनुपलिप्तम्। मुनिपद्मेन शून्यता भाविता ध्रुवम् ॥ सर्वाकारनिमित्तानि (ला० २७५ ख) संप्रशान्तानि। त्वं कस्मिंश्चित् प्रणिधानकारी नासि ॥ परिशुद्धस्य बुद्धस्य महानुभावोऽचिन्त्यः। आकाशसदृशम् अप्रतिष्ठितं वन्दाम्यहम्" ॥

अथ भगवन्तं ताभिर्गाथाभिरभिनन्द्य, रत्नाकरेण लिच्छविकुमारेण भगवन्तम् एवमुक्तम्—"भगवन्, एभ्यो लिच्छविकुमारेभ्यः पंचशतमात्रेभ्यः सर्वेभ्योऽनुत्तरसम्यक्संबोध्यां संप्रतिपन्नेभ्यो 'बोधिसत्त्वानां परि-

शुद्धं बुद्धक्षेत्र किम्'—इति परिशुद्ध बुद्धक्षेत्र पृच्छद्भ्यो भगवता तथागते-नैभ्यो बोधिसत्त्वेभ्यः परिशुद्धं बुद्धक्षेत्रं सूक्तम् देशितं स्यात्" ।

एवमुक्ते, भगवान् रत्नाकराय लिच्छविकुमाराय साधुकारम् अदात्—"साधु साधु, कुमार । साधु (यथा) त्व परिशुद्ध बुद्धक्षेत्रम् आरभ्य, तथागतम् पृच्छसि । तेन हि कुमार त्व शृणु साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु । बोधिसत्त्वानाम् परिशुद्ध बुद्ध–(ला० २७६ क) क्षेत्रम् आरभ्य, भाषिष्येह ते" ।—"साधु भगवन्" ।—इत्युक्त्वा, लिच्छविकुमारो रत्नाकरश्च पचमात्राणि लिच्छविकुमारशतानि भगवते प्रत्यश्रौषुः ।

भगवास्तानेवम् आमन्त्रयते स्म—"कुलपुत्र (ाः), सत्त्वक्षेत्र हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रम् । तत्कस्य हेतोः ? यावद्बोधिसत्त्वः सत्त्वानुपबृंहयति, तावद्बुद्धक्षेत्रस्य परिग्राहकः । ईदृशस्य बुद्धक्षेत्रस्य परिग्राहको यथा सत्त्वा विनीता भवन्ति । बुद्धक्षेत्रप्रवेशं यथा सत्त्वा बुद्धज्ञानप्रवेशं गच्छन्त्येवं रूपं बुद्धक्षेत्रम् परिगृह्णाति । एवं रूपं बुद्धक्षेत्रम् परिगृह्णाति यथा बुद्धक्षेत्रप्रवेशम्—आर्यजातेन्द्रियोत्पादं सत्त्वा गच्छन्ति । तत् कस्य हेतोः ? कुलपुत्राः, बोधिसत्त्वानां बुद्धक्षेत्रं हि सत्त्वार्थक्रियोत्पत्तिहेतोः । रत्नाकर, तद्यथा—आकाशसमे किंचित् कर्तुकामस्तथा कुर्यात्, किंचाप्याकाशे हि करणे चालंकारे च तथा न युज्यते । रत्नाकर, (ला० २७६ ख) सर्वधर्मान् आकाशसमान् ज्ञात्वा, बोधिसत्त्वो यथा सत्त्वपरिपाचनार्थाय बुद्धक्षेत्रं कर्तुकामस्तथा बुद्धक्षेत्रं कुर्यात्, किंचापि बुद्धक्षेत्रम् आकाशे हि करणे न युज्यते, अलकारे न युज्यते ।

"रत्नाकर, अथ चाशयक्षेत्रं हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्र, तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे शाठ्यमायापगताः सत्त्वा उपपत्स्यन्ते । कुलपुत्र, अध्याशयक्षेत्रं हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रं ; तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे सर्वकुशलमूलसंभारोप-

चित्तवन्तः सत्त्वा उपपत्स्यन्ते। प्रयोगक्षेत्रं हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रं; तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे सर्वकुशलधर्मोपस्थिताः सत्त्वा उपपत्स्यन्ते। बोधिसत्त्वस्योदारचित्तोत्पादो बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रं, तस्मिंस्तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे महायानसंप्रस्थिताः सत्त्वा उपपत्स्यन्ते। दानक्षेत्र हि बोधिसत्त्वस्य बुद्ध-(ला० २७७ क) क्षेत्रं, तस्मिंस्तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे सर्वस्वपरित्यागिनस्सत्त्वा उपपत्स्यन्ते। शीलक्षेत्र हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रं, तस्मिंस्तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे सर्वाशयसहगता दशकुशलकर्मपथपरिरक्षन्तः सत्त्वा उपपत्स्यन्ते। क्षान्तिक्षेत्रं हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रं; तस्मिंस्तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे द्वात्रिंशल्लक्षणालंकृताः क्षान्तिदमपरमशमथपारमिताः सत्त्वा उपपत्स्यन्ते। वीर्यक्षेत्रं हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रं; तस्मिंस्तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे सर्वकुशलधर्मेष्वारब्धवीर्याः सत्त्वा उपपत्स्यन्ते। ध्यानक्षेत्रं हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रं; तस्मिंस्तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे स्मृतिसंप्रजन्यसमाहिताः सत्त्वा उपपत्स्यन्ते; प्रज्ञाक्षेत्रं हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रं; तस्मिंस्तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे सम्यक्त्वनियतसत्त्वा उपपत्स्यन्ते। चत्वार्यप्रमाणानि हि बोधिसत्त्वस्य (ला० २७७ ख) बुद्धक्षेत्रं; तस्मिंस्तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाविहारिणस्सत्त्वा उपपत्स्यन्ते। चत्वारि संग्रहवस्तूनि[1] हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रं; तस्मिंस्तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे सर्वविमुक्तिपरिगृहीताः सत्त्वा उपपत्स्यन्ते। उपायकौशल्यं हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रं; तस्मिंस्तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे सर्वोपायचर्याविचक्षणाः सत्त्वा उपपत्स्यन्ते। सप्तत्रिंशद्बोधिपक्ष्यधर्मा हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रं; तस्मिंस्तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे स्मृत्युपस्थानसम्यक्प्रधानर्द्धिपादेन्द्रियबलबोध्यंगमार्गप्रतिपत्तिज्ञाः सत्त्वा

१ द्र० महाव्युत्पत्ति ९२४—(अ) दान (आ) प्रियवादिता (इ) अर्थचर्या (ई) समानार्थता।

उपपत्स्यन्ते। परिणामना चित्तं हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रं, तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे सर्वगुणालंकारा आविर्भवन्ति। अष्टाक्षणप्रशान्त्युपदेशो हि बोधिसत्त्वस्य बुद्ध-(ला० २७८ क) क्षेत्रं, तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे सर्वापाया अत्यन्तसमुच्छिन्नाः, अष्टाक्षणा अपगता भवन्ति। प्रत्यात्मशिक्षापदस्थितिश्च परस्यापच्यनालापो हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रं, तस्मिंस्तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्र आपत्तिशब्दोऽपि तु न नद्यते। दशकुशलकर्मपथपरिशुद्धिर्हि बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रं; तस्मिंस्तद्बोधिप्राप्तिबुद्धक्षेत्रे ध्रुवायुर्महाभोगब्रह्मचर्यसत्यानुवर्तनवचनालंकारमञ्जुवाक्याभेद्यपर्षन्निभिन्ननिवेशनकौशल्येर्ष्या--विप्रयोगाव्यापादचित्तसम्यग्दृष्टिसमन्वागताः सत्त्वा उपपत्स्यन्ते।

"एवं हि, कुलपुत्र, यादृशो बोधिसत्त्वस्य बोधिचित्तोत्पादस्तादृशोऽप्याशयः। यादृश आशयस्तादृशोऽपि प्रयोगः। यावत् प्रयोगस्तावच्चाध्याशयः। यावदध्याशयस्तावच्च निध्यप्तिः। यावन्निध्यप्तिस्तावच्च प्रतिपत्तिः। यावत् प्रतिपत्तिस्तावच्च परिणामना। यावत् परिणामना तावच्चोपायाः। यावदुपायास्-(ला० २७८ ख) तावच्च परिशुद्धक्षेत्रम्। यथा परिशुद्धक्षेत्रम्, परिशुद्धसत्त्वास्तथा। यथा परिशुद्धसत्त्वास्तथापि परिशुद्धज्ञानम्। परिशुद्धज्ञान यथा, तथापि परिशुद्धशासनम्। यथा परिशुद्धशासनं, तथा च परिशुद्धज्ञानसाधनम्। परिशुद्धज्ञानसाधन यथा, तथा पुनः परिशुद्धस्वचित्तम्।

"तस्मात्, कुलपुत्र, बोधिसत्त्वेन बुद्धक्षेत्रपरिशुद्धिनिश्चिकीर्षया स्वचित्तपर्यवदापनाय प्रयत्तव्यम्। तत् कस्य हेतोः? यथा बोधिसत्त्वस्य चित्तं परिशुद्धम्, तादृशे बुद्धक्षेत्रम् परिशुद्धम् भवति"।

ततो बुद्धानुभावेनायुष्मतः शारिपुत्रस्यैतदभूत्—'यदि यथा चित्तं परिशुद्धम्, तादृशे बोधिसत्त्वस्य बुद्धक्षेत्रम् परिशुद्धं भवेत्, भगवतः शाक्य-

मुनेर्बोधिसत्त्वचर्यां चरतः, तस्य चित्तञ्च परिशुद्धं किम्, यथा बुद्धक्षेत्रम् एवं रूपम् परिशुद्धञ्च दृश्यते' ?—तस्यैतदभूत्।

अथ भगवानायुष्मतः शारिपुत्रस्य (ला० २७९ क) चेतसैव चेतः परिवितर्कम् आज्ञायायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत्—"शारिपुत्र, तत् किं मन्यसे? सूर्यश्च चन्द्रः किञ्च परिशुद्धौ, यथा जात्यन्धैर्न दृश्येते?"—अब्रवीत्—"नो हीदं, भगवन्। तैर्जात्यन्धैर्दुष्कृतम्, न तु सूर्येण च चन्द्रेण हि दुष्कृतम्"।—अवोचत्—"तथा हि, शारिपुत्र, केनचित् सत्त्वेन तथागतस्य बुद्धक्षेत्रगुणालङ्कारव्यूहो न दृश्यते, स सत्त्वाज्ञानेन हि दोषः, न तु तथागतेन तस्मिन् दोषः। तथागतस्य बुद्धक्षेत्रं हि परिशुद्धम्, किं तु त्वया तन्न दृश्यते"।

ततो ब्रह्मा शिख्यायुष्मन्तं शारिपुत्रमेवमब्रवीत्—"भदन्त शारिपुत्र, 'तथागतस्य बुद्धक्षेत्रञ्च परिशुद्धम्' इति मा ब्रवीः। भदन्त शारिपुत्र, परिशुद्धं भगवतो बुद्धक्षेत्रम्; तद् यथा—परनिर्मितवशवर्तिदेवानाम्, भदन्त शारिपुत्र, आवासव्यूहो यथा, भगवतः शाक्यमुनेर्बुद्धक्षेत्रव्यूहोऽपि मयेदृशो दृश्यते"।

ततः शारिपुत्रः स्थविरो ब्रह्माणं शिखिनमेवमब्रवीत् (ला० २७९ ख) "ब्रह्मन्, अहं त्विमां महापृथिवीमुत्कूलनिकूलकण्टकप्रपातशिखरश्वभ्रगूथोडिगल्ल प्राकीर्णाम् पश्यामि"।

ब्रह्मा शिख्यब्रवीत्—"तथा हीदृशं बुद्धक्षेत्रं परिशुद्धञ्च दृश्यते। भदन्त शारिपुत्र, उत्कूले निकूले चित्ते बुद्धज्ञानायाशयो नियतमपरिशुद्धः। येभ्यः केभ्यश्चित्, भदन्त शारिपुत्र, सत्त्वेषु समचित्तता च बुद्धज्ञानायाशयः परिशुद्धस्तैर्हीदं बुद्धक्षेत्रम् परिशुद्धं दृश्यते"।

अथ भगवानिमं त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातुम् पादाङ्गुष्ठेनाहन्ति

स्म। समनन्तरहतोऽयं लोकधातुरनेकरत्नकूटमनेकरत्नशतसहस्रसंभारोऽनेकरत्नशतसहस्रप्रतिव्यूहो भूतस्तद् यथा—रत्नव्यूहस्य तथागतस्यानन्तगुणरत्नव्यूहो लोकधातुरिव, अयं च लोकधातुस्तादृशः। ततः सापि सर्वावती परिषदाश्चर्यप्राप्ता रत्नपद्मव्यूहासन आत्मानमपि च निषण्णाम् चिन्ता करोति स्म।

अथ (ला० २८० क) भगवानायुष्मन्तं शारिपुत्रमवोचत्—"ननु त्वं, शारिपुत्र, इमं बुद्धक्षेत्रगुणव्यूहं पश्यसि?" अब्रवीत्—"ध्रुवम् पश्यामि, भगवन्। सन्दृश्यन्त इमेऽदृष्टाश्रुतपूर्वा व्यूहाः"। अभाषत—"शारिपुत्र, इदं हि बुद्धक्षेत्रन्नित्यमीदृशम्, किं तु हीनसत्त्वपरिपाचनार्थाय तथागतो बुद्धक्षेत्रमेव बहुदोषदुष्टं देशयति। शारिपुत्र, तद्यथापि नाम देवपुत्रा एकस्मिन् रत्नभाजने भोजनं भक्षन्ति, अपि तु यथा—पुण्यसनिचयभेदेन दिव्याहारामृतप्रत्युपस्थिताः, एवमेव, शारिपुत्र, सत्त्वा एकस्मिन् बुद्धक्षेत्र उत्पन्ना यथा—परिशुद्धिर्बुद्धानां बुद्धक्षेत्रगुणव्यूहम् पश्यन्ति"।

अस्मिन् बुद्धक्षेत्रगुणालङ्कारव्यूहे दृश्यमाने, चतुरशीत्या प्राणिसहस्रैरनुत्तरसम्यक्सम्बोधिचित्तान्युत्पादितान्यभूवन्। ये केचन लिच्छविकुमाराणाम् पञ्चशतं लिच्छविकुमारेण सार्धमुपसंक्रान्ताः तेऽप्यानुलोमिकीम् क्षान्तिम् प्राप्नुवन्।

अथ भगवांस्ता ऋद्धिविधीः पिंडयति स्म; ततश्च तद्बुद्धक्षेत्रं (ला० २८० ख) भूयः पूर्वस्वभावमापन्नं दृश्यते स्म।

---

४ द्र० असगपादविरचित बोधिसत्त्वभूमि, पृ० १—
इह बोधिसत्त्वस्य स्वगोत्र प्रथमश्चित्तोत्पाद सर्वे च बोधिपक्ष्या धर्मा आधार इत्युच्यते।

तत्र श्रावकयानिदेवमनुष्याणामेतदभूत्—'अनित्या वत संस्काराः'। विदित्वेति, द्वात्रिंशदे प्राणिसहस्रेभ्यः सर्वधर्मेषु विरजो विगतमलं विशुद्धं धर्मचक्षुः, अष्टाभ्यो भिक्षुसहस्रेभ्योऽनुपादायाश्रवेभ्यश्चित्तानि विमुक्तान्यभूवन्। चतुरशीत्यापि बुद्धक्षेत्रोदाराधिमुक्तिकप्राणिसहस्रैः, सर्वधर्मान् विठपन[1]—प्रत्युपस्थानलक्षणान् विदित्वा, अनुत्तरसम्यक्सम्बोधिचित्तान्युत्पादितानि।

बुद्धक्षेत्रपरिशुद्धिनिदानस्य परिवर्तः प्रथम।

[1] तुलनीय प्रसन्नपदा, पृ० १७—वितथा इमे सर्वधर्मा। असन्त इमे सर्वधर्मा। विठपिता इमे सर्वधर्मा। मायोपमा इमे सर्वधर्मा। स्वप्नोपमा इमे सर्वधर्मा।

२ अचिन्त्योपायकौशल्यम्

अपि च तेन कालेन वैशाल्याम्महानगर्याम् एको विमलकीर्तिर्नाम लिच्छविरासीत्, पूर्वजिनकृताधिकारोऽवरोपितकुशलमूलोऽनेकबुद्धपर्युपासितः क्षान्तिप्रतिलब्धः प्रतिभानलब्धो महाभिज्ञाविक्रीडितो धारणीप्रतिलब्धो वैशारद्यप्राप्तो निहतमारप्रत्यर्थिको गम्भीरधर्मनेत्री सुप्रतिपन्नः प्रज्ञा-पारमिता निर्यात उपायकौशल्यगतिंगतः प्रतिभान-(ला० २८१ क)वत् सत्त्वाशयचर्याविज्ञः सत्त्वेन्द्रियवरावरज्ञाननिर्यातो यथाप्रत्यर्हं धर्मशास्ता। अस्मिन् महायाने प्रयत्य, ज्ञातः सुनिश्चितः कर्मकरो बुद्धस्येर्यापथे विहारी परमबुद्धिसागरानुगतः सर्वबुद्धैः संस्तुतः स्तोभितः प्रशंसितः सर्वशक्रब्रह्म-लोकपालनमस्कृतः सः।

उपायकौशल्येन सत्त्वपरिपाचनार्थाय वैशाल्याम्महानगर्यां विहरन्, (सो)ऽनाथदरिद्रसत्त्वसंग्रहायाक्षयभोगः। दुःशीलसत्त्वसंग्रहाय परिशुद्ध-शीलः। द्विष्टातिद्विष्टव्यापादि दुःशीलक्रोधनसत्त्वसग्रहाय क्षान्तिदम-प्राप्तः। अलससत्त्वसंग्रहायोत्तप्तवीर्यः। विक्षिप्तचित्तसत्त्वसंग्रहाय ध्यानस्मृति-समाधिविहारी। दौष्प्रज्ञसत्त्वसंग्रहाय प्रज्ञाविनिश्चयलाभी। यद्यप्यवदातवस्त्र-परिवेष्टितः (स) (ला० २८१ ख) श्रमणचरित सम्पन्नः। गृहावासे यद्यपि विहरन्, कामरूपारूपधात्वसंसृष्टः। पुत्रदारान्तःपुरेऽपि नित्यम् ब्रह्मचारी। परिवारपरिवृतो यद्यपि दृश्यमानः प्रविवेकचारी। भूषणालंकृतो दृश्यमानः, किं तु लक्षणोपेतः। यद्यप्याहारपानभोजनं दृश्यमानो भुञ्जन्, सदा

ध्यानस्य प्रीतिभोजन परिभुङ्क्ते स्म । सर्वक्रीडाद्यूतकोणेषु दृश्यमानोऽपि, क्रीडाद्यूतरक्तान् सत्त्वान् परिपाचयति स्म नित्यममोघचारी । सर्वपाषण्डिकान् यद्यपि गवेषी, बुद्धेऽभेद्याभिप्रायमम्पक[1] । लौकिकलोकोत्तरमन्त्रशास्त्रविज्ञानोऽपि सदा धर्मसम्मोदनानन्दाधिमुक्तः । संसर्गसमन्तमध्ये दृश्यमानोऽपि, सर्वमध्ये प्रमुखः पूजितः ।

लोकसामग्रीकरणार्थाय ज्येष्ठमध्यकुमाराणां सहायीभावं गच्छति स्म धर्मभाणकः । सर्वव्यवहारप्रतिपन्नो यद्यपि, लाभभोगनिराकाङ्क्षः । सत्त्वधर्षणार्थाय सर्वपथचत्वरशृङ्गाटकेषु (ला० २८२ क) दृश्यमानोऽपि, सत्त्वरक्षणार्थाय राजकार्येषु च प्रयुक्तः । हीनयानाधिमुक्तिवारणार्थाय महायाने च सत्त्वपरिग्रहार्थाय सर्वधर्मश्रवणिकसंवाचकेषु दृश्यते स्म । बालपरिपाचनार्थाय सर्वलिपिशालागाम्यपि । कामादीनवसम्प्रकाशनार्थाय गणिकागाराण्यपि सर्वत्रावक्रामी । स्मृतिसम्प्रतिष्ठापनार्थाय सर्वमद्यविक्रयगृहाणि चावक्रमति स्म ।

धर्मश्रेष्ठोपदेशकारणाच्छ्रेष्ठ्यन्तरेऽपि श्रेष्ठिसम्मतीयः । सर्वग्राहकादानपरिच्छेदकारणाद्गृहपत्यन्तरे च गृहपतिसम्मतीयः । क्षान्तिसौरत्यबलप्रतिष्ठापनकारणात् क्षत्रियान्तरे क्षत्रियसम्मतीयः । मानमददर्पप्रणाशनकारणाद् ब्राह्मणान्तरेऽपि ब्राह्मणसम्मतीयः । सर्वराजकार्यधर्मानुरूपाज्ञाकारणादमात्यान्तरे चामात्यसम्मतीयः । राजभोगैश्वर्यसङ्गविवर्तनकारणात्कुमारान्तरे च कुमारसम्मतीयः । कुमारीपरिपाचनकारणाद्(ला० २८२ख) अन्तःपुरेऽपि कञ्चुकिसम्मतीयः ।

---

१ द्र० धम्मपद, २००—

सुसुखं वत जीवाम येसं नो नत्थि किंचनं ।
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा ॥

प्राकृतस्य पुण्यं विशेषेणाध्यालम्बनतो जनकायेन सार्धं सामग्रीमापन्नः। ईश्वराधिपतय उपदेशकारणाच्छक्रान्तरे च शक्रसम्मतीयः। ज्ञानविशेषशासनकारणाद्ब्रह्मान्तरेऽपि ब्रह्मसम्मतीयः। सर्वसत्त्वपरिपाचनाल्-(लोकपालेषु) लोकपालसम्मतीयः। तथा हि लिच्छविर्विमलकीर्तिरप्रमाणोपायकौशल्यज्ञानसम्पन्नो वैशाल्याम्महानगर्यां विहरति स्म।

स उपायकौशल्येनात्मानं ग्लाननिभं देशयित्वा, तस्य रोगप्रश्नार्थाय वैशाल्या महानगर्या राजामात्याधिपकुमारमण्डलब्राह्मणगृहपतिश्रेष्ठिनैगमजानपदाः, नो हीदं—प्राणिनाम् बहुसहस्र रोगपृच्छनायागतम्। तेभ्यस्तत्र समागतेभ्यो लिच्छविर्विमलकीतिरिममेव चतुर्महाभूतकायम् आरभ्य, धर्मं देशयति स्म—

"मित्राः, अय हि काय एवमनित्य एवमध्रुवोऽनाश्वासः। (स ह्य्-) एवं (ला० २८३ क) दुर्बलोऽसारस्तथा हि लुप्तः परीत्तकालो दुःखो बहुरोगो विपरिणामधर्मः। मित्राः, तथा ह्यस्मिन् काये बहुरोगभाजने[1] हि—तस्मिन् पण्डितोऽसवासिकः।

"मित्राः, अयं कायो धारणन्—न क्षममाणः फेनपिण्डोपमः। अय हि कायोऽचिरस्थितिको बुद्बुदोपमः। अयं कायः क्लेशतृष्णोत्पन्नो मरीच्युपमः। असारोऽय काय. कदलीस्तम्भोपमः। अस्थिरस्नायुबन्धो वताय यन्त्रोपमः। अयं कायो हि विपर्यासोत्पन्नो मायोपमः। अभूतदर्शनं ह्यय कायस्स्वप्नोपमः। प्रतिबिम्बोपमोऽय कायः पूर्वकर्मप्रतिबिम्बो दृश्यमानः। अयं कायः प्रत्ययाधीनः, प्रतिश्रुत्कोपमस्तत्। विक्षिप्तचित्तो (यथा) ह्ययं

---

१ द्र० धम्मपद, १४८—

परिजिण्णमिदं रूपं रोगनीडं पभगुरं।
भिज्जति पूतिसन्देहो मरणन्तं हि जीवितं॥

कायः पतनलक्षणो मेघोपमः। अयं कायः क्षणविनाशनसहगतश्चानवस्थितो विद्युत्तुल्यः। अस्वामिकोऽयं हि कायो नानाप्रत्ययोत्पन्नः।

"निर्व्यापारो ह्ययं कायः पृथिवीसदृशः। आपसदृशोऽयं कायोऽनात्मकः। अयं कायस्तेजस्सदृशो निर्जीवः। अयं कायो वायुसदृशो निष्पुद्गलः (ला० २८३ ख)। आकाशसदृशोऽयं कायो निःस्वभावः।

"अयं कायो महाभूतस्थानोऽभूतः। आत्मात्मीयरहितोऽयं कायः शून्यः। तृणकाष्ठभित्तिलोष्टप्रतिभासोपमोऽय कायो जडः। अयं हि कायो वातयन्त्रसमन्वागमेन (यथू--) ओत्पन्नो वेदनारहितः। अयं हि पूयमीढसंचितः कायस्तुच्छः। नित्यलेपपरिमर्दनभेदनविध्वंसनधर्मोऽयं कायो रिक्तः। अयं हि कायश्चतुरधिकचतुःशतरोगोपद्रुतः। सदा जराभिभूतो ह्यय कायो जरोदपानसदृशः। मरणान्तोऽयं कायोऽन्तानिश्रितः। अयं हि कायः स्कन्धधात्वायतनपरिगृहीतो वधकाशीविषशून्यग्रामोपमः। तस्मिन् युष्माभिरेवंकाये निर्विड्डुद्वेगयोरुत्पादितयोस्तथागतकायाधिमुक्तिरुत्पादयितव्या।

"मित्राः, तथागतकायो हि धर्मकायो ज्ञानजः। तथागतकायः पुण्यजो दानजश्शीलजस्समाधिजः प्रज्ञाजो (ला २८४ क) विमुक्तिजो विमुक्तिज्ञानदर्शनजो मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षोत्पन्नोदानदमसंयमोत्पन्नो दशकुशलकर्मपथजः क्षान्तिसौरत्यजस्स्थिरवीर्यकुशलमूलजो ध्यानविमोक्षसमाधिसमापत्तिजश्श्रुतप्रज्ञोपायजस्सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकधर्मजश्शमथविपश्यनाजो दशबलजश्चतुर्वैशारद्यजोऽष्टादशावेणिकबुद्धधर्मजस्सर्वपारमितोत्पन्नोऽभिज्ञा-(त्रि-) विद्योत्पन्नस्सर्वाकुशलधर्मप्रहाणसर्वकुशलधर्मसंग्रहजः सत्यजस्सम्यक्त्वजोऽप्रमादजः।

"मित्राः, तथागतकायो ह्यप्रमाणकुशलकर्मजः। तस्मिन् युष्माभि-

रेवकायेऽधिमुक्तिरुत्पादयितव्या। सर्वसत्त्वक्लेशरोगप्रजहनार्थाय आनुत्तर-(ला० २८४ ख) सम्यक्सम्बोधिचित्तमुत्पादयितव्यम्"।

एवमेव लिच्छविविमलकीर्तिस्तथा हि तस्मै रोगप्रश्नगणाय, यथा बहुशतानां सत्त्वसहस्राणामनुत्तरसम्यक्सम्बोधिचित्तमुत्पादितम्, तथा ह्येवं धर्मं देशयति स्म।

अचिन्त्योपायकौशल्यस्य परिवर्तो नाम द्वितीयः।

३ श्रावकबोधिसत्त्वप्रेषणोक्तम्

ततो लिच्छवेर्विमलकीर्तेरेतदभूत्—"मयि ग्लाने दुःखिते च मञ्च-स्योपरि सन्ने, तथागतेनार्हता सम्यक्सम्बुद्धेन, माञ्च समन्वाहृत्यानु-कम्पाञ्चोपादाय, रोगपृच्छनञ्च किञ्चिदप्युत्सृष्टम्" इति ।

अथ भगवाल्—लिच्छवेर्विमलकीर्तेरीदृशं चित्तसङ्कल्प बुद्ध्वा, आयुष्मन्त शारिपुत्रमामन्त्रयते स्म—"शारिपुत्र, लिच्छवेर्विमलकीर्ते रोग-पृच्छनाय गच्छ" ।

एवमुक्ते, भगवन्तमायुष्मांशारिपुत्र एतदवोचत्—"भगवन् , लिच्छवेर्विमलकीर्ते रोगपृच्छनगमनञ्चोत्सहे । तत् कस्य हेतोः ? भगवन् , अभिजानामि—

"एकस्मिन् समय एकस्मिन् वृक्ष-(ला० २८५ क) मूले माम् प्रतिसंलीनं लिच्छविविमलकीर्तिरपि, येन तस्य वृक्षस्य मूलं तेनोपसंक्रम्यै-तद्वदति स्म—'भदन्त शारिपुत्र, यथा त्व प्रतिसंलीनस्तादृशे प्रतिसंलयने न प्रतिसंलयितव्यम्' ।

" 'यथा त्रैधातुककायश्च चित्तंच न प्रज्ञायेते, तथा हि प्रतिसंलय । यथा निरोधाच्चोत्तिष्ठति सर्वत्रापीर्यापथमाविर्भवति, तथा हि प्रतिसंलय । यथा प्राप्तिलक्षणानुत्सृजनतायाम् पृथग्जनलक्षणमेवापि दृश्यते, तथा हि प्रति-संलय । यथा पुनस्तव चित्तमध्यात्ममनवस्थितम् , बाह्यरूपेऽपि नानु-विचरति, तथा प्रतिसंलय । यथा सर्वदृष्टिगतेष्वचलोऽपि च सप्तत्रिंशद्बोधि-पाक्षिकधर्माभास गच्छति, तथा हि प्रतिसंलय । यथा संसारावचरक्लेशा-प्रहाणे निर्वाणसमवसरणमपि गच्छति, तथा हि प्रतिसंलय । भदन्त शारि-

पुत्र, य एवम् प्रतिसंलयने प्रतिसंलीनाः (ला० २८५ ख), तान् भगवान् प्रतिसंलयन आमन्त्रयते स्म'।

"इत्युक्ते, भगवन् , तं धर्ममेव श्रुत्वा, तस्मै प्रतिवादविसर्जनस्यासमर्थस्तूष्णीभूतोऽभूवम् । एतस्मात् कारणात् तस्य सत्पुरुषस्य रोगपृच्छनगमनन्नोत्सहे"।

अथ भगवानायुष्मन्तम् महामौद्गल्यायनम् आमन्त्रयते स्म—"मौद्गल्यायन, लिच्छवेर्विमलकीर्ते रोगपृच्छनाय गच्छ"। मौद्गल्यायनोऽपि त्ववोचत्—"भगवन् , तस्य सत्पुरुषस्य रोगपृच्छनगमनन्नोत्सहे । तत् कस्य हेतोः ? भगवन् , अभिजानामि—

"एकस्मिन् समये वैशाल्या महानगर्या एकस्मिन् वीथीद्वारे गृहपतिभ्यो धर्ममदेशयम् । तस्मिन् समीपे लिच्छविर्विमलकीर्तिरुपसंक्रम्य, मामेतद्वदति स्म—'भदन्त मौद्गल्यायन, यथाऽवदातवस्त्रेभ्यो गृहिभ्यो देशयसि, तथा हि धर्मोऽव्यपदेश्यः । भदन्त मौद्गल्यायन, स धर्मो यथाधर्मं दर्शयितव्यः ।

"'धर्मो हि, भदन्त मौद्गल्यायन, निःसत्त्वः सत्त्वरजोऽपगतः । निरात्मकः (स) (ला० २८६ क) रागरजोऽपगतो निर्जीव उपपत्तिच्युत्यपगतः । योऽनाश्रवः, पूर्वान्तापरान्तपरिच्छिन्नः (सः) । शान्तोपशमलक्षणस्(स)रागरहितः । अनालम्बनगामी(सो)ऽनक्षरस्सर्ववाच्छिन्नोऽनभिलाप्यस्सर्वतरंग[1]-

---

१ द्र० लङ्कावतारसूत्रम्, २ ९९–१००—

तरङ्गा ह्युदधेर्यद्वत्पवनप्रत्ययेरिता ।
नृत्यमाना प्रवर्तन्ते व्युच्छेदश्च न विद्यते ॥
आलयौघस्तथा नित्यं विषयपवनेरित ।
चित्रैस्तरङ्गविज्ञानैर्नृत्यमान प्रवर्तते ॥

रहितः। सर्वानुगत आकाशसमो वर्णलिङ्गाकारविगतः सर्वचरणापगतो ममाभावो ममकारापगतस् (सः)। (सो)ऽविज्ञप्तिकश्चित्तमनोविज्ञानविगतः, प्रतिपक्षाभावकारणादतुल्यः। हेतुप्रतिकूलः (स) प्रत्ययाव्यवस्थितः।

" 'धर्मधातुसमवसरणात्—(स) सर्वधर्मान् हि समादधात्यननुगमननयेन तथताऽनुगतः। (सो)ऽत्यन्ताकम्प्यः; अतः स्थितो भूतकोट्यां षड्विषयेष्वाश्रयरहितत्वेनाकम्प्यः, अप्रतिष्ठितेन यत्र यत्र गमनागमनव्यपगतः, शून्यतासमवसरणः। अनिमित्तेन सुस्फुटितः (सो)ऽप्रणिहितलक्षण एव, कल्पनाऽपनयापगतः। अपकाररहितः (सो)ऽप्रक्षेप उत्पादव्ययापगतोऽनालयश्चक्षुः—श्रोत्रघ्राणजिह्वा—(ला० २८६ ख)कायमनः पद्धतिसमतिक्रान्तोऽनुन्नतोऽनवनतोऽवस्थितोऽचलभूतः।

" 'सर्वचर्याविगते, भदन्त महामौद्गल्यायन, एवं धर्मे देशना कथम् भवति? भदन्त महामौद्गल्यायन, सापि धर्मदेशना नामारोपितवचनम्। यच्छ्रवणम्, तदप्यारोपितश्रवणम्। भदन्त मौद्गल्यायन, यत्रारोपितवचनमास्ति, नास्ति तत्र धर्मदेशना, श्रवणं च ज्ञानं च न स्तः। तद्यथापि नाम मायापुरुषेण मायापुरुषेभ्यो धर्मो देश्येत।

" 'अनेन चित्तस्थानेन धर्मो दर्शयितव्यः—त्वया सत्त्वेन्द्रियकौशल्यम् करणीयम्। प्रज्ञाचक्षुषा सुदर्शिना च महाकरुणाऽभिमुखीभूतेन च महायानवर्णवादिना च बुद्धकृतज्ञेन च परिशुद्धाशयेन च धर्मनिरुक्तिविज्ञानेन त्रिरत्नगोत्राच्छिन्नकरणार्थाय त्वया धर्मो दर्शयितव्यः'।

"इत्युक्ते, भगवन्, तथैवम् तद्धर्मोपदेशेन तस्या गृहपतिपरिषदोऽष्टाभिर्गृहपति शतैरनुत्तरसम्यक्सं—(ला० २८७ क)बोधिचित्तमुत्पादितम्। अहं तु, भगवन्, प्रतिभानापगतोऽभूवम्। एतस्मात्कारणात्तस्य सत्पुरुषस्य रोगपृच्छनगमनम् नोत्सहे"।

ततो भगवानायुष्मन्तं महाकाश्यपमामन्त्रयते स्म—"काश्यप, लिच्छवेविमलकीर्ते रोगपृच्छनाय गच्छ"। महाकाश्यपोऽपि त्ववोचत्—"भगवन्, तस्य सत्पुरुषस्य रोगपृच्छमगमनन्नोत्सहे। तत् कस्य हेतोः? अभिजानामि—

"एकस्मिन् समये माम् दरिद्रवीथ्यां पिण्डपाताय स्थितं लिच्छविविमलकीर्तिः, तेनोपसक्रम्य, एतद्वदति स्म—'तथा हि महासत्त्वगृहा—(णि) हित्वा, दरिद्रगृहाणि गच्छतो भदन्तस्य महाकाश्यपस्य भवत्येकदेशमैत्री।

" 'तस्मात्, महाकाश्यप, धर्मसमताया स्थातव्यम्। सर्वकाले सर्वसत्त्वान्त्समन्वाहृत्य, पिण्डपातः पर्येष्टितव्यः। निराहाराहारः पर्येष्टितव्यः। परपिण्डग्राहविनोदनार्थाय पिण्डपाताय चरितव्यम्। शून्यग्रामाधिष्ठितेन त्वया ग्रामं प्रवेष्टव्यम्। पुंस्त्रीपरिपाचनार्थाय ग्रामं प्रवेष्टव्यम्। बुद्धविद्यया त्वयान्तर्गृहे गन्तव्यम् (ला० २८७ ख)।

" 'अनादानेन पिण्डपात उपादेयः, जात्यन्धोपमेन रूपाणि द्रष्टव्यानि, प्रतिश्रुत्कानिभाः शब्दाः श्रोतव्याः, वायुतुल्या गन्धा घ्रातव्याः, अविज्ञप्तिकेन रसा अनुभवितव्याः, ज्ञानस्पर्शाभावेन स्प्रष्टव्यानि स्पर्ष्टव्यानि, मायापुरुषस्य विज्ञानेन धर्मा वेदितव्याः। यौ न च स्वभावो न च परभावस्तौ नोज्ज्वलौ। यदुज्ज्वलनम्, तन्न शाम्यति।

" 'यदि, स्थविर महाकाश्यप, अष्टमिथ्यात्वाव्यतिक्रमणे चाष्टविमोक्षसमापत्त्यांच मिथ्यात्वसमतया सम्यक्त्व-समताम् प्रविशसे, एकपिण्डपातमपि सर्वसत्त्वेभ्यो ददत्, सर्वबुद्धेभ्यश्च सर्वार्येभ्योऽप्यनुप्रयच्छसि चोपनाम्य, पुरत आत्मना भोजनं दद्यं स्यात्, यथा न च क्लेशसंप्रयुक्तो न

च क्लेशविप्रमुक्तस्तथा हि परिभोक्ष्यसि; न समाहितो वा (समाधि-) समुत्थितो वा परिभोक्ष्यसि संसारनिर्वाणाप्रतिष्ठितः ।

" 'भदन्त, ये केचन तुभ्यं पिण्डपात (ला० २८८ क) ददति, तेभ्यो महाफलं वाल्पफलं वा न भवतः, न च मध्य(-फलं) विशेष (-फलं) वा । (ते) बुद्धप्रवृत्तिं समवसरन्ति, न तु श्रावकगतिं । स्थविर महाकाश्यप, तथा ह्यमोघराष्ट्रपिण्डम् परिभोक्ष्यसि' ।

"इत्युक्ते, भगवन्, अहमिमं धर्मोपदेशं श्रुत्वा, आश्चर्याद्भुतप्राप्तः सर्वबोधिसत्त्वेभ्यः प्रणाममकार्षम् । 'यदि गृहस्थोऽप्येवंप्रतिमानसंपन्नः, कोऽनुत्तरसम्यक्संबोधिचित्तमोत्पादयेद्' [इति] चिन्तयित्वा, पूर्वम् महायानेऽप्राप्ते, तदर्वाग्मया न कश्चित्सत्त्वः श्रावकप्रत्येकबुद्धयानयोर्विवेशितः । भगवन्, एतस्मात्कारणात्तस्य सत्पुरुषस्य रोगपृच्छनगमनमोत्सहे" ।

अथ भगवानायुष्मन्तं सुभूतिमामन्त्रयते स्म—"सुभूते, गच्छ" । सुभूतिरपि स्वचोचत्—"भगवन्, नोत्सहे । (ला० २८८ख)—

"एकस्मिन् समये वैशाल्याम्महानगर्यां लिच्छवेर्विमलकीर्तेर्गेहं पिण्डपातायागतस्य लिच्छविर्विमलकीर्तिर्मे पात्रमिष्ट्वा, (तत्) प्रणीताहारेण पूरयित्वा, एतद्वदति स्म—

" 'भदन्त सुभूते, त्वंचेदामिषसमतया सर्वधर्मसमतान्वयश्च सर्वधर्म-समतया बुद्धधर्मसमतान्वयः, साम्प्रतमिमं पिण्डपातं भुंधि । (भुंधि,) भदन्त सुभूते, यदि त्वं लोभद्वेषमोहांश्च प्रतिनिसृज्य, तैस्सार्थं स्वप्रतिष्ठितः; सत्कायदृष्ट्यनुच्चाल्य, एकायनमार्गं गतः ; त्वयापि त्वविद्याभव-तृष्णयोरहतयोर्विद्याविमुक्ती पुनरनवरोपिते (यदि), पंचानन्तर्याणि च तत्र विमुक्तिश्च समानि, त्वञ्च च विमुक्तो न चापि बद्धः, त्वया चत्वार्यार्य-सत्यानि न च दृष्टानि सत्यंच नादृष्टम्, फले त्वप्राप्ते पृथग्जनोऽपि नासि,

पृथग्जनधर्मात् पुनरनिवृत्तस्त्वन्न चार्यो न चानार्यः, (ला० २८९क), भूयोऽपि सर्वधर्मप्रतिसंयुक्तस्तु सर्वधर्मसंज्ञाविप्रमुक्तः, (इम पिण्डपातं भुंधि) ।

"'(भुंधि, यदि) त्वया शास्ता चादृष्टोऽश्रुतश्च धर्मार्थश्च संघोऽपर्युपासितः । ये ते षट् शास्तारः, यदिदम्—पूरणः काश्यपः, मस्करी गोशालीपुत्रः, सजयी वैराडीपुत्रः, ककुदः कात्यायनः, अजितः केशकम्बलश्च निर्ग्रन्थो ज्ञातिपुत्रस्—तान् भदन्तस्य शास्तॄन्निश्राय, त्वम् प्रव्रजित-(श्चेद् भुंधि) ।

" 'येन ते षट् शास्तारो गच्छन्ति तेन् आर्यः सुभूतिरपि गामी (चेत्); सर्वदृष्टिगतेषु प्रविशन् , त्वमपि त्वन्तमध्याप्रतिलब्धः, त्वं (चेत्) पुनरष्टाक्षणप्रतिपन्नः क्षणाप्राप्तः, सक्लेशसम्भूतस्त्व व्यवदानानुपगतः; यत्सर्वसत्त्वानामरणं, तद् भदन्तस्यारण (चेत्); त्वद्दानेऽविशोधिते, भदन्त, ये केचित्तुभ्यं पिण्डपातं ददति, ते परं तु (चेत्स्व-) विनिपातकराः; (यदि) त्वं सर्वमारसहगतश्च सर्वक्लेशास्त्वत्सहायीभवं गताः; यः क्लेशस्वभावः, सोऽपि (चेद्-) भदन्तस्य स्वभावो भवति, त्वया सर्वसत्त्व-(ला० २८९ ख) घातकचित्तम् उपस्थापितम् , त्वया सर्वबुद्धानुध्वंसनम् (कृतं स्यात्), सर्वबुद्धधर्माकीर्ति कृत्वा, सघे चाप्रतिसरणस्त्वश्चेन कदाचि परिनिर्वासि, तत इमं पिण्डपातं भुधि ।

"इत्युक्ते, इमं तन्निर्देशं श्रुत्वा, भगवन्, माम् 'तं किम् भाषिष्येऽहं, किं वक्ष्यामि, किं करणीयम् ?' (इति) चिन्तयमानं, दशदिक्षु तमोभूतासु, तत् पात्रमुत्सृज्य, गेहात् प्रतिनिःसरन्तं लिच्छविर्विमलकीर्तिरेतद्वदति स्म—

" 'भदन्त सुभूते, अक्षरेभ्योऽभयेनेदं पात्र प्रतीच्छ । भदन्त सुभूते, तत् किं मन्यसे तथागतस्य निर्माणे तदुक्तं स्यात्, तस्मात् किं भवेर्भीतः ?'

–त– 'नो हीदं, कुलपुत्र' इत्यवचम्। स मामब्रवीत्–'भदन्त सुभूते, मायानिर्माणस्वभावेभ्यः सर्वधर्मेभ्यो मा भैषीः। तत् कस्य हेतोः? तेषु सर्वेष्वपि वचनेषु तत्स्वभावेषु, तस्माद्धि नाम पण्डिता अक्षरेष्वसक्तास्तेभ्योऽत्रस्ताः। तत् कस्य हेतोः? तेषु सर्वेष्वक्षरेषु ह्यनक्षरेषु (ला० २९० क), (सर्वं) स्थापयित्वा, निर्मोक्षः सर्वधर्मा हि विमोक्षलक्षणाः।'

"अस्मिन्निर्देशे देशिते, देवपुत्राणां द्विशतं धर्मेषु विरजं वीतमलं विशुद्धं धर्मचक्षुश्च देवपुत्राणां पञ्चशतमनुलोमिकीम् क्षान्तिं प्राप्नुवन्ति स्म। अहं तु प्रतिभानापगतस्तस्मै पुनर्विसर्जनस्यासमर्थो (ऽभूवम्)। एतस्मात् कारणात्, भगवन् तस्य सत्पुरुषस्य रोगपृच्छनगमनं नोत्सहे।"

ततो भगवानायुष्मन्तं पूर्णमैत्रायणीपुत्रमामन्त्रयते स्म–"पूर्ण, गच्छ"। –पूर्णोऽपि स्वबोचत्—"भगवन् नोत्सहे।

"एकस्मिन् समये माम् महावनस्यैकस्मिन् पृथिवीप्रदेशे स्थितमादिकर्मिकेभ्यो भिक्षुभ्यो धर्मं देशयन्तं लिच्छविविमलकीर्तिस्तेनागत एवद् वदति स्म—

"'भदन्त पूर्ण, समापत्तिमनुप्राप्यैषां भिक्षूणाञ्चित्तम् पश्य, (दृष्ट्वा) च धर्मं प्रतिवेदयस्व। महारत्नभाजनं पूतिकेनौदनेन मा पीपरः। एषां भिक्षूणाम्, जानीहि, अध्याशयः कीदृशः। वैडूर्यमणिरत्नं काचकमणिना मोपमाहि (ला० २९० ख)।

"'भदन्त पूर्ण, सर्वेन्द्रियेष्वनिश्चितेषु, प्रादेशिकेन्द्रियम् मोपसंहर। अव्रणस्य व्रणम् मा प्रक्षुण्ण। महामार्गावतारार्थिक (-एभ्यो) वीथीमञ्जरीम् मा परिग्रहीः। महासमुद्रेण गोखुरपदं मा पीपरः। सुमेरुं सर्षपफले मा निक्षिप। दिनकरस्य प्रभां खद्योतकेन मा निराकुरु। सम्यक्सिंहनादार्थिक (-एभ्यः) शृगालरुतम् मा परिग्रहीः।

" 'भदन्त पूर्ण, एषां सर्वभिक्षूणां हि महायानसम्प्रतिपन्नानां बोधिचित्तं भ्रान्तं केवलम्, भदन्त पूर्ण, एभ्यः श्रावकयानम् मा प्रकाशय। श्रावकयान इभूतम्; सत्त्वेन्द्रियक्रमज्ञान इमे श्रावका मया जात्यन्धसदृशा मताः'।

"अथ लिच्छवौ निमलकीर्तौ तेन कालेन तादृश समाधिं समापन्ने, यथा तेभ्यो भिक्षुभ्यो विविधपूर्वनिवासानुस्मृतिर्भवति, तेभ्यः सम्यक्सम्बोध्यर्थाय बुद्धानाम् पञ्चशतम् पर्युपासितेभ्यः कुशलमूलसमन्वागतेभ्यः स्व बोधिचित्तमभिमुखीभूत्वा, ते सत्पुरुषस्य पादयोः शिरसा प्रणिपत्य (ला० २९१ क) प्रगृहीताञ्जलयोऽभूवन्। (यथा) पुनस्तेऽनुत्तरसम्यक्सम्बोध्या अविनिवर्तनीया भवन्ति, तस्मिस्तथा धर्मं दर्शितवति, भगवन्, चिन्तयतो ममैवमभूत्—

" 'श्रावकेण, परचित्ताशयानविविच्य, न कस्मैचिद्धर्मो निर्देश्यः। तत् कस्य हेतोः? श्रावकस्तु सर्वसत्त्ववरावरेन्द्रियविज्ञो नास्ति, यथा तथागतोर्हन् सम्यक्सम्बुद्धस्तथा नित्यसमाहितो नास्ति'। भगवन्, एतस्मात्कारणात्तस्य सत्पुरुषस्य रोगपृच्छनगमनन्नोत्सहे।"

ततो भगवानायुष्मन्तम् महाकात्यायनमामन्त्रयते स्म—"कात्यायन, गच्छ"। कात्यायनस्त्ववोचत्—"भगवन्, नोत्सहे ।

"एकस्मिन् समये भगवता भिक्षुभ्योऽववादकसूत्रेऽमन्त्रिते, तस्य सूत्रस्य वचननिर्णयाय मां धर्मं तद्यथा—'अनित्यतादुःखनैरात्म्य (ला० २९१ ख) शान्त्यर्थम्' देशयमानं लिच्छविर्विमलकीर्तिस्तेनोपसंक्रम्य, एतद्वदति स्म—

" 'भदन्त महाकात्यायन, प्रचारसम्प्रयुक्तामुत्पादभङ्गसहगता धर्मता मा शाधि। यदत्यन्ततोऽनुत्पादितम्, नोत्पद्यते, सञ्जनितञ्च

भविष्यति; (यदत्यन्ततो)ऽनिरुद्धम्, न निरुध्यते, निरुद्धं च भविष्यति, तद्ध्यनित्यताया अर्थः। यः पञ्चस्कन्धेषु शून्यताधिगमेनानुपपश्यवबोधार्थः, स हि दुःखस्यार्थः। यात्मनैरात्म्ययोरभावता, सा नैरात्म्यस्यार्थः[1]। यत्स्वभावपरभावापगत, तद्ध्यज्वलनम्; यदज्वलनम्, तच्च शाम्यति; यदप्रशान्तम्, तच्छान्त्या अर्थः'।

"अस्मिन्नुपदेशे देशिते, तेषां भिक्षूणामनुपादायास्रवेभ्यश्चित्तानि विमुक्तान्यभूवन्। भगवन्, एतस्मात् नोत्सहे"।

अथ भगवानायुष्मन्तमनिरुद्धमामन्त्रयते स्म—"अनिरुद्ध, गच्छ"। अनिरुद्धोऽपि तत्रैवोचत्—"भगवन्, (ला० २९२ क) नोत्सहे । ।

"एकस्मिन् समये मामेकस्मिंश्चंक्रमणे चंक्रम्यमाणं, येनाहं तेनागम्य, शुभव्यूहो नाम महाब्रह्मा ब्रह्मणां दशसहस्रेण सार्धं तं देशमवभास्य, मम पादौ शिरसाभिवन्द्य, एकान्ते स्थित एतदवोचत्—'भदन्तानिरुद्ध, त्वं भगवताग्रदिव्यचक्षुषानाख्यातः; आयुष्मतोऽनिरुद्धस्य दिव्यचक्षुषा कियदर्वाग् दृश्यते ?'—तम् एवमवचम्—'मित्र, तद्यथापि नाम पुरुषस्य चक्षुष्मतः करतले संनिहितमाम्लफलं दृश्यते, तथा भगवतः शाक्यमुनेर्बुद्धक्षेत्रम्, त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातुम् पश्यामी'ति ।

"मामेतद्वदन्तं लिच्छविर्विमलकीर्तिस्तं देशमुपसंक्रम्य, मम पादौ शिरसाभिवन्द्य, एतदवोचत्—'भदन्तस्यानिरुद्धस्य दिव्यचक्षुः किमभि-

---

१. तुलनीय रत्नावली, २. ३–४

नैवमात्मा न चानात्मा यथाभूत्येन लभ्यते।
आत्मानात्मकृते दृष्टी ववारास्मान्महामुनि ॥
दृष्टश्रुताद्यं मुनिना न सत्यं न मृषोदितम्।
पक्षाद्धि प्रतिपक्षः स्यादुभयं तच्च नार्थतः ॥

संस्कारलक्षणं वानभिसंस्कारलक्षणं वा ? तद्यद्यभिसंस्कारलक्षणम्, स्याद् बाह्य पञ्चाभिज्ञासमम् (ला० २९२ ख)। यद्यनभिसंस्कार (-लक्षणम्), अनभिसंस्कारः स्यादसंस्कृतः। स दर्शनस्याशक्तश्चेत्, स्थविरः कथम् पश्येत् ?'

"इत्युक्तेऽभूवं तूष्णीभूतः। स ब्रह्मा तु तस्मात्सत्पुरुषादिम निर्देश श्रुत्वा, आश्चर्यप्राप्तोऽभिवन्दन कृत्वा, एतदब्रवीत्–'लोके दिव्यचक्षुर्वानस्ति कः ?'–आह–'भगवन्तो बुद्धा हि लोके दिव्यचक्षुर्वन्तः, ते ह्यनुपरतसमाहित स्थाने सर्वबुद्धक्षेत्राणि संपश्यन्त्युभाभ्याम् अप्रभाविताः'।

"अथ ब्रह्मा (च) दश परिजनसहस्राणीमं निर्देशं श्रुत्वा, अध्याशयेनानुत्तरसम्यक्संबोधिचित्तं संजनयन्ते स्म। ते मह्यच तस्मै सत्पुरुषाय नमस्कृत्वा, अभिवन्द्य, तत्रैवान्तरधायिषुः। अहं तु प्रतिभानापगतोऽभूवम्। एतस्मात् नोत्सहे"।

ततो भगवानायुष्मन्तमुपालिमामन्त्रयते स्म—"उपाले, गच्छ"।—उपालिः पुनरवोचत्—"भगवन् (ला० २९३ क) नोत्सहे ।

"एकस्मिन् समये द्वौ भिक्षू आपत्तिमापन्नौ भगवति लज्जमानौ भगवत्समीपमनुपसंक्रम्य, तावुभौ येनाहम् तेनोपसंक्रम्य, मामेवं वदतः— 'भदन्तोपाले, आवामापत्तिमापन्नौ च लज्जमानौ भगवत्समीपं त्वनुपसंक्रम्य, आयुष्मानुपालिरावयोः संशयं प्रतिविनोदयतु, आवामापत्त्याः प्रणयतु'।

"इत्युक्ते, भगवन्, येन ताभ्यां भिक्षुभ्यां धर्मकथामदेशयम् तेन स लिच्छविविमलकीर्तिरप्युपसंक्रम्य, मामेतद्वदति स्म—

" 'भदन्तोपाले, त्वयानयोर्भिक्ष्वोरापत्तिर्भूयो दृढा न कर्तव्या,

नाविल (–तरा) कर्तव्या, अनयोरापत्तिविप्रतिसारं प्रतिविनोदय । भदन्तोपाले, आपत्तिर्ह्यध्यात्ममप्रतिष्ठिता, बहिर्धोऽप्यतिष्ठिता; उभयेष्वसत्सु च (सा) नोपलभ्यते । तत् कस्य हेतोः ? भगवानवोचत् चित्तसंक्लेशेन सत्त्वसंक्लेशः, चित्तव्यवदानेन विशुद्धिरिति—

" 'सुभाषितार्थे, भदन्तोपाले, (ला० २९३ख) चित्तमध्यात्मं वा बहिर्धा वा नास्ति; उभयेष्वसत्स्वपि (तन्–)नोपलभ्यते । चित्तं यथा तथाप्यापत्तिः । यथापत्तिस्तथापि सर्वधर्मास्तथताया नातिक्रामन्ति ।

" 'भदन्तोपाले, यश्चित्तस्वभावः—स भदन्तस्य विमुक्तचित्तस्य चित्तस्वभावो येन केन चित्तस्वभावेन किं कदाचन संक्लिष्टोऽभूत् ?' अब्रवम्– 'नो हीदं' । –आह– 'भदन्तोपाले, सर्वसत्त्वचित्तं हि तत्स्वभावः ।

" 'भदन्तोपाले, संकल्पो हि क्लेशः, निर्विकल्पोऽविकल्पना स्वभावः । विपर्यासः संक्लेशः, अविपर्यासः स्वभावः । आत्मसमारोपः संक्लेशः, नैरात्म्यं स्वभावः ।

" 'भदन्तोपाले, सर्वधर्मा ह्युपपद्य, विनश्यन्तोऽप्रतिष्ठिता मायाभ्रविद्युदुपमाः । सर्वधर्मा अनवस्थिताः क्षणमात्रमपि न तिष्ठन्ति । सर्वधर्मा हि स्वप्नमरीचिनिभा अभूतदर्शनम् । सर्वधर्मा उदकचन्द्रप्रतिबिम्बकल्पाश्च (ला० २९४ क) चित्तसंकल्पात् समुच्छ्रिताः । यैः कैश्चन तथाहि प्रज्ञायते, ते विनयधरा नामोच्यन्ते; ये केचनैवं दांतास्ते सुदांताः' ।

"अथ तौ भिक्षू एतदवदताम्–'अयं गृहपतिः सुप्रज्ञावान्; विनयधराणां भगवतैष ह्यग्र आख्यातो भदन्तोपालिस्तादृशः (सुप्रज्ञावान्) नास्ति' । ताभ्यामेवमवचम्– 'भिक्षू, इमं युवां गृहपतिम्मा प्रतिजानीतम् । तत् कस्य हेतोः ? स्थापयित्वा तथागतम्, ये केचनास्य प्रतिभानप्रति-

प्रव्रज्याः समर्थाः श्रावका वा बोधिसत्त्वा वा, ते केचिन्न विद्यन्ते। अस्य प्रज्ञालोकस्तज्जातीयः' ।

"ततस्तौ भिक्षू विचिकित्साम् प्रतिनिसृज्य, तत्रैवाध्याशयेनानुत्तरसम्यक्सम्बोधिचित्तं संजनयमानौ, तं सत्पुरुषमभिवन्द्य, एतदवदताम्—'सर्वसत्त्वा अपि चैवंरूपं प्रतिभानं लभेरन्', इति। एतस्मात् नोत्सहे"।

अथ भगवानायुष्मन्त राहुलमामन्त्रयते स्म—"राहुल, गच्छ"। (ला० २९४ ख) राहुलस्त्ववोचत्—"भगवन्, नोत्सहे।

"एकस्मिन् समयेऽनेकलिच्छविकुमारा येनाह तेनोपसक्रम्य, मामेव वदन्ति स्म—'भदन्त राहुल, त्वं भगवतोऽसि पुत्रः। चक्रवर्तिराज्य हित्वा, प्रव्रज्य, किं त्वयोपलब्धम्, प्रव्रज्याया गुणानुशंस किम् ?' इत्युक्ते, मां तेभ्यो यथायोगम् प्रव्रज्यागुणानुशंस देशयन्त लिच्छविर्विमलकीर्तिरपि, येनाहं तेनोपसंक्रान्तो मह्यन्नमस्कृत्वा, एतदवोचत्—

" 'भदन्त राहुल, यथा प्रव्रज्या गुणानुशंसं देशयसि तथा न देशयेः। तत् कस्य हेतोः ? प्रव्रज्या हि गुणरहिता, अनुशसापगता। भदन्त राहुल, यस्मै संस्कृतम् प्रवर्तते तस्मै गुणानुशंसम्, प्रव्रज्या त्वसस्कृतयोगश्चासस्कृते गुणानुशसन्नास्ति।

" 'भदन्त राहुल, (ला० २९५ क) अरूपिणी हि प्रव्रज्या रूपापगता, अवराग्रान्तदृष्टिविगता निर्वाणपथः, पण्डितैर्वर्णिता, आर्यैः परिगृहीता सर्वमारपराजयकरा, पञ्चगति निःसरणम्, पञ्चचक्षुः शोधना, पञ्चबलप्राप्तिः, पञ्चेन्द्रियाश्रयः, (सा)ऽन्येभ्योऽपीडा पापधर्मासंसृष्टा परतीर्थिकसुदमन, प्रज्ञप्तिसमतिक्रान्ता कामपंके गम्भीरः, आधारणरहिता ममाभावा वीताहङ्काराः अनुपादानम्, अनुपायासः, संक्षोभप्रतिनिःसर्गः,

स्वचित्तविनयश्च परचित्तरक्षणम्, शमथसामग्री, सर्वत्र निरवद्य (-त्वम्)-सा हि प्रव्रज्या नाम। ये केचन तथा हि प्रव्रजितास्ते सुप्रव्रजिताः।

" 'कुमाराः, एतादृशे स्वाख्याते धर्मे प्रव्रजत। बुद्धोत्पादो दुर्लभः, क्षणसम्पदपि च दुर्लभा, दुर्लभा पुनर्मनुष्यगतिः'।

"ते कुमारा एतदवदन्-'गृहपते, अस्माभिर्यथा श्रुतम् (ला० २९५ ख) तथागतेन (ओक्तम्)-मातापितृभ्यामननुसृष्टः प्रव्राजको न (भवती'-)ति। स तानब्रवीत्-'कुमाराः, अनुत्तरसम्यक्सम्बोधिचित्तं मंजनयमानाः प्रयत्नेन प्रतिपत्स्यथ। (तथा हि) यूय तत्त्वतः प्रव्रजिताश्चोपसम्पन्नाः'।

"अथ त्रिसहस्रं द्विशतं लिच्छविकुमारा अनुत्तरसम्यक्सम्बोधिचित्तमुत्पादयन्ति स्म। भगवन्, एतस्मात् नोत्सहे"।

ततो भगवानायुष्मन्तमानन्दमामन्त्रयते स्म-"आनन्द, गच्छ"। आनन्दः पुनरवोचत्-"भगवन्, नोत्सहे ।

"एकस्मिन् समये भगवतः काय एको रोगो निश्चार्य, तस्मै क्षीरमाकाङ्क्षमाणोऽहमेकस्य ब्राह्मणमहाशालकुलस्य द्वारसमीपे पात्रधारी स्थितो (ऽभूवम्)। लिच्छविर्विमलकीर्तिरपि तद्देशमुपसंक्रम्य, मह्यन्नमस्कृत्वा, एवं वदति स्म—

" 'भदन्तानन्द, किमर्थम् कल्यमेव पात्रमादाय, (ला० २९६क) अस्य कुलस्य द्वारसमीपे स्थितोऽसि?'-तमेवमवचम्—'भगवतः काय एको रोगो निश्चार्य, तस्मै क्षीरेण प्रयोजनात्तद् (-भैषज्यं) पर्येष' इत्यवादिषम्। स मामेतदवोचत्—

" 'भदन्तानन्द, एवम्मा वच्मि। भदन्तानन्द, तथागतस्य हि

कायो वज्रकठिनः, सर्वाकुशलवासनाप्रहीणः। तस्मै सर्वकुशलधर्मोपेताय रोगः कुतो भवेत्? आतंकस्तस्मै कुतः?

" 'भदन्तानन्द, भगवतेऽनुध्वंसनाकरणाय तूष्णीम् प्रतिगच्छ। कश्चिदन्यमेतन्मा वग्धि। महामहौजस्का देवपुत्राश्च बुद्धक्षेत्रसमागता बोधिसत्त्वा हि श्रोष्यन्ति। भदन्तानन्द, यदि परीत्तकुशलमूलोपेतश्चक्रवर्तिराजोऽप्यरोगः, तस्मा अप्रमाणकुशलमूलसहगताय भगवते रोगः कुतः? तत् स्थानञ्च विद्यते।

" ' भदन्तानन्द, मां लज्जितमकरणाय प्रतिगच्छ। अन्यतीर्थिकाः, मीमासकाः, परिव्राजकाः, निर्ग्रन्थाः, आजीविकाश्च हि श्रोष्यन्ति। त एवम्—'अहो यद्येषा शास्ता स्वातुरत्राणस्याप्यसमर्थः, सत्त्वातुराणा त्राणमिव (दातु) कुतः शक्नोती' (-ति) चिन्तयिष्यन्ति। भदन्तानन्द, प्रतिच्छादयमानोऽन्तर्धान गच्छेः, कश्चिच्छृणुयात्।

" 'भदन्तानन्द, तथागता हि धर्मकायः, न (स) आहारपोषितं देहम्। तथागता. सर्वलोकधर्मसमतिक्रान्तो लोकोत्तरकायः। तथागतस्य कायोऽनुपद्रवो विनिवृत्तास्रवः। तथागतस्य कायो ह्यसंस्कृतः सर्वसस्कारापगतः। भदन्तानन्द, ईदृशाय व्याधिमेष्टुम्, अयुक्तिश्चासदृशम्'।

"इत्युक्ते, तत्र 'किम् मया भगवतो मिथ्या श्रुतम्, मिथ्योद्गृहीतम्?' (इति) चिन्तयमानोऽतिलज्जितो भूत्वा, अथान्तरीक्षात्स्वरमश्रौषम्—'आनन्द, गृहपतिर्यथा देशयति, तत्तथा; अपि तु भगवति पञ्चकषाय काल उत्पन्ने, अतः सत्त्वा हीनेन प्रदानचरितेन दम्याः। ततः, आनन्द, अलज्जितः क्षीरमाहृत्य (ला० २९७ क) प्रतिगच्छे'-त्यवादीत्।

"भगवन्, लिच्छवेर्विमलकीर्तेः प्रश्नसमाधानोपदेशस्तादृशो (ऽभूत्)। एतस्माद्भगवन्, नोत्सहे"।

एवमेव पञ्चशतमात्राः श्रावका अनुत्सहमानाः "स्वप्रतिभानम्" भगवन्तमवोचन् । यल्लिच्छविना विमलकीतिना सह कथितं, तत्सर्वं भगवन्तमवोचन्[1] ।

अथ भगवान् बोधिसत्त्वं मैत्रेयमामन्त्रयते स्म—"मैत्रेय, गच्छ" । मैत्रेयस्त्ववोचत्—"भगवन्, नोत्सहे ।

"एकस्मिन् समये सन्तुषितदेवपुत्रगणेन (च) तुषितवंशदेवपुत्रैः सार्धं (येनाहं), बोधिसत्त्वमहासत्त्वानामवैवर्तिकभूमिमारभ्य, तथा हि धर्मकथां कथयमानः, तेन लिच्छविर्विमलकीतिरुपसंक्रम्य, मामेतदवोचत्—

" 'मैत्रेय, यदि त्वं भगवतानुत्तरायां सम्यक्सम्बोध्यामेकजातिप्रतिबद्धो व्याकृतः, (ला० २९७ ख) स मैत्रेयः कया जात्या व्याकृतः ? अतीतेन किम् ? अहो स्विदनागतेन ? अहो स्वित्प्रत्युत्पन्नेन ? तत्र याऽतीतजातिः, सा हि क्षीणा । यदनागतम्, तदननुप्राप्तम् । प्रत्युत्पन्नजात्यां तु स्थानन्नास्ति । तद् यथा भगवता—'तथा हि भिक्षो, एकक्षणे त्वं जायसे, जीर्यसे, म्रियसे, च्यवसे, उपपद्यस' इति सुभाषितम् । अनुत्पादे नियामावक्रान्तिः, अजातिर्व्याकृता ।

" 'अनुत्पद्यमानश्चेन्नाभिसम्बुध्यसे; मैत्रेय, कथं व्याकृतोऽसि ? तथताजात्या वा तथतानिरोधेन वा ? तथतोत्पादनिरोधापगता, अनुपपत्स्यमाना चानिरोत्स्यमाना ।

" 'या सर्वसत्त्वानां, सर्वधर्माणाञ्च सर्वार्याणाञ्च तथता, सा हि, मैत्रेय, तवापि तथता । त्वञ्चेदेवंव्याकृतः, सर्वसत्त्वा अप्य्–(एवं–)

[1] विमलकीतिनिर्देशसूत्र के चीनी अनुवाद में तृतीय परिवर्त यहाँ पर समाप्त हो जाता है ।

व्याकृताः। तत् कस्य हेतोः ? तथता हि द्वयाप्रभाविता, नानात्वाप्रभाविता। तेन हि, मैत्रेय, यदा त्वं (ला० २९८क) बोधिमभिसम्भोत्स्यसे, तदा सर्वसत्त्वा अपि तादृशा बोधिमभिसम्भोत्स्यन्ते। तत् कस्य हेतोः ? बोधिर्हि सर्वसत्त्वान्वया। मैत्रेय, यदा त्वं परिनिर्वृतस्तदा सर्वसत्त्वा अपि परिनिर्वायिष्यन्ति। तत् कस्य हेतोः ? (यदि) सर्वसत्त्वाः (स्युर्) अपरिनिर्वृताः, तथागतः (स्याद्) अपरिनिर्वृतः। सर्वे ते सत्त्वाः सुपरिनिर्वृतास्तेन हि निर्वाणजातीया दृश्यन्ते। मैत्रेय, तस्मादिमान् देवपुत्रान् मा विप्रलम्भस्व, मा वञ्चयस्व।

"'बोध्यान्न कश्चित् प्रतिष्ठते(वा) विवर्तते(वा)। तस्मान्मैत्रेय, इमान् देवपुत्रांस्तां बोधिसङ्कल्पदृष्टिमुत्सर्जय। बोधिर्न कायेन नापि चित्तेनाभिसम्बुध्यति। बोधिर्हि सर्वनिमित्तव्युपशमः। बोधिः सर्वालम्बनारोप रहिता, सर्वमनसिकारप्रचारापगता, सर्वदृष्टिगतपरिच्छिन्ना, सर्वपरितर्कविगता (ला० २९८ ख); बोधिः सर्वेञ्जितचेतश्चलनविसयुक्ता, सर्वप्रणिधानाप्रवृत्ता, सर्वोद्ग्रहणविरहिता, अश्लेषप्रतिपन्ना, धर्मधातुनिश्रयनिश्रिता, तथतान्वया भूतकोट्यवस्थिता मनोधर्माभावेनाद्वया, आकाशसमसमा, उत्पादव्ययस्थित्यन्यथात्वाभावेनासस्कृता।

"'बोधिः सर्वसत्त्वानाश्चित्तचर्याऽध्याशयपरिज्ञा, आयतनानां द्वाराभूता सर्ववासनाप्रतिसन्धिक्लेशविप्रमुक्तासंसृष्टा, स्थानास्थानविसयोगेन विषयाप्रतिष्ठिता, -ऽ-समन्ततोदेशानवस्थिता, प्रादुर्भाविनी तथतानुपस्थिता। बोधिर्नाममात्रा, तन्नामाप्यचलम्। आयूहनिर्यूहविगता बोधिर तरङ्गा (ला० २९९ क)। बोधिर्निरुपायासा, प्रकृत्या परिशुद्धा, प्रभासः स्वभावविशुद्धा। बोधिरनुद्ग्रहणा स्वनालम्बना, सर्वधर्मसमताऽधिगमेनाभिन्ना। बोधिरुदाहरण विश्लेषेणानुपमा, सुदुरवबोधा-यतः सूक्ष्मा।

" 'बोधिश्चेदाकाशस्वभावेन सर्वत्रगा, मा हि कायेन वा चित्तेन चाऽभिसम्बुद्धनाय् आसमर्था । तत् कस्य हेतोः ? कायो हि तृणकाष्ठकुड्यपथप्रतिभासनिभः । चित्तमरूपमसनिदर्शनमनिश्रयमविज्ञप्तिकम्" ।

"भगवन्, अस्मिन्नुपदेशे प्रकाशिते, तस्याः परिषदो द्वे शते देवपुत्राणामनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिम् प्राप्नुवन् । अह त्वपगतप्रतिभानोऽभूवम् । एतस्मात् नोत्सहे" ।

ततो भगवाल्लिँच्छविकुमारं प्रभाव्यूहमामन्त्रयते स्म—"प्रभाव्यूह, गच्छ" । प्रभाव्यूहोऽप्यवोचत्—"भगवन्, (ला० २९९ख) नोत्सहे ।

"एकस्मिन् समये वैशाल्या महानगर्या निर्गतोऽहं लिच्छविं विमलकीर्तिम् प्रविशन्तं समागमम् । स मामभिवाद्य, (तम्) एतदवादिषम्—'गृहपते, कुत आगतः ?' स मामब्रवीत्—'आगतो बोधिमण्डात्' । तमब्रवम्—'तद्बोधिमण्डन्नाम किमधिवचनम् ?'—स मामेतदवोचत्—'कुलपुत्र, बोधिमण्डन्नामतद्धयकृत्रिमकारणादाशयमण्डम्, व्यापारकर्मोत्तारणकारणात्तद् हि योगमण्डम्, विशेषाधिगमकारणात्तद् अध्याशय मण्डम्, समविस्मरणकारणात्तद् हि बोधिचित्तमण्डम् ।

" 'विपाकाप्रतिकाङ्क्षणताकारणात्तद् हि दानमण्डम्; तच्छीलमण्डं प्रणिधानपरिपूरणात्; सर्वसत्त्वेषु प्रतिघचित्ताभावेन क्षान्तिमण्डम्; अविनिवर्तनीयकारणाद्वीर्यमण्डम्; चित्तकर्मण्यताकारणाद् (ला० ३०० क) ध्यानमण्डम्; प्रत्यक्षदर्शनात् प्रज्ञामण्डम् ।

" 'सर्वसत्त्वेषु समचित्तकारणान्मैत्रीमण्डम्; सर्वोपक्रमसहनकारणात् करुणामण्डम्, धर्मानन्दाभिरत्यधिमुक्तिकारणान्मुदितामण्डम्, अनुनय प्रतिघप्रतिनिसर्गात् तथ्युपेक्षामण्डम्।

"षडभिज्ञ (–प्राप्त्या)ऽभिज्ञामण्डम्, निर्विकल्पाद्विमोक्षमण्डम्, सत्त्वपरिपाचनादुपायमण्डम्, सर्वसत्त्वसंग्रहकारणात्सग्रहवस्तुमण्डम्, प्रतिपत्तिसाख्यापाराच्छ्रवणमण्डम्, योनिशः प्रत्यवेक्षणान्निध्यप्तिमण्डम्, सस्कृतासस्कृतप्रहाणकारणाद्बोधिपाक्षिकधर्ममण्डम्, सर्वलोकावचनात्सत्यमण्डम्, अविद्यास्रवक्षयाज्जरामरण यावदास्रवक्षयकारणात् प्रतीत्यसमुत्पादमण्डम्, यथाभूतमभिसम्बोधिकारणात्सर्वक्लेशप्रशममण्डम्।

"सर्वसत्त्वनिःस्वभावात् (ला० २००ख) तथि सर्वसत्त्वमण्डम्, शून्यताभिसम्बोधिकारणात्तद् हि सर्वधर्ममण्डम्, अचलकारणात्सर्वमारप्रमर्दनमण्डम्, प्रवेशवियोगात्त्रैधातुकमण्डम्, अभयासन्त्रासकारणात् सिंहनादनादिनो वीर्यमण्डम्, सर्वत्रानिन्दितकारणात्तद् हि सर्वबलवैशारद्यावेणिकबुद्धधर्ममण्डम्, क्लेशाशेषकारणात्त्रैविद्यतामण्डम्, सर्वज्ञज्ञानसमुदागमात् तथ्येकचित्तक्षणे सर्वधर्मनिरवशेषाधिगममण्डम्।

" ' यावत्तथा हि, कुलपुत्र, बोधिसत्त्वाः पारमितासमन्वागताः, सत्त्वपरिपाचनसमर्पिताः, सद्धर्माधारणप्रतिसंयुताः (तादृशाना) कुशलमूलसहगतानां सर्वाणि पादनिःक्षेपणोत्क्षेपणानि, बोधिमण्डादागतानि, बुद्धधर्मेभ्य आगतानि, बुद्धधर्मेषु प्रतिष्ठितानि' (ला० २०१ क)।

"भगवन्, अस्मिन्निर्देशे देशिते, देवमनुष्याणा पञ्चशतमात्रेण बोधिचित्त उत्पादिते, अह तु ततोऽपगतप्रतिभानोऽभूवम्। एतस्मात् नोत्सहे"।

अथ भगवान् बोधिसत्त्व जगतींधरमामन्त्रयते स्म—"जगतींधर, गच्छ"। -जगतींधरस्त्ववोचत्—"भगवन्, नोत्सहे ।

"एकस्मिन् समये स्वस्थाने स्थितिकाले येनाहं, मारः पापीमानप्सरसा द्वादशसहस्रैः परिवृतः शक्रस्य वेषेण तूर्यञ्च सङ्गीतिमुपादाय, तेनोपसंक्रम्य मम पादौ शिरसाभिवन्द्य, स सपरिवारो माम् पुरस्कृतवानेकान्तेऽस्थात् ।

"तन्तु शक्रम् देवेन्द्रं चिन्तयमानस्तमेतदवचम्—'कौशिक, तुभ्यं स्वागतम् । सर्वकामरसेष्वप्रमादं कुरु । कायजीवभोगात् (ला० २०९ ख) सारादानानित्यतासंकल्पं बहुलीकुरु' ।

"अथ स मामेतदवादीत्—'सत्पुरुष, इमानि द्वादशसहस्राण्यप्सरसाम् सद्गृहाण च इमास्तव परिवारं कुर्व्—' इति वदति स्म । तमेवम्—'कौशिक, अयोग्यवस्तु श्रमणाय शाक्यपुत्राय मा दाः । तध्यस्मभ्यमयोग्यम्' इत्यवदम् । तस्यां कथायां कथितायाम्, स लिच्छविर्विमलकीर्तिरुपसंक्रम्य, मामेवम्—'कुलपुत्र, अस्मिञ्शक्र एवं संज्ञाम्मोत्पादय । अयं हि मारः पापीमान् । त्वयि विडम्बनार्थमागतः, (स) शक्रो नास्ती'-त्यवदीत् ।

"अथ लिच्छविर्विमलकीर्तिस्तं मारं पापीमन्तमेवम्—'मार पापीमन्, इमा अप्सरसः श्रमणाय शाक्यपुत्रायायोग्याः; तेन मह्यं ताः प्रयच्छे'-त्यबोचत् । ततो मारस्य पापीमतो भयभीतस्य संविग्नस्य—'अयं लिच्छविर्विमलकीर्तिर्मद्वञ्चनाया आगच्छती'-त्य (भूत्) । अन्तर्धानं कर्तुकामः सोऽसमर्थः; सर्वर्द्धिविधीर्दर्शयित्वा, पुनरन्तर्धानस्यासमर्थोऽभूत् ।

"अथान्तरीक्षाद् (ला० २०२ क) घोषोनिश्चरति स्म—'पापीमन्, इमा अप्सरसोऽस्मै सत्पुरुषायोपनामय, पुरतश्च स्वस्थानं गन्तुं

शक्ष्यसि' । –ततो मारः पापीमान् भयभीतोऽनाकाङ्क्षमाणस्तथा ता अप्सरस उपनामयति स्म ।

"अथ विमलकीर्तिस्ता अप्सरसः प्रतिगृह्य ता एतदब्रवीत्—'यूयम् पापीमता मह्यं दत्ताः, तेनानुत्तरसम्यक्सम्बोधिचित्तमुत्पादयत' । स ताभ्यो बोधिपरिपाकावहानुलोमिकाम् कथामकार्षीत्, ताश्च बोधिचित्तमुत्पादयन्ति स्म । ततः स पुनस्तासु—'यूयमेतर्हि बोधिचित्तमुत्पाद्य, इतो धर्मसम्मोदे हृष्टाधिमोक्षयत, कामे (षु) च हृष्टा माधिमोक्षयते' त्याज्ञापयति स्म । ता अब्रुवन्—'सा धर्मसम्मोदरतिः किम् ?'

"सोऽब्रवीत्—'(सा) रतिर्बुद्धेऽभेद्यश्रद्धा, धर्मश्रवणच्छन्दो रतिः, सङ्घपर्युपासने रतिः, निर्माणता च गुरुसत्कारे रति', धातुसमुदये च विषयास्थाने च रतिः घातकोपमस्कन्धप्रेक्षणे रति., (ला० ३०२ ख) सर्पविषसमधातुप्रेक्षणे, शून्यग्रामनिभेष्वायतनेषु विवेकरतिः, बोधिचित्तसंरक्षे सत्त्वहितङ्कररतिः, दानसंविभागे शीलास्रसनेरतिः, क्षान्त्या क्षमणदमे, वीर्ये कल्याणसम्प्रतिपत्त्या, ध्यानपरिभोगे च प्रज्ञायाम् क्लेशनिराभासे च बोध्यामुदाररतिः, मारनिग्रहरतिः, क्लेशसंवधे बुद्धक्षेत्रविशोधने, लक्षणानुव्यञ्जनसमुत्थापनतार्थं सर्वकुशलसन्निचये, गम्भीरधर्मश्रवणात्रासरति', त्रिषु विमोक्षमुखेषु परिचयकरणे निर्वाणाध्यालम्बने बोधिमण्डालङ्कारे चाकालप्राप्त्यै (ला० ३०३ क) निर्व्यापारे च सभागजनाय सेवने चासभागेष्वद्वेषे चाप्रतिघे रतिः, कल्याणमित्रेभ्यः सेवने, पापमित्रविवर्जने च धर्मे चाधिमुक्तिः, सा श्रद्धा, प्रामोद्यरतिश्चोपायसंग्रहरतिश्चाप्रमादे बोधिपक्ष्यधर्मनिषेवणे च रतिः । एवं हि बोधिसत्त्वधर्मसम्मोदाभिरधिमुक्तिः' ।

"अथ मारः पापीमांस्ता अप्सरस एतदब्रवीत्—'इदानीमस्माकमावास गच्छत । –ता अब्रुवन्–'त्वया वयमस्मै गृहपते दत्ताः; तेन साम्प्रतं

धर्मसम्मोदाभिरत्यधिमुक्तिः करणीया। कामे (पु) त्वभिरत्यधिमुक्ति रकरणीया'। ततो मारः पापीमाल्लिच्छविं विमलकीर्तिमेतदवोचत्—'यदि बोधिसत्त्वो महासत्त्वः सर्वस्वपरित्यागी च चित्तग्राहको नास्ति, गृहपते, इमा अप्सरसाः प्रेपय'। विमलकीतिरब्रवीत्—'इमा' प्रेष्याः; तेन पापीमन्, सपरिवारोऽपगच्छ (ला० ३०३ ख)। सर्वसत्त्वधर्माशयः परिपूर्यताम्'। अथ ता अप्सरसो विमलकीर्तयेऽभिनन्दन कृत्वा, एतदवदन्—'गृहपते, कथमस्माभिर्मारस्थाने विहरितव्यम् ?'

"अवोचत्—'भगिन्यः, अस्त्यक्षयप्रदीपो नाम धर्ममुखम्। तेन प्रतिपद्यत। तदपि, भगिन्यः, किम् ? यदिदम्—यद्यप्येकप्रदीपात् प्रदीपानां शतसहस्राणि प्रज्वालितानि, स प्रदीपोऽपचयन्न गच्छति। एवमेव, भगिन्यः, एकबोधिसत्त्वः सत्त्वानां बहुशतसहस्राणि बोध्यां स्थापयित्वा, स बोधिसत्त्वोऽनपचयचित्तस्मृतिः; पर्यनपचय उपरिवर्धते। तथा च सर्वकुशलधर्मा यथा यथाऽन्येभ्यः परिभाविताश् चाख्याताः, शासनं तथा तथा सर्वकुशलधर्मैर्विवर्धते। तद्यक्षयप्रदीपो नाम धर्ममुखम्। तस्मिन् मारस्थाने विहरमाणा अप्रमाणदेवपुत्रदेवकन्यानां बोधिचित्तमधिमुच्यध्वम्। एवं हि स्यात तथागतकृतज्ञाः, सर्वसत्त्वोपजीव्याः'।

"ततस्ता अप्सरसो (ला० ३०४क) लिच्छवेर्विमलकीर्तेः पादौ शिरसाभिवन्द्य, मारेण सह प्रत्यगच्छन्। भगवन्, लिच्छवेर्विमलकीर्तेस्तद्विकुर्वणविशेषणं दृष्ट्वा, एतस्मात् ... नोत्सहे"।

अथ भगवाञ्श्रेष्ठिपुत्रं सुदत्तम् आमन्त्रयते स्म—"कुलपुत्र, गच्छ"। —सुदत्तः पुनरवोचत्—"भगवन्, नोत्सहे ।

"एकस्मिन् समये माम् मत्पितृनिवेशने महायज्ञकरणार्थाय सर्वश्रमणब्राह्मणेभ्यः सर्वदरिद्रदुःखितकृपणवनीयकविह्वलीभूतेभ्यः सप्तदिवसं

दानं दद, तस्मिन् महायज्ञकरणेऽन्तिमदिवसे लिच्छविविमलकीर्तिस्ताम्महा-यज्ञभूमिमुपसक्रम्य, एतदवदीत्—'श्रेष्ठिपुत्र, यथा त्वं यज्ञ करोषि तथा हि यज्ञं मा कुरु, धर्मयज्ञ कुरु। अलं त (ला० ३०४ख) आमिषयज्ञेन'। तमेतदवदम्—'तद्धर्मयज्ञ कथ देयम् ?'

"स मामब्रवीत्—'येन केन धर्मयज्ञेनापूर्वमचरम सत्त्व(ाः) परि-पच्यन्ते, तधि धर्मयज्ञम्। तदपि किम् ? यदुत—बोधिव्युपहारस्य महा-मैत्री, सद्धर्मसग्रहेणाभिनिर्हृता महाकरुणा, सर्वसत्त्वप्रामोद्योपलम्भेनाभिनि-र्हृता महामुदिता, ज्ञानसग्रहेणाभिनिर्हृता महोपेक्षा—

" 'शान्तिदमेनाभिनिर्हृता दानपारमिता, दुःशीलसत्त्वपरिपाचने नाभिनिर्हृता शीलपारमिता, नैरात्म्यधर्मेणाभिनिर्हृता क्षान्तिपारमिता, बोध्या-रम्भेणाभिनिर्हृता वीर्यपारमिता, कायचित्तविवेकेनाभिनिर्हृता ध्यानपार-मिता, सर्वज्ञ (ला० ३०५क) ज्ञानेनाभिनिर्हृता प्रज्ञापारमिता—

" 'सर्वसत्त्वपरिपाचनेनाभिनिर्हृता शून्यताभावना, सस्कृतपरि-शोधनेनाभिनिर्हृताऽनिमित्तभावना, संचिन्त्योपपत्त्याऽभिनिर्हृताऽप्रणिहित-भावना—

" 'सद्धर्मपर्युद्ग्रहणेनाभिनिर्हृतो बलपराक्रमः, सग्रहवस्तुनाभि-निर्हृतं जीवितेन्द्रियम्, सर्वसत्त्वभृत्यशिष्यभावेनाभिनिर्हृता निर्माणता, असा-रात्सारोपादानेनाभिनिर्हृताः कायजीवभोगलाभाः, षडनुस्मृत्याऽभिनिर्हृता स्मृतिः, संमोदनीयधर्मेणाभिनिर्हृत आशयः, सम्प्रतिपत्त्याऽभिनिर्हृताऽऽजीव-परिशुद्धिः, श्रद्धाप्रामोद्यसेवनेनाभिनिर्हृतमार्यपर्युपासनम्, अनार्याप्रतिघेना-भिनिर्हृता चित्तनिध्यप्तिः, प्रव्रज्ययाऽभिनिर्हृतो (ला० ३०५ख)ऽध्याशयः, प्रतिपत्त्याऽभिनिर्हृत श्रवणकौशल्यम्, अरणाधर्मावबोधेनाभिनिर्हृत आरण्या

वासः, बुद्धज्ञानप्रतिलाभेनाभिनिर्हृतं प्रतिसंलयनम्, सर्वसत्त्वक्लेशविमुक्तियोगेनाभिनिर्हृता योगाचारभूमिः—

" 'लक्षणानुव्यञ्जनबुद्धक्षेत्रालङ्कारसत्त्वपरिपाचनेनाभिनिर्हृतः पुण्यसम्भारः, सर्वसत्त्वचित्तचर्यायां यथायोगं धर्मदेशनयाऽभिनिर्हृतो ज्ञानसम्भारः, सर्वधर्मेष्वनुपादेयाहेयैकनयज्ञानेनाभिनिर्हृतः प्रज्ञासम्भारः, सर्वक्लेशावरणाकुशलधर्मप्रहाणेनाभिनिर्हृतः सर्वकुशलमूलसम्भारः, सर्वज्ञज्ञानाधिगमेन च कुशलधर्मेण चाभिनिर्हृतः सर्वबोधि (ला० ३०६क) पक्ष्यधर्मसमुत्पादः—तदिदं, कुलपुत्र, धर्मयज्ञम्। तस्मिन् धर्मयज्ञे प्रतिष्ठितो बोधिसत्त्वो यज्ञदायकः, यज्ञसुकारकः, सदेवके लोके भवति दक्षिणीयः'।

"भगवन्, तस्मिन् गृहपताविममेवं निर्देशं देशितवति, तस्या ब्राह्मणपरिषदो ब्राह्मणानां द्विशतानामनुत्तरसम्यक्सम्बोधिचित्तमुत्पन्नम्।

"अहमपि श्राद्ध आश्चर्यप्राप्तः सत्पुरुषस्य पादावभिवन्द्य, मत्कण्ठादवतार्य शतसहस्रमूल्यं मुक्ताहारमनुप्रयच्छामि स्म। स न प्रतीच्छति स्म। (अथ खलु) अहमेतदवोचम्—'प्रतिगृहाण त्वमिमं (मुक्ताहारं), यं वाधिमुच्यसे (तस्मै) देही' ति। स (तं) मुक्ताहारं प्रतिगृह्य (च) द्वौ प्रत्यंशौ कृत्वा चैकं प्रत्यंशं तस्मिन् यज्ञस्थाने सर्वलोकनिन्दितेभ्यो नगरदरिद्रेभ्यो ददाति स्म; द्वितीयं प्रत्यंशं दुष्प्रसहाय तथागताय निर्यातयामास[४]। (एवं रूपं प्रातिहार्यं दर्शयति स्म,) यथा सर्वाभिः पर्षद्भिर्मरीचि (नाम) लोकधातुर्दुष्प्रसहो (नाम तथागतश्च दृश्येते स्म। स च मुक्ताहार(स्तस्य) दुष्प्रसहस्य तथागतस्य मूर्ध्नि (ला० ३०६ख) मुक्ताहारकूटागारः संस्थितोऽभूच्चतुरस्रश्चतुःस्थूणः समभागः सुविभक्तो दर्शनीयो विचित्रः[५]।

---

४ तुलनीय गद्यांश सद्धर्मपुण्डरीकसूत्रम्, पृ० २५२।

५ तुलनीय अंश सद्धर्मपुण्डरीकसूत्रम्, पृ० २६२।

" स एवंरूपं प्रातिहार्यं दर्शय्य, वचनमेतदवोचत्—

" ' दायको यो दानपतिर्यथा तथागतं, तथा नगरदरिद्र(ान्) दक्षिणीय(ान्) सञ्जानाति चासंभिन्न सममहाकरुणाचित्ते(न) विपाकाप्रतिकाङ्क्षी परित्यागी, स हि धर्मयज्ञपरिनिष्पन्न' इति ।

"अथ ते नगरदरिद्र(ास्) तत् प्रातिहार्यं दृष्ट्वा, तं धर्मोपदेशमपि श्रुत्वा, अनुत्तरसम्यक्सम्बोधिचित्तमुत्पादयन्ति स्म । भगवन्, एतस्मात् कारणात्तस्य सत्पुरुषस्य रोगपृच्छनगमन्नोत्सहे" ।—

तथा हि सर्वे ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वा अपि, या तेन सत्पुरुषेण सहावकाशकथा, ये नानोपदेशा उक्ता', (तत्सर्वं) देशयन्तो गमनन्नोत्सहन्ते स्म ।

श्रावकबोधिसत्त्वप्रेषणोक्तस्य परिवर्तस्तृतीयः ।

४ ग्लानसंमोदन (कथा)

ततो भगवान् मंजुश्रीम् कुमारभूतमामन्त्रयते स्म—"मंजुश्रीः, (ला० ३०७क) लिच्छवेविमलकीर्तेः रोगपृच्छनाय गच्छ"। मञ्जुश्रीरप्यवोचत्—

"भगवन्, लिच्छविविमलकीर्तिर्दुरासदो गम्भीरनये प्रतिमानप्रतिपन्नः, व्यत्यस्तपदपुष्कलपदनिष्पादनकुशलः, अनाच्छेद्यप्रतिभानस्सर्वसत्त्वेष्वप्रतिहतबुद्धिसमर्पितः, सर्वबोधिसत्त्वकर्मनिर्यातः, सर्वबोधिसत्त्वप्रत्येकबुद्धगुह्यस्थाने सुप्रतिपन्नस्सर्वमारस्थानविनिवर्तनकुशलः, महाऽभिज्ञाविक्रीडित उपायप्रज्ञानिर्यातोऽद्वयधर्मधात्वसंभेदगोचरस्य वराग्रप्राप्तो धर्मधात्वेकव्यूहानन्ताकारव्यूहधर्मदेशनाकोविदः, सर्वसत्त्वेन्द्रियसम्प्रापकव्यूहज्ञो विचक्षणः, उपायकौशल्यगतिगतः, प्रश्ननिर्णयप्रतिलब्धः। स परीत्तवर्मसन्नाहसन्तोषस्यासमर्थः, किं तु बुद्धाधिष्ठानेन तेन गतो यथाभूतं यथानुभावं (ला० ३०७ख) भाषितुकामो(ऽस्मि)"।

अथ तस्याम् परिषदि तेषां बोधिसत्त्वमहाश्रावकशक्रब्रह्मलोकपालानां च देवपुत्राप्सरसामेतभूत्—"(यत्र) मंजुश्रीः कुमारभूतश्च सत्पुरुषस्ताबुभावभिलापिनौ, तत्र महाधर्मकीर्तिकथा नियतं भविष्यती"—ति। ततो बोधिसत्त्वानां लक्षं श्रावकाणांच पञ्चशतमात्रं बहुशक्रब्रह्मलोकपालाश्च बहुशतसहस्राणि देवपुत्राणांच धर्मश्रवणार्थं मंजुश्रियः कुमारभूतस्य पृष्ठतोऽगच्छन्। अथ मंजुश्रीः कुमारभूतः सर्वैस्तैर्बोधिसत्त्वमहाश्रावकशक्रब्रह्मलोकपालदेवपुत्रैः परिवृतः पुरस्कृतो वैशालीम्महानगरीम् प्रविशति स्म।

ततो लिच्छवेविमलकीर्तेरेतदभूत—"मजुश्रीः कुमारभूतश्च बहुपरिवार आगच्छन्तिः तेनेदम्मे गृहमधिष्ठा(–नेन) शून्यं (भवत्व्)–" इति। (ततः) तद्गृह शून्य (ला० ३०८क) अध्यतिष्ठत् । तत्र द्वारिकोऽपि नाभवत् । मंचो यस्मिन् विमलकीर्तिर्ग्लानः शायी, आसीदेकासनम् । तं स्थापयित्वा तत्र मचो वा पीठिका वाऽऽसन किञ्चिन्नादृश्यत ।

अथ मंजुश्रीः सपरिवारो येन विमलकीर्तेरावासस्तेनागच्छत्; उपसंक्रम्य च प्रविश्य, तद्गृह शून्यमद्राक्षीत् । तत्र द्वारिकोऽपि नाभवत् । तस्मात्, (यस्मिन्) विमलकीर्तिः शाय्यासीत्, एकाकिमचादन्यमञ्च पीठिक वाऽऽसन वा नाद्राक्षीत् । ततो लिच्छविर्विमलकीर्तिर्मंजुश्रियम् कुमारभूतमदर्शत्, दृष्ट्वैतदवोचत्—

"मंजुश्रीः, एहि स्वागतः, मंजुश्रीः, एहि सुस्वागतः । पूर्वमनागतोऽदृष्टोऽश्रुतो दृश्यसे" । मञ्जुश्रीरब्रवीत्—"गृहपते, यथा वदसि तथा यदागतम्, तधि पुनर्नागच्छति । यद् गत तदपि पुनर्न गच्छति । तत् कस्य हेतोः ? अनागत आगमोऽपि न प्रज्ञायते, गतेऽपि गमनञ्च प्रज्ञायते, यत्कारणाद् यद्दृष्टम्, तत् पुनरपि द्रष्टव्यन्नास्ति ।

"कच्चित्ते, सत्पुरुष, क्षमणीयं, कच्चिद् यापनीय, कच्चित्ते धातवो न क्षुभ्यन्ते, कच्चिद् दुःखा वेदनाः प्रतिक्रामन्ति नाभिक्रामन्ति ?[1] भगवानपि (ला० ३०८ख)—'ननु तुभ्यमल्पाबाधता, अल्पातकता, अल्पातुरः लघूत्थानतापि, यात्राबलसुखानवद्य (–ता–) सुखस्पर्शविहार(–ते–)' त्यपृच्छत् । गृहपते, अयं ते रोगः कस्मादुत्पन्नः ? उत्पन्नः कियच्चिरं ? किमाश्रितः ? कदा शाम्यति ?"

१ यह वाक्य सद्धर्मपुण्डरीकसूत्रम्, पृ० २४६ के आधार पर ।

विमलकीर्तिरवोचत्—"मंजुश्री', अविद्या च भवतृष्णा यावत्, तावदयम्मे रोगोऽपि। यावत् सर्वसत्त्वानां रोगः, तावदपि मे रोगः। यदा सर्वसत्त्वा वीतरोगाः, तदा रोगो ममापि न सम्भवति। तत् कस्य हेतोः ? मंजुश्रीः, बोधिसत्त्वस्य संसारस्थानं हि सत्त्व(ाः), रोगो हि संसार-स्थानम्। यदा सर्वसत्त्वा वीतरोगाः, तदा बोधिसत्त्वोऽप्यरोगो भवति।

"मंजुश्रीः, तद्यथापि नाम श्रेष्ठिन एकपुत्रो ग्लानो भवेत्, तद्बाध-कारणादुभावपि मातापितरौ ग्लानौ भवतः। यावत्स एकपुत्रोऽरोगोऽभूतः, तावदुभावपि मातापितरौ दुःखितौ भवतः। मंजुश्रीः, एवमेव बोधिसत्त्वः सर्वसत्त्वेष्व् (ला० ३०९क) एकपुत्र इव प्रियः; सर्वसत्त्वेषु ग्लानेषु सोऽपि ग्लानो भवति। सत्त्वे (-ष्व्-) अरोगे (-षु), सोऽप्यग्लानः। यदपि, मंजुश्रीः—'अयं ते रोगः कस्मादुत्पन्न ?' इति वदसि—बोधिसत्त्वानां हि रोगो महाकरुणायाः सम्भवति"।

मंजुश्रीरवोचत्—"गृहपते, किमस्मिंस्ते शून्यागारे न कश्चित् परिवारोऽस्ति ?"—अब्रवीत्—"मंजुश्रीः, सर्वबुद्धक्षेत्राण्यपि शून्यानि"।—अभाषत—"केन शून्यानि ?"—आह—"शून्यतया शून्यानि"।—अभाषत—"शून्यतायां शून्यम् किम् ?" —आह— "सङ्कल्पो हि शून्यतया शून्यः"।—अभाषत—"शून्यता किं सङ्कल्पायसमर्था ?"—आह—"तस्मिन् परिकल्पे शून्ये, शून्यता हि शून्यतायां निर्विकल्पा"। —अभाषत— "गृहपते, शून्यता यत्रान्वेष्टुं (युज्यते) ?" —आह— "मंजुश्रीः, शून्यतान्वेष्टुं (युज्यते) द्विषष्टिदृष्टिगतेभ्यः"। —अभाषत— "द्विषष्टिदृष्टिगतानि कुतोऽन्वेष्टुं (युज्यते) ?" —आह—"तान्यन्वेष्टुं (युज्यते) तथागतस्य विमुक्त्याः"।—अभाषत—"इयं तथागतस्य विमुक्तिः कुतोऽन्वेष्टुं (युज्यते) ?" —आह— "अन्वेष्टुं (युज्यते) सर्वसत्त्वानाम् प्रथमचित्तचर्यायाः।

"मंजुश्रीः यत् 'किन्ते न कश्चित् परिवारो (ला० ३०९ख)ऽस्ती ?' -ति वदसि- सर्वमाराश्च सर्वपरप्रवादिनः सन्ति मे परिवारः। तत् कस्य हेतोः ? मारा हि संसारस्य वर्णवादिनः, संसारश्च बोधिसत्त्वस्य परिवारः। परप्रवादिषु दृष्टिगताना वर्णवादिषु, बोधिसत्त्वः सर्वदृष्टिगतेभ्योऽनिर्ज्यः। तस्मात् सर्वमाराश्च सर्वपरप्रवादिनो मम परिवारः"।

मजुश्रीरभाषत-"गृहपते, रोगस्ते कीदृशः ?" -आह-"आरूप्योऽसनिदर्शनः"। -अभाषत- "स रोगः किं कायप्रतिसंयुक्त आहोस्विच्चित्तप्रतिसयुक्तः ?" -आह- "कायविवेकतया (स) कायप्रतिसयुक्तो नास्ति, चित्तमायाधर्मतया चित्तप्रतिसयुक्तो नास्ति"।-अभाषत-"गृहपते, एषा चतुर्णां, यदिदम्-पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशधातूनाम्, को धातुर्हन्यते ?" -आह- "मंजुश्रीः, यः कश्च सर्वसत्त्वाना रोगधातुः, तेनाहमपि ग्लानः। मंजुश्रीः, कथम् बोधिसत्त्वेन ग्लानो बोधिसत्त्वः सम्मोदपनीयः ?"

मंजुश्रीरभाषत (ला० ३१०क) "कायोऽनित्य इति-(समोदपनीयः), न हि निर्विद्विरागेन। कायो दुःख इति-निर्वाणरसेन हि न (संमोदपनीयः)। कायो नैरात्म्य इति-अथ च पुनः सत्त्वपरिपाचनेन (संमोदपनीयः)। कायः शान्त एवेति-किन्तूपशमेन (समोदपनीयो) नास्ति। सर्वदुश्चरित् उपनीते, संक्रान्त्या न (संमोदपनीयः)। स्वातुरेणान्येषु ग्लानेषु सत्त्वे(षु) कारुण्यपूर्वान्तपर्यान्तदुःखानुस्मृतिसत्त्वार्थकार्यानुस्मृतिकुशलमूलसाक्षात्कारादिविशुद्ध्यतृष्णानित्योद्योग समारभ्य, सर्वरोगाभावकारणभैषज्यराजो भवेद्-इति। तथा हि बोधिसत्त्वेन ग्लानो बोधिसत्त्वः समोदपनीयः"। मंजुश्रीरभाषत-"कुलपुत्र, ग्लानेन बोधिसत्त्वेन कथ स्वचित्तं निध्यायितव्यम् ?"

विमलकीर्तिराह—"मंजुश्रीः, ग्लानेन बोधिसत्त्वेन हि स्वचित्तमेवं

निध्यायितव्यम्—व्याधिः पूर्वान्ताभूतविपर्यासकर्मपर्युत्थानान्निश्चरति। अभूत-सकल्पक्लेशोत्पन्नो (ला० ३१०ख) य आतुरो नाम धर्मः, त(स्य) परमार्थत इह न किंचिदुपलभ्यते। तत् कस्य हेतोः? अय कायश्चतुर्महाभूतेभ्यो भूतः, एषु धातुषु कश्चिदधिपतिर्वा जनको वा नास्ति। अस्मिन् कायेऽनात्मके, आत्माभिनिवेश स्थापयित्वा, इह परमार्थतो यो रोगो नाम सोऽनुपलम्भः, तस्मादात्मनि ह्यभिनिवेशेऽसति, रोगमूलाज्ञायां विहरितव्यम्—इति; तेन, आत्मसंज्ञायां प्रतिप्रस्रब्धायां, धर्मसंज्ञोत्पादयितव्या।

"अयं हि कायोऽनेकधर्मसंनिपातः; उत्पद्यमानो धम (र्मा) एवोपपद्यन्ते; निरुध्यमानो धम (र्मा) एव निरुध्यन्ते। धर्माः परस्परञ्च वेदयन्ति न जानन्ति। ते धर्मा उत्पत्त्यामेवम्—'अहमुपपद्य' इति—न चिन्तयन्ति; निरोधेऽप्येवम्—'अहन्निरुध्य' इति—न चिन्तयन्ति।

"तेन धर्मसंज्ञाऽऽज्ञाकरणार्थं चित्तमुत्पादयितव्यम्—'यन्मयैवं धर्मेषु संज्ञायते, तदपि विपर्यासः। विपर्यासो हि महारोगः। मया रोगविसंयोगः करणीयः, व्याधिप्रहाणायोद्योगः करणीयः'। तत्र तद्व्याधिवर्जनं किम्? यदुत—अहंकारममकारवर्जनम्। तदहंकारमम—(ला० ३११क) कारवर्जनं किम्? यदुत—द्वयविसंयोगः। तत्र द्वयविसंयोगः किम्? यदुत—अध्यात्मबहिर्धासमुदाचाराभावः। तत्राध्यात्मबहिर्धासमुदाचाराभावः किम्? यदुत—समताया अचलं, स्वचलं, व्यचलम्।

"समता किम्? मत्समताया यावन्निर्वाणसमताम्। तत् कस्य हेतोः? यदिदम्—मन्निर्वाणयोरुभयोरपि शून्यताकारणात्। तावुभौ केन शून्यौ? नामव्यवहारोभौ शून्यौ; तस्मात्तावपरिनिष्पन्नौ। तथा हि तेन समतादर्शनेन रोग एवानन्यः। शून्यताऽन्यथाकारेऽसति, रोग एव शून्यता।

"वेदना निर्वेदना द्रष्टव्या। तेन वेदनानिरोधो न साक्षात्करणीयः।

परिसमाप्तबुद्धधर्मं उभे वेदने उत्सृजेत् , किं तु सर्वदुर्गतिजसत्त्वेषु महा-करुणाऽनुत्थापनन्नास्ति , तथा हि करणीय, यथैषु सत्त्वेषु योनिशो निध्य-प्त्या व्याधिर्निराकृतो भवति ।

"एषु (सत्त्वेषु) कश्चिद्धर्मो नोपसंहर्तव्यो वा निराकरणीयो वा । तदाधारपरिज्ञानार्थं (ला० ३११ख), यस्माद् रोग उत्पन्नः, तेषु धर्मो देशयितव्यः । स आधारः किम् ? यदिदम्—अध्यालम्बनम् आधारः । अध्यालम्बनाधारे यावदालम्बनम् , तावद् रोगाधारः । कस्मिनध्यालम्ब-नम् ? त्रैधातुकाध्यालम्बनम् । अध्यालम्बनाधारपरिज्ञा किम् ? यदुत—अनालम्बनं चानुपलब्धिः । याऽनुपलब्धिस्तध्यनध्यालम्बनम् । अनुप-लब्धिः किम् ? यदिदम्—आत्मदृष्टिश्च परदृष्टिः—उभे दृष्टी नोपलभ्येते । अतोऽनुपलब्धिर्नामोच्यते ।

"मञ्जुश्रीः, आतुरेण तथा हि बोधिसत्त्वेन जराव्याधिमरणजाति-वर्जनाय स्वचित्तं निध्यायितव्यम् । मञ्जुश्रीः, बोधिसत्त्वाना रोग एवं रूपः । यद्येवन्न भवेत् , व्यवसायो निरार्थकोऽभविष्यत् । तद्यथापि नाम प्रत्य-र्थिकोपघातेन वीरो नामोच्यते, एवमेव जराव्याधिमरणदुःखशमनेन बोधि-सत्त्वो नामोच्यते ।

"तेन ग्लानेन बोधिसत्त्वेनैव (ला० ३१२क)—'यथा मम रोगोऽ-भूतोऽसन्, तथा हि सर्वसत्त्वाना रोगोऽप्यभूतोऽसन्—' इत्युपलक्षितव्यम् । एवं प्रेक्षमाणः सोऽनुशसदर्शनाभ्रष्टः सत्त्वेषु महाकरुणामुत्पादयति, (अन्यत्) स्थापयित्वा चागन्तुकक्लेशप्रहाणाय सत्त्वेष्वभियोगमहाकरुणामुत्पादयति । तत् कस्य हेतोः ? अनुशसदर्शनपतितया महाकरुणया हि जातिषु बोधि-सत्त्वो निर्विद्यते । अनुशसदर्शनपर्युत्थानापगतया महाकरुणया बोधिसत्त्वो जातिषु न निर्विद्यते । दृष्टिपर्युत्थाने समुत्तिष्ठति, स न जायते । चित्त-

पर्युत्थानापगतो जायमानः स मुक्त इव जायते, स मुक्त इवोत्पद्यते। मुक्त इव जायमानो मुक्त इवोत्पद्यमानो बद्धसत्त्वबन्धनमुक्तिधर्मदेशनायै समर्थश्च प्रतिबलो भवति। यदिदम् भगवता—आत्मना बद्धेन परं बन्धनाद्विमोचयेत्, तधि स्थानञ्च विद्यते। आत्मना मुक्तेन पर बन्धनाद्विमोचयेत्, तत्स्थानं विद्यत—इति भाषितम्। तस्माद् बोधिसत्त्वो मुक्त्यै कुर्याच्च बन्धनाय। (ला० ३१२ख)।

"तत्र बन्धन किम्? किम्मुक्तिः? अनुपाये भवमुक्तिपरिग्रहो बोधिसत्त्वस्य बन्धनम्। उपायेन भवप्रवृत्त्यवक्रांतिर्मुक्तिः। अनुपायेन ध्यानसमाधिसमापत्त्यास्वादो बोधिसत्त्वस्य बन्धनम्। उपायेन ध्यान-समाध्यास्वादो मुक्तिः। उपायेनानुद्दिष्ट प्रज्ञा हि बन्धनम्। उपायेन निष्ठितप्रज्ञा मुक्तिः। प्रज्ञाऽनुद्दिष्टोपायो बन्धनम्।[२] प्रज्ञया निष्ठितोपायो मुक्तिः।

"तत्रोपायानुद्दिष्टप्रज्ञाबन्धनं किम्? यदुत—शून्यताऽनिमित्ताप्रणि-हितनिध्यप्तिश्च लक्षणानुव्यंजन[३]बुद्धक्षेत्रालंकारसत्त्वपरिपाचनानिध्यप्तिर्नुपा-यानुद्दिष्टप्रज्ञा च बन्धनम्। तत्रोपायनिष्ठितप्रज्ञामुक्तिः किम्? यदुत—लक्षणानुव्यंजनबुद्धक्षेत्रालङ्कारसत्त्वपरिपाचनचित्तनिध्यप्तिश्च शून्यताऽनिमित्ता-(ला० ३१३क) प्रणिहितपरिजयकरणम्, इदं ह्युपायनिष्ठितप्रज्ञा च मुक्तिः। तत्र प्रज्ञाऽनुद्दिष्टोपायबन्धनं किम्? यदिदं—सर्वदृष्टिक्लेशपर्युत्था-

---

२ यह वाक्यांश प्रथम भावनाक्रम, पृ० १९४ मे आंशिकरूपेण उद्धृत है।

३ 'सत्त्वपरिपाचननिध्यप्ति' के प्रसग मे बोधिसत्त्व के लक्षणो एव अनुव्यजनों की विस्तृत चर्चा नागार्जुन की रत्नावली, २४७–१०० मे की गई है। सस्कृत मे यह श्लोक अप्राप्य हैं परन्तु तिब्बती अनुवाद में सुरक्षित हैं। इन श्लोको का अंग्रेजी अनुवाद थुब्तेन कल्जग तथा भिक्षु प्रासादिक द्वारा विसाख पूजा नामक ग्रन्थ में १९६६ में बंकॉक से प्रकाशित हुआ था जो पठनीय है।

नानुशयानुनयप्रतिघावस्थितस्य सर्वकुशलमूलव्यापारबोध्यपरिणामना हि प्रज्ञाऽनुद्दिष्टोपायश्च बन्धनम् । तत्र प्रज्ञानिष्ठितोपायमुक्तिः किम् ? यदिदम्—तया सर्वदृष्टिक्लेशपर्युत्थानानुशयानुनयप्रतिघपरिवर्जकस्य सर्वकुशलमूलव्यापारबोधिपरिणामनयाऽपरामृष्टिः, सा हि बोधिसत्त्वस्य प्रज्ञानिष्ठितोपायश्च मुक्तिः ।

"मञ्जुश्रीः, तत्र ग्लानेन बोधिसत्त्वेनैव तेषु धर्मेषु निध्यायितव्यं—यः कायचित्तरोगेऽनित्यतादुःखशून्यनैरात्म्यसंबोधः, स तत्प्रज्ञा । यः कायस्य रोगविवर्जनेनानुत्पादश्च ससारास्रसने सत्त्वार्थप्रयोगानुयोगः, अयं हि तदुपायः । भूयोऽपि यः 'कायचित्तरोगाः (ला० ३१३ख) परस्परं परपरया न च नवा न च जीर्णा' (इत्य्) अवबोधः, स तत्प्रज्ञा । यच्च कायचित्तरोगोपशमनिरोधयोरनुत्थापन, तत्तदुपाय' ।

"मञ्जुश्रीः, तथा हि ग्लानेन बोधिसत्त्वेन स्वचित्त निध्यायितव्यम्, किं तु तेन निध्यप्त्यनिध्यप्त्योर्न विहरितव्यम् । तत् कस्य हेतोः ? यदि निध्यप्त्या विहरेत् , स हि पृथग्जनस्य धर्मः । अथानिध्यप्त्या विहरेत् , स श्रावकधर्मः । तस्माद् बोधिसत्त्वेन निध्यप्त्यनिध्यप्त्योर्न विहरितव्यम् । यत्तत्राप्रतिष्ठित, तद्बोधिसत्त्वगोचर. ।

"यः पृथग्जनगोचरश्चाऽर्यगोचरश्च नास्ति, स हि बोधिसत्त्वगोचरः । यः संसारगोचरेऽपि क्लेशगोचरस्तु नास्ति, स बोधिसत्त्वस्य गोचर' । यो निर्वाणावबोधगोचरेऽप्यत्यन्तपरिनिर्वाणगोचरस्तु नास्ति, स बोधिसत्त्वस्य गोचरः । यश्चतुर्मारदेशनागोचरेऽपि (ला० ३१४क) सर्वमारविषयसमतिक्रान्तगोचरः, स बोधिसत्त्वस्य गोचरः । यः सर्वज्ञज्ञानैषणागोचरेऽप्यकालज्ञानप्राप्तिगोचरस्तु नास्ति, स हि बोधिसत्त्वस्य गोचरः । यश्चतुःसत्यज्ञानगोचरेऽप्यकालसत्यप्रतिपादनगोचरस्तु नास्ति, स हि बोधि-

सत्त्वस्य गोचरः । योऽध्यात्मप्रत्यवेक्षणगोचरेऽपि संचिन्त्यभवप्रतिकांक्षिपरिग्रहगोरस्तु नास्ति, स बोधिसत्त्वस्य गोचरः । योऽनुत्पादप्रत्यवेक्षणगोचरेऽपि नियतप्राप्त्यवक्रान्तिगोचरस्तु नास्ति, स बोधिसत्त्वस्य गोचरः । यः प्रतीत्यसमुत्पादगोचरेऽपि सर्वदृष्टिविष्यगोचरस्तु नास्ति, स बोधिसत्त्वस्य गोचरः । यः सर्वसत्त्वसंसर्गगोचरेऽपि क्लेशानुशयगोचरस्तु नास्ति, पे । यो विवेक--गोचरेऽपि कायचित्तक्षयस्थानगोचरस्तु नास्ति, पे । यस्त्रैधातुकगोचरेऽपि (ला० ३१४ख) धर्मधातुव्यवच्छेदकरणगोचरस्तु नास्ति, पे । यः शून्यतागोचरेऽपि गुणसर्वथैषणगोचरस्तु, पे । योऽनिमित्तगोचरेऽपि प्रमोचयितव्य सत्त्वावलम्बनव्यवसायगोचरस्तु, पे । योऽप्रणिहितगोचरेऽपि संचिन्त्यभवगतिसंदर्शनगोचरस्तु, पे । योऽनभिसंस्कारगोचरेऽपि सर्वकुशलमूलाभिसंस्काराश्रंसनगोचरस्तु, पे । यः षट्पारमितागोचरे सर्वसत्त्वचित्तचर्यापारायणगोचरः, पे । यः षडभिज्ञागोचरेऽपि क्षीणास्रवगोचरस्तु नास्ति, पे । यः सद्धर्मस्थानगोचरे कुमार्गानुपलब्धिगोचरः, पे । यश्चतुरप्रमाणगोचरेऽपि (ला० ३१५क) ब्रह्मलोकजात्यससर्गगोचरस्तु, पे । यः षडनुस्मृतिगोचरे सर्वास्रवगोचरो नास्ति, पे । यो ध्यानसमाधिसमापत्तिगोचरेऽपि समाधिसमापत्तिवशेनानुत्पादगोचरस्तु, पे । यः स्मृत्युपस्थानगोचरेऽपि कायवेदनाचित्तधर्मातिरेकगोचरस्तु नास्ति, पे । यः प्रधान गोचरे कुशलाकुशलद्वयालम्बनगोचरो नास्ति, पे । य ऋद्धिपादनिर्हारगोचरेऽप्यनाभोगर्द्धिपादवशगोचरः, पे । यः पंचेन्द्रियगोचरे सर्वसत्त्वेन्द्रियवरावरज्ञानगोचरः, पे । यः पंचबलावस्थानगोचरे तथागतस्य दशबलाभिरतिगोचरः, पे (ला० ३१५ख) यः सप्तबोध्यंगपरिनिष्पन्नगोचरे बुद्धिप्रविचयज्ञानकौशल्यगोचरः, पे । यो मार्गा-

श्रयगोचरेऽपि कुमार्गानुपलब्धिगोचरस्तु, पे । यः शमथविपश्य-नासमग्रारम्भगोचरेऽप्यत्यन्तोपशमापतनगोचरस्तु, पे । यः सर्वधर्मानुत्थापनलक्षणावबोधगोचरेऽपि लक्षणानुव्यञ्जनबुद्धकायविभूषण-समुत्थापनतागोचरस्तु, पे । यः श्रावकप्रत्येकबुद्धचारित्र दर्शन-गोचरेऽपि बुद्धधर्मानपायिव्यापारगोचरस्तु, पे ' ' । यः सर्वस्वभावा-त्यन्तविशुद्धताऽऽपन्नधर्मानुगमनगोचरेऽपि सर्वसत्त्व(ानां) यथाऽधिमुक्ति तथेर्यापथदर्शनगोचरस्तु, पे । यः सर्वबुद्धक्षेत्रात्यन्तविनाशाऽ-निष्करणापगता (ला० ३१६क) ऽकाशस्वभावाधिगमगोचरे नानाव्यूहा-नेकव्यूहबुद्धक्षेत्रगुणव्यूहदर्शनगोचर., पे । यः सद्धर्मचक्रप्रवर्तनमहा-परिनिर्वाणसदर्शनगोचरश्च बोधिसत्त्वचर्या अत्यजनगोचरश्च, अयमपि बोधि-सत्त्वस्य गोचरः" ।[४]

अस्मिन् उपदेशे निदिश्यमाने, तेषाम् मंजुश्रिया कुमारभूतेन सार्ध-मागतानाम् देवपुत्राणामष्टसहस्रैरनुत्तरसम्यक्सम्बोधिचित्तमुत्पादितम् ।

ग्लानसमोदन(कथा)या परिवर्तश्चतुर्थः ।

४ रेखांकित पंक्तियाँ शिक्षासमुच्चय, पृ० १४५ में उद्धृत हैं। बोधिसत्त्व गोचर की विस्तृत चर्चा शूरंगमसमाधिसूत्र में मिलती है जो संस्कृत में अप्राप्य परंतु तिब्बती में सुलभ है। भिक्षु प्रासादिक ने इस सूत्र के कुछ अंश अंग्रेजी अनुवाद में प्रकाशित किये थे जो धर्मशाला से १९७५ में प्रकाशित हुये थे।

५ अचिन्त्यविमोक्षनिर्देश.

अथायुष्मतः शारिपुत्रस्यैवं भवति स्म—'यद्यस्मिन् गृह आसनान्यपि न स्युः, इमे बोधिसत्त्वाश्च महाश्रावकाः कुत्र निषीदन्ति ?' ततो लिच्छविविमलकीर्तिरायुष्मतः शारिपुत्रस्य चित्तवितर्कं ज्ञात्वा, आयुष्मन्तं शारिपुत्रमेवमवोचत्—

"भदन्त शारिपुत्र, किं धर्मार्थिक आगतोऽसि ? आहोस्विदासनार्थिकः ?" आह— "धर्मार्थिक आगतः, नास्म्यासनार्थिकः" । अवोचद्— "भदन्त शारिपुत्र, यद्यतो यो धर्मार्थिकः सो (ला० ३१६ख) ऽपि स्वकायार्थिको न स्यात् , आसनच्छन्दीक्षणं कुत आगतम् ? भदन्त शारिपुत्र, यो धर्मकामः, स हि रूपवेदनासंज्ञासंस्कारविज्ञानकामो नास्ति, स्कन्धधात्वायतनकामो नास्ति । यो धर्मकामः, स कामरूपारूप्यधातुकामो नास्ति । यो धर्मकामः, स बुद्धाभिनिवेशकामो नास्ति, धर्मसंघाभिनिवेशकामो नास्ति ।

"भदन्त शारिपुत्र, पुनरपरं यो धर्मकामः, स दुःखपरिज्ञानकामो नास्ति, समुदयप्रहाणकामो नास्ति, निरोधसाक्षात्कारकामो नास्ति, मार्गभावनाकामो नास्ति । तत् कस्य हेतोः ? धर्मो ह्यप्रपञ्चोऽनक्षरः; ततो यद्—'दुःखं परिज्ञातव्यम् , समुदयः प्रहातव्यः, निरोधः साक्षात्कर्तव्यः, मार्गो भावयितव्य'[1] इत्युत्तरिकरणीयं, तद्धर्मकामो नास्ति, तद्धि प्रपञ्चकामः ।

"भदन्त शारिपुत्र, धर्मो ह्युपशान्तश्च प्रशान्तः, ततो य उत्पादविनाशनसमुदाचारः, स (ला० ३१७क) धर्मकामो नास्ति, विवेककामो

---

१ तुलनीय प्रसन्नपदा, पृ० २२५–२२६ मे उद्धृत अध्यायितमुष्टिसूत्र के पद्यांश ।

नास्तिः स उत्पादविनाशनकामः। भदन्त शारिपुत्र, पुनरपरं धर्मोऽ रजो विरजाः; ततः कश्चिद्धर्मश्चेद् यस्मिन् अनुनयस्-(स्याद्-) अन्तमशो निर्वाणेऽपि, स हि धर्मकामो नास्तिः स 'रागरजः कामः'। धर्मो विषयो नास्ति। या विषयगणना, सा धर्मकामो नास्तिः स विषयकामः। धर्मो ह्यनाव्यूहोऽनिर्व्यूहः, कश्चिद्धर्मो यस्मिनभिग्रहणं चोत्सर्गः, स धर्मकामो नास्ति, स ह्यभिग्रहणोत्सर्गकामः।

"धर्मोऽनालयः; य आलयारामाः, ते न धर्मकामाः, ते ह्यालय-कामाः। धर्मोऽनिमित्तः शून्यः, येषां विज्ञाननिमित्तानुगमनम्, ते न धर्मकामाः, ते निमित्तकामाः। धर्मोऽसहवासः, ये केचिद्धर्मेण सह विह-रन्ति, ते न धर्मकामाः, ते विहारकामाः। धर्मो दृष्टश्रुतमतविज्ञातन्नास्ति, ये दृष्टश्रुतमतविज्ञाते चरन्ति (ला० ३१७ख), ते दृष्टश्रुतमतविज्ञातकामाः, न तु धर्मकामाः।

"भदन्त शारिपुत्र, धर्मस्संस्कृतासंस्कृतन्नास्तिः ये संस्कृतानचराः ते न धर्मकामाः, ते संस्कृतग्रहणकामाः। भदन्त शारिपुत्र, अत इच्छेश्चेद्धर्मं, त्वया सर्वधर्मा अप्रतिकाङ्क्षितव्याः"[२]।

अस्मिन् धर्मोपदेशे निर्दिश्यमाने, देवपुत्राणाम् पञ्चशत(स्य) धर्मेषु विशुद्धं धर्मचक्षुरुदपादि।

अथ लिच्छविर्विमलकीर्तिर्मंजुश्रीकुमारभूतमब्रवीत्—"मंजुश्रीः, दशदिक्षु शतसहस्राण्यसंख्येयानि बुद्धक्षेत्राणि बुद्धक्षेत्रचारिकां चरित्वा, कस्मिन् बुद्धक्षेत्रे सर्वोत्तमानि सर्वगुणसम्पन्नानि सिंहासनानि त्वया दृष्टानि?" एवमवोचत्।

मञ्जुश्रीकुमारभूतो लिच्छविं विमलकीर्तिमेतदवोचत्—"कुलपुत्र,

२ तुलनीय मज्झिमनिकाय, खण्ड १, पृ० ३१०—सब्बे धम्मा नाल अभिनिवेसया।

इतः पूर्वस्मिन् द्वात्रिंशद्-गङ्गानदीवालुकासमानि बुद्धक्षेत्राण्यतिक्रम्य, अस्ति मेरुध्वजो नाम लोकधातु'। तत्रमेरुप्रदीप(ला० ३१८क) राजो नाम तथागतस्तिष्ठति ध्रियते यापयति। तस्य तथागतस्य काय(प्रमाण) चतुरशीतिर्योजनशतसहस्राणि। तस्य भगवतस्सिंहासनप्रमाणमष्टषष्टिर्योजन-शतसहस्राणि। तेषां बोधिसत्त्वानां काय(प्रमाणम्) अपि द्विचत्वारिंशद्यो-जनशतसहस्राणि। तेषां बोधिसत्त्वानां सिंहासन(प्रमाणम्) अपि चतुर्त्रिंशद्योजनशतसहस्राणि। कुलपुत्र, तस्मिंस्तस्य मेरुप्रदीपराजस्य तथा गतस्य बुद्धक्षेत्रे मेरुध्वजे लोकधातौ सिंहासनानि सन्ति सर्वोसमानि सर्व-गुणसम्पन्नानि"।

ततस्तेन खलु समयेन तादृशमभिप्रायं सञ्चिन्त्य, लिच्छविना विमलकीर्तिनाऽस्या एवरूपर्द्धिविध्या अभिसंस्कारोऽभिसंस्कृतः, (यथा) मेरु-ध्वजाल्लोकधातोर्भगवता मेरुप्रदीपराजेन तथागतेत द्वात्रिंशत्सिंहासनसह-स्राण्यनुप्रेषितानि—एतावदुन्नतारोहाण्येतावद्विशालान्येतावद्दर्शनीयानि, यानि तैर्बोधिसत्त्वैश्च तैर्महाश्रावकैश्च तैःशक्रब्रह्मलोकपालदेवपुत्रैरदृष्टपूर्वाणि। तान्यु-परिविहायस (ला० ३१८ख) आगत्य, लिच्छवेर्विमलकीर्तेर्गृहे प्रतिष्ठा-नानि। द्वात्रिंशन्नानासिंहासनसहस्रेष्वनायातेन वहमानेषु, तद्गृहमप्येताव-द्विशालं दृश्यते स्म। वैशाल्यपि महानगर्यनिवृताऽभूत्; जम्बुद्वीप-श्चतुर्द्वीपको (लोकधातु—) श्चानिवृताः; सर्वे तेऽपि यथापूर्वं दृश्यन्ते स्म।

अथ लिच्छविर्विमलकीर्तिर्मञ्जुश्रीकुमारभूतमेतदवोचत्— "मंजुश्रीः, सिंहासनानुरूपकायाधिष्ठितास्त्वमिमे च बोधिसत्त्वाः सिंहासने (षु) निषीदत"। ततो येऽभिज्ञालाभिबोधिसत्त्वाः, ते द्विचत्वारिंशद्योजनशत-सहस्रस्वकायाधिष्ठिताः सिंहासने(षु) निषीदन्ति स्म। ये बोधिसत्त्वा आदिकर्मिकाः, ते तेषु सिंहासनेषु नीषीदितुमाशकन्।

ततो लिच्छविविमलकीर्तिर्यथा ते बोधिसत्त्वाः पञ्चाभिज्ञाया सिध्येयुस्तथा ह्येव तेभ्यो बोधिसत्त्वेभ्यो धर्मं देशयि। तेऽभिज्ञाम् प्राप्य, (ऋद्ध्या) (ला० ३१९क) द्विचत्वारिंशद्योजनशतसहस्रशरीराण्यभिनिर्माय, तेषु सिंहासनेषु निषीदन्ति स्म।

तेऽत्रापि महाश्रावकेषु तेषु सिंहासनेषु निषीदितुमसमर्थेषु, लिच्छविर्विमलकीर्तिस्ततत आयुष्मन्त शारिपुत्रमब्रवीत्–"भदन्त शारिपुत्र, सिंहासने निषीद"। अवोचत्–"सत्पुरुष, एषु सिंहासनेषूत्कृष्टेषु चातिमात्रेषु, निषीदितुन्न शक्नोमि"। अब्रवीत्–"भदन्त शारिपुत्र, तस्मै भगवते तथागताय मेरुप्रदीपराजाय कुरु प्रणामञ्च निषीदितु शक्ष्यसि"। अथ ते महाश्रावकास्तस्मै भगवते तथागताय मेरुप्रदीपराजायाभिवन्दनं कृत्वा पुरतस्ते सिंहासने(षु) न्यषीदन्।

अथाऽयुष्मांशारिपुत्रो लिच्छविं विमलकीतिमेतदवोचत्–"कुलपुत्र, आश्चर्यं (यथै–)वमुत्कृष्टातिमात्राणीदृशनानासहस्राणि सिंहासनान्येतावदल्पगृह प्रविशन्ति चैभिरपि वैशाली महानगरी निवृता नास्ति, जम्बूद्वीपस्य ग्रामनगरनिगमराष्ट्रराजधानी च चतुर्महाद्वीपकोऽपि (लोकधातु–)श्च न किंचिन्निवृत्ताः, अपि च देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुड (ला० ३१९ख) किन्नरमहोरगस्थानान्यनिवृतानि पूर्वं यादृशान्यायत्यपि दृश्यन्ते तथा"।

लिच्छविविमलकीर्तिरब्रवीत्–"भदन्त शारिपुत्र, तथागतेभ्यश्च बोधिसत्त्वेभ्योऽचिन्त्यो नाम विमोक्षोऽस्ति। तस्मिनचिन्त्यविमोक्षे विहरन् बोधिसत्त्व एतावदुन्नतातिरेकविपुलं सुमेरु पर्वतराजं सर्षपाभ्यन्तरम् प्रक्षिपन् तस्मिन् सर्षपेऽवर्धमाने च सुमेरावव्यये, (तादृशा) क्रियां देशयति। चातुर्महाराजकायिकदेवाश्च त्रयस्त्रिंशदेवा अपि 'कुत्र वयम् प्रक्षिप्ताः', न जानन्ति। अन्यैस्त्वृद्धिविधिवैनेयिकसत्त्वैः स पर्वतराजस्सुमेरुः सर्षपाभ्यन्तरम्

प्रक्षिप्तम् प्रज्ञायते च दृश्यते। म हि, भदन्त शारिपुत्र, बोधिसत्त्वानाम् अचिन्त्यविमोक्षविषयप्रवेशः।

"भदन्त शारिपुत्र, भूयोऽप्यचिन्त्यविमोक्षविहारिबोधिसत्त्वस्य चतुर्महासमुद्रस्य स्कन्धान् (ला० ३२०क) एकरोमकूपं प्रवर्तयः, मत्स्य-कूर्मशिशुमारमण्डूकान्यजलजप्राणिभ्य उपघातो नास्ति। नागयक्षगन्धर्वा-सुराणामप्येवं 'वय कुत्र विवेशयिता' इति न भवति; तस्याम् क्रियायां दृश्यमानाया, तेभ्यस्सत्त्वेभ्य उपघातश्च संक्षोभो नास्ति।

"अयमप्य-(चिन्त्यविमोक्षविहारिबोधिसत्त्वस्) त्रिसाहस्रमहा-साहस्रलोकधातु कुम्भकारस्य चक्रमिव दक्षिणहस्तेनाऽदाय च प्रवर्त्य, गङ्गानदीवालुकोपमलोकधा(तूनां दूरं क्षिपति); क्षिप्त(श्च) सत्त्वा 'वयं कुत्रोद्धृताः, कुत आगता' न जानन्ति। पुनरेव गृहीताः (स्व) स्थानमेव प्रतिष्ठापिता आगमनगमनञ्च जानन्ति, यद्यपि सा क्रिया संदृश्यते।

"भदन्त शारिपुत्र, भूयोऽप्यप्रमेयकालवैनेयिकसत्त्वा विद्यन्ते, विद्यन्ते च संक्षेप्य कालवैनेयिकाः। तत्राचिन्त्यविमोक्षविहारिबोधिसत्त्वोऽ-प्रमेयकालवैनेयिकसत्त्ववैनेयार्थाय सप्ताहं कल्पात्ययेन, संक्षेप्यकालवैनेयिक-सत्त्वेभ्यः कल्पं (ला० ३२०ख) सप्ताहात्ययेन दर्शयते। तत्राप्रमेयकाल-वैनेयिकसत्त्वाः सप्ताहं कल्पात्ययं जानन्ति। ये संक्षेप्यकालवैनेयिकसत्त्वाः, ते कल्पं सप्ताहेनातीतं जानन्ति।

"तथा ह्यचिन्त्यविमोक्षविहारिबोधिसत्त्वः सर्वबुद्धक्षेत्रगुणव्यूहानेक-बुद्धक्षेत्रे दर्शयते। चापि सर्वसत्त्वान् दक्षिणकरतल आधाय, चित्तजवनर्द्धि-त्रिध्या गच्छन्त्सर्वबुद्धक्षेत्राण्यादर्शयति, किं चाप्येकबुद्धक्षेत्रादचलितः। दशदिक्षु भगवते बुद्धाय यावत् पूजनानि, सर्वाणि तान्येकरोमकूपे देशयति।

दशदिक्षु यावच्चन्द्रश्चादित्यश्च तारकारूपाणि, सर्वाणि तान्यप्येकरोमकूपे दर्शयते।

"दशदिक्षु वायुमण्डलानि यावदुत्तिष्ठन्ति, सर्वाणि तानि मुखेन पीत्वा, तस्य कायोऽविनष्टश्च तेषा बुद्धक्षेत्राणाम् तृणवनस्पतयोऽप्रपतिताः। दशदिक्षु सर्वे त बुद्धक्षेत्रदहन(ला० ३२१क) कल्पोद्दाहाग्निराशिं स्वोदर प्रक्षिप्य, यत् कर्म तेन करणीयं, तत् करोति। अधस्ताद्गङ्गानदीवालुका-सम(ानि) बुद्धक्षेत्र(ाण्य) अतिक्रम्य, स (एक) बुद्धक्षेत्रमूर्ध्वमुत्क्षिप्य चाऽरुह्य, ऊर्ध्वं गङ्गानदीवालुकासम(ानि) बुद्धक्षेत्र(ाण्य) अतिक्रम्य, उपरिष्टात्—तद्यथापि नाम महास्थाम्ना पुरुषेण सूच्यग्रेण बदरपत्रमुच्छ्रितम्—एवमेवोत्क्षिप्तं (बुद्धक्षेत्रन्) निक्षिपति।

"तथा ह्यचिन्त्यविमोक्षविहारिबोधिसत्त्वः सर्वसत्त्वरूपमधितिष्ठति। चक्रवर्तिराजस्य रूपमधितिष्ठति; एवमेवाधितिष्ठति लोकपालशक्रब्रह्मश्रावक-प्रत्येकबुद्धबोधिसत्त्वसर्वसत्त्वबुद्धरूपम्।

"(स बोधिसत्त्वो) दशदिक्षु सत्त्वाना सर्वाग्रमध्यहीनशब्दप्रसिद्धः। याः काश्चन शब्दप्रज्ञप्तय', ताः सर्वा बुद्धघोषरुतंच बुद्धधर्मसंघशब्दमधि तिष्ठति, तस्मात् शब्दस्वराद् (ला० ३२१ख) अनित्यतादुःखशून्य-नैरात्म्यशब्दस्वर निश्चारयति; दशदिक्षु भगवान् बुद्धो यावदाकारमुपदेशेन दर्शयति, तेभ्यः सर्वेभ्यः शब्दस्वरेभ्यो निश्चारयति।

"भदन्त शारिपुत्र, अयं ह्यचिन्त्यविमोक्षविहारिबोधिसत्त्वविषय-प्रवेशः किंचिन्मात्र केवल दर्शितः। भदन्त शारिपुत्र, (तत्त्वतः) कल्पाभ्य-धिकं वा तदतिक्रान्तं वाऽचिन्त्यविमोक्षविहारिबोधिसत्त्वविषयप्रवेशोपदेशम् दर्शनीयम् (अभविष्यत्)।

अथ महाकाश्यपः स्थविर इमं बोधिसत्त्वाचिन्त्यविमोक्षोपदेशं श्रुत्वा, आश्चर्याद्भुतप्राप्तः शारिपुत्रं स्थविरमेतदवोचत्—"आयुष्मन् शारिपुत्र, तद्यथापि नाम जात्यन्धपुरुषस्याभिमुखं सर्वरूपोपपन्नानाम् क्रियाणाम् दर्शितानामपि तेन जात्यन्धनकरूपमपि तु न दृश्यते, एवमेवाऽऽयुष्मन् शारिपुत्र, अस्याचिन्त्यविमोक्षमुखस्य देशनाकाले सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धेभ्यो (ला० ३२२क) जात्यन्धसमेभ्यश्चक्षुर्नास्ति चैकमात्राचिन्त्यद्वारमप्यनभिमुखी-भूतम्। इममचिन्त्यविमोक्षं श्रुत्वा, का विचक्षणोऽनुत्तरसम्यक्संबोधिचित्तम् जनयेत् ?

"(अस्माभिः) प्रणष्टेन्द्रियैर्दग्धपूतिकबीजसदृशैरस्मै महायानाय भाजनाभूतैरिदानीम् कथं करणीयम् ? (अस्माभिर्) इमं धर्मोपदेशं श्रुत्वा, आर्तस्वरं क्रन्दित्वा, सर्वश्रावकप्रत्येकबुद्धैस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातौ शब्दमादातव्यम्। सर्वबोधिसत्त्वैरिममचिन्त्यविमोक्षं श्रुत्वा, युवको राजपुत्रो यथा मुकुटं गृहणीयाच्च प्रामोद्येन मूर्ध्नि प्रतिग्रहीष्यति, चास्मिन् स्वाधि-मुक्तिबलमुत्पादयितव्यम्। याऽस्मिन् अचिन्त्यविमोक्षेऽधिमुक्तिः, तस्यां सर्वमारा अपि किं कुर्युः ?"

महाकाश्यपेन स्थविरेनास्मिन्नुपदेशे देशिते, द्वात्रिंशद्देवपुत्रसहस्रा-ण्यनुत्तरसम्यक्संबोधिचित्तमुत्पादयन्ति स्म।

ततो लिच्छविविमलकीर्तिर्महाकाश्यपं स्थविरमेतदवोचत्—"भदन्त महाकाश्यप, दशदिक्ष्वपरिमाणलोकधातुषु ये केचिन्मारा (ला० ३२२ख) मारकारिणः, सर्वे तेऽचिन्त्यविमोक्षविहारिबोधिसत्त्वाश्चोपायकौशल्येन सत्त्वपरिपाचनार्थम्मारकारिणः।

"भदन्त महाकाश्यप, दशदिक्ष्वपरिमाणलोकधातुषु बोधिसत्त्वे (भ्यो) ये हस्तपदश्रोत्रघ्राणलोहितस्नाय्वस्थिमज्जाचक्षुः पूर्वकायशीर्षाङ्ग-

प्रत्यंगराज्यराष्ट्रप्रदेशभार्यापुत्रदुहितृदासदास्यश्वहस्तिरथवाहनसुवर्णजातरूप-मणिमुक्ताशङ्खस्फटिकशिलाप्रवाडवैडूर्यानर्घमणिरत्नाऽहारपानरसवस्त्रयाचकाः संबाधं कुर्वन्ति, सर्वे तेऽपि याचका यद्भूयसाऽचिन्त्यविमोक्षविहारिबोधि-सत्त्वा उपायकौशल्येनेमा (बोधिसत्त्व-)ध्याशयदृढता देशयन्ति। तत् कस्य हेतोः ? (ला० ३२३क) भदन्त महाकाश्यप, बोधिसत्त्वेषु कटुक-तपसैवं देशयत्सु, अकृतावकाशे जनकायाय बोधिसत्त्वसंबाधकरणानुभावो नास्ति। अकृतावकाशे (जनकायेन) हननोत्थापनम् अशक्यम्।

"भदन्त काश्यप, तद्यथापि नाम खद्योतकेन सूर्यमण्डलाभासोऽनाक्रमणीयः; एवमेव भदन्त काश्यप, अकृतावकाशे (जनकायेन) बोधि-सत्त्वाक्रमणोत्थापनमशक्यम्। भदन्त महाकाश्यप, तद्यथापि नाम कुञ्जर-मातङ्गाय नागराजाय गर्दभेन प्रहारदानमक्षमणीयम्; एवमेव भदन्त महा-काश्यप, बोधिसत्त्वाभावेन बोधिसत्त्वसम्बाधकरणमशक्यम्। (यद्य) अपि खो पन बोधिसत्त्वः खलु बोधिसत्त्वाय सम्बाध कुर्यात् (तद्-) बोधिसत्त्वसम्बाधकरण बोधिसत्त्वः क्षमते।

"भदन्त महाकाश्यप, अयं ह्यचिन्त्यविमोक्षविहारिबोधिसत्त्वानामु-पायज्ञानबलप्रवेशः"।

अचिन्त्यविमोक्षनिर्देशस्य परिवर्तं पचम।

८ देवी

अथ मंजुश्रीकुमारभूतो लिच्छविं विमलकीर्तिम् (ला०२२३ख) एवमवोचत्—"सत्पुरुष, बोधिसत्त्वेन सर्वसत्त्वाः कथं द्रष्टव्याः ?"—

अब्रवीत्—"मंजुश्रीः, तद्यथापि नाम विज्ञः पुरुष उदकचन्द्रं प्रेक्षते, एवमेव बोधिसत्त्वेन सर्वसत्त्वा द्रष्टव्याः। मंजुश्रीः, तद्यथापि नाम माया कारो मायाकारनिर्मितमनुष्यं प्रेक्षते, एवमेव बोधिसत्त्वेन सर्वसत्त्वा द्रष्टव्याः। मंजुश्रीः, तद्यथापि नामाऽऽदर्शमण्डले मुखं दृश्यम्, एवमेव बोधिसत्त्वेन सर्वसत्त्वा द्रष्टव्याः। मंजुश्रीः, तद्यथापि नाम मृगतृष्णिकाजलम् बोधिसत्त्वेन सर्वसत्त्वा द्रष्टव्याः। मंजुश्रीः, तद्यथापि नाम प्रतिश्रुत्काघोषनादिः ··· आकाशमेघराशिः ··· फेनपिण्डस्य पूर्वान्तः ··· (ला० २२४क) बुद्बुदोदय-व्ययौ ··· कदलीसारापेक्षेव ··· विद्युच्च्युतिरिव ··· पंचमधातुसदृशाः ··· सप्तमाऽऽयतनसदृशाः ·· आरूप्येषु रूपदर्शनसदृशा ··· दग्धबीजाद् ··· अङ्कुरनिष्पत्तिरिव ··· मण्डूकस्य रोमाऽऽच्छादनं यथा (ला० २२४ख) ·· मरणार्थिकस्य क्रीडारतिरिव ·· स्रोताऽऽपन्नस्य सत्कायदृष्टिर्यथा ··· सकृ-दागामिनि तृतीयभव इव ··· अनागामिनि गर्भावक्रान्तिः ··· अर्हति रागद्वेषमोहाः ··· क्षान्तिलाभिबोधिसत्त्वे मात्सर्यदौःशील्यव्यापादविहिंसा-चित्तम् ··· तथागते वासना ··· (ला० २२५क) जात्यन्धजनेन रूप दर्शनम् ··· निरोधसमापत्ति(लाभिन) आनापानः ··· अकाशे शकुनेः पदम् ··· पण्डकलाङ्गुलरोहणः ··· बन्ध्यापुत्रप्राप्तिः ··· तथागतनिर्मि-तस्य क्लेशोत्पत्तिः ··· विबोधे स्वप्नदृष्टदर्शनम् ··· असङ्कल्पे क्लेशः ··· (ला० २२५ख) अहेतुकस्याग्न्योत्पादः परिनिर्वृतस्य प्रतिसन्धिरिव

बोधिसत्त्वेन सर्वसत्त्वाः प्रत्यवेक्ष्याः । मंजुश्रीः, एवम् परमार्थत एव नैरात्म्य-प्रबोधेन सर्वसत्त्वाः प्रत्यवेक्ष्याः" ।

अब्रवीत्—"कुलपुत्र, यदि बोधिसत्त्वेन सर्वसत्त्वा एवम् प्रत्यवेक्ष्याः, कथमथ सर्वसत्त्वेषु महामैत्र्युपपत्स्यते ?"—

आह—"मंजुश्रीः, यदा बोधिसत्त्वस्तथा हिं प्रत्यवेक्षते—'एवं धर्मं परिज्ञाय, एभ्यः सत्त्वेभ्यो दर्शयामी'– ति ततः सर्वसत्त्वेषु सम्यक्-शरणमैत्र्युपपद्यते—

"अनुपादानकारणादुपशान्तमैत्री, क्लेशाभावेनातापमैत्री, त्र्यध्व-समताकारणाद्यथादुपमता मैत्री, पर्युत्थानाभाव (ला० ३२६क) कारणाद्-विरोधमैत्री, आध्यात्मिकबाह्यासम्भेदकारणादद्वयमैत्री, सुनिष्ठाकारणाद्-क्षोभ्यमैत्री, अभेद्याभिप्रायवज्रकारणाद् दृढमैत्री, स्वभावविशुद्धिकारणाद् विशुद्धिमैत्री, आशयसमताकारणात् समतामैत्री, अरिहननकारणादर्हन्मैत्री, अनाच्छेद्यसत्त्वपरिपाचनकारणाद् बोधिसत्त्वमैत्री, भूयोऽपि तथताऽधिगम-कारणात् तथागतमैत्री, सत्त्वापस्वापनसुप्रबोधनकारणाद् बुद्धमैत्री, स्वय-मभिसंबोधिकारणात् स्वयभूमैत्री, तुल्यरसकारणाद् बोधिमैत्री, अनुनय-प्रतिघप्रहाणकारणादनारोपमैत्री, महायानपर्यवभासकरणतो महाकरुणामैत्री, शून्यतानैरात्म्यप्रत्यवेक्षणकारणादपरिखेदमैत्री, आचार्यमुष्ट्यभावकारणाद धर्मदानमैत्री, दुःशीलसत्त्वापेक्षाकारणात् शील-(ला० ३२६ख)मैत्री, स्वपररक्षाकारणात् क्षान्तिमैत्री, सर्वसत्त्वभारवहनकारणाद् वीर्यमैत्री, अनास्वादकारणाद् ध्यानमैत्री, कालेनासाधनकारणात् प्रज्ञामैत्री, समन्त-द्वारदर्शनकारणादुपायमैत्री, अभिप्रायपरिशुद्धिकारणादकुहनमैत्री, पश्चात्ताप-करणतो निश्चलमैत्री, अनङ्गणकारणादध्याशयमैत्री, अकृत्रिमकारणादमाया-

विमैत्री, बुद्धसुखप्रतिष्ठापनकारणात् सुखमैत्री। मंजुश्रीः, मा हि बोधिसत्त्वस्य मैत्री।''

अब्रवीत्– ''तस्य महाकरुणा किम्?'' आह–''यद्यत् कुशलमूलं स्यात्, (तत्) सर्वसत्त्वेभ्य उत्सृजति''। अब्रवीत्– ''तस्य महामुदिता किम्?''। आह– ''यः (स) दानात् प्रीतिमनोभूतोऽविप्रतिसारः''। अब्रवीत्—''तस्योपेक्षा किम्?'' आह– ''यः (स) उभयार्थोत्पादः''।—

अब्रवीत्—''संसारभयभीतेन किं प्रतिसर्तव्यम्?'' आह– ''संसारभयभीतेन (ला० ३२७क) मंजुश्रीर्बोधिसत्त्वेन बुद्धमाहात्म्यं प्रतिसर्तव्यम्''। आह– ''बुद्धमाहात्म्ये स्थातुकामेन कुत्र स्थातव्यम्?'' आह– ''बुद्धमाहात्म्ये स्थातुकामेन सर्वसत्त्वसमतायां स्थातव्यम्।'' आह– ''सर्वसत्त्वसमतायां स्थातुकामेन कुत्र स्थातव्यम्'' आह– ''सर्वसत्त्वसमतायां स्थातुकामेन सर्वसत्त्वप्रमोक्षाय स्थातव्यम्''[1]।

अब्रवीत्– ''सर्वसत्त्वप्रमोक्षाय कर्तुकामेन कथं करणीयम्?'' आह– ''सर्वसत्त्वप्रमोक्षाय कर्तुकामेन क्लेशप्रमोक्षः करणीयः''। अब्रवीत्– ''क्लेशप्रहातुकामेन कथं प्रयोक्तव्यम्?'' आह– ''क्लेशप्रहातुकामेन योनिशः प्रयोक्तव्यम्''। अब्रवीत्– ''कथं प्रयुज्यमानो योनिशः प्रयुज्यते?'' आह– ''अनुत्पादानिरोधयोः प्रयोगो हि योनिशः प्रयोगोऽस्ति''[2]। अब्रवीत्– ''अनुदयः किम्, किम् अनिरोधः?''

---

१ अङ्गुत्तरनिकाय, खण्ड २, पृ० २४—

तस्मा हि अत्तकामेन महत्तमभिकङ्खता।
सद्धम्मो गरुकातब्बो सरं बुद्धान सासनं॥

२ रेखाङ्कित अंश, शिक्षासमुच्चय, पृ० [illegible] में सुरक्षित है।

आह– "अकुशलानुदयश्च कुशलानिरोधः" । अब्रवीत्– "कुशला-कुशलमूल (ला० ३२७ख) किम् ?" आह– "सत्काय – (दृष्टि) मूलम्" । अब्रवीत्– "सत्काय – (दृष्टि) मूल किम् ?" आह– "सत्काय – (दृष्टि) मूल रागः" । अब्रवीत्– "किं रागमूलम् ?" –आह– "रागस्य मूलं ह्यभूतपरिकल्पः" ।

अब्रवीत्— "अभूतपरिकल्पस्य किं मूलम् ?" आह– "(अभूतपरिकल्पस्य हि) विपर्यस्ता संज्ञा मूलम्" । आह– "विपर्यस्तायाः सज्ञायाः किं मूलम् ?" –(आह– "विपर्यस्तायाः सज्ञाया) अप्रतिष्ठान मूलम्" । आह– "अप्रतिष्ठायाः किं मूलम् ?" आह– "यन्मजुश्रीरप्रतिष्ठान, न तस्य किंचिन्मूलम् । इति ह्यप्रतिष्ठानमूलप्रतिष्ठिताः सर्वधर्माः" ।[३]

अथ तस्मिन् गृहे कस्यचित्स्थानस्य देवी, तेषा बोधिसत्त्वानाम् महासत्त्वानामिमा धर्मदेशना श्रुत्वा, हृष्टोदग्रा चात्तमनाः, औदारिकमात्म भावमभिसदृश्य, दिव्यपुष्पैस्तान् बोधिसत्त्वान् महासत्त्वांश्च महाश्रावकान-भिकिरति स्म । यानि च बोधिसत्त्वाना कायेऽभ्यवकीर्णानि पुष्पानि, तानि भूमौ प्रपतन्ति स्म । (ला० ३२८ क) यानि महाश्रावकानां काय आपन्नानि पुष्पानि, तानि तत्रैव प्रसक्तानि भूमौ न प्रपतन्ति स्म । ततस्ते महाश्रावका ऋद्धिविधिप्रातिहार्येण पुष्पान्याधुनन्ति स्म, अपि खो पन तानि न प्रपतन्ति स्म ।

अथ सा देवयायुष्मन्त शारिपुत्रमेतदवोचत्— "भदन्त शारिपुत्र,

---

३ रेखाङ्कित अंश शिक्षासमुच्चय, पृ० १४० में सुरक्षित है परन्तु कोष्ठान्तगत वाक्यांश तिब्बती से पुनर्निर्मित किये गये हैं ।

इमानि पुष्पान्याधूय किं करिष्यसि ?" आह– "देवि, इमानि पुष्पानि न युज्यन्ते, तस्मादिमानि पुष्पानि रिंचामि"। देव्यब्रवीत् – "भदन्त शारिपुत्र, एवम्मा वादीः। तत् कस्य हेतोः ? युज्यन्त इमानि पुष्पानि। तत् कस्य हेतोः ? यतस्तानि पुष्पानि निर्विकल्पानि। निर्विकल्पेषु शारिपुत्रः स्थविर एव कल्पयति च विकल्पयति। भदन्त शारिपुत्र, यत् स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रजिताः कल्पयन्ति च विकल्पयन्ति, तद्धि न युज्यते। स्थविरे कल्पयति च विकल्पयति, यन्निर्विकल्पं तद्धि युज्यते।

"पश्य, भदन्त शारिपुत्र—तथा हि कल्पविकल्पप्रहाणकारणाद् बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां काये पुष्पानि न सज्जन्ति। तद्यथापि नाम भयजातीयमनुष्येऽमनुष्यैरवतारो लभ्यते, एवमेव संसारभयभीतेषु रूपशब्द (ला० ३२८ख) गन्धरसस्प्रष्टव्येभ्योऽवतारः प्रतिलभ्यः। ये सर्वसंस्कारक्लेशभयापगताः, तेभ्यो रूपशब्दगन्धरसस्प्रष्टव्यानि किं करिष्यन्ति ? येषु वासनाऽप्रहीणा, तेषु पुष्प (ान्य) पि सज्जन्ति; येषां तु वासना प्रहीणा, तेषां काये पुष्प(ाणि) न सज्जन्ति। तस्मात् सर्ववासनाविघातकानां काये पुष्प(ान्य) सक्तानि"।

तत आयुष्मांशारिपुत्रस्तां देवीमेतदवोचत्—"देवि, त्वमिमं गेहं प्रविश्य कियच्चिरं चरितम् ?" देव्याह– "स्थविरो विमोक्षं प्रविष्टो यावत्, (तद्-)चिरम्"। अब्रवीत्– "देवि, त्वमस्मिन् गेहे स्थित्वा, अचिरं दृष्टा"। आह– "स्थविरो विमोक्षं प्रविष्टः कियच्चिरम् ?"– अथ स्थविरस्तूष्णीभूतोऽभूत्। आह– "महाप्रज्ञावतामग्र्यः स्थविरः कस्मान्मौनी चेदानीं सहसा प्रश्नं परिहरसि ?" अब्रवीत्– "देवि, विमोक्षोऽनभिलाप्यश्च स यथा वक्तव्यः, (तत्) न जानामि"। आह– "यानि स्थविरेणाक्षराण्युक्तानि, सर्वाणि तानि विमोक्ष(ला० ३२९क)लक्षणानि।

तत् कस्य हेतोः ? यो विमोक्षः, स ह्यनन्तरगतश्च न बहिर्धा नोभयश्चानुपलब्धः। एवमेव ताम्यक्षराण्यनन्तरगतानि न च बहिर्धा नोभयानि चानुपलब्धानि। तस्मात्, भदन्त शारिपुत्र, अक्षरापकर्षणेन विमोक्षम्मा प्रतिवेदयस्व। तत् कस्य हेतोः ? यतः सर्वधर्मसम(ता)ऽऽर्यविमोक्षः"। अब्रवीत्– "देवि, रागद्वेषमोहापगतेषु विमोक्षो ननु नास्ति ?" देव्याह– "'रागद्वेषमोहापगतेषु विमोक्ष' इति स ह्यभिमानिकेभ्य उपदेशः। येऽनभिमानिकाः, तेभ्यो हि रागद्वेषमोहस्वभावता विमोक्षः"।

अथाऽयुष्माशारिपुत्रस्ता देवीमेतदवोचत्—"साधु, देवि, किं प्राप्य, किं साक्षात्कृत्य त्वमेवप्रतिभानवती ?"। आह– "भदन्त शारिपुत्र, मया न किञ्चित् प्राप्त वा साक्षात्कृत वा। अतो मे प्रतिभान ईदृशः। येषामेवम् 'अस्माभि प्राप्तश्च (ला० ३२९ख) साक्षात्कृतम्' इति, ते हि स्वाख्यातधर्मविनये 'ऽतिमानिका' उच्यन्ते"।

अब्रवीत्—"देवि, त्व किं श्रावकयानीया प्रत्येकबुद्धयानीया वा महायानीया वा ?" आह– "श्रावकयानं दर्शयती, अहं श्रावकयानिनी। द्वादश(ाग)प्रतीत्यसमुत्पादद्वारेणावतारणेन्-आह प्रत्येकबुद्धयानिनी। अनुत्सृष्टायाम्महाकरुणायाम् अहम्महायानीया।

"भदन्त शारिपुत्र, अपि तु खलु पुनर्यथा चम्पकवने प्रविष्टे, एरण्डगन्धो न घ्रायते, चम्पकवने प्रविष्टेऽपि खो पन चम्पकगन्धो घ्रायते, एवमेव, भदन्त शारिपुत्र, अस्मिन् बुद्धधर्मगुणगन्धोपेते गेहे विहारिणा श्रावकप्रत्येकबुद्धगन्धो न घ्रायते।

"भदन्त शारिपुत्र, ये शक्रब्रह्मलोकपालदेवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिंनरमहोरगा अस्मिन् गेहे निविष्टाः, तेऽप्यस्य सत्पुरुषस्य धर्मं श्रुत्वा, बुद्धधर्मगुणगन्धेन बोधिचित्तमुत्पाद्य प्रक्रान्ताः।

"भदन्त शारिपुत्र, (ला० ३३०क) अस्मिन् गेहे द्वादश वर्षाणि महामैत्रीमहाकरुणा समर्पिता चाचिन्त्यबुद्धधर्मसम्प्रयुक्तां (कथां) स्थापयित्वा, श्रावकप्रत्येकबुद्धसहगतां कथा पुरा नाश्रौषम्। भदन्त शारिपुत्र, अस्मिन् गृहेऽष्टविधा आश्चर्याद्भुतप्राप्ता धर्माः सततसमितमाभासं गच्छन्ति। कतमेऽष्टौ ?

"अस्मिन् गृहे सततसमितं सुवर्णवर्णप्रभा। अतो रात्रिदिवश्च प्रज्ञायते। अस्मिन् गृहे चन्द्रसूर्यौ न च दृश्येते। अयं प्रथम आश्चर्याद्भुतो धर्मः।

"पुनरपरं, भदन्त शारिपुत्र, ये प्रविशन्ति इदं गृहं, तेषां समनन्तरप्रविष्टानां सर्वक्लेशा न बाधन्ते। अयं द्वितीय आश्चर्याद्भुतो धर्मः"[४]।

"पुनरपरं, भदन्त शारिपुत्र, अस्मिन् गृहे सदा शक्रब्रह्मलोकपालाश्च सर्वबुद्धक्षेत्रागता बोधिसत्त्वा अविरहिताः। अयं तृतीय आश्चर्याद्भुतो धर्मः।

"पुनरपर, भदन्त शारिपुत्र, अस्मिन् गृहे सततसमितं धर्मश्रवणश्च षट्पारमिताप्रतिसंयुक्ता कथा चाविवर्तिकधर्मचक्रकथा (ला० ३३० ख) ऽविरहिताः। अयं चतुर्थ आश्चर्याद्भुतो धर्मः।

"पुनरपरं, भदन्त शारिपुत्र, अस्मिन् गृहे सदा दिव्यमानुष्यदुन्दुभिसङ्गीतवाद्यं क्रियते; तेभ्यो दुन्दुभिभ्यो बुद्धधर्म(स्य) अप्रमेयविधिघोषः सर्वकालेषूत्पद्यते। अयं पञ्चम आश्चर्याद्भुतो धर्मः।

"पुनरपरं, भदन्त शारिपुत्र, अस्मिन् गृहे सर्वरत्नसम्पूर्णाश्चतुरक्षयमहानिधयो विद्यन्ते। तदनुभावेन सर्वैर्दरिद्रैश्च व्यसनिभिः प्रपन्नम्, (महानिधि-) कुण्डमपि त्वक्षयम्। अयं षष्ठ आश्चर्याद्भुतो धर्मः।

---

४. रेखाङ्कित अंश शिक्षासमुच्चय, पृ० १४३ में उद्धृत है।

"पुनरपरं, भदन्त शारिपुत्र, अस्मिन् गृहे तथागताः शाक्यमुनिश्चामिताभश्चाक्षोभ्यश्च रत्नश्रीश्च रत्नार्चिश्च रत्नचन्द्रश्च रत्नव्यूहश्च दुष्प्रहश्च सर्वार्थसिद्धश्च महारत्नश्च सिंहप्रसिद्धिश्च सिंहस्वरश्चाऽदयो दशदिक्ष्वपरिमाणतथागता अस्य सत्पुरुषस्य सहचित्तमात्रेण समागच्छन्ति चागतास्तथागतगुह्यन्नाम (ला० ३३१क) धर्ममुखप्रवेशं निदर्श्य प्रतिगच्छन्ति। अयं सप्तम आश्चर्याद्भुतो धर्मः।

"पुनरपरं, भदन्त शारिपुत्र, अस्मिन् गृहे सर्वदेववेश्मव्यूहाश्च सर्वबुद्धक्षेत्रगुणालङ्कारा आभासं गच्छन्ति। अयमष्टम आश्चर्याद्भुतो धर्मः।

"भदन्त शारिपुत्र, अस्मिन् गृहे तेष्वष्टास्वाश्चर्याद्भुतेषु धर्मेष्वाभासं गच्छत्सु चेदृशाचिन्त्यधर्मे दृश्यमाने, कः श्रावकधर्ममिच्छेत् ?"

अब्रवीत्—"देवि, यदि ते स्त्रीभावात् स्याद्विकारः, किमपराधः ?" आह—"यावद् द्वादश वर्षाणि स्त्रीभावम्मे मृग्यमाणा, (सो)-ऽद्यापि (मया) नोपलभ्यते। भदन्त शारिपुत्र, तस्यै मायाकारेण निर्मितायै स्त्रियै एवं 'यदि ते स्त्रीभावात् स्याद्विकारः, किमपराध ?' इत्युक्ते, तत् किं कथयेत ?" अब्रवीत्—"तत्र किंचित्संपरिनिष्पन्नन्नास्ति"। आह—"भदन्त शारिपुत्र, एवमेव सर्वधर्मेष्वपरिनिष्पन्नेषु च मायानिर्माणस्वभावेषु, त्वं 'यदि स्त्रीभावात् स्याद्विकारः, किमपराध ?' इति (पृच्छन्)—तत् किं मन्यसे ?"

अथ सा देव्येतादृशाधिष्ठानाधिष्ठिताऽभूत्, यथा शारिपुत्रः स्थविरो यादृशा सा देवी तादृशा (ला० ३३१ख) दृश्यते स्म, सा देव्यपि यादृशः शारिपुत्रः, स्थविरस्तादृशो दृश्यते स्म।

ततः सा शारिपुत्रस्य रूपमापन्ना देवी त देवीरूपापन्नं शारिपुत्रमेवम्—"भदन्त शारिपुत्र, यदि स्त्रीभावात् स्याद्विकारः, किमपराध ?"

इति पृच्छति स्म। देवीरूपापन्नः शारिपुत्र एतदवोचत्—"मम पुरुष-रूपस्यान्तर्हितस्य, स्त्रीकायापन्नो यो विकारस्तन्न जानामि"।

आह—"यदि स्थविरः स्त्रीरूपात् प्रतिविकारस्य समर्थः स्यात्, सर्वाः स्त्रियः स्त्रीभावात् परिवर्तेरन्। यथा स्थविरः स्त्री-(रूपे) दृश्यते, तथा सर्वाः स्त्रियोऽपि स्त्रीरूपेषु दृश्यमानाः स्त्र्यभावात् स्त्रीरूपेषु दृश्यन्ते। ततो भगवता 'सर्वे धर्मा' स्त्रीपुरुषाभावा' इति संधाय भाषितम्"।

अथ सा देवी तदधिष्ठानमुत्सृजति स्म, आयुष्मांश्च शारिपुत्रः पुनः स्वरूपोपसंहितोऽभूत्। अथ सा देवी शारिपुत्रमेतदवोचत्—"भदन्त शारिपुत्र, क्व ते स्त्रीपुद्गली?" अब्रवीत्— "(सा) मया न च कृता न चापि विकृता (ला० २२२क)"। आह— "एवमेव सर्वधर्मा अप्यकृताश्चा-विकृताः। यदकृतंचाविकृतंच—तद्धि बुद्धवचनम्"।

अब्रवीत्—"देवि, इतश्च्युत्वा कुत्रोपपत्स्यसे?" आह— "यत्र तथागतनिर्माणान्युत्पद्यन्ते, तत्राहमप्युपपत्स्ये"। अब्रवीत्— "तथागत-निर्माणेषु न भवतश्च्युत्पत्ती"। आह—"सर्वे धर्माश्च तथैव च्युत्युत्पत्त्य-पगताः"।

अब्रवीत्—"देवि, केन चिरेण त्वं बोधिमभिसंभोत्स्यसे?" आह— "यदा, स्थविर, पृथग्जनधर्मसंपन्नो भविष्यसि, तदाऽपि बोधिमभि-सम्बुद्धामि"। अब्रवीत्— "देवि, (यद्—) अहं पृथग्जनधर्मसंपन्नो भवेयम्, तदस्थानम्"। आह— "भदन्त शारिपुत्र, एवमेव (यद्—) अहमपि बोधिमभिसंबुध्यामि, तदस्थानम्। तत् कस्य हेतोः? बोधिरस्थाने प्रतिष्ठिता; अतोऽस्थाने न कश्चिदभिसंबुद्धति"।

[illegible] शारिपुत्रः स्थविरोऽवोचत्—"तथागतेनाऽऽख्यातम्—'गंगानदी-वालुकासमास्तथागता अभिसं(ला० २२२ख)बुद्धाः, अभिसंबुध्यन्त्य-

भिसंभोत्स्यन्त' इति" । देव्याह– "भदन्त शारिपुत्र, 'अतीतानागत-प्रत्युत्पन्ना बुद्धा' इति तथ्यक्षरगणनासंकेताधिवचनम् । अतीतानागत-प्रत्युत्पन्नेषु बुद्धेष्वभूतेषु, बोधिस्त्र्यध्वसमतिक्रान्ता । स्थविरः किम् अर्हत्त्व-लाभी ?" अब्रवीत्– "अप्राप्तिहेतोर्लाभी" । आह– "एवमेवाभिसबोध्य-भावहेतोरभिसंबोधिः" ।

ततो लिच्छविर्विमलकीर्तिरायुष्मन्त शारिपुत्र स्थविरमेतदवोचत्— "भदन्त शारिपुत्र, इय देवी बुद्धानां द्विनवतिकोटिनयुतानि पर्युपास्य, अभिज्ञाज्ञाननिक्रीडिता प्रणिधानसंभूता क्षान्तिलाभिनी, अवैवर्तिक—रं प्रस्थिता सत्त्वपरिपाचनार्थाय प्रणिधानवशेन यथेष्टं तथाऽवस्थिता" ।

देव्याः परिवर्तः (ला० ३२३क) षष्ठः ।

७ तथागतगोत्रम्

ततो मंजुश्रीकुमारभूतो लिच्छविं विमलकीर्तिमेतदवोचत्—"कुल-पुत्र, अथ कथम् बोधिसत्त्वो बुद्धधर्मेषु गतिं गच्छति ?" आह—"मंजुश्रीः, यदा बोधिसत्त्वोऽगतिं गच्छति तदा बोधिसत्त्वो बुद्धधर्मेषु गतिं गच्छति"। अब्रवीत्— "बोधिसत्त्वस्य आगतिगमनं किम् ?"

आह—"यदा (बोधिसत्त्वः) पंचानन्तरीयाणां गतिगामी, व्यापादविहिंसाप्रद्वेषोऽपि न भविष्यन्ति। नरकगतिगामी (सः), परं तु सर्वक्लेशविरजाः। तिर्यग्गतिगामी तु (स) मौर्ख्यान्धकारापगतः। (सो)ऽसुरगतिगामी च मानमददर्पविगतः ; यमलोकगतिगामी सर्व-पुण्यज्ञानसंभारोपात्तवान् ; अनिंज्याऽरूप्यगतिगामी, परं तु तद्गतिम समवक्रमति।

"(स) रागगतिगामी च सर्वकामसंभोगवीतरागः, द्वेषगतिगामी सर्व (ला० ३२३ख) सत्त्वाप्रतिहतः ; मोहगतिगामी सर्वधर्मेषु प्रज्ञा-निध्यप्तिचित्तसमर्पितः।

"मात्सर्यगतिगामी कायजीवितनिरपेक्षः (स) आध्यात्मिकबाह्य (–ानि) वस्तु(–न्य्–) उत्सृजति। दुःशीलगतिगामी, परं स्वल्पावद्येऽपि भयदर्शी (स) सर्वधूतगुणसंलेखेषु सन्तिष्ठते, व्यापादखिलप्रतिघगतिगामी चात्यन्ताव्यापन्नो मैत्रीविहारी; कौसीद्यगतिगामी चाप्रतिप्रस्रब्धो वीर्य-मारभमाणः सर्वकुशलमूलपर्येषणाभियुक्तो भवति। इन्द्रियव्यभिचार-गतिगामी स्वभावसमापन्नोऽमोघध्यानः, दौष्प्रज्ञगतिगामी प्रज्ञापारमिता-गतिमुपसंक्रम्य, (स) सर्वलौकिकलोकोत्तरशास्त्रपण्डितः।

"कुहनलपनाकारगतिगामी च सन्ध्याभाष्येषु कुशलः (स) उपाय-कौशल्यचर्यानिर्यातः, मानगतिं दर्शयन् (स) सर्व (ला० ३३४क) लोकसेतुवेदिका भवति, क्लेशगतिगामी, परं त्वत्यन्तसंक्लेशरहितः स्वभाव-परिशुद्धः।

"मारगतिगामी च सर्वबुद्धधर्मेष्वपरप्रणेयः; श्रावकगतिगामी (स) सत्त्वांस्त्वश्रुतधर्मं श्रावयति, प्रत्येकबुद्धगतिगामी सर्वसत्त्वपरिपाचनार्थ-म्महाकरुणादुत्पन्नः, दरिद्रगतिगामी त्वक्षयपरिभोगरत्नपाणिः, उपहतेन्द्रिय-गतिगामी (स) त्वभिरूपो लक्षणसमलकृतः, हीनकुलीनगतिगामी पुण्य-ज्ञानसंचयेन तथागतवशात् प्रजायते, दुर्बलदुर्वर्णमन्दगतिगामी दर्शनीयो नारायणप्रतिरूपककायलाभी।

"सर्वसत्त्वेभ्य आतुरदुःखचर्यां देशयमानो मरणभयसमतिक्रान्तस्-(स) सुमारित(भयः); परिभोगगतिगामी सर्वाण्वेषणरहितोऽनित्यता-संज्ञायाम् बहुप्रत्यवेक्षणः, बोधिसत्त्वो-(ला० ३३४ख)ऽन्तःपुरानेकरसान् देशयमानः किं तु विवेकचारी कामकर्दमोत्तीर्णः[1]। धात्वायतनगतिगामी (स) धारणीप्रतिलब्धो नानाप्रतिभानविभूषितः, तीर्थिकगतिगामी तीर्थ्यः (स) न भवति, सर्वलोकगतिगामी सर्वग्त्यप्रतिनिवर्ती, निर्वाणगतिगामी ससारप्रबन्ध नोत्सृजति। मञ्जुश्रीः, इत्येवं बोधिसत्त्वोऽगतिं गच्छन् बुद्ध-धर्मेषु गतिं गच्छति"।

---

१ दुन हुआंग (मध्य ऐशिया) के एक बौद्ध शलकृत विहार से प्राप्त सोग्दियन भाषा मे विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र के अनुवाद की पाण्डुलिपि यहाँ से प्रारम्भ होकर आठवें परिवत के प्रारम्भ तक है।

एच राइशेल्ट ने इस सोग्दियन पोथी के खण्डाशो का सम्पादन एव जमन अनुवाद किया है। द्र० दि सोग्दिश्चेन हैण्डश्किफ्टेन्रेस्टे देस ब्रिटिश्चेन म्युजिम्स, भाग १– दी बुद्धिस्टिश्चेन टेक्स्टे, हाइडेलबग, १९२८।

अथ लिच्छविर्विमलकीर्तिर्मञ्जुश्रीकुमारभूतमेतदवोचत्—"मञ्जुश्रीः, किं तथागतगोत्रम् ?" अब्रवीत्—

"कुलपुत्र, सत्कायो हि गोत्रं तथागतानाम् । अविद्याभवतृष्णा हि गोत्रम् । रागद्वेषमोहचतुर्विपर्यास पञ्चनीवरणषडायतनसप्तविज्ञानस्थित्य[२]—अष्टमिथ्यात्वनवाऽघात–(ला० ३३५ क)वस्तु दशाकुशलकर्मपथा हि गोत्रम् । कुलपुत्र, इदं तथागतगोत्रम्; सक्षेपात्, कुलपुत्र, द्वाषष्टिर्दृष्टिगतानि हि तथागतगोत्रम्" ।

आह—"मञ्जुश्रीः, कस्मात् समन्वाहृत्यैतद्भाषसे ?" अब्रवीत्—"कुलपुत्र, असंस्कृतदर्शनसमवक्रान्तिस्थानेनानुत्तरसम्यक्सम्बोधिचित्तोत्पादोऽशक्यः । क्लेशाकरसंस्कृतस्थानसत्यादर्शनेनानुत्तरसम्यक्सम्बोधिचित्तोत्पादः शक्यः ।

"कुलपुत्र, तद्यथापि नाम जांगल प्रदेशे कुसुमानि—उत्पलपद्मकुमुदपुण्डरीकसौगन्धिकानि नोत्पद्यन्ते; पंकपुलिन उत्पादितानि चेत्, कुसुमानि—उत्पलपद्मकुमुदपुण्डरीकसौगन्धिकान्युत्पद्यन्ते । कुलपुत्र, एवमेवासंस्कृतनियतप्राप्तिसत्त्वेभ्यो बुद्धधर्मा नोत्पद्यन्ते । क्लेशपंकपुलिनोपपन्नसत्त्वेभ्यो बुद्धधर्मा उत्पद्यते ।

"तद्यथापि नामाऽकाशे बीजन्न विरोहति, भूमि परतु वर्तमान विरोहति । एवमेवासंस्कृतनियतप्राप्तिसत्त्वेभ्यो (ला० ३३५ख) बुद्धधर्मा नोत्पद्यते; सुमेरुसमां सत्कायदृष्टिमुत्पाद्य बोधिचित्तमुत्पद्यते ततश्च बुद्धधर्मा विरोहन्ति[४] ।

---

२ द्र० दीघनिकाय, खण्ड २, पृ० ५५–५६, खण्ड ३, पृ० १९४–१९५, अङ्गुत्तर निकाय, खण्ड ३, पृ० १८२–१८४–सत्तविञ्ञाणठितियो ।

३ द्र० दीघनिकाय, खण्ड १, पृ० २०३ ।

४ रेखांकित अंश शिक्षासमुच्चय, पृ० ७ में उद्धृत है ।

"कुलपुत्र, अनेन पर्यायेण सर्वे क्लेशास्तथागतगोत्र द्रष्टव्याः। कुलपुत्र, तद्यथापि नाम महासमुद्रेऽप्रविष्टे, अनर्घ्यरत्नमनुप्राप्तुमशक्यम्, एवमेव क्लेशसागरेऽप्रविष्टे, सर्वज्ञताम् तस्मादुत्पादयितुमशक्यम्"।

अथ महाकाश्यपः स्थविरो मंजुश्रीकुमारभूताय साधुकारमदात्— "साधु, साधु। मञ्जुश्रीः, इदं वचन सुप्रभाषितम्, इद तत्त्वम्। क्लेश (ा–स्) तथागतगोत्रम्, अस्मद्विधेभ्यस्–तु बोधिचित्तोत्पादश्च बुद्धधर्मम-भिसम्बोद्धु कथ शक्यम्? पञ्चानन्तरीयसयोगेन हि बोधिचित्तोत्पादः शक्यश्च बुद्धधर्मा अप्यभिसम्बोधनीयाः। तद्यथापि नाम विकलेन्द्रिय-पुरुषाय पञ्च कामगुणा निर्गुणाश्चासमर्थाः (ला० २२६क), एवमेव परि-वर्जितसर्वसयोजनाय श्रावकाय सर्वे बुद्धधर्मा निर्गुणश्चासमर्थाः; तस्मै प्रत्यालम्बनमसमर्थम्।

"मञ्जुश्रीः, अतः पृथग्जनास्तथागते कृतज्ञाः, किं तु श्रावका अकृतज्ञाः। तत् कस्य हेतोः? यदर्थं पृथग्जनो बुद्धगुणश्रवणेन त्रिरत्नगोत्रमनुच्छिन्नकर-णार्थमनुत्तरसम्यक्सम्बोधिचित्तोत्पाद करोति, श्रावकस्तु यावज्जीवम् बुद्ध-धर्मबलवैशारद्यानि श्रुत्वाऽप्यनुत्तरसम्यक्सम्बोधिचित्तोत्पादेऽसमर्थः"।

ततस्सर्वरूपसन्दर्शनो नाम बोधिसत्त्वस्तस्याम् पर्षदि सन्निपतितो निषण्णो (ऽभूत्)। स लिच्छविं विमलकीर्तिमेतदवोचत्—"गृहपते, क ते मातापितरौ च पुत्रदाराश्च दासदासीकर्मकरपौरुषेयाः? क ते मित्रज्ञाति-सालोहिताः? तव परिवाराश्चहस्तिरथपत्तिवाहनानि क?" एवमब्रवीत्। (ला० २२६ख) लिच्छविर्विमलकीर्तिः सर्वरूपसन्दर्शन बोधिसत्त्वमिमा गाथा अभाषत—

"विशुद्धबोधिसत्त्व(ाना)। माता हि प्रज्ञापारमिता।
पिताऽस्त्युपायकौशल्यम्। ताभ्यां जायन्ते परिणायकाः॥

धर्मप्रीतिरस्ति पत्नी । मैत्रीकरुणे दुहितरौ (तेषां) ।
उभे धर्मसत्ये स्तः पुत्रौ । शून्यताऽर्थचिन्तिर्गृहम् ॥

एवं हि सर्वे क्लेशास् (तेषां) । यथेष्टवशवर्तिशिष्याः ।
मित्र (ाणि) बोध्यंग (ानि) । तैर्हि बोधिर्वराप्रोत्पद्यते ॥

सहाय (ास्—) तेषां सदासंवाम (ाः) । सन्ति षट् पारमिताः ।
संग्रहा नारीभवन(ानि) । संगीतिस् (तेषां) धर्मदेशना ॥

तेषामुद्यानं भूतिकानि । बोध्यङ्गपुष्पितम् ।
विमुक्तिज्ञानम् फलम् । धर्ममहाधन (सन्ति) वृक्षाः ॥

विमोक्षा भवन्ति पुष्करिणी (तेषां) । पूरिता समाधिजलेन ।
विशुद्धिपद्मेनाऽऽच्छादिता । (येषां) तस्यां प्रक्षालनं विमलास्ते ॥

अभिज्ञा (स्—) तेषां वाहनम् । महायानमनुत्तरम् ।
सारथि (—र्भवति) बोधिचित्तं । मार्गो ह्यष्टाङ्गिकशान्तिः ॥

तेषां विभूषणं (सन्ति) लक्षणानि । अशीतिरनुव्यञ्जनानि च ।
कुशलाऽऽशयो (ला० ३३७क) ह्रीरपत्रपा । सन्ति वस्त्र(ाणि) तेषाम् ॥

सद्धर्मधनवन्तस्ते । प्रयोगस—(तेषां) धर्मदेशना ।
पवित्रा प्रतिपत्तिर्महालाभः । परिणामं (तेषां) बोध्यर्थं ॥

शयनश्च भवन्ति चत्वारि ध्यानानि । शुद्धाऽऽजीवेन संस्तृतास्ते ।
ज्ञानं तत्प्रबोधः । सदा श्रवणसमापन्ना (स्ते) ॥

तदाहारश्च भवत्यमृत । पानं विमुक्तिरसः ।
विशुद्धाभिप्रायोऽस्ति स्नान । (तेषां) शीलं गन्धविलेपनम् ॥

क्लेशशत्रूपघातेनाथ । अजितवीरास्ते ।
चतुरोऽपि मारान् प्रधर्षितवन्तः । उच्छ्रितवन्तो बोधिमण्डलध्वजं ॥

सञ्चिन्त्यं दर्शयन्ति जातिं । किं चापि (ते) ऽजन्मानुत्पादाः ।

सर्वक्षेत्रेषु चाऽभासन्ते । सूर्यो यथा समुदितः ॥
विनायके (भ्यः) सर्वपूजनैः । बुद्धानां कोट्यै पूजां कृत्वा ।
न कदाचिद् (एतद् भवति) – ।
'अस्मा (–भि) बुद्धेभ्यः परिसेवितव्यम्' ॥
किं चापि सत्त्वहिताय । बुद्धक्षेत्रावचरा (स्ते) ।
(ज्ञात्वा) ऽऽकाशोपमानि क्षेत्राणि । सत्त्वे (–षव्–) असत्त्वसञ्ज्ञिनः ॥
सर्वसत्त्वान ये रूपा रुतघोषाश्च ईरिताः ।[५]
एकक्षणेन दर्शन्ति बोधिसत्त्वा विशारदाः ॥
मारकर्माणि किं चापि जानन्ति । (ला० ३३७ख) मारानुबन्धिनः ।
उपायपार गतास् (–ते)। तत्सर्वक्रिया दर्शयन्ति ॥
ते जीर्णव्याधिता भोन्ति मृतमात्मान दर्शयी ।
सत्त्वानां परिपाकाय मायाधर्म विक्रीडिताः ॥
कल्पोद्दाहं च दर्शेन्ति उद्दहित्वा वसुन्धराम् ।
नित्यसंज्ञिन सत्त्वानाम् अनित्यमिति दर्शयी ॥
सत्त्वैः शतसहस्रेभिरेकराष्ट्रे निमन्त्रिताः ।
सर्वेषां गृह भुञ्जन्ति सर्वान्नामन्ति बोधये ॥
ये केचिन्मन्त्रविद्या वा शिल्पस्थाना बहूविधाः ।
सर्वत्र पारमिप्राप्ताः सर्वसत्त्वसुखावहाः ॥
यावन्तो लोकपाषण्डाः सर्वत्र प्रव्रजन्ति ते ।
नानादृष्टिगत प्राप्तांस्ते सत्त्वान् परिपाचति ॥

---

५ रेखाकित गाथाएँ शिक्षासमुच्चय, पृ० १७२ में सुरक्षित हैं ।

चन्द्रा वा भोन्ति सूर्या वा शक्रब्रह्मप्रजेश्वराः ।
भवन्ति आपस्तेजश्च पृथिवी मारुतस्तथा ॥

रोग अन्तरकल्पेषु भैषज्यं भोन्ति उत्तमाः ।
येन ते सत्त्व मुच्यन्ते सुखी भोन्ति अनामयाः ॥

दुर्भिक्षान्तरकल्पेषु भवन्ती पानभोजनम् ।
क्षुधा पिपासामपनीय (ला० २२८क) धर्मं देशेन्ति प्राणिनाम् ॥

शस्त्र अन्तरकल्पेषु मैत्रीध्यायी भवन्ति ते ।
अव्यापादे नियोजेन्ति सत्त्वकोटिशतान् बहून् ॥

महासंग्राममध्ये च समपक्षा भवन्ति ते ।
सन्धिसामग्रि रोचेन्ति बोधिसत्त्वा महाबलाः ॥

ये चापि निरयाः केचिद् बुद्धक्षेत्रेष्वचिन्तिषु ।
संचिन्त्य तत्र गच्छन्ति सत्त्वानां हितकारणात् ॥

यावन्त्यो गतयः काश्चित्तिर्यग्योनौ प्रकाशिताः ।
सर्वत्र धर्मं देशेन्ति तेन उच्यन्ति नायकाः ॥

कामभोगां (—श्च) दर्शेन्ति ध्यानं च ध्यायिनां तथा ।
विध्वस्तमारं कुर्वन्ति अवतारं न देन्ति ते ॥

अग्निमध्ये यथा पद्ममभूतं तं विनिर्दिशेत् ।
एवं कामांश्च ध्यानं च अभूतं ते विदर्शयी ॥

संचिन्त्य गणिका भोन्ति पुंसामाकर्षणाय ते ।
रागाङ्कुरं च संलोभ्य बुद्धज्ञाने स्थापयन्ति ते ॥

ग्रामिकाश्च सदा भोन्ति सार्थवाहाः पुरोहिताः ।
अग्रामात्याथ चामात्यः सत्त्वानां हितकारणात् ॥
दरिद्राणां च सत्त्वानां (ला० ३३८ख) निधाना भोन्ति अक्षयाः ।
तेषा दानानि दत्वा च बोधिचित्तं जनेन्ति ते ॥
मानस्तब्धेषु सत्त्वेषु महानग्ना भवन्ति ते ।
सर्वमानसमुद्धात बोधिं प्रार्थेन्ति उत्तमाम् ॥
भयार्दितानां सत्त्वानां सन्तिष्ठन्तेऽग्रतः सदा ।
अभय तेषु दत्वा च परिपाचेन्ति बोधये ॥
पञ्चाभिज्ञाश्च ते भूत्वा ऋषयो ब्रह्मचारिणः ।
शीले सत्त्वान् नियोजेन्ति क्षान्तिसौरत्यसंयमे ॥
उपस्थानगुरुन् सत्त्वान् पश्यन्तीह विशारदाः ।
चेटा भवन्ति दासा वा शिष्यत्वमुपयान्ति च ॥
येन येनैव चांगेन सत्त्वो धर्मरतो भवेत् ।
दर्शेन्ति हि क्रियाः सर्वा महोपायसुशिक्षिताः ॥
येषाम् अनन्ता शिक्षा हि अनन्तश्चापि गोचरः ।
अनन्तज्ञानसम्पन्ना अनन्तप्राणिमोचकाः ॥
न तेषां कल्पकोटीभिः कल्पकोटिशतैरपि ।
बुद्धैरपि वदद्भिस्तु गुणान्तः सुवचो भवेत् ॥
येऽप्रज्ञहीनसत्त्वाः । स्थापयित्वा (तान्) (ला० ३३९क) ।
अस्मिन् धर्मे श्रुते । कोविदः को न प्रणिदधात्युत्तमबोध्यै ?" ॥

तथागतगोत्रस्य परिवर्तः सप्तमः ।

८ अद्वयधर्ममुखप्रवेशः

अथ लिच्छविर्विमलकीर्तिस्तान् बोधिसत्त्वानेतदवोचत्—"सत्पुरुषा', किमस्ति बोधिसत्त्वानामद्वयधर्ममुखप्रवेशः ? अस्तु स्वभिधानम्" ।

धर्मविकुर्वणो नाम बोधिसत्त्वस्तत्र तस्मिन् संनिपात एतदवोचत्—"कुलपुत्र, उत्पादभङ्गौ हि द्वयम्; यदनुत्पन्नमजातम्, तस्मिन् कश्चिद्भङ्गो नास्ति । अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्ति प्राप्तिरस्त्यद्वयप्रवेश" ।

बोधिसत्त्वः श्रीगुप्तोऽभाषत—" 'अहञ्च ममे' –ति तच्चि द्वयम् । आत्मसमारोपाभावे मम (भावो) नास्ति । यः समारोपाभावः, स ह्यद्वयप्रवेशः" ।

बोधिसत्त्वः श्रीकूटोऽब्रवीत्—"संक्लिष्टञ्च व्यवदानञ्चाम ते द्वयम् । संक्लिष्टपरिज्ञाने व्यवदानमन्यना नास्ति । सर्वमन्यनाद्वन्मूलनानुगतिमार्गः सोऽद्वयप्रवेशः" ।

बोधिसत्त्वो भद्रज्योतिराह—(ला० २२९ख) "चलञ्च मन्यना तौ हि द्वयम् । योऽचलः, (तत्–) मन्यनाऽकरणम्, अमनसिकारोऽनधिकारः । अधिकारविप्रयोगः सोऽद्वयप्रवेशः" ।

बोधिसत्त्वः सुबाहुरवोचत्—"बोधिचित्तं च श्रावकचित्तञ्चाम–ते हि द्वयम् । यन्मायाचित्तसमदर्शनं, तत्र च बोधिचित्तञ्च च श्रावकचित्तम् । या चित्तस्य समलक्षणता, सा ह्यद्वयप्रवेशः" ।

बोधिसत्त्वोऽनिमिष आह—"आदानञ्चानादानं, ते द्वयम् । यदनुपादानं, तन्नोपलभ्यते । यन्नोपलभ्यते, तस्मिन् कल्पनाऽपकर्षणाकरणम् । सर्वधर्माकरणमनाचारः, स ह्यद्वयप्रवेशः" ।

बोधिसत्त्वः सुनेत्रो ऽवोचत्—"एकलक्षणत्वञ्चालक्षणत्वञ्चाम, ते द्वयम्। यत् कल्पनाऽकरणं सङ्कल्पाकरणम्, (तद्) एकलक्षणत्वालक्षणत्वाकरणम्। यो लक्षणविलक्षणे समलक्षणताप्रवेशः, सोऽद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वस्तिष्योऽब्रवीत्—"कुशलाकुशलम् इति, ते द्वयम् (ला० ३४०क)। यत् कुशलाकुशलानुत्थापनम्, निमित्तानिमित्तयोरद्वयावबोधः, (तद्–) अद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वः सिंहोऽभाषत—"सावद्यञ्चानवद्यमिति, ते द्वयम्। यत् प्रभेदज्ञानवज्रेणाबन्धनानिःसरणं, तदद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वः सिंहमतिरवोचत्—"इदं सास्रवम्, इदमनास्रवमिति–ते हि द्वयम्। यत् समताधर्मप्राप्त्याऽऽस्रवानास्रवसञ्ज्ञाऽकरणञ्चासंज्ञाऽभावः, (यः) समतायां न च समताप्राप्तिर् न च सञ्ज्ञाग्रन्थिः, य एवमवतारः, तदद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वः सुखाधिमुक्तोऽभाषत—"इदं हि सुखम्, इदं सुखन्नास्तीति–ते द्वयम्। सुविशुद्धज्ञानतः सर्वसङ्ख्याविगता चाकाशसमालिप्ता बुद्धिः, साऽद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वो नारायणोऽब्रवीत्—"इद हि लौकिकम्, इदं लोकोत्तरमिति ते द्वयम्। या लोकस्य स्वभावशून्यता, तस्यां किञ्चिदप्युत्तरणन्नास्ति, अवतारो नास्ति, न चाधिगति (ला० ३४० ख) र्न चानधिगतिः। यस्यानुत्तरणम् अनवतारोऽनधिगतिश्चानधिगत्यभावः, तञ्च्यद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वो नियमतिराह "ससारश्च निर्वाणमिति–ते द्वयम्। संसारस्वभावदर्शनेन ससारश्च परिनिर्वाणञ्च स्तः। यदेवं ज्ञात, तदद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वः प्रत्यक्षदर्शनोऽब्रोचत्—"क्षयाक्षयौ नाम—तौ द्वयम्। क्षयोहि सुक्षीणः। यः सुक्षीणस्तस्मिन्न (किञ्चित्) क्षपयितव्यम्, अतोऽक्षय उच्यते। योऽक्षयः स क्षणिकश्च, क्षणिके क्षयो नास्ति। तदेवमनुप्रविष्टम् अद्वयधर्मद्वारावगाह्यो नाम"।

बोधिसत्त्वः समन्तगुप्तोऽब्रवीत्—"आत्मनैरात्म्यमिति—ते द्वयम्। आत्मभावेऽनुपलभ्यमाने, किं नैरात्म्य कुर्यात्? (तत्—) तयोः स्वभावदर्शनेनाद्वयम् अद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वो विद्युद्देवोऽभाषत—"विद्याऽविद्ये 'ति—ते द्वयम्। अविद्यायाः स्वभाव इव, तथैव विद्याऽपि। याऽविद्या (ला० ३४१क) भवति, साऽव्याकृता, असंख्येया, सञ्ज्ञापथातिक्रान्ता। अस्यां योऽभिसमयः, सोऽद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वः प्रियदर्शन आह—"रूपं खलु शून्यम्। रूपनाशनेन न शून्यम्, अपि खो पन रूपस्वभावः शून्यः। एवमेव वेदनासंज्ञासंस्कारविज्ञानं (—च) शून्यते 'ति—ते द्वयम्। विज्ञानं खलु शून्यता। विज्ञानमोशनेन न शून्यम्, अपि खो पन विज्ञानस्वभावः शून्यः। योऽस्मिन् पञ्चोपादानस्कन्धे (ष्वू) एवमेव जानाति, एवं ज्ञानेन विज्ञः, सोऽद्वये प्रविशति"।

बोधिसत्त्वः प्रभाकेतुरवोचत्—"चतुर्धातुनोऽन्यत्राकाशधातुरन्य इति—ते द्वयम्। चतुर्धातु पुनराकाशस्वभावम्। पूर्वान्तोऽप्याकाशस्वभावः। अपरान्तश्चाकाशस्वभावः। एवमेव प्रत्युत्पन्नम्। यत् तथा धात्ववतारज्ञानम्, तदद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वोऽप्रमतिरभाषत—"चक्षुश्च रूपञ्च—ते द्वयम्। ये चक्षुःपरिज्ञानेन रूपेऽलोभो (ला० ३४१ख) ऽद्वेषोऽमोहः तधि शान्तिर्नाम।

एवमेव श्रोत्रशब्दो, घ्राणगन्धौ, जिह्वारसौ, कायस्प्रष्टव्ये, मनोधर्मौ–ते द्वयम्। ये च मनः परिज्ञानाद्धर्मे (–ष्व्) अलोभोऽद्वेषोऽमोहः–तधि शान्तिर्नाम। एव शान्तिविहारोऽद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वोऽक्षयमतिराह—"दानसर्वज्ञतापरिणामने—ते द्वयम्। दानस्वभावः सर्वज्ञता। सर्वज्ञतास्वभावः परिणामना। एवमेव शील-क्षान्तिवीर्यध्यानप्रज्ञासर्वज्ञतापरिणामने—ते द्वयम्। सर्वज्ञता हि (शील-क्षान्तिवीर्यध्यान–) प्रज्ञास्वभावः, परिणामना च सर्वज्ञतास्वभावः। तस्मिन् एकनयेऽवतारः, सोऽद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वो गम्भीरमतिरभाषत—"शून्यताया अन्यत्रानिमित्ता-प्रणिहितमप्यन्यमिति–ते द्वयम्। यच्छून्यम, तस्मिन्न किञ्चिन्निमित्तम्। अनिमित्तेऽप्रणिहितम्। अप्रणिहिते चित्तमनोविज्ञानासञ्चारः। यत् सर्व-विमोक्षमुखेषु द्रष्टव्यमेक (ला० ३४२क) विमोक्षमुख, तदद्वयमुखप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वः शान्तेन्द्रियोऽब्रवीत्—"बुद्धधर्मसङ्घा इति–ते द्वयम्। बुद्धस्य स्वभावो हि धर्मः, धर्मस्य च स्वभाव. सङ्घः। सर्वे ते पुनरसस्कृताः। असस्कृत ह्याकाश (समम्), सर्वधर्मनय आकाशतुल्यः। यदेवमनुगमनं, तच्चाद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वोऽप्रतिहतेक्षणोऽभाषत—"सत्कायश्च सत्कायनिरोध इति–तौ द्वयम्। सत्काय एव निरोधः। तत् कस्य हेतोः? सत्कायदृष्ट्यनुत्पादेऽसति, यत् तथा दृष्ट्या 'सत्काय' इति वा 'सत्कायनिरोध' इति तद्-कल्प्यम्; अकल्प्यं निर्विकल्पम्। अत्यन्ताकल्पनया निरोधस्वभावो भवति। असम्भवोऽविनाशस्–सोऽद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वः सुविनीतोऽवोचत्—"कायवाक्चित्तसंवरो नाम तद्-

द्वयम्। तत् कस्य हेतोः ? इमे धर्मा अनभिसंस्कारलक्षणाः। तत् कायानभिसंस्कारं, तल्लक्षणेऽपि (ला० ३४२ख) वागनभिसंस्कारश्च चित्तानभिसंस्कारम्। तत् सर्वधर्मानभिसस्कार, तदिति ज्ञातव्यमनुवेदितव्यम्। तत् तदनभिसंस्कारज्ञानम्, तदव्द्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वः पुण्यक्षेत्र आह—"पुण्यापुण्यानिञ्ज्याभिसंस्काराभिसस्करणते 'ति—ते द्वयम्। यत् पुण्यापुण्यानिञ्ज्यानभिसंस्कारम्, तदद्वयम्। पुण्यापुण्यानिञ्ज्याभिसस्काराणा स्वलक्षण शून्यता। तस्यां पुण्यं वापुण्यं वाऽनिञ्ज्यं वा न भवन्ति। अभिसंस्करणताऽपि च न भवति। य एवमनभिनिर्हारः, स अद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वः पद्मव्यूहोऽब्रवीत्—"आत्मपर्युत्थानाद्युत्पादः, तद्धि द्वयम्। आत्मपरिज्ञा द्वयानुत्थापनम्। तथाऽद्वयस्थानेऽविज्ञप्तिकेनाविज्ञप्तिकम्—तदव्द्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वः श्रीगर्भोऽभाषत (ला० ३४३क) "उपलम्भेन प्रभेदः—तद्‌द्वयम्। योऽनुपलम्भस्—तदद्वयम्। ततो यावन्नुपादाननोत्सर्गौ, तदव्द्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वश्चन्द्रोत्तरोऽब्रवीत्—"अन्धकाराऽलोकाविति—तौ द्वयम्। अन्धकाराऽलोकाभावः—तदद्वयम्। तत् कस्य हेतोः ? एवं निरोधसमापन्ने न चान्धकारो न चाऽलोकः। सर्वधर्मलक्षणत्वं तथैवापि। योऽस्यां समतायामवतारः, सोऽद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वो रत्नमुद्राहस्तोऽवोचत्—"निर्वाणाभिरतिश्च संसारारतिस्—ते द्वयम्। ये निर्वाणानभिरतिश्च संसारानरतिस्—तेऽद्वयम्। तत् कस्य हेतोः ? यद् बन्धनाभिःसरणमाख्यायते, किं तु यदत्यन्ततोऽबन्धनम्,

तन्मोक्ष कुतो गवेषी ? (यद्) अबन्धनानिःसरणयोर्भिक्षुणा रत्यरती न लभ्येते, न तध्यद्वयप्रवेशः" ।

बोधिसत्त्वो रत्नकूटराज आह—"मार्गकुमार्गाविति–तौ द्वयम् । मार्गावगाहे कुमार्गानाचारः । अनाचारस्थानम् मार्गसंज्ञा (ला० ३४३ख) वाऽभूतमार्गसंज्ञा (वा) न भवति । संज्ञापरिज्ञा हि मतिद्वयानवतारः । सोऽद्वयप्रवेशः" ।

बोधिसत्त्वः सत्यरतोऽभाषत—"सत्यमृषे नाम ते द्वयम् । यदि सत्यदर्शनेन सत्यताऽ(पि) न समनुदृश्यते, मिथ्यादृष्टिः कुतो दृश्यते ? तत् कस्य हेतोः ? मासचक्षुषा न दृश्यते, दृश्यते प्रज्ञाचक्षुषा । अदर्शनेन यथाऽविदर्शना, तथा(हि)दृश्यते । यत्र न च दर्शनन्न च विदर्शना तदद्वयप्रवेशः" ।

तथैव ते बोधिसत्त्वाः स्वकस्वकनिर्देश देशयित्वाः, मंजुश्रीकुमारभूतदमेतवोचन्—"मंजुश्रीः, बोधिसत्त्वस्याद्वयप्रवेशः किम् ?"

मंजुश्रीरब्रवीत्—"सत्पुरुष(ाः), यद्यपि सर्वैर्युष्माभिः सुभाषितम्, सर्वं तद् युष्माभिरुक्त हि द्वयम् । स्थापयित्वैकोपदेशम् (अपि), (यद्) अनभिलाप्यम्, अभाष्यम्, अनुक्तम्, अनवघोष्यम्, अव्यपदेश्यम्, प्रज्ञप्तिरहितम् तध्यद्वयप्रवेशः" ।

ततो मंजुश्रीकुमारभूतो लिच्छविं विमलकीर्तिमेतद् (ला० ३४४क) अवोचत्—"अस्माभिः स्वकस्वकनिर्देशे व्याख्याते, कुलपुत्र, त्वमप्यद्वयधर्ममुखनिर्देशाय स्वभिधान कुरु" ।

अथ लिच्छविर्विमलकीर्तिस्तूष्णीभूतोऽभूत[1] ।

---

१ द्र० भिक्षु प्रासादिक का लेख "सम रिमार्क्स ऑन दि आरिजिन्स आफ दि जेन स्कूल", जर्नल ऑफ रिलीजियस स्टडीज, वॉल्यूम ४ न० १, पटियाला १९७२ ।

द्वयम्। तत् कस्य हेतोः ? इमे धर्मा अनभिसंस्कारलक्षणाः। तत् कायानभिसंस्कारं, तल्लक्षणेऽपि (ला० ३४२ख) वागनभिसंस्कारश्च चित्तानभिसंस्कारम्। तत् सर्वधर्मानभिसंस्कारं, तदिति ज्ञातव्यमनुवेदितव्यम्। तत् तदनभिसंस्कारज्ञानम्, तच्चाद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वः पुण्यक्षेत्र आह—"पुण्यापुण्यानिञ्ज्याभिसंस्काराभिसंस्करणते 'ति–ते द्वयम्। यत् पुण्यापुण्यानिञ्ज्यानभिसंस्कारम्, तदद्वयम्। पुण्यापुण्यानिञ्ज्याभिसंस्काराणां स्वलक्षण शून्यता। तस्यां पुण्य वापुण्यं वाऽनिञ्ज्यं वा न भवन्ति। अभिसंस्करणताऽपि च न भवति। य एवमनभिनिर्हारः, स ह्यद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वः पद्मव्यूहोऽब्रवीत्—"आत्मपर्युत्थानादुत्पादः, तद्धि द्वयम्। आत्मपरिज्ञा द्वयानुत्थापनम्। तथाऽद्वयस्थानेऽविज्ञप्तिकेनाविज्ञप्तिकम्–तच्चाद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वः श्रीगर्भोऽभाषत (ला० ३४३क) "उपलम्भेन प्रभेदः–तद्द्वयम्। योऽनुपलम्भस्–तदद्वयम्। ततो यावन्नुपादाननोत्सर्गौ, तच्चाद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वश्चन्द्रोत्तरोऽब्रवीत्—"अन्धकाराऽलोकाविति–तौ द्वयम्। अन्धकाराऽलोकाभावः–तदद्वयम्। तत् कस्य हेतोः ? एवं निरोधसमापन्ने न चान्धकारो न चाऽलोकः। सर्वधर्मलक्षणत्र तथैवापि। योऽस्यां समतायामवतारः, सोऽद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वो रत्नमुद्राहस्तोऽवोचत्—"निर्वाणाभिरतिश्च संसारारतिस्–ते द्वयम्। ये निर्वाणानभिरतिश्च संसारानरतिस्–तेऽद्वयम्। तत् कस्य हेतोः ? यद् बन्धनान्निःसरणमाख्यायते, किं तु यदत्यन्ततोऽबन्धनम्,

तन्मोक्ष कुतो गवेषी ? (यद्) अबन्धनानिःसरणयोर्भिक्षुणा रत्यरती न लभ्येते, न तध्यद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वो रत्नकूटराज आह—"मार्गकुमार्गाविति-तौ द्वयम्। मार्गावगाहे कुमार्गानाचारः। अनाचारस्थानम् मार्गसञ्ज्ञा (ला० ३४३ख) वाऽभूतमार्गसञ्ज्ञा (वा) न भवति। सञ्ज्ञापरिज्ञा हि मतिद्वयानवतारः। सोऽद्वयप्रवेशः"।

बोधिसत्त्वः सत्यरतोऽभाषत—"सत्यमृषे नाम ते द्वयम्। यदि सत्यदर्शनेन सत्यताऽ(पि) न समनुदृश्यते, मिथ्यादृष्टिः कुतो दृश्यते ? तत् कस्य हेतोः ? मांसचक्षुषा न दृश्यते, दृश्यते प्रज्ञाचक्षुषा। अदर्शनेन यथाऽविदर्शना, तथा(हि)दृश्यते। यत्र न च दर्शनन्न च विदर्शना तदद्वयप्रवेशः"।

तथैव ते बोधिसत्त्वाः स्वकस्वकनिर्देशं देशयित्वाः, मञ्जुश्रीकुमारभूतदमेतवोचन्—"मञ्जुश्रीः, बोधिसत्त्वस्याद्वयप्रवेशः किम् ?"

मंजुश्रीरब्रवीत्—"सत्पुरुष(ाः), यद्यपि सर्वैर्युष्माभिः सुभाषितम्, सर्वं तद् युष्माभिरुक्त हि द्वयम्। स्थापयित्वैकोपदेशम् (अपि), (यद्) अनभिलाप्यम्, अभाष्यम्, अनुक्तम्, अनवघोष्यम्, अव्यपदेश्यम्, प्रज्ञप्तिरहितम् तध्यद्वयप्रवेशः"।

ततो मञ्जुश्रीकुमारभूतो लिच्छविं विमलकीर्तिमेतद् (ला० ३४४क) अवोचत्—"अस्माभिः स्वकस्वकनिर्देशे व्याख्याते, कुलपुत्र, त्वमप्यद्वयधर्ममुखनिर्देशाय स्वभिधानं कुरु"।

अथ लिच्छविर्विमलकीर्तिस्तूष्णीभूतोऽभूत[1]।

---

१ द्र० भिक्षु प्रासादिक का लेख 'सम रिमार्क्स ऑन दि आरिजिन्स आफ दि जेन स्कूल", जर्नलऑफरिलीजियसस्टडीज, वाल्यूम ४ न० १, पटियाला १९७२।

ततो मंजुश्रीकुमारभूतो लिच्छविविमलकीर्तये साधुकारम् अदात्—"साधु, साधु, कुलपुत्र। अय हि बोधिसत्त्वानाम् अद्वयप्रवेशः। तस्मिन् अक्षरवचनविज्ञप्तिप्रचारो नास्ति"।

अस्मिन् निर्देशे देशिते, बोधिसत्त्वानाम् पञ्चसहस्रेणाद्वयधर्ममुख-प्रवेशेनानुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिः प्रतिलब्धा।

अद्वयधर्ममुखप्रवेशस्य परिवर्तोऽष्टम।

९ निर्माणभोज्याऽदानम्

अथाऽयुष्मतः शारिपुत्रस्यैतदभूत्—"मध्याह्न आपन्ने, इमे महाबोधिसत्त्वाश्चेनोत्तिष्ठन्ति, इमेऽन्नं कुत्र भुञ्जन्त" इति।

ततो लिच्छविविमलकीर्तिरायुष्मतः शारिपुत्रस्य चित्तवितर्कं चेतसा ज्ञात्वा, आयुष्मन्त शारिपुत्रमेतदवोचत्—"भदन्त शारिपुत्र, तथागतेन येऽष्टौ विमोक्षा आख्याताः, तेषु विमोक्षेषु तिष्ठ, आमिषसम्मिश्रितविचारेण धर्मम्मा श्रौषीः। भदन्त (ला० ३४४ख) शारिपुत्र, मुहूर्तं प्रतीक्षस्व; अननुभूतपूर्वाऽहारं भक्षयिष्यसि"।

ततस्तदा लिच्छविर्विमलकीर्तिस्तथारूप समाधिं समापद्यते स्म, ईदृशवृध्यभिसंस्कारमभिसंस्करोति स्म, (यथा तद्) ऊर्ध्वदिशि बुद्धक्षेत्रम्, इतो द्विचत्वारिंशद्गङ्गानदीवालुकासमानि बुद्धक्षेत्र(ण्य्) अतिक्रम्य, यत्, सर्वगन्धसुगन्धा नाम लोकधातुः, तेभ्यो बोधिसत्त्वेभ्यश्च तेभ्यो महाश्रावकेभ्यो दर्शयति स्म। तत्र सुगन्धकुटो[1] नाम तथागतोऽद्य तिष्ठति, ध्रियते,

---

१ निर्माण बोधिसत्त्व द्वारा ग धसुगन्धा लोकधातु से भोजनादान के वणन वाला एक गद्याश प्रसन्नपदा, पृ० १४३ मे सुरक्षित है। यह 'उद्धरण' हमारे सूत्र के चीनी व तिब्बती अनुवादो मे नही उपल ध है। आचाय चन्द्रकीर्ति के अनुसार—"तथा आर्यविमलकीर्तिनिर्देशे—तन्निर्मितबोधिसत्त्वेन ग धसुगन्धाया लोकधातौ सम तभद्रतथागतोपभुक्तशेष भोजनमानीत नाना यञ्जनखाद्यादिसप्रयुक्त पृथक्पृथग्विध रसमेक भोजनेन सव तच्छ्रावकबोधिसत्त्वसघराजराजामात्यपुरोहिता त पुरदौवारिकसाथवाहादिजनपद्म सतप्य प्रीत्याकार नाम महासमाधि लम्भयामास।" इस 'उद्धरण' मे सुगन्धकूट तथागत के स्थान पर समन्तभद्र तथागत का उल्लेख भी ध्यातव्य है।

यापयति। तस्मिँल्लोकधातौ (यो) दशदिक्षु सर्वबुद्धक्षेत्राणाम् मनुष्यदेव् (एभ्यो) गन्ध उत्पद्यते, तस्माद्विशिष्टतरो (गन्धस्) तस्य लोकधातोर्द्रुण उत्पद्यते। तस्मिँल्लोकधातौ श्रावकप्रत्येकबुद्धाना नामधेयमपि नास्ति। केवलं बोधिसत्त्वानां गणसन्निपाताय स सुगन्धकूटस्तथागतो धर्मं देशयति। तस्मिँल्लोकधातौ सर्वाणि कूटागाराणि धूपमयानि, सर्वचंक्रमणोद्यानविमानानि च (ला० ३४५क) धूपमयानि। यत्तेषां बोधिसत्त्व(ानां) जुष्टान्नं, तस्य गन्धेनाप्रमेयलोकधातवः स्फुटाः।

तेन खलु समयेन भगवान् सुगन्धकूटस्तथागतस्तैर्बोधिसत्त्वैस्सह भोजनखादनार्थं निषण्णो (ऽभवत्)। तत्र महायानसम्प्रस्थितो गन्धव्यूहतर्पणो नाम देवपुत्रो भगवतश्च तेषां बोधिसत्त्वानाम् उपस्थाने च पर्युपासनेऽभियुक्तो (ऽभूत्)। ततस्तया सर्वावत्या पर्षदा तस्मिँल्लोकधातौ स भगवांश्च ते बोधिसत्त्वा भोजनाय रचिता निषण्णा दृश्यन्ते स्म।

अथ लिच्छविर्विमलकीर्तिः सर्वान् तान् बोधिसत्त्वानेतदवोचत्—"सत्पुरुष(ाः), युष्मन्मध्ये कस्तस्माद् बुद्धक्षेत्रादाहाराऽदानायोत्सहते?" अत्र मंजुश्रियोऽधिष्ठानेन न कश्चिदुत्सहते स्म। ततो लिच्छविर्निमलकीर्तिर्मंजुश्रीकुमारभूतमेतदवोचत्—"मंजुश्रीः, ईदृशस्ते परिवारो ननु न लज्जा (करः)?" आह- "कुलपुत्र, तथागतेन 'नाशिक्षिताय् आतिमन्यना कर्तव्ये' ति ननु न प्रोक्तम्?"

अथ लिच्छविर्विमलकीर्तिस्तस्याः शय्याया अनुत्थाय, (ला० ३४५ख) तेषां बोधिसत्त्वानाम् अभिमुखं निर्मितबोधिसत्त्वस्य सुवर्णवर्णप्रतिरूपक लक्षणानुव्यञ्जनस्वलङ्कृत कायं निर्मिमीते स्म। येन स सर्वपरिवारो ध्यामीकृतः, तादृशे रूपे अवभासमागच्छति स्म।

ततो लिच्छविर्विमलमीर्तिस्तं निर्मितबोधिसत्त्वमेतदवोचत्—"कुल-

पुत्र, ऊर्ध्वदिशि गच्छ, द्वाचत्वारिंशद्गङ्गानदीवालुकोपमानि बुद्धक्षेत्राण्यतिक्रम्य, (तत्र) अस्ति सर्वगन्धसुगन्धा नाम लोकधातुः। तत्र सुगन्धकूटो नाम तथागतो ऽद्य भोजनखादनार्थं निषण्णः। तत्रोपसंक्रम्य, तस्य तथागतस्य पादौ शिरसाऽभिवन्द्य, एतन्निवेदय—'लिच्छविर्विमलकीर्तिर्भगवतः पादौ शतसहस्रकृत्वः शिरसाऽभिवन्द्य, भगवत्यल्पाबाधताम् अल्पातङ्कता लघूत्थानतां यात्रा बल सुखम् अनवद्यता सुखस्पर्शविहारतां रोग् (आभाव) पृच्छति चैवमपि कथयति। भगवान् भोजनस्यावशेषम् मे (ला० ३४६ क) ददातु। तेन सहालोकधातौ (त्रिमलकीर्ति-) बुद्धकार्यं करिष्यति। (ये) हीनाधिमुक्तिकसत्त्वाः, त उदाराधिमुक्तिं जनयिष्यन्ति, तथागतलक्षण (ानि) च वर्धन्त' इति''।

अथ स निमितबोधिसत्त्वो लिच्छविविमलकीर्तये 'साध्वू' इति कृत्वा, प्रत्यश्रौषीत्। उल्लोकितमुखस्तेषा बोधिसत्त्वानाम् अभिमुखादपक्रामति स्म, ते बोधिसत्त्वास्तु तद्गमनञ्च पश्यन्ति स्म। ततः स निर्मित बोधिसत्त्वो (येन) सर्वगन्धसुगन्धा नाम लोकधातुः, तेनोपगम्य, तस्य भगवतः सुगन्धकूटस्य तथागतस्य पादौ शिरसाऽभिवन्द्य, एतदवोचत्—

"भगवन्, बोधिसत्त्वो विमलकीर्तिर्भगवतः पादौ शिरसाऽभिवन्द्य, भगवत्यल्पाबाधताम् अल्पातङ्कतां लघूत्थानतां यात्रां बलं सुखम् अनवद्यतां सुखस्पर्शविहारता रोग् (आभाव) पृच्छति। स भगवतः पादौ सतसहस्र कृत्वः शिरसाऽभिवन्द्य, एतद् याचति—'भगवान् (ला० ३४६ख) भोजनस्य भोज्यावशेषम्मे ददातु। तेनास्मिन् सहालोकधातौ (विमलकीर्ति-) बुद्धकार्यं करिष्यति। (ये) हीनाधिमुक्तिकसत्त्वाः, ते बुद्धधर्मोदारमत्यधिमुक्तिं जनयिष्यन्ति, तथागतलक्षण (ानि) च वर्धन्त'-इति"।

अथ ते भगवतः सुगन्धकूटस्य तथागतस्य बुद्धक्षेत्रस्य बोधिसत्त्वा आश्चर्याद्भुतप्राप्ताः त भगवन्तं सुगन्धकूट तथागतमेतदवोचन्—"भगवन् एवरूपो महासत्त्वः कुत आगतः ? स सहालोकधातु' क्वास्ति ? 'हीनाधिमुक्तिक(ा)' नाम तदस्ति किम् ?" इति ते बोधिसत्त्वास्त भगवन्तमेव पृच्छन्ति स्म ।

ततो भगवांस्तान् बोधिसत्त्वानेतदवोचत्—

"कुलपुत्र(ाः), इतोऽधोदिशि द्विचत्वारिंशद्गङ्गानदीवालुकासमानि बुद्धक्षेत्र(ाण्य्) अतिक्रम्य, अस्ति सहा नाम लोकधातुः । तत्र शाक्यमुनिर्नाम तथागतः (ला० ३४७क) पञ्चकषायबुद्धक्षेत्रे हीनाधिमुक्तिकेभ्यः सत्त्वेभ्यो धर्मं देशयति । तत्र सोऽचिन्त्यविमोक्षविहारी विमलकीर्तिर्नाम बोधिसत्त्वः बोधिसत्त्वेभ्यो धर्मं देशयति । स मन्नामपरिकीर्तन् (आर्थाय) चास्य लोकधातो' प्रशंसासम्प्रकाशना (-ऽर्थाय) च तेषां बोधिसत्त्वानां कुशलमूलसुतप्तकरणार्थाय निर्मितबोधिसत्त्वं प्रेषयति" ।

ततस्ते बोधिसत्त्वा एतदवोचन्—"भगवन्, तस्य बोधिसत्त्वस्य माहात्म्यम्, यावदिदं निर्माणञ्च तस्यैवंरूपर्द्धिबलवैशारद्यानि भूतानि" । स भगवानवोचत्—"तस्य बोधिसत्त्वस्येदृशम् माहात्म्यम्, (यथा) दशदिक्षु सर्वबुद्धक्षेत्रेषु निर्माणा (नि) प्रेषयति, तानि निर्माणानि च तेषां बुद्धक्षेत्राणां सर्वसत्त्वकार्य-(आर्थं) बुद्धकार्येण प्रत्युपस्थितानि भवन्ति" ।

अथ भगवान् सुगन्धकूटस्तथागतः सर्वगन्धसमन्वागते भाजने सर्वगन्धवासित भोजनं छोरयति स्म; तत्तस्मै निर्मितबोधिसत्त्वायादात् । (ला० ३४७ख) ततस्तदा बोधिसत्त्वानां नवतिशतसहस्राणि तेन गमिकानि—"भगवन्, वयमपि तां सहां लोकधातुं, तं भगवन्तं शाक्यमुनिं दर्शनाय, वन्दनाय, पर्युपासनाय, त च विमलकीर्तिं च तान् बोधिसत्त्वान्

दर्शनाय गच्छामः" । स भगवानवोचत्—"कुलपुत्राः, गच्छत यस्येदानीं काल मन्यध्वे ।

"कुलपुत्राः, ते सत्त्वा उन्मादाश्च प्रमत्ताः खलु अभविष्यन्, तेन गच्छत गन्धापगतभूताः । तस्य सहालोकधातोस्ते सत्त्वा अवसादमासादयन्ति, तस्माद्धु स्वरूपान् निवर्तध्वम् । तस्मिंल्लोकधातौ हीनसंज्ञाम् उत्पाद्य, प्रतिघसज्ञाम् मोत्पादयत । तत् कस्य हेतोः ? कुलपुत्र (ाः), बुद्धक्षेत्र ह्याकाशक्षेत्रम् । सत्त्वपरिपाचनार्थाय भगवन्तो बुद्धाः सर्वान् बुद्धगोचरान्न दर्शयन्ति" ।

अथ स निर्मित बोधिसत्त्वस्तत् (सर्वगन्धवासित) भोज्यं समादाय, बोधिसत्त्वाना नवतिशतसहस्रैः सार्धं बुद्धानुभावेन च विमलकीर्तेरधिष्ठानेन (ला० ३४८क) ऐकक्षणलवमुहूर्तेन तत्रैव तस्याः सर्वगन्धसुगन्धालोकधात्वा अन्तर्हितश्च लिच्छविविमलकीर्तेर्गृहे निषीदति स्म ।

अथ लिच्छविर्विमलकीर्तियादृश(ानि) पूर्वसिंहासन(ानि), तादृशाना नवतिशतसहस्राण्यधितिष्ठति स्म । तेषु ते बोधिसत्त्वा न्यषीदन् । ततस्स निर्मित बोधिसत्त्वस्तद्भोज्यपूर्णभाजन विमलकीर्तयेऽदात् ।

ततस्तस्य भोज्यस्य गन्धो वैशालीम् महानगरीं सन्यविक्षत्, साहस्रलोकधातु यावच्च घ्रायते स्माऽस्वाद्यगन्धः । ये वैशाल्या ब्राह्मणगृहपतयश्च लिच्छव्यधिपो लिच्छविचन्द्रच्छत्रश्च त गन्धमाघ्राय, आश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ताः प्रसन्नकायचित्ता लिच्छवीनां चतुरशीतिसहस्रैः परिपूर्णैः सह विमलकीर्तेर्गृहम् प्रविशन्ति स्म ।

ते तस्मिन् गृहे बोधिसत्त्व(ान्) सम्पूर्णसिंहासनेषु तन्मात्रोन्नतातिमात्रविशालेषु निषण्णान् पश्यन्ति स्म । दृष्ट्वा, तैरधिमुक्तिश्च प्रमुदितोत्पादिताः । सर्वे ते तान् महाश्रावकां च तान् महाबोधिसत्त्वानभिवन्द्य,

(ला० ३४८ख) एकान्तेऽस्थुः। भूम्यवचरदेवपुत्राश्च कामावचररूपावचरदेवपुत्राश्च तेन गन्धेन चोदिता विमलकीर्तेर्गृह समागच्छन्ति स्म।

अथ लिच्छविर्विमलकीर्तिः शारिपुत्र स्थविर च तान् महाश्रावकानेतदवोचत्—"भदन्ताः, तथागतभोज्यम् महाकरुणापरिवासितामृतं भक्षयत, प्रादेशिकचित्ततां तु मोपप्रज्ञापयत। दानभोगेऽसमर्था अभविष्यत"।

ततः केचिच्छ्रावका एतन्मन्यन्ते स्म—"स्वल्पभोजनम् इहानयैतादृशपरिषदा कथ भोजनीयम् ?" इति। ततस्स निर्मितबोधिसत्त्वस्तां श्रावकानेतदवोचत्—"आयुष्मन्तः, युष्मत्प्रज्ञापुण्ये तथागतस्य प्रज्ञापुण्याभ्याम् मा तोलयत। तत् कस्य हेतोः ? तद्यथापि नाम चतुर्महासमुद्राः क्षीणाः सम्भवेयुः; किं त्वस्मिन् भोजने न किञ्चित्क्षयोऽभविष्यत्। (एवमेव) सर्वे सत्त्वा तस्य भोजनस्य कल्पं सुमेरुमात्राऽलोप(ान्) भक्षयेयुः, किं त्विदं क्षयन्नायास्यत्। तत् कस्य हेतोः ? सोऽक्षयशीलप्रज्ञा (ला० ३४९क) समाधिमयस्य तथागतभोजनस्य भाजनावशेषः क्षयं यातुन्न शक्नोति"।

अथ ततो भोजनात् सर्वावती सा पर्षत् तृप्ता भूता। न च तद्भोजनं क्षीयते। यैश्च बोधिसत्त्वैः श्रावकैश्च शक्रब्रह्मलोकपालैस्तदन्यैश्च सत्त्वैस्तद्भोजनं भुक्तम्, तेषां तादृशं सुखं कायेऽवक्रान्तं यादृशं सर्वसुखमण्डितायां लोकधातौ बोधिसत्त्वानां सुखम्। सर्वरोमकूपेभ्यश्च तेषां तादृशो गन्धः प्रवाति, तद्यथापि नाम तस्यामेव सर्वगन्धसुगन्धायां लोकधातौ वृक्षाणां गन्धः[१]।

ततस्संप्रजानाल्लिच्छविर्विमलकीर्तिर्भगवतः सुगन्धकूटस्य तथागतस्य बुद्धक्षेत्रादागतान् बोधिसत्त्वानेतदवोचत्—"कुलपुत्राः, तस्य तथागतस्य

१. रेखांकित पंक्तियाँ शिक्षासमुच्चय, पृ० १४४ में सुरक्षित हैं।

सुगन्धकूटस्य धर्मदेशना कीदृशी" ? तेऽवदन्– "स तथागतोऽक्षरनिरुक्तिभ्यां धर्मं न दर्शयति। तेन गन्धेनैव बोधिसत्त्वा विनीता भवन्ति। ये गन्धवृक्षाः, येषां मूलेषु (ला० ३४९ख) ते बोधिसत्त्वा निषण्णाः, तेभ्यो (यादृशो) गन्धस्तेभ्यो (बोधिसत्त्वेभ्यः), तादृशो निश्चरति। घ्रातमात्र एव तस्मिन् गन्धे, सर्वबोधिसत्त्वगुणाऽकरो नाम समाधि (स्तैः) प्रतिलभ्यते। प्राप्तमात्र एव तस्मिन् समाधौ, सर्वेषु तेषु बोधिसत्त्वगुणा उत्पद्यन्ते"।

अथ ते बोधिसत्त्वा लिच्छवि विमलकीर्तिमेतदवदन्—"इह भगवा शाक्यमुनिः कीदृशी धर्मदेशना प्रकाशयति ?" आह– "सत्पुरुषाः, इमे सत्त्वा हि दुर्विनेयाः, एभ्यः खटुकदुर्विनेयसत्त्वेभ्य. खटुकदुर्विनेयविनेय-कथाः प्रकाशयति। के खटुकदुर्विनेयाः विनेयाः ? खटुकदुर्विनेयकथा कतमा ? तद्यथा—

"इमे हि नैरयिकाः, इयं हि तिर्यग्योनिः, अय यमलोकः, इमानि ह्यक्षणानि, इमे विहीनेन्द्रियाः।

"इद हि कायदुश्चरित, अय हि कायदुश्चरितस्य विपाकः। इदं वाग्दुश्चरित, अय वाग्दुश्चरितस्य (ला० ३५०क) विपाकः। इद मनो-दुश्चरितं, अयं मनोदुश्चरितस्य विपाकः।

"अयं हि प्राणातिपातः, इयमदत्तादानं, अयं काममिथ्याचारः, अय मृषावादः, अयं पैशुन्यवादः, अयं पारुष्यवादः, अयं संभिन्नप्रलापः, इयं ह्यभिध्या, अय व्यापादः, इय मिथ्यादृष्टिः, अयं हि तेषां विपाकः।

"इद मात्सर्यं, इदं मात्सर्यस्य फलं; इदं दौःशील्यम् , (इद दौःशील्यस्य फल), अयं क्रोधः, (इदं क्रोधस्य फलम्); इदं कौसीद्यम् , इदं कौसीद्यस्य फलम् , इयं हि दौष्प्रज्ञा, इदं दौष्प्रज्ञाफलम्।

"अयं शिक्षापदसमतिक्रमः, अय हि प्रातिमोक्षः, इदं कार्यम्, इदमकार्यम्; अयं योगाचारः, इद प्रहाणम्, इदमावरणम्, इदमनावरणम्; इयमापत्ति', इदमापत्तिव्युत्थानं; अयं मार्ग', अयं कुमार्गः, इद कुशलम्, इदमकुशलम्, इद सावद्यम्, इदमनवद्यम्, इदं सास्रवं इदमनास्रवम्; इदं लौकिकम्, इदं लोकोत्तरम्, इदं मस्कृतम्, इदमसंस्कृतम् (ला० ३५०ख), अयं हि संक्लेशः, इद व्यवदानम्; अय संसारः, इदं निर्वाणम् इति।

"एवमनेकविधं धर्मं देशयन्, (शाक्यमुनिस्तथागतः सत्त्वानाम्) अश्वखडुकचित्तं प्रतिष्ठापयति। तद्यथापि नाम खडुंकाश्वो वा हस्ती वा ऽर्माक् मर्महृता विनीता भवन्ति, एवमेव खडुकदुर्विनेयाः सत्त्वा अपि सर्वदुःखप्रकाशनकथया विनीता भवन्ति"।

ते बोधिसत्त्वा अवदन्—"तथा भगवतो बुद्धस्य शाक्यमुनेर्माहात्म्यं प्रतिष्ठापितम्। आश्चर्यं हि हीनदरिद्रखडुंकसत्त्वदमनं। ये (च) बोधिसत्त्वा एवंविध औदारिके बुद्धक्षेत्रेऽवस्थिताः, तेषामचिन्त्यमहाकरुणा"।

ततो लिच्छविर्विमलकीर्तिरब्रवीत्—"तत् तथेति, सत्पुरुषाः; यथा वदथ (तत्) तथा। ये बोधिसत्त्वा इहोत्पन्नाः, एषाम् महाकरुणा सुदृढा। तेऽतस्मिँल्लोकधातावेकस्या जात्यां सत्त्वेभ्यो बह्वर्थं कुर्वन्ति। तस्यां सर्वगन्धसुगन्धायां लोकधातौ कल्पानामपि (ला० ३५१क) शतसहस्राणि सत्त्वेभ्य इदमर्थं कर्तुम् शक्नुवन्ति। तत् कस्य हेतोः? सत्पुरुषाः, अस्यां सहायां लोकधातौ दश परिग्रहाऽवहाः कुशलसंनिचयधर्माः संविद्यन्ते। तेऽन्यस्मिन् बुद्धक्षेत्रे न भवन्ति। कतमे दश? तद्यथा—

"दानेन दरिद्रसंग्रहः; शीलेन दुःशीलसंग्रहः; क्षान्त्या कटुकसंग्रहः; वीर्येण कुसीदसंग्रहः; ध्यानेन विक्षिप्तचित्तसंग्रहः; प्रज्ञया दुष्प्रज्ञसंग्रहः;

अक्षणप्राप्तेभ्योऽष्टाभ्योऽक्षणेभ्योऽतिक्रमणदेशना, प्रदेशकारिभ्यो महायान-देशना कुशलमूलेनानवरोपितकुशलमूलसग्रहः, चतुर्भिः संग्रहवस्तुभिः सतत-समितं सत्त्वपरिपाचनम् । ते दश प्रग्रहाऽवहाः कुशलसनिचयधर्मा अन्यस्मिन् बुद्धक्षेत्रे न संविद्यन्ते" ।

बोधिसत्त्वा अवदन्—"अन्विताः कतिभिर्धर्मैर्बोधिसत्त्व(ाः), अस्याः सहाया लोकधात्वाश्च्युत्वा, अक्षतानुपद्रुताः परिशुद्धबुद्धक्षेत्रं (ला० ३५१ख) गमिष्यन्ति ?" आह– "अन्विता अष्टाभिर्धर्मैर्बोधि-सत्त्व(ाः), अस्याः सहाया लोकधात्वाश्च्युत्वा, अक्षतानुपद्रुताः परिशुद्ध-बुद्धक्षेत्र गमिष्यन्ति । कतमेऽष्टौ ? (बोधिसत्त्वैः प्रत्यवेक्षितव्यम्)—

" 'सर्वसत्त्वा मयाऽनुग्राह्याः, इच्छंस्तेभ्यो न किंचिद् हित । सर्वसत्त्वानां सर्वदुःखं क्षाम्यम्, तत्–(प्राप्तानि) सर्वकुशलमूलानि सर्व-सत्त्वेभ्य उत्स्रष्टव्यानीति । सर्वसत्त्वेष्वप्रतिहतो (भवानि) । शास्तरीव सर्वबोधिसत्त्वनन्दी (भवानि) । श्रुताश्रुतधर्मा श्रुत्वा, (भवान्य्–) अप्रतिक्षेपः । परलाभ ईर्ष्याऽपगतः स्वलाभेनागर्वश्च चित्तनिध्यप्तो (भवानि)। आत्मस्खलित(ानि) प्रत्यवेक्षमाणः परदोषान्न चोदयामि । अप्रमादरतश्च सर्वगुणान् संप्रतीच्छामी'(ति) । तैरष्टाभिर्धर्मैरन्विता बोधिसत्त्व(ाः), सहाया लोकधात्वाश्च्युत्वा, अक्षतानुपद्रुताः परिशुद्धबुद्धक्षेत्रं गमिष्यन्ति" । (ला० ३५२क) ।

अथ लिच्छविविमलकीर्तिना च मञ्जुश्रीकुमारभूतेन चैवं तस्यां पर्षदि संनिपतितेभ्यस्तथा हि धर्मे देशिते, शतमात्राणां प्राणिसहस्राणाम् अनुत्तरसम्यक्संबोधिचित्तान्युत्पादितानि । बोधिसत्त्वानां दशभिः सहस्रै रनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिः प्रतिलब्धा ।

निर्माणभोज्याऽऽनयनस्य परिवर्तो नवम ।

१० क्षयाक्षयन्नाम धर्मयौतकम्[1]

तेन खलु पुनः समय आम्रपालीवने भगवता धर्मे निर्दिश्यमाने, स मण्डलमाडो विस्तीर्णो विशालोऽभूत्; सा पर्षच्च सुवर्णवर्ण इव सनिविष्टा(ऽभूत्)।

ततः आयुष्मानानन्दो भगवन्तमेतदवोचत्—"भगवन्, अत्रेदमाम्रपालीवनं विस्तीर्णंच विशालभूतं, सर्वावती पर्षदपि सुवर्णवर्णे दृश्यते। कस्य खल्विदं पूर्वनिमित्तं?" भगवानवोचत्- "आनन्द, इदं लिच्छविविमलकीर्तिमंजुश्रीकुमारभूतयोः प्रभूतपरिवारेण परिवृतयोः पुरस्कृतयो-स्तथागतसमीपाऽगमनपूर्वनिमित्तं"।

अथ लिच्छविर्विमलकीर्तिर्मंजुश्रीकुमारभूतमेतदवोचत्—"मंजुश्रीः, इमे महासत्त्वा (ला० ३५२ख) अपि नमस्यन्ति तथागतं दृश्यमानाः, तस्माद्वावां तथागतस्य समीपं गमिष्यावः"। मंजुश्रीराह—"कुलपुत्र, गमिष्यावो यस्येदानीं कालं मन्यसे"।

ततो लिच्छविर्विमलकीर्तिरेवंरूपम् ऋद्ध्यभिसंस्कारमभिसंस्करोति स्म, यथा तैस्सिंहासनैस्साकं सर्वावतीं पर्षदं दक्षिणपाणौ प्रतिष्ठाप्य, येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य, पर्षदं भूमौ प्रतिष्ठापयति स्म। भगवतः पादौ शिरसाऽभिवन्द्य, सप्तकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्यैकान्तेऽस्थात्।

अथ तेऽपि सुगन्धकूटस्य तथागतस्य बुद्धक्षेत्रादागता बोधिसत्त्वाः सिंहासनेभ्योऽवतीर्य, भगवतः पादौ शिरसाऽभिवन्द्य, भगवते कृताञ्जलिभूता नमस्कुर्वन्त एकान्तेऽस्थुः। सर्वे तेऽपि बोधिसत्त्वा महासत्त्वाश्च

---

१ 'धर्मयौतक' के अर्थ के लिये द्र० ऊपर प्रथमपरिवर्त पादटिप्पणी २।

महाश्रावकाश्च सिंहासनेभ्योऽवतीर्य, भगवतः पादौ शिरसाऽभिवन्द्य, एकान्ते (ला० ३५३क) ऽस्थुः । एवमेव सर्वे ते शक्रब्रह्मलोकपालदेवपुत्रा भगवतः पादौ शिरसाऽभिवन्द्य, एकान्तेऽस्थुः ।

ततो भगवान्, तान् बोधिसत्त्वान् धर्मकथया सम्प्रहर्षयित्वा, एतद्-वोचत्—"कुलपुत्राः, स्वकस्वकसिंहासनेषु निषीदत" । भगवतैतदुक्ते, ते न्यषीदन् ।

अथ भगवांशारिपुत्रमामन्त्रयते स्म—"शारिपुत्र, बोधिसत्त्वाना वरसत्त्वाना विकुर्वणानि ननु त्वया दृष्टानि ?" आह- "ध्रुव, भगवन्, दृष्टानि" । भगवानवोचत्- "ततस्ते कीदृशा सञ्ज्ञोत्पन्ना ?" आह- "ध्रुव, भगवन् ततो मेऽचिन्त्यसंज्ञोत्पन्ना । तेषां करणमेवमचिन्त्य दृष्टं, यथा चिन्तातुलनागणना अशक्याः" ।

अथ भगवन्तमायुष्मानानन्द एतदवोचत्—"भगवन्, अपूर्वघ्रातो गन्धः श्रूयमाणः, ईदृशोऽस्ति कस्य गन्धः ?" भगवान् (ला० ३५३ ख) अवोचत्- "आनन्द, ते बोधिसत्त्वाः कायस्य सर्वरोमकूपेभ्य (ईदृश) गन्ध निःश्वसन्ति" । शारिपुत्रोऽप्याह- "आयुष्मनानन्द, अस्मत्कायस्य सर्वरोमकूपेभ्योऽपीदृशो गन्धो निश्चरति" । आह- "कुतो गन्ध आगतः ?" आह- "अय लिच्छविर्विमलकीर्तिः सुगन्धकूटस्य तथागतस्य सर्वगन्धसुगन्धालोकधातोर्बुद्धक्षेत्राद्भोजनमादत्ते स्म । परिभुक्त्वा, सर्वेषां, कायादीदृशो गन्धो निश्चरति" ।

तत आयुष्मानानन्दो लिच्छविं विमलकीर्तिमेतदवोचत्—"अयं गन्धः कियच्चिरमाविष्करणमायाति ?" आह- "यावदन्नमजीर्णम्" । आनन्द आह- "कियच्चिरचरितं तदन्न जीर्णं भविष्यति ?" आह- "सप्ताहरात्रान्तरे जीर्णं भविष्यति । ततोऽपि यावत्सप्ताहमेवभोजः

परिस्फुटं भविष्यति। अजीर्णेऽपि (भोजने), न काचित् पीडा जायते।

"यैश्च भदन्त आनन्द भिक्षुभिरनवक्रान्तनियामैरेतद्भोजनं भुक्तम्, तेषामेवावक्रान्तनियामाना परिणंस्यति। यैरवक्रान्तनियामैरेतद्भोजनं भुक्तं, यावत्तेऽपरिमुक्तचित्ताः" (ला० ३५४क) (तेषान्-) न परिणस्यति। यैरनुत्पादितबोधिचित्तैः सत्त्वैः परिभुक्तम्, तेषामुत्पादितबोधिचित्तानां परिणंस्यति। यैरुत्पादितबोधिचित्तैर्भुक्तम्, तेषां नाप्रतिलब्धक्षान्तिकानां परिणंस्यति[२]। यैः प्रतिलब्धक्षान्तिकैर्भुक्तम्, तेषामेकजातिप्रतिबद्धानां परिणंस्यति।

"भदन्तानन्द, तद्यथापि नामसरसन्नाम भैषज्यमुदरेऽवतीर्य, यावत् सर्वाणि विषाण्यनपगतानि, (तावन्-) न परिणंस्यति, तद्भैषज्यं पश्चात् परिणंस्यति। एवमेव, भदन्तानन्द, यावत् सर्वक्लेशविषाण्यनपगतानि, तद्भोजनन्न परिणंस्यति। तद्भोजन पश्चात् केवलं परिणस्यति[३]।"

तत आयुष्मानानन्दो भगवन्तमेतदवोचत्—"इदम्, भगवन्, भोजनं हि बुद्धकार्यं करोति"। आमन्त्रयते स्म- "तत् तथा, आनन्द, यथा वदसि, तत् तथेति।

"संविद्यन्ते, आनन्द, बुद्धक्षेत्राणि, येषु बोधिसत्त्व(ा) बुद्धकार्यं कुर्वन्ति, संविद्यन्ते बुद्धक्षेत्राणि, येषु प्रभया बुद्धकार्यं कृतं, येषु बोधिवृक्षेण, (ला० ३५४ख) तथागतलक्षणरूपदर्शनेन, चीवरेण, भोज्येन, जलेन, उद्यानेन, विमानेन, कूटागारेण बुद्धकार्यं कृतं, संविद्यन्ते च आनन्द, बुद्धक्षेत्राणि, येषु निर्माणेन

२ रेखांकित पंक्तियाँ शिक्षासमुच्चय, पृ० १४४ में सुरक्षित हैं।

३ तुलनीय प्रसन्नपदा, पृ० १०८–१०९ में रत्नकूटसूत्र का गद्यांश।

बुद्धकार्यं कृतं। आनन्द, संविद्यन्ते पुनर्बुद्धक्षेत्राणि, (येष्वु) आकाशेन बुद्धकार्यं कृत। एवमेवाऽकाशान्तरीक्षं बुद्धकार्यं कृत। अनेन ते सत्त्वा वैनेयिका भवन्ति"।

"एवमेव, आनन्द, स्वप्नप्रतिबिम्बोदकचन्द्रप्रतिश्रुत्कामायामरीच्युदाहरणाक्षरनिरुक्तिदर्शनेन तेभ्यः सत्त्वेभ्यो बुद्धकार्यं कृतं। संविद्यन्तेऽपि बुद्धक्षेत्राणि, येष्वक्षरविज्ञप्त्या बुद्धकार्यं कृत। आनन्द, (ला० ३५५क) यत्रावचनानभिलापानिदर्शनानुदाहारेण तेभ्यः सत्त्वेभ्यो बुद्धकार्यं कृत, (तत्र) एवं परिशुद्धबुद्धक्षेत्राणि संविद्यन्ते।

"भगवताम्, आनन्द बुद्धानाम् ईर्यापथोपभोगपरिभोगेन सत्त्वदमनार्थमकृतबुद्धकार्यं किञ्चिन्नास्ति। आनन्द, तैश्चतुर्भिर्मारैश्च चतुरशीतिशतसहस्रैश्च क्लेशमुखैः, (यैः) सत्त्वाः संक्लिष्टाः, सर्वैस्तैर्बुद्धा भगवन्तो बुद्धकार्यं कुर्वन्ति।

"इदं ह्यानन्द, सर्वबुद्धधर्ममुखप्रवेशो नाम धर्ममुखम्। तेऽस्मिन् धर्ममुखे प्रविष्टा बोधिसत्त्वाः सर्वोदारगुणव्यूहान्वितबुद्धक्षेत्रेषु न च दीना वोत्तमा वा। सर्वोदारगुणव्यूहान्वितबुद्धक्षेत्रेषु (ते), न चोदग्रा वा गर्विता वा, तथागतेषु प्रतिमानम् उत्पादयन्ति। भगवन्तो बुद्धा (यथा) सर्वधर्मसमताऽधिगताः सत्त्वपरिपाचनार्थाय (ला० ३५५ख) नानाप्रकारबुद्धक्षेत्राणि दर्शयन्ति, तदाश्चर्यम्।

"आनन्द, तद्यथापि नाम बुद्धक्षेत्राणा गुणा अन्योऽन्यं नानाविधाः, किं तु क्रियामार्गेण प्रसारितबुद्धक्षेत्राण्याकाशंच् आभिन्नानि। एवमेव, आनन्द, तथागताना रूपकाया नानाविधाः, परं तु तथागतानामसगज्ञानं ह्यभिन्नम्।

"आनन्द, सर्वबुद्धाना रूपवर्णतेजः कायलक्षणाभिजातशीलसमाधि-

प्रज्ञाविमुक्तिविमुक्तिज्ञानदर्शनबलवैशारद्या-(ऽवेणिक-) बुद्धधर्ममहामैत्रीमहाकरुणाहिताभिप्रायेर्यापथचर्यामार्गाऽयुष्प्रमाणधर्मदेशनासत्त्वपरिपाचनसत्त्वविमोचन-(बुद्ध-)क्षेत्रपरिशोधनानि सर्वबुद्धधर्मपरिनिष्पन्ने समानि। अतस् (तथागताः) सम्यक्संबुद्धा इत्युच्यन्ते, (उच्यन्ते) तथागता (ला० ३५६क) बुद्धा इति।

"सुखमवगन्तुम्, आनन्द, तेषां त्रयाणां वाक्यानां यदर्थव्यासश्च वचनविभजनं, तन्न सुकरम्, यद्यप्यायुष्प्रमाणन्ते कल्पसंनिहितं (स्यात्)[४]। (ये) त्रिसाहस्र (महासाहस्रलोकधात्व् -) अन्तर्भूताः सत्त्वाः (स्युः), त्वमिवाऽनन्दो बहुश्रुतानां स्मृतिधारणीप्राप्तानामग्रतां प्राप्ताः, सर्वे त आनन्दप्रतिरूपकसत्त्वाः कल्पमपि दृश्यमानास्तेषां त्रयाणां वाक्यानां—'सम्यक्संबुद्धः, तथागतः, बुद्ध, इति-नियतार्थम् अवगन्तुमसमर्थाः। तथा ह्यानन्द, बुद्धबोधिरप्रमाणा, अचिन्त्ये तथागतानां प्रज्ञा प्रतिभानञ्च"।

अथ भगवन्तमायुष्मानानन्द एतत्वोचत्—"भगवन्, अद्याग्रेण 'बहुश्रुत(ानाम्) अग्र्योऽहम्' इति न प्रतिजानामि"। भगवानवोचत्—"दैन्यम्, आनन्द, मोत्पादय। तत् कस्य हेतोः? श्रावकेषु, न किन्तु बोधिसत्त्वेषु, त्वां समन्वाहृत्य, 'बहुश्रुतानामग्र्यो (ऽसी-)' त्याख्यातम् मया। आनन्द, बोधिसत्त्व् (ला० ३५६ख) एक्षणं तु निक्षिपः ते हि पण्डितैः प्रमाणाग्राह्याः। सर्वसमुद्राणाम्, आनन्द, गम्भीरतां प्रमातुं शक्यम्, पर तु बोधिसत्त्वानां प्रज्ञाज्ञानस्मृतिधारणीप्रतिभानगम्भीरतां प्रमातुम्न शक्यम्।

१। "आनन्द, उपेक्षाऽस्तु ते बोधिसत्त्वचर्यासु। तत् कस्य हेतोः? (यः), आनन्द, अनेन लिच्छविविमलकीर्तिनैकपूर्वाह्णे दर्शितो व्यूहः, सर्व

४ तुलनीय दीघनिकाय, खण्ड २, पृ० ८१, युक्तेन कल्जग तथा भिक्षु प्रासादिक, एक्सेर्प्ट्स फ्रॉम दि शूरंगमसमाधिसूत्र, पृ० ३९-४०।

ऋद्धिप्राप्तश्रावकाश्च प्रत्येकबुद्धाः कल्पानामपि शतसहस्रकोटीः सर्वर्द्धिनिर्माण-प्रातिहार्यैः (तं) दर्शयितुन्न शक्नुवन्ति ।"

ततस्सर्वे ते तथागतस्य सुगन्धकूटस्य बुद्धक्षेत्रादागताः प्रगृहीताञ्जलिर्बोधिसत्त्वास्तथागतमभिवन्दित्वा, एतद्वचनमब्रोचन्—"भगवन्, वयमत्रास्मिन् बुद्धक्षेत्र अवरोपितहीनसञ्ज्ञामनसिकारान् प्रहातुमिच्छामः। तत् कस्य हेतोः ? भगवतां बुद्धानाम्, भगवन्, बुद्धविषय् (ला० ३५७क) ओपायकौशल्यमचिन्त्यम्। ते सर्वसत्त्वपरिपाचनार्थं यथा कामः, तथा तथा क्षेत्रव्यूहान् देशयन्ति। अस्मभ्यम्, अस्मत्सर्वगन्धसुगन्धालोकधातुं गत्वा, भगवान् भगवदनुस्मृत्यावहधर्मयौतक ददातु"। एतदवोचन्।

भगवानामन्त्रयते स्म—"कुलपुत्राः, अस्ति क्षयाक्षयन्नाम बोधिसत्त्वविमोक्षः। तस्मिन् युष्माभिः शिक्षितव्यम्। स कतमः ? क्षयो नाम हि संस्कृतम्, असस्कृतम् ह्यक्षयः। तस्मिन् बोधिसत्त्वेन संस्कृतन्न क्षपयितव्यम्, असस्कृते न स्थातव्यम्।

"तस्मिन् संस्कृताक्षयो हि तद्यथा–महामैत्र्यविनाशः, महाकरुणाऽनुत्सर्जनम्, अध्याशयसविवेशितस्य सर्वज्ञचित्तस्यासम्प्रमोषः, सत्त्वपरिपाचनेऽखेदः, सग्रहवस्तूनामनुत्सर्गः, सद्धर्मपरिग्रहार्थं कायजिवितोत्सर्गः, कुशलमूलेष्वसतुष्टिः, परिणामनाकौशल्ये नियोजनम्, (ला० ३५७ख) धर्मपर्येषणायामकौसीद्यम्, धर्मदेशनायामाचार्यमुष्टयकरणम्, तथागतदर्शन-पूजाऽर्थोद्योगः, सचिन्त्योपपत्त्याऽत्रासः, संपत्त्या च विपत्त्यामनुन्नतिरनवनता, अशिक्षितेष्वनतिमन्यना च शिक्षितेषु शस्तरीव प्रियचिन्ता, स्फीत-क्लेशेषु योनिश उपसंहारः, विवेक आरामश्च तस्मिनश्लेषः, स्वसुख अनस्सक्तिश्चाऽसक्तिः परसुखे, ध्यानसमाधिसमापत्तिष्ववीचिसंज्ञा, संसार उद्याननिर्वाण-संज्ञा, याचकेषु कल्याणमित्रसंज्ञा, सर्वस्वपरित्यागे सर्वज्ञतापूरणसज्ञा, दुःशीलेषु गुप्तिसज्ञा, पारमितासु मातृपितृसंज्ञा, बोधिपक्ष्यधर्मेषु स्वामिसेवा-

सञ्ज्ञा, सर्वकुशलमूलसंचयेनासन्तुष्टिश्च सर्वबुद्धक्षेत्र (ला० ३५८क) गुण-(ऐः) स्वक्षेत्रनिष्पादना, लक्षणानुव्यञ्जनपरिपूरणार्थम् अनर्गडयज्ञविसर्जनम् , सर्वपापाकरणेन कायवाक्चित्तालङ्कारः, कायवाक्चित्तपरिशुद्ध्याऽसंख्येयकल्पान् ससरणम्, चित्तपराक्रमेणाप्रमाणबुद्धगुणश्रवणेऽनवलीनता, क्लेशशत्रुनिग्रहाय तीक्ष्णप्रज्ञाशस्त्रधारणम्, सर्वसत्त्वभारहरणाय स्कन्धधात्वायतनाऽज्ञा, मारसेनां हन्तुं वीर्यज्वलनम्, निरधिमानतायै ज्ञानैषणा, धर्मोद्ग्रहणार्थम् अल्पेच्छता च सन्तुष्टिः, सर्वलोकसन्तोषणाय सर्वलोकधर्मासंभेदः, लोकेन सह सामग्रीकरणार्थं सर्वेर्यापथाविनाशः, सर्वक्रियासम्प्रकाशनायाभिज्ञोपसंहारः, सर्वश्रुतधारणाय धारणीस्मृतिज्ञानानि, सर्वसत्त्वसंशयच्छेदनायेन्द्रियवरावरज्ञानम्, धर्मदेशनाया (ला० ३५८ख) अप्रतिहताधिष्ठानम्, प्रतिभानप्राप्तिसुलाभेनाप्रतिहतप्रतिभानम्, कुशलकर्मपथपरिशुद्ध्या देवमनुष्यसम्पत्त्यास्वादनम् चतुरप्रमाणप्रभावनया ब्रह्ममार्गप्रतिष्ठापनम्, धर्मदेशनाऽभ्यर्थनया चानुमोदनासाधुकारेण बुद्धस्वरप्रतिलम्भः, कायवाग्मनः संवरेण विशेषगामितया च सर्वधर्माश्लेषेण बुद्धेर्यापथप्रतिलम्भः, बोधिसत्त्वसंघसंग्रहेण महायानावतारणता, सर्वगुणाविप्रणाशेनाप्रमादः । कुलपुत्राः, (यो) बोधिसत्त्व एव हि धर्माभियुक्तः, (स) बोधिसत्त्वः संस्कृतञ्च क्षपयन्ति।

"किम् असंस्कृतेऽस्थानम्? यदा शून्यतायां व्यन्तीकरणम्, शून्यतासाक्षात्करणन्तु नास्ति; अनिमित्तव्यन्तीकरणम्, परं त्वनिमित्तसाक्षात्करणञ्चास्ति; अप्रणिहितव्यन्तीकरणम्, किं त्वप्रणिहितसाक्षात्करणञ्चास्ति; अनभिसंस्कारव्यन्ती-(ला० ३५९क)करणम्, अनभिसंस्कारसाक्षात्करणन्तु नास्ति।

"अनित्यताप्रत्यवेक्षा, परं तु कुशलमूलासन्तुष्टिः; दुःखप्रत्यवेक्षा, किंतु संचिन्त्योपपत्तिः; नैरात्म्यप्रत्यवेक्षा, आत्मपरित्यागस्तु नास्ति ।

"शान्तिप्रत्यवेक्षा, परं तूपशमानुत्थापनम्, विवेकप्रत्यवेक्षा, किं तु कायचित्तेनौत्सुक्यम्; अनालयप्रत्यवेक्षा, अपि तु शुचिधर्मालयप्रतिक्षेपो नास्ति; अनुत्पादप्रत्यवेक्षा, सत्त्वानां तु भारादानधारणम्, अनास्रवप्रत्यवेक्षा, पर तु संसारप्रबन्धोत्थापनकरणम्, अप्रचारप्रत्यवेक्षा, सत्त्वपरिपाचनार्थं प्रचारोत्पादः; नैरात्म्यप्रत्यवेक्षा, अपि तु सत्त्वमहाकरुणाऽनुत्सर्गः, अप्ररोहणप्रत्यवेक्षा, अपि तु खलु पुनः श्रावकनियत्यपातः।

"(सर्वधर्मेषु) तुच्छरिक्तनिःसारास्वामिकानिकेतप्रत्यवेक्षा, परं त्वतुच्छपुण्ये चारिक्तज्ञाने च परिपूर्णसकल्प् (एषु) च स्वयम्भूज्ञानाभिषेके च स्वयम्भूज्ञानाभियोगे च नीतार्थबुद्धगोत्रे प्रतिष्ठा। कुलपुत्राः, एव हि तादृशधर्मा(ला० ३५९ख)धिमुक्तबोधिसत्त्वोऽसस्कृते न तिष्ठति, संस्कृतश्चापि न क्षपयति।

"पुनरपरं, कुलपुत्राः, बोधिसत्त्वः पुण्यसम्भारस्य समभिनिर्हारार्थम् असस्कृते न तिष्ठति, ज्ञानसम्भारसमभिनिर्हारार्थं संस्कृतन्न क्षपयति। महामैत्री समन्वागतः (सो)ऽसस्कृते न तिष्ठति, महाकरुणासमन्वागतः (स) संस्कृतन्न क्षपयति।

"सत्त्वपरिपाचनार्थाय (सो)ऽसंस्कृते न तिष्ठति, बुद्धधर्माधिमुक्तिकारणात् (स) संस्कृतन्न क्षपयति। बुद्धलक्षणपरिपूरणार्थम् असंस्कृते न तिष्ठति, सर्वज्ञज्ञानपरिपूरणार्थं संस्कृतन्न क्षपयति। उपायकौशल्यकारणादसंस्कृते न तिष्ठति, प्रज्ञासुनिश्चितः (स) संस्कृतन्न क्षपयति। बुद्धक्षेत्रपरिशोधनार्थमसंस्कृते न तिष्ठति, बुद्धाधिष्ठानकारणात् सस्कृतन्न क्षपयति। सत्त्वार्थानुभवकारणादसस्कृते न तिष्ठति, धर्मार्थ (ला० ३६०क) सम्प्रकाशनकारणात् संस्कृतन्न क्षपयति।

"कुशलमूलसंचयार्थायासंस्कृते न तिष्ठति, कुशलमूलवासनाकारणात्

संस्कृतन्न क्षपयति। प्रणिधानपरिपूरणार्थमसंस्कृते न तिष्ठति, अप्रणिहित-कारणात् सस्कृतन्न क्षपयति। आशयपरिशुद्धिकारणादसंस्कृते न तिष्ठति, अध्याशयपरिशुद्धिकारणात् संस्कृतन्न क्षपयति। पञ्चाभिज्ञाविक्रीडनताकार-णाद् असंस्कृते न तिष्ठति, बुद्धज्ञानस्य षडभिज्ञाऽर्थाय सस्कृतन्न क्षपययि।

"पारमितासचयपरिपूरणार्थम् असस्कृते न तिष्ठति, कालपरिपूरि-कारणात् संस्कृतन्न क्षपयति। धर्मधनसंग्रहार्थमसंस्कृते न तिष्ठति, प्रादेशिक-धर्मास्पृहणताकारणात् सस्कृतन्न क्षपयति। धर्मभैषज्यसग्रहार्थमसंस्कृते न तिष्ठति, यथायोग धर्मभैषज्यप्रयोगार्थाय संस्कृतन्न क्षपयति।

"प्रतिज्ञाधैर्यार्थायासंस्कृते न तिष्ठति; प्रतिज्ञाहान्याः पश्चात् (यथा) अधिगच्छेत, (स) सस्कृतन्न क्षपयति। सर्व (ला ३६०ख) धर्मौषध्या-धानार्थायासस्कृते न तिष्ठति, एवम् मृदुधर्मौषधप्रयोगार्थं संस्कृतन्न क्षप-यति। स सर्वक्लेशरोगपरिज्ञानकारणादसंस्कृते न तिष्ठति, सर्वरोगसंशमनार्थं संस्कृतक्षयमेच्छति। कुलपुत्राः, इत्येवं बोधिसत्त्वः संस्कृतन्न क्षपयति चासंस्कृते न तिष्ठति। स हि बोधिसत्त्वानां क्षयाक्षयन्नाम विमोक्षः। तस्मिन्, सत्पुरुषाः, युष्माभिरपि योगः करणीयः"।

अथ ते बोधिसत्त्वाः, इममुपदेशं श्रुत्वा तुष्टा उदग्रा आत्तमनसः प्रमुदिताः प्रीतिसौमनस्यजाताः, भगवत्पूजनार्थंच तेभ्यो बोधिसत्त्वेभ्य-श्चास्मै धर्मपर्यायाय पूजनार्थम्, सर्वमिमं त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातुं सर्वानेकचूर्णगन्धधूपपुष्पैर्जानुमात्रम् आच्छादयन्ति स्म। भगवतः पर्ष-न्मण्डलमभिकीर्य, भगवतः पादौ शिरसाभिवन्द्य, भगवते (ला० ३६१क) त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य, उदानमुदानयामासुः। ततस् (ते) ऽस्माद् बुद्धक्षेत्रादन्त-र्हिता एकक्षणलवमुहूर्तेन तस्यां सर्वगन्धसुगन्धायां लोकधात्वाव्यषीदन्।

क्षयाक्षयन्नाम धर्मयौतकस्य परिवर्तो दशमः।

११ अभिरतिलोकधात्वादानं तथागताक्षोभ्यसन्दर्शनं च

अथ भगवाँल्लिच्छविं विमलकीर्तिमेतदवोचत्—"कुलपुत्र, यदा तथागत द्रष्टुमिच्छसि, तदा कथ पश्यसि तथागतम् ?" एवमामन्त्रयते स्म । लिच्छविर्विमलकीर्तिर्भगवन्तमेतदवोचत्—

"भगवन्, यदाऽहं तथागतं द्रष्टुकामः, तदाध्रुव तथागतादर्शनेन (तं) पश्यामि । (तथागतं) पूर्वान्तादनुत्पन्न चापरान्तमगच्छन्तच प्रत्युत्पन्नेऽध्वन्यप्यप्रतिष्ठित पश्यामि । तत् कस्य हेतोः ?

"(तथागतो) रूपतथतास्वभावश्च रूपापगतः, वेदना- संज्ञा संस्कार विज्ञानतथता (ला० ३६१ख) स्वभावश्च विज्ञानापगतः। चतुर्धात्वप्रतिष्ठितस् (तथागत) आकाशधातुसमः, षडायतनानुत्पन्नः, चक्षुः श्रोत्रघ्राणजिह्वाकायमनोमार्गसमतिक्रान्तः । (तथागतस्–) त्रैधातुकासकीर्णः, मलत्रयरहितः, विमोक्षत्रयानुगतः, त्रिविद्याप्राप्तः, अप्रतिलब्ध- (श्च) सम्प्रतिलब्धः ।

"(स) सर्वधर्मेष्वश्लेषनिष्ठागतः, भूतकोट्यपगतः, तथतासुप्रतिष्ठितः सोऽन्योन्यविगतः । (तथागतो) हेत्वनुत्पादितोऽप्रत्ययप्रतिबद्धः, लक्षणापगतः, असलक्षणः, न चैकलक्षणो न च भिन्नलक्षणः, अकल्पितः, असंकल्पितः, अविकल्पितः । (तथागतः) पारे नास्ति, अपारे च नास्ति, नास्ति मध्येऽपि; इह वा तेन वा तत्र वा (ला० ३६२क) ऽन्यत्र वा नास्ति । विज्ञानेन (सो)ऽज्ञातव्यः, विज्ञानस्थानन्नास्ति, (स) न च तमो न चालोकः ।

"(तथागतो) नामापगतो निमित्तापगतः, (स) नास्ति दुर्बलो वा बलवान् वा, न च देशस्थो न च पक्षस्थितः, कुशलाकुशलापगतः, संस्कृतासंस्कृतापगतः, कश्चिदभिलाप्योऽर्थो नास्ति, दानमात्सर्यशीलदौःशील्यक्षान्तिव्यापादवीर्यकौसीद्यध्यानौद्धत्यप्रज्ञादौष्प्रज्ञासु (सो)ऽनभिलाप्यः। (तथागतो) नास्ति सत्यं वा मृषा वाऽवधारणं वाऽनवधारण वा, न च जगद्विधिर्न च जगदविधिः, सर्ववादचर्या(ला० ३६२ख)ऽत्यन्तसमुच्छिन्नः। (स) क्षेत्रभावो वा क्षेत्राभावो वा नास्ति, न च दक्षिणीयो न च दानानुपभोगः, न ग्राहितव्यं वा स्पृशेयं वा निमित्त वा। (सो)ऽसंकृतः, सख्याविगतः, समतासमः, धर्मतासमासमः, अतुल्यवीर्यः, तुलनासमतिक्रान्तः; गमनं वा, आपन्नं वा, समतिक्रान्तं वा (स) नास्ति।

"(तथागतो)ऽदृष्टः, अश्रुतः, अमतः, अविज्ञातः, सर्वग्रन्थापगतः, सर्वज्ञज्ञानसमताप्राप्तः, सर्वधर्मसम(ता)निर्विशेषप्राप्तः, सर्वत्र निरवद्यः, अकिञ्चनः, कषायरहितः, अकल्पः, अविकल्पः, अकृतः, अनुत्पन्नः, अजातः, अभूतः, असंभूतः; अभावी, अनभावी, अभयः, अनालयः; अशोकः (ला० ३६३क), अनानन्दः, अतरंगः, सर्वव्यवहारनिर्देशावक्तव्यः।

"तथागतकायो हि, भगवन्, ईदृशः; स एवं द्रष्टव्यः। य एवं पश्यति, सम्यक् पश्यति सः। योऽन्यथा पश्यति, स मिथ्या पश्यति"।

तत आयुष्मांशारिपुत्रो भगवन्तमेतदवोचत्—"स कुलपुत्रो विमलकीर्तिः, भगवन्, कस्माद्बुद्धक्षेत्राच्च्युत्वा, अस्मिन् बुद्धक्षेत्र आगतः ?" भगवानामन्त्रयते स्म—"शारिपुत्र, इमं सत्पुरुषं 'त्वं कस्माच्च्युत्वा, इह जात ?' इति पृच्छ"। तत आयुष्मांशारिपुत्रो लिच्छविं विमलकीर्तिमेतदवोचत्—"कुलपुत्र, त्वं कस्माच्च्युत्वा, इह जातः ?" विमलकीर्तिराह—

"यः स्थविरेण साक्षात्कृतधर्मः, किं तस्मिश्च्युत्युत्पत्ती स्तः केचित् ?" आह– "तस्मिन् धर्मे केचिच्च्युत्युत्पत्ती न स्तः"। आह– "भदन्त शारिपुत्र, सर्वेषु धर्मेष्वेवमेव च्युत्युत्पत्त्यपगतेषु, कस्मादेवं 'त्वं कस्माच्च्युत्वा, इह जात ?' इति मन्यसे ? भदन्त शारिपुत्र, मायाकार-निर्मितौ चेत् (ला० ३६३ख) स्त्रीं वा पुरुष वा 'त्व कस्माच्च्युत्वा, इह जात ?' इति पृच्छेत्, तत्समाधानं किम् (अभविष्यत्) ?" आह–"निर्माणश्चेच्च्युत्युत्पत्त्यपगत, तत् किं व्यसर्जयिष्यत् ?" आह–"भदन्त शारिपुत्र, ननु न 'सर्वधर्मा निर्माणस्वभावा' इति तथागतेनाऽख्यातम् ?" आह–"तत् तथेति, कुलपुत्र"। आह–"सर्वेषु धर्मेषु, भदन्त शारिपुत्र, निर्माणस्वभावेषु, कस्मादिदं 'त्व कस्माच्च्युत्वा, इह जात ?' इति मन्यसे ? भदन्त शारिपुत्र, च्युतिर्नामाभिसंस्कारसवर्त लक्षणा, उत्पत्तिर्नाम–साऽभिसंस्कारसन्तति-लक्षणा। ततो बोधिसत्त्वो यद्यपि म्रियते, कुशलमूलाभिसंस्कारन्न क्षपयति। स यद्यपि जायते, अकुशलसन्ततिन्न प्रतिसन्दधाति"।

अथ भगवानायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत्—"शारिपुत्र, अय सत्पुरुष इहाऽगतोभिरतिलोकधातोरक्षोभ्यस्य[1] तथागतस्यान्तिकात्"। आह–"आश्चर्यम्, भगवन्, (यथा) ऽय सत्पुरुषः, एतावद्विशुद्धबुद्धक्षेत्रा-दागतो (ला० ३६४क) (ऽस्मिन्) बहुलात्ययदुष्टे बुद्धक्षेत्रेऽभिनन्दति"। ततो लिच्छविर्विमलकीर्तिरब्रवीत्—

"शारिपुत्र, तत् किं मन्यसे ? सूर्यप्रभासाः किमन्धकारसहिताः ?" आह– "नो हीदं, कुलपुत्र"। "ननु तौ न सहितौ ?" आह–"तौ, कुल-पुत्र, असहितौ। सूर्यमण्डल अभ्युद्गतमात्रे, सर्वान्धकारा विगच्छन्ति"। आह—"कस्माज्जम्बुद्वीपे सूर्य उदयति ?" आह—"तथ्यालोककरणार्थं

१ तुलनीय शूरंगमसमाधिसूत्र, पृ० २५।

चान्धकारापकर्षणार्थम्"। आह—"एवमेव, भदन्त शारिपुत्र, बोधिसत्त्वः सत्त्वपरिशोधनार्थं च ज्ञानाऽलोककरणार्थं च महाऽन्धकारापकर्षणार्थं संचिन्त्यापरिशुद्धबुद्धक्षेत्रेषु जायते। क्लेशैः सार्धन्न विरहति, सर्वसत्त्वानां तु क्लेशान्धकारं विनोदयति"।

ततः सर्वासा तासां पर्षदा 'साऽभिरतिलोकधातुश्च सोऽक्षोभ्यस्तथागतश्च ते बोधिसत्त्वाश्च ते महाश्रावका अस्माभिर्द्रष्टव्या' इति भावनाऽभूत्।

अथ भगवान् सर्वासा तासां पर्षदा चेतसैव चेतःपरिवितर्कमाज्ञाय, लिच्छविं (ला० ३६४ख) विमलकीर्तिमेतदवोचत्—"कुलपुत्र, इय हि पर्षत्तामभिरतिलोकधातुं चाक्षोभ्यं तथागतं द्रष्टुमिच्छति, तेन तस्यै पर्षदे देशय"। अथ लिच्छवये विमलकीर्तय एवं भवति स्म—

"अस्मात् सिंहासनाद् अनुत्थाय, तामभिरतिलोकधातु च बोधिसत्त्वानाम् अनेकशतसहस्राणि च सचक्रवाड पर्वतपरिवृतभवनान् देवनागयक्षगन्धर्वासुरांश्च (तां लोकधातुं) सनदीतडागोत्ससरस्समुद्रपरिखां च ससुमेरुगिर्यल्पहर्म्यां च सचन्द्रसूर्यतारकां च सदेवनागयक्षगन्धर्वस्थाना च सब्रह्मभवनपरिवारां च सग्रामनगरनिगमजनपदराष्ट्रनरनरीगृहां च सबोधिसत्त्वश्रावकपर्षदं चाक्षोभ्यस्य तथागतस्य बोधिवृक्ष चापि (ला० ३६५क) पर्षत्सागरे निषण्णं च धर्मं देशयन्तमक्षोभ्यं तथागतं च तानि पद्मानि, दशदिक्षु यानि सत्त्वेषु बुद्धकार्यं कुर्वन्ति, (तत्सर्वम् उपादास्यामि)। (यास्)तिस्रो रत्ननिःश्रेण्यो जम्बुद्वीपाद्यावत् त्रयस्त्रिंशभवनं, तास्वभ्यार्यनिःश्रेणीषु त्रयस्त्रिंशा देवा अक्षोभ्यस्य तथागतस्य दर्शनाय वन्दनाय पर्युपासनाय धर्मश्रवणाय च जम्बुद्वीपम् उपयान्ति, (तासु च) जम्बुद्वीपस्य मनुष्यास्त्रयस्त्रिंशानां देवानां दर्शनाय त्रयस्त्रिंशभवनम् आरोहन्ति, (तांश्च) तामेवंरूपाम् अप्रमाणगुणसञ्चयाम् अभिरतिलोकधातुम् आप्स्क-

न्धाद्यावदकनिष्ठभवन कुम्भकारस्य चक्रमिवोपादाय, केवलं छित्त्वा, दक्षिण पाणिना च पुष्पमालामिव गृहीत्वा, अस्या च सहालोकधातौ प्रक्षेप्स्यामि। प्रक्षिप्य, अस्यै सर्वपर्षदे निर्देक्ष्यामि"।

ततो लिच्छविर्विमलकीर्तिरेतादृश समाधिं समापद्यते स्मैतादृश चद्र्ध्यभिसंस्कारमभिसंस्करोति स्म, (यथा-)ऽभिरतिलोकधातु, तां केवल छित्त्वा, दक्षिणपाणिना गृहीत्वा, (ला० ३६५ख) अस्यां सहालोकधातौ प्रक्षिपति स्म।

तत्र ये श्रावकबोधिसत्त्वदेवमनुष्या दिव्यचक्षुरभिज्ञाप्राप्ताः, ते क्रन्दति स्म—"भगवन्, उपादीयामहे। सुगत, उपादीयामहे। सुगत, अस्मभ्य शरणं कुर्व"—इति याचन्ते स्म।

विनयार्थं भगवान् तानेतदवोचत्—"बोधिसत्त्वेन विमलकीर्तिनोह्यध्वे; स हि मद्गोचरो नास्ति"।

तत्रान्यदेवमनुष्यादिभिः-कुत्रोह्यामहे-ह्यज्ञातमदृष्टम्। साऽभिरतिलोकधातुरस्या सहालोकधातौ प्रक्षिप्यमाणाऽपि, अस्या लोकधातौ पूर्णत्व वोनत्व वा न ज्ञायेते स्म, न च संबाधो वा बन्धनं वा। साऽप्यभिरतिलोकधातुरनूनत्वा यथापूर्वं, पश्चात्तथा दृश्यते स्म।

अथ भगवाञ्शाक्यमुनिस्ताः सर्वाः पर्षद आमन्त्रयते स्म—"हे मित्राणि, पश्यताभिरतिलोकधातु चाक्षोभ्यं तथागतं चेमान् बुद्धक्षेत्रश्रावकबोधि (ला० ३६६क) सत्त्वव्यूहान्"। तेऽवोचन्—"ध्रुवम्, भगवन्, पश्यामः"। आह—"(यो) बोधिसत्त्व एतादृशं बुद्धक्षेत्रं परिग्रहीतुकामः, (तेन) तथागतस्याक्षोभ्यस्य बोधिसत्त्व(-नां) सर्वचर्या अनुशिक्षितव्याः"।

तथा ह्यभिरतिलोकधातुसंदर्शनस्यर्द्धिप्रातिहार्येण चाक्षोभ्यतथागतसदर्शनेनास्याः सहालोकधातोश्चतुर्दशदेवमनुष्यप्रजाऽयुतैरनुत्तरसम्यक्सम्बो-

धिचित्तान्युत्पादितानि। सर्वेऽपि तस्याममिरतिलोकधातौ जनितुं प्रणिधानमकार्षुः, भगवांश्च सर्वेषा तेषाममिरतिलोकधातावुपपत्तिं व्याकरोति स्म।

लिच्छविर्विमलकीर्तिस्तथा हि सर्वांस्तान्, यावत् परिपाचनीयानस्यां सहालोकधातौ, सत्त्वान् विपाच्य, तामभिरतिलोकधातु यथास्थानं पुनः प्रतिष्ठापयति स्म।

ततो भगवानायुष्मन्तं शारिपुत्रमेतदवोचत्—"ननु पश्यसि, शारिपुत्र, तामभिरतिलोकधातु (ला० ३६६ख) चाक्षोभ्य तथागतम्?" आह—

"ध्रुवम्, भगवन् पश्यामि। सर्वसत्त्वेभ्योऽस्तु तादृशो बुद्धक्षेत्रगुणव्यूहः। सर्वे सत्त्वाश्च भवन्तु कुलपुत्रो लिच्छविर्विमलकीर्तिर्यथा तादृशर्द्धिसम्पन्नाः। लाभा नः सुलब्धा[२] यद्वयं तादृश सत्पुरुषं पश्यामः। ये सत्त्वाः प्रत्युत्पन्नस्य वा परिनिर्वृततथागतस्य वेमं धर्मपर्यायं शृण्वन्त्यन्तशः, लाभास्तेषामपि सुलब्धा भवेयुः। कः पुनर्वादो य (इमं धर्मपर्यायं) श्रुत्वा, अधिमुच्यन्ते पत्तीयन्त्युद्ग्रहीष्यन्ति धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्त्यधिमुच्य, देशयिष्यन्ति प्रपटन्ति परेभ्यश्च सप्रकाशयिष्यन्ति भावनाऽधिगमानुयुक्ता (भविष्यन्ति)?[३]

"ये सुलब्धा इमं धर्मपर्यायं, धर्मरत्ननिधिं ते प्रतिलप्स्यन्ते। य इमं धर्मपर्यायं स्वाध्यायन्ति, ते भवन्ति तथागतस्य सहायाः। य एतद्धर्माधिमुक्तान् सत्कुर्वन्ति (ला० ३६७क) पर्युपासन्ति च, ते हि भूता धर्मपालाः। य इमं धर्मपर्यायं सम्यग् लिखन्ति धारयिष्यन्ति मानयिष्यन्ति,

---

२ द्र० दीघनिकाय, खण्ड ३, पृ० १००, समाधिराजसूत्र, पृ० ३०२।

३ वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, अध्याय १४।

तेषा गृहे तथागतो विहरिष्यति। येऽस्मिन् धर्मपर्यायेऽनुमोदन्ते, ते परिरक्षन्ति सर्वपुण्यानि। ये केचिदितो धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथामुद्गृह्य, परेभ्यो देशयेयुः,[४] ते हि महाधर्मयज्ञ कुर्युः। ये(षाम्) अस्मिन् धर्मपर्याये क्षान्तिश्च छन्दश्च बुद्धिश्चावबोधनादर्शनाधिमुक्तयः, तेभ्यस्तदेव व्याकरणम्।

अभिरतिलोकधात्वादानस्य तथागताक्षोभ्यसंदर्शनस्य च परिवर्त एकादशः।

---

४ तुलनीय **सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र**, पृ० १४२, २३३, २४०, **वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता**, अध्याय ८, ११, १२, १३।

१२ पूर्वयोगः सद्धर्मपरीन्दना च

अथ भगवन्तं शक्रो देवानामिन्द्र एतदवोचत्—"पुरा, भगवन्, तथागतान्मंजुश्रीकुमारभूताच्च धर्मपर्यायाना बहुशतसहस्राण्यश्रौषम्, पर तु यथाऽस्माद्धर्मपर्यायादीदृशाचिन्त्यविकुर्वणनयप्रवेशनिर्देशः पुरा न कदाचिदश्रौषम् (ला० ३६७ख)।

"ये सत्त्वाः, भगवन्, इम धर्मपर्यायमुद्ग्रहीष्यन्ति धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, तेऽपि निःसंशयमेतादृशधर्मभाजनं भवेयुः। कः पुनर्वादो ये भावनाऽधिगमनानुयुक्ता (भविष्यन्ति)? ते छेत्स्यन्ति सर्वदुर्गति-(मार्गम्), तेभ्यः सर्वसुगतिमार्गो विवृतः; सर्वबुद्धैस्ते दृष्टा भविष्यन्ति; ते सर्वपरप्रवादिघ्ना भविष्यन्ति; सर्वमारास्तैः सुपराजिता भविष्यन्ति; ते विशोधितबोधिसत्त्वमार्गा भविष्यन्ति, बोधिमण्डसमाश्रितास्तथागतगोचरे समवसरन्ति।

"कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा, भगवन् यौ धारयिष्यत इम धर्मपर्यायं, ताभ्यां सर्वपरिवारेण सह सत्कारं पर्युपासनं करिष्यामि। (तेषु) ग्रामनगरनिगमजनपदराष्ट्रराजधानीषु, येऽनयं धर्मपर्यायश्रयते निदिश्यते प्रकाश्यते, तेन धर्मश्रवणाय सपरिवारो गमिष्यामि। अश्रद्धेषु (ला० ३६८क) कुलपुत्रेषु श्रद्धामुत्पादयिष्यामि, श्राद्ध (-नां) धार्मिकेन रक्षा-(वरण-) गुप्तिं[1] करिष्यामि"।

---

१ द्र० चुल्लवग्ग, पृ० २६४, सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० १६३, २३८–२३९।

एवमुक्ते, भगवांशक्रं देवानामिन्द्रमेतदामन्त्रयते स्म—"साधु, देवेन्द्र, साधु। (यत्) त्वया सुभाषितम्, तस्मिंस्तथागतोऽप्यनुमोदते। (या), देवेन्द्र, अतीतानागतप्रत्युत्पन्नाना भगवतां बुद्धाना बोधिः, साऽस्माद्धर्मपर्यायान्निदिष्टा। अतो देवेन्द्र, ये केचित् कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वेमं धर्मपर्यायमुद्ग्रहीष्यन्ति, अन्तशः पुस्तके लिखिष्यन्ति, उद्ग्रहीष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, ते ह्यतीतानागतप्रत्युत्पन्नान् भगवतो बुद्धान् पूजयिष्यन्ति।

"अयं, देवेन्द्र, त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधातुस्तथागतैः परिपूर्णः (स्यात्, परिपूर्णस्) तद्यथापि नामेक्षुवनैर्वा नडवनैर्वा वेणुवनैर्वा तिलवनैर्वा खदिरवनैर्वा, (यैरयं लोकधातुः) परिपूर्णस्तास्तथागतान्, कल्प वा कल्पाधिक वा, कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा मानयेद्गुरुकुर्यात् सत्कुर्यात् (ला० ३६८ख) पूजयेत् सर्वपूजासुखोपधानैः। तेषां परिनिर्वृतानामपि तथागतानामेकैकस्य तथागतस्य पूजनाऽर्थं सर्वरत्नमय विस्तरेण चतुर्महाद्वीपकलोकप्रमाणमारोहे ब्रह्मलोकसम्प्राप्तमुच्छ्रितच्छत्रपताकयष्टिस्तूपशोभितम् एकान्तकठोराकुथितशारीरिकधास्तूप (कुर्यात्)। स एवमेव सर्वतथागताना प्रत्येक स्तूप कृत्वा, तत् कल्पं वा कल्पाधिक वा सर्वपुष्पगन्धध्वजपताकैः पूजयेदुघट्टितदुन्दुभितूर्यैश्च[२]।

"तत् किं मन्यसे, देवेन्द्र, अपि नु स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततो निदानं बहु पुण्यं प्रसवेत्?"[३] आह—"बहु भगवन्, बहु सुगत। कल्पकोटिशतसहस्रैरपि तस्य पुण्यस्कन्धस्य पर्यन्तमनुप्राप्तुमशक्यम्"।

---

२ तुलनीय गद्यांश **सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र**, पृ० १००, १०२, ११६, १५६, २०१।

३ **अष्टसाहस्रिका**, पृ० २१३, **वज्रच्छेदिका**, अध्याय ८।

भगवानामन्त्रयते स्म—"अधिमुच्यस्व, देवेन्द्र, त्वयाऽनुगन्तव्यम् (ला० ३६९क) यः कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वेममचिन्त्यविमोक्षनिर्देशस्य धर्मपर्यायमुद्गृह्णीयाद्वाचयेत् पर्यवाप्नुयात्, (सोऽस्माद्-) बहु(तरं) पुण्यं प्रसवेत्। तत् कस्य हेतोः? भगवतां बुद्धाना हि बोधिः, देवेन्द्र, धर्मसम्भवा; सा च धर्मपूजायै शक्या, न परं त्वामिषेण (पूज्या)। अनेने पर्यायेण, देवेन्द्र, त्वयैव वेदितव्यम्"।

"भूतपूर्वं, देवेन्द्र, अतीतेऽध्वन्यसंख्येयैः कल्पैरसंख्येयतरैर्विपुलैर-प्रमेयैरचिन्त्यैस्तेभ्यः परेण परतरेण यदासीत् तेन कालेन तेन समयेन भैषज्य-राजो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्सम्बुद्धो लोक उदपादि विद्याचरणसम्पन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवाना च मनुष्याणां च बुद्धो भगवान् विचारणे कल्पे महाव्यूहायां लोकधातौ[४]। तस्य भैषज्यराजस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्य विंशत्यन्तरकल्पानायुष्प्रमाणमभूत्। तस्य षट्त्रिंशत्कोटिनयुताः श्रावक(संनिपातो)ऽभूत् द्वादशकोटिनयुता बोधि-सत्त्व(संनिपातो) (ला० ३६९ख) ऽभूत्।

"तेन खलु पुनः समयेन रत्नच्छत्रो नाम राजोदपादि चक्रवर्ती चातुर्द्वीपः सप्तरत्नसमन्वागतः। पूर्णं चास्याभूत् सहस्र पुत्राणां शूराणा वीराणां वराङ्गरूपिणां परसैन्यप्रमर्दकानाम्[५]।

"स रत्नच्छत्रो राजा पञ्चान्तरकल्पान् सर्वसुखोपधानैर्भगवन्त भैषज्यराजं तथागतं सपरिवारं मानयति स्म। तेषु पञ्चान्तरकल्पेष्वतीतेषु, देवेन्द्र, रत्नच्छत्रो राजा सहस्र पुत्रानेतदवोचत्—'हे, वित्त। अहं तथा-

---

[४] तुलनीय सुखावतीव्यूहसूत्र, पृ० २२२-२२३ (महायानसूत्रसंग्रह खण्ड १), वज्रच्छेदिका, अध्याय १६।

[५] तुलनीय ललितविस्तर, पृ० १३-२२, महावस्तु, खण्ड १, पृ० ५४, १४८।

गतमपूजयम्। अत इदानीं यूयमपि पूजयत तथागतम्'। ततस्ते राजकुमाराः पित्रे रत्नच्छत्राय राज्ञे साधुकारं दत्त्वा, त(स्मै) प्रत्यश्रौषुः। ते च सह गणेन तथागत भैषज्यराजं पञ्चान्तरकल्पान् सर्वसुखोपधानैः सत्करोन्ति स्म।

"तेषु चन्द्रच्छत्रस्य नाम राजपुत्रस्य रहोगतस्यैवं भवति स्म—'तस्याः पूजाया (ला० ३७०क) अन्या विशिष्टतरोदारा पूजा ननु भवती' ति। बुद्धाधिष्ठानेनान्तरीक्षाद्देवा एतदाहुः—'धर्मपूजा हि, सत्पुरुष, सर्वपूजासूत्तमा'। स आह-'सा धर्मपूजा किमस्ति?' देवा आहुः-'तस्य, सत्पुरुष, तथागतस्य भैषज्यराजस्य समीप गत्वा, सा धर्मपूजा किमस्तीति पृच्छ। भगवास्ते व्याकरिष्यति'।

"अथ, देवेन्द्र, चन्द्रच्छत्रो राजकुमारो येन भगवान् भैषज्यराजस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धस्तेनोपसक्रान्तः। उपसक्रम्य, भगवत्पादौ शिरसा वन्दित्वा, एकान्तेऽस्थात्। एकान्तस्थितश्चन्द्रच्छत्रो राजपुत्रो भगवन्तं भैषज्यराज तथागतमेतदवोचत्—'धर्मपूजा नाम, भगवन्, सा किमस्ति?'

"स भगवानामन्त्रयते स्म—'कुलपुत्र, धर्मपूजा हि तथागतभाषिता गम्भीरसूत्रान्त(ाः) गम्भीरावभासाः सर्वलोकविप्रत्यनीका दुर्विगाह्या दुर्दृशा दुरवबोधाः सूक्ष्मा निपुणा अतर्कावचराः[५] (ला० ३७०ख)। (ते सूत्रान्ता) बोधिसत्त्वपिटकान्तर्भूता[६] धारणीसूत्रान्तराजमुद्रामुद्रिता अवैवर्तिक (धर्म-) चक्रसंदर्शकाः षट्पारमितासम्भूताः सर्वग्राहापरिगृहीताः[७]।

---

५ तुलनीय महावग्ग, पृ० ६ अष्टसाहस्रिका, पृ० ४५५।

६ द्र० बोधिसत्त्वभूमि, पृ० ६, ६८, ११६, १४३, १४७।

७ द्र० शूरंगमसमाधिसूत्र, पृ० ५१-५५ (अंग्रेजी अनुवाद)।

" '(ते सूत्रान्ता) बोधिपक्ष्यधर्मसमन्वागता बोध्यङ्गनिष्पादना-पर्यापन्नाः सत्त्वमहाकरुणाऽवतारणा महामैत्रीसदर्शकाः सर्वमारदृष्टिगता-पगताः प्रतीत्यसमुत्पादसंदर्शकाः ।

" '(धर्मेषु ते सूत्रान्ता) अनात्मका निःसत्त्वा निर्जीवा निष्पुद्गलाः शून्यताऽनिमित्ताप्रणिहितानभिसंस्कारानुत्पादासम्भवसम्प्रयुक्ताः । (ते) बोधिमण्ड समुदागच्छन्ति धर्मचक्रप्रवर्तकाः । प्रशंसितास्-(ते) वर्णिता देवनागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगाधिपतिभिः । (सूत्रान्तास्ते) सद्धर्म-वंशासंसना धर्मकोशग्राहका धर्मपूजावराऽपन्नाः । सर्वाऽर्यजनैः परिगृहीतास् (ते) सर्वबोधिसत्त्वचर्याः सम्प्रकाशयन्ति (ला० ३७१क) भूतार्थधर्मप्रति-सविदापन्नाः । धर्मसूत्रान्त(ा) अनित्यतादुःखनैरात्म्यशान्ति (-निर्देश-) नैर्यानिकाः ।

" 'मात्सर्यदौःशील्यव्यापादकौसीद्यमुषितस्मृतिदुष्प्रज्ञाऽवसाद पर-प्रवादिकुदृष्टिसर्वोऽलम्बनाभिनिवेशां जहति (ते) सर्वबुद्धस्तोमिताः, संसार-पक्षप्रतिपक्षा निर्वाणसुख सम्प्रकाशयन्ति । ये तादृशसूत्रान्ताः सम्प्रकाशन-धारणप्रत्यवेक्षणसद्धर्मसंग्रहाः, सा हि धर्मपूजा नाम ।

" 'पुनरपरं, कुलपुत्र, धर्मपूजा हि धर्मो-(नु-) धर्मनिध्यप्ति-र्धर्मो-(नु-) धर्मप्रतिपत्तिः प्रतीत्यसमुत्पादसमादानं; (सा) सर्वान्तग्राह-दृष्टिरहिता, अनुत्पादानोपपत्तिक्षान्तिः, नैरात्म्यनिःसत्त्वप्रवेशः, हेतुप्रत्ययो रविरोधोऽविवादोऽकलहः, अहंकारमम(कारा-)पगता ।

' '(धर्मपूजा) ह्यर्थप्रतिसरणञ्च व्यञ्जनप्रतिसरणम्, ज्ञानप्रति-सरणञ्च विज्ञानप्रतिसरणम्, नीतार्थं (ला० ३७१ख) सूत्रप्रतिसरणञ्च नेयार्थसंवृत्यभिनिवेशः, धर्मताप्रतिसरणञ्च पुद्गलदृष्ट्युपलब्धिग्रहणाभिनिवेशः;

यथाबुद्धधर्ममवबोधः, अनालयप्रवेश', अलयसमुद्घातः; प्रतीत्यसमुत्पादस्य द्वादशांगे(षु) तद्यथा—अविद्यानिरोधाद् यावज्जरामरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासा निरुध्यन्त इत्यक्षयसत्त्वदृष्ट्यभिनिर्हारेणाभिसम्पन्नं सर्वदृष्ट्य दर्शनं च—सा हि, कुलपुत्र, अनुत्तरा धर्मपूजा नाम' ।

"ततस्स राजपुत्रश्चन्द्रच्छत्त्रः, देवेन्द्र, भगवतो भैषज्यराजात्तथागताद्धर्मपूजामेवं श्रुत्वा, अनुलोमिकीं धर्मक्षान्तिं प्राप्नोति स्म। सर्ववस्त्रविभूषणेषु तस्मै भगवत उपनामितेषु, एतद्वचनमवोचत्—'भगवति तथागते परिनिर्वृते, सद्धर्मपरिग्रहपूजनार्थं सद्धर्मं परिग्रहीतुम् (ला० ३७२क) उत्सहे। अधितिष्ठतु मामेव भगवान्, यथाऽहं मारपरप्रवादिनो निहत्य, सद्धर्मं परिगृह्णीयाम्' ।

"तथागतस्तस्याध्याशयं बुद्ध्वा, 'पश्चिमकाले पश्चिमसमये सद्धर्मनगरं पालयिष्यसे रक्षिष्यसि परिग्रहीष्यसी'-(ति) व्याकरोति स्म ।

"अथ स राजपुत्रश्चन्द्रच्छत्त्रस्तथा तथागतप्रतिष्ठितश्रद्धयाऽऽगाराद् नागारिकां प्रव्रजितः कुशले(षु) धर्मे(षु) वीर्यमारभते स्म। आरब्धवीर्यः स्थित्वा, कुशलेषु धर्मेषु सुप्रतिष्ठितः सोऽचिरेण धारणीगतिंगतः पञ्चाभिज्ञा उत्पादयति स्म। सोऽनाच्छेद्यप्रतिभानप्रतिलाभी, भगवति भैषज्यराजे तथागते परिनिर्वृते, अभिज्ञाधारणीवशेन धर्मचक्रं प्रवर्तयति स्म। स भगवान् भैषज्यराजस्तथागतो यथा, तथा दशान्तरकल्पान् (धर्मचक्रम्) अनुप्रवर्तयति स्म ।

"तथा हि, देवेन्द्र, चन्द्रच्छत्त्रस्य भिक्षोः सद्धर्मपरिग्रहाभियोगेन (ला० ३७२ख) कोटिदशशत सत्त्वा अनुत्तरसम्यक्संबोधि(मार्ग—) आवैवर्तिका अभूवन्। प्राणिनां चत्वारिंशन्नयुतानि श्रावकप्रत्येकबुद्धयाने विनीतान्य् (अभूवन्)। अप्रमाणसत्त्वाः स्वर्गेषूत्पद्यन्ते स्म ।

"मन्येथाः, देवेन्द्र, अन्यः स तेन कालेन तेन समयेन रत्नच्छत्रो नामाभूद्राजा चक्रवर्ती। न खलु पुनस्त्वयैव द्रष्टव्यम्। तत् कस्य हेतोः? अयमेव स रत्नार्चिस्तथागतस्तेन कालेन तेन समयेन रत्नच्छत्रो नाम राजा चक्रवर्त्यभूत्[8]। (ये) तस्य रत्नच्छत्रस्य राज्ञः पुत्राः सहस्रमभूवन्, ते सन्तीमे वर्तमानस्य भद्रकल्पस्य बोधिसत्त्वाः। अस्मिन् भद्रकल्पे पूर्णबुद्धानां सहस्रमुत्पद्यन्ते। तेषां चत्वारो हि—क्रकुच्छन्दादय उत्पन्नपूर्वाः। अवशिष्टा अपि प्रादुर्भविष्यन्ति—ककुत्सुन्दादयो यावद्रोच। अन्ते रोचो नाम तथागत उत्पद्यते।

"मन्येथाः, देवेन्द्र, अन्यः स तेन कालेन तेन समयेन चन्द्रच्छत्रो नाम राजपुत्रोऽभूत् तस्य भगवतो भैषज्यराजस्य (ला० ३७२क) तथागतस्य सद्धर्मपरिग्राहकः। न खलु पुनस्त्वयैवं द्रष्टव्यम्। तत् कस्य हेतोः? अहमेव स, देवेन्द्र, तेन कालेन तेन समयेन चन्द्रच्छत्रो नाम राजपुत्रोऽभूवम्।

"अनेन पर्यायेण, देवेन्द्र, वेद्यम्—यावत्तथागतपूजाः, (तासु) धर्मपूजा ह्युत्तमा नाम, वरा परमा वराग्रा प्रणीतोत्तरानुत्तरेति। तस्मात्तर्हि, देवेन्द्र, नामिषेण धर्मपूजया पूजा मे कर्तव्या। नामिषेण सत्कारो मे कर्तव्यः, धर्मसत्कारेण मानयितव्यम्"।

अथ भगवान् मैत्रेयं बोधिसत्त्वम्महासत्त्वमामन्त्रयते स्म—"इमामहं मैत्रेयासंख्येयकल्पकोटिसमुदानीतामनुत्तरां सम्यक्संबोधिं त्वयि परीन्दामि[9], यथा पश्चिमे काले पश्चिमे समयेऽयमेवंरूपो धर्मपर्यायस्त्वदधिष्ठानेन

---

८ द्र० राष्ट्रपालपरिपृच्छासूत्र, पृ० १५८ (महायानसूत्रसंग्रह, खण्ड १)।

९ तुलनीय सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० २६८ ।

परिगृहीतो जम्बुद्वीपे वर्धेत न चान्तर्धीयेत,' तत् कस्य हेतोः ? अनागतेऽध्वनि, मैत्रेय, (ये)ऽवरोपितकुशलमूलाः कुलपुत्रकुलदुहितृदेव (ला० ३७३ख) नागयक्षगन्धर्वासुरा अनुत्तरसम्यक्संबोधिसम्प्रस्थिताः, त इमं धर्मपर्यायन्न श्रुत्वा, ध्वंसिष्यन्ते। एवरूप सूत्रान्त श्रुत्वा, प्रहृष्टाः श्रद्धां प्रतिलप्स्यन्ते शिरसा चा– (भिवन्द्य, तं) ग्रहीष्यन्ति। तेषां कुलपुत्रकुलदुहितॄणां रक्षणार्थाय, मैत्रेय, तेन कालेन त्वयाऽयमीदृशः सूत्रान्तः स्फरणीयः।

''इमे हि, मैत्रेय, बोधिसत्त्वानां द्वे मुद्रे। कतमे द्वे ? नानापद व्यञ्जनप्रसन्नस्य मुद्रा गम्भीरेण धर्मनयेनात्रस्तस्य यथाभूत प्रतिपन्नकस्य मुद्रा च। ते, मैत्रेय, बोधिसत्त्वानां द्वे मुद्रे। ततो ये बोधिसत्त्वा नानापद-व्यञ्जनप्रसन्नास्तत्पराः, ते ह्यादिकर्मिका अचिरब्रह्मचारिणो वेदितव्याः। ये, मैत्रेय, बोधिसत्त्वा अस्य गम्भीरस्यानुपलिप्तस्य सूत्रान्तस्य यमकव्यत्यस्ताहारस्य ग्रन्थ वा पटल वा पठन्ति शृण्वन्त्यधिमुच्यन्ते देशयन्ति, (ते) हि चिरब्रह्मचारिणो (ला० ३७४क) वेदितव्याः।

''आदिकर्मिकास्ततः, मैत्रेय, बोधिसत्त्वा द्वाभ्यां कारणाभ्यामात्मानं व्रणयन्ति गम्भीरे च धर्मे न निध्यायन्ति। कतमे द्वे ? अश्रुतपूर्वं गम्भीरं सूत्रान्तं श्रुत्वा, त्रस्ताश्च संशयिता नानुमोदन्ते। स एवमस्माभिरश्रुतपूर्वः कुत आगत इति (पृच्छन्तस्तं) त्यजन्ति। ये कुलपुत्रा गम्भीर सूत्रान्त मुद्गृह्णन्ति गम्भीरधर्मभाजनभूताश्च गम्भीर धर्मं देशयन्ति, तेभ्यो न सेवन्ति चासमागमा न पर्युपासते तां च न सत्कुर्वन्ति। अन्ततस्तेष्ववर्णमपि निश्चारयन्ति। ताभ्यां कारणाभ्यामादिकर्मिकबोधिसत्त्वा आत्मानं व्रणयन्ति गम्भीरे च धर्मे नावकल्पयन्ति।

---

१० अष्टसाहस्रिका, पृ० २२७–२२८, २६०

"ताभ्यां द्वाभ्यां कारणाभ्यां गम्भीराधिमुक्तिक बोधिसत्त्वा आत्मानं व्रणयन्ति चानुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिन्न लभन्ते। कतमे द्वे? आदिकर्मिकान- चिरचरितान् बोधिसत्त्वान् अवमन्यन्ते विमानयन्ति, न (समा-) दापयन्ति न (वि-) वरन्ति न देशयन्ति। गम्भीरे (धर्मे)ऽल्पश्रद्धाः शिक्षान्न मानयन्ति, लोकस्य चामिषदानेन (ला० ३७४ख) न तु धर्मदानेन सत्त्वानुपकुर्वन्ति।

"मैत्रेय, गम्भीराधिमुक्तिकबोधिसत्त्वा आभ्यां कारणाभ्यामात्मानं व्रणयन्ति चानुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिं शीघ्रन्न लभन्ते"। एवमामन्त्रयते स्म।

भगवन्तं बोधिसत्त्वो मैत्रेय एतदवोचत्—"भगवता यथा सुभाषितम्, भगवन्, (तद्) आश्चर्यम्। साधु, भगवन्। अद्याग्रेण, भगवन्, इमानत्ययान् (वि-) वर्जयेयम्। (या) तथागतेनासंख्येयकोटिनयुतशतसहस्रेभ्यः कल्पेभ्योऽनुत्तरसम्यक्संबोधिः समुदानीता, इमामारक्षिष्यामि धारयिष्यामि।

"(ये)ऽनागते (ऽध्वनि) कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा भाजनभूताः, तेभ्य ईदृशं सूत्रान्तं हस्तगतं करिष्यामि। (तेषां) स्मृतिमुपसंहरिष्यामि ययेममेवंरूपं सूत्रान्तम् अधिमुच्योद्ग्रहीष्यन्ति धारयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति विवेशयन्ति लिखिष्यन्ति परेभ्यश्च विस्तरेण सम्प्रकाशयिष्यन्ति। तानहं, भगवन्, प्रस्थापयिष्यामि। (ये) भगवन्, (ला० ३७५क) तेन समयेनास्मिनेवंरूपे सूत्रान्तेऽधिमुच्यन्तेऽभिनिविशन्ति च, ते हि, भगवन्, मैत्रेयस्य बोधिसत्त्वस्याधिष्ठानेनाधिष्ठिता वेदितव्याः"।

अथ भगवान् मैत्रेयाय बोधिसत्त्वाय साधुकारमदात्—"साधु, मैत्रेय, साधु। सुभाषितं तत्ते वाक्यम्। तथागतोऽपि तत्ते सुभाषितमनुमोदयति"।

ततस् (सर्वे) ते बोधिसत्त्वा एकनिर्घोषेणैतद्वाक्यमवोचन्—"वय मपि, भगवन्, तथागते परिनिर्वृते, नानाबुद्धक्षेत्रेभ्य आगतास्तथागतस्य बुद्धस्येमां बोधिमुपबृंहयिष्यामः। तेऽपि कुलपुत्रा अधिमोक्षयिष्यन्ति"।

अथ भगवन्तं चतुर्महाराजिका (देवा) अप्येतदवोचन्—"येषु येषु, भगवन्, ग्रामनगरनिगमराष्ट्रराजधानीष्वेवरूपो धर्मपर्यायश्चरितो देशितः सम्प्रकाशितः, तेषु तेषु, भगवन्, वयमपि चतुर्महाराजिका (देवाः) सबलवाहनपरिवारा धर्मश्रवणार्थम् (ला० ३७५ख) एष्यामः। तेषां धर्मभाणक (ानाम् आ) योजनपरिसामन्तकाद्रक्षां करिष्यामो यथा न कश्चित्तेषा धर्मभाणकानामवतारप्रेक्ष्यवतारगवेष्यवतार लप्स्यते"[११]।

अथ भगवानायुष्मन्तमानन्दमेतदवोचत्—"उद्गृह्णीष्व त्वम्, आनन्द, इम धर्मपर्याय, धारय परेषां च विस्तरेण सम्प्रकाशय"[१२]। आह—"अस्मिन् धर्मपर्याय उद्गृहीते, को नामायं भगवन् धर्मपर्यायः, कथ चैनं धारयामि ?"[१३]

भगवानामन्त्रयते स्म—"तस्मादानन्द, इमं धर्मपर्याय 'विमल-कीर्तिनिर्देश' वा 'यमकव्यत्यस्ताभिनिर्हार' वाऽप्य्—'अचिन्त्यविमोक्षपरि-वर्तनाम' धर्मपर्याय धारय"।

इदमवोचद् भगवान्। आत्तमना लिच्छविर्विमलकीर्तिर्मञ्जुश्रीश्च कुमारभूतः स चायुष्मानानन्दस्ते च बोधिसत्त्वास्ते च महाश्रावकाः सा च

---

११ द्र० सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० २३४, २६४।

१२ द्र० समाधिराजसूत्र, पृ० ३०३।

१३ तुलनीय वज्रच्छेदिका, अध्याय १३, भैषज्यगुरुवैडूर्यप्रभराजसूत्र (महायान-सूत्रसग्रह, खण्ड १) पृ० १७३।

सर्वावती पर्षत्सदेवमानुषासुर (ला० ३७६क) गन्धर्वश्च लोको भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्निति[१४]।

पूर्वयोगस्य सद्धर्मपरीन्दनायाश्च परिवर्तो नाम द्वादश[१]।

विमलकीर्तिनिर्देशो नाम महायानसूत्र समाप्तम्[१५]।

१४ तुलनीय **समाधिराजसूत्र**, पृ० ३०४, **वज्रच्छेदिका**, अन्तिमाश, **सुखावती व्यूह**, पृ० २५३, **भैषज्यगुरुवैदूर्यप्रभराजसूत्र**, पृ० १७३।

१५ **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** के तिब्बती अनुवाद के अन्त में निम्नलिखित सूचना मिलती है—साष्टशतोत्तरसाहस्रश्लोका षट परिवर्ता लोकचक्षुर्भदन्तो धर्मता-शीलोऽकार्षीद् विवृतिं पृष्टश्च प्रश्ननिर्णयम्।

विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र

(हिन्दी अनुवाद)

विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र

१ बुद्धक्षेत्र की परिशुद्धि

अतीत वर्तमान एव भविष्य के सभी बुद्धो, बोधिसत्त्वों, अर्हतो तथा प्रत्येकबुद्धों को प्रणाम ।

ऐसा मैंने सुना । एक समय भगवान् वैशाली नगरी मे आम्रपाली के उद्यान मे आठ हजार भिक्षुओ के विशाल भिक्षु सघ के साथ ठहरे हुये थे । वे सभी भिक्षु अर्हत, क्षीणास्रव[1], क्लेशरहित और जितेन्द्रिय थे । उनके चित्त सुविमुक्त और उनकी प्रज्ञा भी सुविमुक्त थी, अर्थात् वे क्लेशावरण और ज्ञेयावरण दोनों से मुक्त थे । वे आजानेय महानागो की भाँति सुसयमित थे । वे अपना कार्य सम्पन्न कर चुके थे । जो उनके लिये करणीय था, उसको कर चुके थे, वे जीवन-बन्धन का भार उठा चुके थे, अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चुके थे, उनके सभी भव-सयोजन[2] नष्ट हो गयें थे और वे सम्यग्ज्ञान द्वारा सुविमुक्त चित्त होकर चित्त के सवतोमुखी वशित्व की परमपूर्णता प्राप्त कर चुके थे ।

भगवान् के साथ मे बत्तीस हजार बोधिसत्त्व महासत्त्व भी थे । वे अभिज्ञाओ[3] के अभिज्ञाता, महाभिज्ञाओ के परिशीलन मे लगे हुये, बुद्धाधिष्ठान द्वारा अधिष्ठित, धर्मनगर के नगरपालों की तरह थे । वे सद्धर्म के परिग्राहक थे और महासिंहनाद की तरह उनकी देशना का सुगर्जित नाद दशों दिशाओं में ध्वनित होता था । वे बोधिसत्त्व सभी प्राणियो के स्वत ही कल्याणमित्र थे । त्रिरत्न की परम्परा को अविच्छिन्न बनाने वाले मार को पराजित करने वाले, मुक्ति प्राप्त और सभी विरोधी विचारो वाले आलोचको पर विजय प्राप्त कर चुके

---

१ आस्रव चार हैं । १ काम, २ भव, ३ अविद्या, ४ दृष्टि दीघनिकाय, खण्ड २, पृष्ठ ६५ ।

२ संयोजन दस हैं । १ सत्कायदृष्टि, २ विचिकित्सा, ३ शीलव्रतपरामर्श ४ कामराग, ५ रूपराग, ६ अरूपराग, ७ व्यापाद, ८ अविद्या, ९ मान, १० औद्धत्य ।

३ अभिज्ञाएँ छ हैं । १ दिव्यचक्षु, २ दिव्यश्रोत्र, ३ परचित्तज्ञान, ४ पूर्वनिवासानुस्मृति, ५ ऋद्धि, ६ आस्रवक्षयज्ञान महाव्युत्पत्ति, २०२–२ ९ ।

थे। व स्मृति, बुद्धि, अवबोध, समाधि, धारणी तथा प्रतिभान से सम्पन्न थे। सभी आवरणो से ऊपर उठने के पश्चात् वे अनावरणविमोक्ष की अवस्था में पहुँचे हुये थे। वे स्पष्ट और अविरत प्रवचन मे पारगत थे। उनके यक्तित्व का विकास दान दम, नियम, संयम, शील, क्षान्ति वीय, ध्यान, प्रज्ञा, उपाय कौशल्य, प्रणिधान, बल व ज्ञान पारमिताओ के के फलस्वरूप हुआ था। उ होने अनुपलब्धि धर्मक्षान्ति प्राप्त कर ली थी, वे अवैवर्तिक धमचक्र के प्रवतक और अलक्षमुद्रा से मुद्रित थे। सभी प्राणियो की शक्तियो के ज्ञान में कुशल, वे सभी परिषदो मे अपराजित रहने के वशारद्य के कारण पराक्रमी थे पुण्य और ज्ञान के सभार का महान् सचय करने वाले उन बोधिसत्त्वो के शरीर आभूषणा लकारो से परे और सभी (महापुरुष) लक्षणो[४] और अनुव्यजनो[५] से अलकृत वरिष्ठ रूप से सुशोभित थे। उनकी प्रसिद्धि एव कीर्ति सुमेरू पवत क उन्नत शिखर की भाँति उन्नत थी। उनका उच्चकोटि का अध्याशय वज्र की तरह दृढ़ था। बुद्ध, धम और सघ मे उनकी अकाटय श्रद्धा थी। धमरत्न की रश्मि से नि सृत होने वाली अमृतवृष्टि की वे सर्वत्र सुवर्षा करने वाले थे। उनके शब्द स्वर विशुद्ध थे और वह सभी प्राणियों की भाषाओ के वाक्यों, शब्दों व स्वरो में निपुण थ। उन्होने प्रतीत्यसमुत्पाद के गम्भीर धर्म का अवगाहन कर लिया था, और अन्त अनन्त दृष्टि वासनाओ की सन्धि का सर्वथा नाश कर दिया था। वे निर्भीक सिंहों की तरह घोष करते हुये बोलते थ, तथा महाधर्ममेघ के स्वर का निनाद करते थे। वे सम विसम धर्म का अतिक्रमण कर चुके थे, अर्थात् वे

---

४ महापुरुष के बत्तीस लक्षण निम्नलिखित हैं। १ चक्रांकितपाणिपादतलता, २ सुप्रतिष्ठित पाणिपादतलता, ३ जालावनद्धाङ्गुलिपादतलता, ४ मृदुतरुणहस्तपादतलता, ५ सप्तो त्सदता, ६ दीर्घाङ्गुलिता, ७ आयतपार्ष्णिता, ८ ऋजुगात्रता, ९ उत्संगपादता, १० उर्ध्वाग्ररोमता, ११ ऐणेयजंघता, १२ प्रलम्बबाहुता, १३ कोषगतबस्तिगुह्यता, १४ सुवर्णवर्णता, १५ शुक्लच्छविता, १६ प्रदक्षिणवर्तैकरोमता, १७ ऊर्णालंकृतमुखता, १८ सिंहपूर्वान्तकायता, १९ सुसंवृत्तस्कन्धता, २ चितान्तरांसता, २१ रसरसाग्रता, २२ न्यग्रोधपरिमण्डलता, २३ ऊष्णीषशिरस्कता, २४ प्रभूतजिह्वता, २५ सिंहहनुता, २६ शुक्लहनुता, २७ समदन्तता, २८ हसविक्रान्तगामिता, २९ अविरलदन्तता, ३ समचत्वारिंशद्दन्तता, ३१ अभिनीलनेत्रता, ३२ गोपक्षनेत्रता। देखिये धर्मसङ्ग्रह, ३३, अर्थविनिश्चयसूत्र, २६।

५ महापुरुष के अस्सी अनुव्यंजनों की तालिका के लिये देखिये धर्मसङ्ग्रह, ८४, अर्थविनिश्चयसूत्र, २७।

अतुलनीय थे और परिमापन से परे थे। धमरत्न की प्राप्ति और प्रज्ञा-सभार तथा पुण्य सभार के समुदागम के लिए वे महान् साथवाह थे। उस धम के माग के विशेषज्ञ थे जो सीधा उन्नति की ओर ले जाने वाला शान्त, सूक्ष्म, मृदु दुर्दृश, और दुरवगाह्य है। वे सभी प्राणियो के आशय की गति का और उनके जन्म मरण का ज्ञान रखते थे। वे भगवान बुद्ध के असमसम ज्ञान रूपी अभिषेक से अभिषिक्त थे। अपने विशिष्ट और उत्कृष्ट आशय द्वारा उन्होने दश बल[६] चार वशारद्य[७], और अष्टादश आवेणिक बुद्धधर्म[८] प्राप्त कर लिये थे। पतन, भय, तथा दुगति में पतित होने के भय की खाई

---

६ बोधिसत्त्व के दस बल। १ अधिमुक्ति, २ प्रतिसंख्यान, ३ भाव, ४ क्षान्ति, ५ ज्ञान, ६ प्रहाण, ७ समाधि, ८ प्रतिभान, ९ पुण्य, १ प्रतिपत्ति। धमसङ्ग्रह, ७५।

७ चार वैशारद्य। १ अभिसम्बोधि अथवा सर्वज्ञता प्राप्ति के कारण होने वाली निर्भीकता, २ सभी आस्रवों के नष्ट होने से प्राप्त निर्भीकता, ३ निर्वाणगामिनी प्रतिपदा की बाधाओं का सम्यक् प्रकार से वर्णन करने से प्राप्त निर्भीकता, ४ निर्वाण—प्राप्ति के सभी आवश्यक धर्मों [गुणों] का सम्यक् वर्णन करने से प्राप्त निर्भीकता। धर्मसङ्ग्रह, ७७ अर्थविनिश्चय, २३।

८ अठारह आवेणिक बुद्धधर्म।

(१) तथागत को अतीत का पूर्ण एव अप्रतिहत ज्ञान होता है।
(२) तथागत को भविष्य का पूर्ण एवं अप्रतिहत ज्ञान होता है।
(३) तथागत को वर्तमान का पूर्ण एव अप्रतिहत ज्ञान होता है।
(४) उनके सभी शारीरिक कार्य ज्ञानपूवक एव ज्ञानपूण होते हैं।
(५) उनके सभी वाक कर्म ज्ञानपूर्वक एव ज्ञानपूर्ण [ज्ञानमय] होते हैं।
(६) उनके सभी मनस्कर्म ज्ञानपूवक एव ज्ञानपूर्ण होते हैं।
(७) उनके छन्द [आशय] की हानि [परिहाणि] नहीं होती है।
(८) उनके वीय [शक्ति] की हानि नहीं होती है।
(९) उनकी स्मृति की हानि नहीं होती है।
(१) उनकी समाधि की हानि नहीं होती है।
(११) उनकी प्रज्ञा की हानि नहीं होती है।
(१२) उनकी विमुक्ति की हानि नहीं होती है।
(१३) तथागत के द्वारा काय, वाक व मन की त्रुटि नहीं होती है।
(१४) तथागत सहसा वाक् क्रिया नहीं करते हैं।
(१५) उनकी स्मृति कभी मुषित नहीं होती है।
(१६) उनका चित्त सदा समाहित रहता है।

को पार कर लेने के पश्चात् भी वे स्वेच्छा से पाँचों गतियों[9] मे अवतरित होते थे ताकि प्राणियो को शिक्षित कर सकें। महावैद्यराजाओ की तरह सभी विनेयजनो की शिक्षा विधि के जानकार वे बोधिसत्त्व सभी प्राणियो के क्लेशो रोगो का ज्ञान रखते थे और धर्मभैषज्य का यथायोग्य, युक्तिपूर्वक सुप्रयोग करते थे। वे अनन्त गुणो के अनन्त भण्डार स्वरूप थे और अपने गुणव्यूहो से अनन्त बुद्धक्षेत्रो को अलकृत करते थे। उनका दर्शन श्रवण तथा चरण स्पर्श अमोघ फलदायी था। अप्रमेय शत सहस्र कोटि नयुत[10] कल्पो तक भी यदि उनके गुणो का वर्णन किया जाय तब भी उनके गुणो के सागर का अन्त नहीं हो सकता। इन बोधिसत्त्वो के नाम इस प्रकार थे —

समदर्शी, सुमासमदर्शी, समाधिविकुर्वितराज, धर्मेश्वर, धर्मकेतु, प्रभाकेतु, प्रभाव्यूह, रत्नव्यूह, महाव्यूह, प्रतिभानकूट, रत्नकूट रत्नपाणि, रत्नमुद्राहस्त, नित्यप्रलम्बहस्त, नित्योक्षिप्तहस्त, नित्यतप्त, नित्यमुदितेन्द्रिय, प्रामोद्यराज देवराज प्रणिधान यसनानुप्राप्त, प्रतिसंविद्प्रसाधनप्राप्त, गगनगंज, रत्नदीपधर, रत्नवीर, रत्नप्रिय, इन्द्रजाल, जालिनीप्रभ, अनुपलब्धिध्यान, प्रज्ञाकूट रत्नमुक्त, मारहन्ता, विद्युद्देव, विकुर्वणराज, निमित्तकूटसमतिक्रान्त, सिंहगर्जित घोषस्वर, गिरिप्रसमुद्घातराज, गन्धहस्ती, गन्धकुंजरनाग, नित्योद्युक्त, अनिक्षिप्तधुर, प्रमति, सुजात, पद्मश्रीगर्भ, पद्मव्यूह, अवलोकितेश्वर, महास्थामप्राप्त, ब्रह्मजाल, रत्नयष्टिासन, मारकर्मविजेता, समक्षेत्रालकार मणिरत्नच्छत्र, हेमचूड, मणिचूड, मैत्रेय, मंजुश्रीकुमारभूत, इत्यादि सहित बत्तीस सहस्र बोधिसत्त्व।

वहाँ पर उपस्थित और भी अन्य प्राणी थे। अशोक नामक चतुष्कमहाद्वीप लोकधातु से ब्रह्मा शिखी सहित दश सहस्र ब्रह्मा (ब्रह्मा के लोक के देवता गण) भगवान् बुद्ध के दर्शन के लिये, उनकी वन्दना करने के लिये, उनकी उपासना करने के लिये और उनसे धर्मश्रवण करने के लिये वहाँ आये हुये थे। नाना चतुष्क महाद्वीपो से बारह सहस्र शक्र (इन्द्र के लोक के देवता गण) भी वहाँ पर उपस्थित थे। वे सभी देवता उस परिषद मे

---

(१७) उनकी उपेक्षा विचारहीन नहीं होती है।

(१८) उनमें नानात्वसंज्ञा नहीं होती है।

यह तालिका महावस्तु के अनुसार है।

९ पाँच गतियाँ। १ देव, २ मनुष्य, ३ तिर्यक, ४ प्रेत ५ नरक।

१० नयुत अथवा नियुत एक बहुत बड़ी सख्या को सूचित करने वाला शब्द है। बहुधा एक नयुत = १००, ०००, ०००, ०००।

सम्मिलित थे। इसी प्रकार अ य महेशाख्य और ख्यातिप्राप्त ब्रह्मा, कौशिक (शक्र), लोकपाल, देव, नाग, यक्ष, ग धव, असुर गरुड किन्नर और महोरग उस परिषद मे बैठे हुये थे। चतुष्परिषद के सदस्य गण— भिक्षु भिक्षुणियाँ, उपासक, उपासिकाएँ—भी वहाँ पर उस परिषद मे शामिल थे।

इस प्रकार अनेक शतसहस्र प्राणियो की परिषदो से परिवृत एव पुरुष्कृत भगवान् श्रीगर्भसिंहासन मे विराजमान होकर धर्मोपदेश करने लगे थे। जिस प्रकार समुद्र के मध्य में उन्नत पवतराज सुमेरु सर्वत्र दिखाई देता है उसी प्रकार भगवान् बुद्ध समस्त परिषदों के विजेता के रूप मे श्रीगर्भसिंहासन में बैठे हुये प्रकाशमान व देदीप्यमान होकर चतुर्दिक अपना प्रताप विकीण कर रहे थे।

उसी समय लिच्छविकुमार बोधिसत्त्व रत्नाकर, पाच सौ लिच्छविकुमारो के साथ, जो अपने हाथो मे सात रत्नो से जटित छत्र लिये हुये थे महानगरी वशाली से चलकर आम्रपाली के उद्यान मे जहाँ भगवान् बुद्ध थे, वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर प्रत्येक लिच्छवि युवक ने बुद्ध के निकट जाकर उनके चरणो मे सिर झुकाकर प्रणाम किया भगवान् की सात बार प्रदक्षिणा की और अपने रत्नजटित छत्र भगवान को भेंट करक एक ओर को हो गये।

वहाँ पर रख गये वे सभी रत्नजटित छत्र बुद्धानुभाव के परिणाम से तुर त एकीभूत हो गए और उस एकीभूत रत्नजटित महाछत्र ने सम्पूण त्रिसाहस्रमहासाहस्र लोकधातु को आच्छादित और प्रकाशित कर दिया। त्रिसाहस्रमहासाहस्र लोकधातु का समस्त विस्तार भी उसी महारत्नछत्र क भीतर प्रभासित हो गया था। त्रिसाहस्रमहासाहस्र लोकधातु मे जो भी पवत थे यथा पवतराज सुमेरु, हिमपवत मुचिलिन्द पवत, महामुचिलिन्द पवत, ग धमादनपवत, रत्नपवत, कालपवत, चक्रवाड पवत, और महाचक्रवाड पवत, वे सभी उस महारत्नछत्र के मध्य मे प्रभासित हो गये थे। त्रिसाहस्रमहासाहस्र लोकधातु का सारा जल— सभी महासमुद्र, जलाशय, तडाग, पुष्करणी, नदी, धाराए स्रोत, कुण्ड और लघु सरोवर— सभी उस महारत्नछत्र के मध्य प्रभासित हो गये थे। त्रिसाहस्रमहासाहस्र लोकधातु म जो भी सूर्यविमान, च द्रविमान, तारकारूप विमान, देव भवन, नाग-पुर, यक्षो, ग धर्वों, असुरो, गरुडो और महोरगो के आवास थे, चतुर्महाराजाओ के प्रासाद थे, और जो भी ग्राम, नगर, निगम, राष्ट्र, राजधानियाँ थी, वे सभी उसी एक महारत्नछत्र के आभास से परिपूण थीं। यह सब प्रत्येक प्राणी को दिखाई दे रहा था। दशों दिशाओं के लोको से

तथागतो की धमदेशना से जो श द और नाद उत्पन्न होते थे वे भी उस एकमात्र महारत्न छत्र के घेरे मे सुनाई पडते थ ।

भगवान् बुद्ध द्वारा प्रदर्शित ऐसे महाप्रातिहाय (महान चमत्कार) को देखकर वहाँ पर उपस्थित सम्पूण परिषद् आश्चयचकित होकर, प्रसन्नमना और प्रमुदित हो गई। परिषद् के सभी सदस्यो के मन में प्रीति और सौमनस्य उत्पन्न हो गया। इस प्रकार प्रसन्नता और हर्षोल्लास से परिपूर्ण वे सभी भगवान् तथागत की अभिव दना करके ध्यान पूवक अपने नेत्रो से तथागत की ओर देख रहे थे।

उसी समय लिच्छविकुमार रत्नाकर भगवन्त के इस प्रकार के महाप्रातिहार्य को देखकर, अपने दाहिने घुटने को भूमि पर प्रतिष्ठापित करके, भगवान् को अजलिबद्ध हाथो से प्रणाम करके, गाथाओ द्वारा भगवान् तथागत का इस प्रकार अभिन दन करने लगा —

(१) पवित्र नेत्र आपके, पद्मदलवत् रुचिर और विशाल।
शुभ अभिप्राय आपका, शमथपारगत और परमाथ प्राप्त॥

(२) आपके गुणो का सागर और कुशलकर्मो का सग्रह अपार है।
शान्ति पथ गामी, हे श्रमण-श्रष्ठ आपको नमस्कार है॥

(३) हे नरासभ, हे जननायक, हम आपकी ऋद्धि विधि के साक्षी हैं।
सुगतों के सभी क्षेत्र-प्रवर मनोहर व्यक्त और दृष्टिगोचर हैं॥

(४) अमरता की ओर ले जाने वाली जो आपकी उदार धर्मवाणी है।
वह सवत्र सम्पूर्ण आकाश के नीचे सुनाई देती है॥

(५) हे धर्मराज, आप धम द्वारा अपने धर्मराज्य पर शासन करते हैं।
इस प्रकार के विजेता आप सम्पूण जगत को धेमधन प्रदान करते हैं।

(६) धर्मों के प्रविचय मे विशेषज्ञ आप परमाथ के सन्दर्शक हैं।
हे धर्मेश्वर, हे धर्मराज, आपको हम सिर झुकाते हैं॥

(७) अस्ति और नास्ति से परे हैं सभी धर्म[११]।
हेतुओं और प्रत्ययो से उत्पन्न हैं सभी धर्म॥

---

११ तुलनीय समाधिराजसूत्र, ९ २७ अस्ति एव नास्ति ये दोनों ही अन्त हैं, विवादास्पद हैं रत्नावली, १ ६२ बुद्ध का शासन अस्ति एव नास्ति दोनों मतों का अतिक्रमण करता है कात्यायनाववादसूत्र में भी भगवान् तथागत ने कहा है कि अस्ति एक अन्त है और नास्ति दूसरा अन्त है, देखिये प्रसन्नपदा मध्यमकवृत्ति, पृ० ११८ तथा मूलमध्यमककारिका १५ १०-११।

(८) इनमें आत्मा, वेदक और कारक अविद्यमान हैं।
किसी पुण्य व पाप कम का नाश होता नही है।
ऐसी आपकी देशना है ॥

(९) हे मुनीन्द्र आपने बलशाली मार को स्वबल से जीतकर।
परमशान्ति बोधि, अमृत और क्षेम का किया साक्षात्कार ॥

(१०) सारे तीर्थिक और कुगणि रहे जिससे अनजान।
यद्यपि रुक गया था उनके चित्त और वेदना का व्यापार ॥

(११) हे अद्भुत धर्मराज आपने देवताओ और मनुष्यो के समक्ष।
उस प्रशान्त स्वभाव वाले विशुद्ध धर्मचक्र का प्रवर्तन किया है।

(१२) जो त्रिविध परिवत वाला[१२] बहु आकार का है।
तत्पश्चात् आपने त्रिरत्न का प्रकाशन किया है ॥

(१३) जो धर्मरत्न द्वारा सुविनीत हुये।
वे वितकविहीन और नित्यशान्त हो गये ॥

(१४) हे वैद्यश्रेष्ठ, आपने जन्म, जरा और मृत्यु का अन्त कर दिया है।[१३]
हे अप्रमेय गुणसागर, आपको सिर झुकाकर प्रणाम् ॥

(१५) सुमेरु पर्वत की भाँति आप सत्कार–सुकृत से अप्रकम्पित हैं।
शीलवन्त और दुःशील व्यक्तियो से आपकी समान मैत्री है ॥

(१६) समता मे स्थित आपका मन आकाश के समान है।[१४]
कौन ऐसे सत्त्वरत्न की पूजा नही करेगा ॥

(१७) हे महामुने, यह परिषदें यहाँ पर एकत्रित हैं।
सभी श्रद्धापूण मन से आपके मुख को देखते हैं ॥

---

१२ एक सुविदित बौद्ध परम्परा के अनुसार भगवान् बुद्ध ने तीन बार धर्मचक्रप्रवर्तन किया था–पहली बार ऋषिपत्तन (सारनाथ) में, दूसरी बार गृध्रकूट (राजगृह) में और तीसरी बार श्रीधान्यकटक (आन्ध्रप्रदेश) में। द्र सेकोद्देशटीका, पृ० ३–४

१३ बुद्ध स्तुति की इन पक्तियों की तुलना ललितविस्तर, १ १–५ से करणीय है जहाँ तथागत को धर्मेश्वर, देवातिदेव, शान्तविमोक्षपारग, वैद्यराज, वादिशूर, कुगणिप्रतापक, धर्मबन्धु, तथा परमार्थकोविद कहा गया है।

१४ शतपञ्चाशत्क बुद्धस्तोत्र, श्लोक ४७

(१८) सभी भगवान बुद्ध को अपने ही सामने देखते हैं ।
यह निश्चित रूप से बुद्ध का विशिष्ट बुद्धलक्षण है ॥

(१९) यद्यपि भगवान एक ही वाणी का उच्चारण करते हैं ।
परिषद् मे उपस्थित जन उसी वाणी को विविध जानते हैं ॥

(२०) प्रत्येक उसको अपनी भाषा मे अपनी चाह से समझता है ।
यह निश्चित रूप से बुद्ध का विशिष्ट बुद्धलक्षण है ॥

(२१) बुद्ध द्वारा अपनी वाणी मे एक वाक्य के उच्चारण से ।
कोई (श्रोता) धर्म-वासना का विकास करता है ॥

(२२) कोई धर्म-मार्ग पर प्रतिपन्न हो जाता है ।
कोई अपने सन्देहो-विमतियो का शमन करता है ॥

(२३) कोई उस नायक के पीछे सर्वस्वत्याग करता है ।
यह निश्चित रूप से बुद्ध का विशिष्ट बुद्धलक्षण है ॥

(२४) हे दशबल,[१५] शक्तिसम्पन्न, नायक, आपको नमस्कार ।
हे अभय, भयप्रमुक्त, आपको नमस्कार ॥

(२५) आवेणिक[१६] बुद्धधर्मों को प्रकट करने वाले ।
सम्पूर्ण जगत के नेता, आपको नमस्कार ॥

(२६) संयोजनो[१७] और बन्धनों को काटने वाले, आपको नमस्कार ।
पार पहुँचे हुये, स्थलस्थित, आपको नमस्कार ॥

(२७) दुःखी जनो को तारने वाले, आपको नमस्कार ।
संसार-प्रवृति में अप्रतिष्ठित, आपको नमस्कार ॥

(२८) आप प्राणियों के साथ रहने के लिये सत्वगतियो में जाते हैं ।
यद्यपि आपका मन सभी गतियों से मुक्त है ॥

---

१५ बुद्ध के दश बल निम्नलिखित हैं ।
१ स्थानास्थानज्ञानबल, २ कर्मविपाकज्ञानबल, ३ नानाधातुज्ञानबल, ४ नानाधिमुक्तिज्ञानबल, ५ सत्वेन्द्रियपरापरज्ञानबल, ६ सर्वत्रगामिनीप्रतिपत्तिज्ञानबल, ७ ध्यानविमोक्षसमाधिसमापत्तिसंक्लेशव्यवदानव्युत्थानज्ञानबल, ८ पूर्वनिवासानुस्मृतिज्ञानबल, ९ च्युत्युत्पत्तिज्ञानबल, १० आस्रवक्षयज्ञानबल ।

१६ देखिये ऊपर पादटिप्पणी ८

१७ देखिये ऊपर पादटिप्पणी २

(२९) जिस प्रकार परिशुद्ध कमल जल मे उत्पन्न हो कर भी अलिप्त रहता है।
उसी प्रकार बुद्धरूपी कमल सवदा शून्यता विहार करता है॥ [१८]

(३०) आपने सभी चीजों के सभी निमित्तों का निराकरण किया है।
आप किसी भी चीज के किसी भी रूप के इच्छुक नही हैं॥

(३१) परिशुद्ध बुद्ध का महानुभाव अचिन्तनीय है।
आकाश-समान सवत्र अप्रतिष्ठित आपको प्रणाम है॥

इन गाथाओ द्वारा भगवान बद्ध की स्तुति करने के पश्चात लिच्छविकुमार रत्नाकर भगवान् के प्रति इस प्रकार बोले —

"भगवन्, ये सभी पाँच सौ लिच्छिविकुमार अनुत्तर सम्यक सम्बोधि के मार्ग पर आरुढ हैं। ये पूछते हैं कि 'बोधिसत्त्वो का परिशुद्ध बुद्धक्षेत्र क्या है?' बोधिसत्त्वो के परिशुद्ध बुद्धक्षेत्र के विषय मे इस प्रश्न का उत्तर कृपा करके तथागत भली प्रकार दें।'

ऐसा कहे जाने पर भगवान ने लिच्छिविकुमार रत्नाकर को अपनी स्वीकृति देते हुये कहा 'साधु, साधु, कुमार। परिशुद्ध बुद्धक्षेत्र विषयक आपने तथागत से जो प्रश्न किया है वह ठीक ही है। इसलिये, कुमार, आप अच्छी तरह सुनिये और स्मरण रखिये, बोधि सत्वो के परिशुद्ध बुद्धक्षेत्र का अर्थ आपको बताऊँगा।" "साधु भगवन्"—ऐसा कहकर लिच्छविकुमार रत्नाकर और पाँच सौ लिच्छविकुमार भगवान् को सुनने को उद्यत हो गये।

भगवान् ने उनसे कहा —"कुलपुत्रो, सत्वक्षत्र ही बोधिसत्त्वों का बुद्धक्षेत्र है। ऐसा क्यो? बोधिसत्त्व बुद्धक्षेत्र का परिग्राहक तभी होता है जब वह सत्त्वो का विकास करता है। जैसे सत्त्व विनीत होते हैं वैसे ही वह बुद्धक्षेत्र का परिग्राहक होता है। वह बुद्धक्षत्र का वैसे ही परिग्रहण करता है जसे बुद्धक्षेत्र मे प्रवेश द्वारा सत्त्वो का बुद्धज्ञान मे प्रवेश होता है। वह इस प्रकार से बुद्धक्षेत्र का परिग्रहण करता है जिस प्रकार कि बुद्धक्षेत्र प्रवेश द्वारा सत्त्वो मे श्रेष्ठ एव पवित्र इन्द्रियो की उत्पत्ति होती है। ऐसा क्यो? कुलपुत्रो, बोधिसत्त्वो का बुद्धक्षेत्र सत्त्वो के हितार्थ क्रियाओ के कारण से ही होता है। रत्नाकर उदाहरण के लिये समझिये। यदि कोई व्यक्ति आकाश के समान रिक्त स्थान पर कुछ निर्मित करना चाहता है तो वह प्रयत्न कर सकता है, इस तथ्य के होते हुये भी

---

१८ द्र० अगुत्तरनिकाय, खण्ड २, पृ० ४१—
पुण्डरीक यथा वग्गु तोयेन नुपलिप्पति।
नुपलिप्पामि लोकेन तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मणा॥

कि आकाश की तरह रिक्त स्थान पर निर्माण अथवा अलकरण काय रचना सम्भव नही है। इसी प्रकार, रत्नाकर, सभी धर्मों को आकाश के समान जानकर यदि बोधिसत्त्व सत्त्वपरिपाचनार्थ बुद्धक्षेत्र का निर्माण करना चाहता है तो वह बुद्धक्षेत्र की रचना करे यह जानते हुये कि कोई भी बुद्धक्षेत्र आकाश मे निर्मित करना अथवा अलकृत करना सम्भव नही है।

"रत्नाकर, बोधिसत्त्व का बुद्धक्षेत्र वस्तुत आशयक्षेत्र है। जब उसे बोधि की प्राप्ति होगी तब उसके बुद्धक्षेत्र मे शठना और छल कपट से रहित प्राणी उत्पन्न होगे। कुलपुत्र, बोधिसत्त्व का बुद्धक्षेत्र वास्तव मे अध्याशयक्षेत्र है। जब उसको बोधि की प्राप्ति होगी तब उसके बुद्धक्षेत्र मे ऐसे प्राणी उत्पन्न होगे जिन्होने सर्व प्रकार के कुशलमूलो का रोपण और सम्भारद्वय[19] का सम्पादन किया है।

"बोधिसत्त्व का बुद्धक्षेत्र प्रयोगक्षेत्र, गुणो के अभ्यास का क्षेत्र है, जब उसको बोधि की प्राप्ति होगी तब उसके बुद्धक्षेत्र में ऐसे प्राणी उत्पन्न होगे जो सभी कुशलधर्मों के अनुकूल जीवन यापन करते हैं। बोधिसत्त्व का बुद्धक्षेत्र उदारचित्तोत्पाद है। उदारचित्तोत्पाद महाकरुणापूर्ण बोधिचित्तोत्पाद[20] है। जब बोधिसत्त्व को बोधि की प्राप्ति होगी तब उसके बुद्धक्षेत्र मे महायान में सम्प्रस्थित प्राणी उत्पन्न होगे।

"बोधिसत्त्व का बुद्धक्षेत्र दानक्षेत्र[21] है। उसके बोधि प्राप्ति करने के पश्चात् उसके बुद्धक्षेत्र में वे प्राणी उत्पन्न होगे जो अपना सर्वस्व त्याग देते हैं।

"बोधिसत्त्व का बुद्धक्षेत्र शीलक्षेत्र है। उसके बोधि प्राप्त करने के पश्चात् उसके बुद्धक्षेत्र में वे प्राणी उत्पन्न होगे जो उदारचित्त के साथ दश कुशलकर्मपथों[22] का अनुगमन करते हैं।

---

१९ सम्भारद्वय—पुण्यसम्भार एव ज्ञानसम्भार।

२० बोधिचित्त पर द्र० मेरा लेख जर्नल ऑफ रिलीजियस स्टडीज, वॉल्यूम ३, नं १ (१९७१), पृ० ७०–७९

२१ रत्नमेघसूत्र में कहा गया है "दान हि बोधिसत्त्वस्य बोधि", द्र० शिक्षासमुच्चय, पृ० २२।

२२ दश कुशलकर्म पथ निम्नलिखित हैं।

१ प्राणातिपात से विरति, २ अदत्तादान से विरति ३ काममिथ्याचार से विरति, ४ मृषावाक् से विरति, ५ पैशुन्य से विरति, ६ पारुष्य से विरति, ७ संभिन्नप्रलाप से विरति, ८ अभिध्या से विरति, ९ व्यापाद से विरति, १० मिथ्यादृष्टि से विरति।

"बोधिसत्त्व का बुद्धक्षत्र क्षान्तिक्षेत्र है। उसके बोधि प्राप्त करने के पश्चात उसके बुद्धक्षेत्र मे क्षान्ति, दम व परमशमथ की पूणता वाले बत्तीस लक्षणो[२३] से अलकृत प्राणी उत्पन्न होंगे।

"बोधिसत्त्व का बुद्धक्षत्र वीयक्षत्र है। उसके बोधि प्राप्त करने के पश्चात उसके बुद्धक्षेत्र मे वे प्राणी उत्पन्न होगे जो सभी कुशलधर्मों के सम्पादन में प्रयत्नशील हैं।

'बोधिसत्त्व का बुद्धक्षत्र ध्यान क्षेत्र है। उसके बोधि प्राप्त करने के पश्चात उसके बुद्धक्षेत्र में स्मृति के सरक्षण मे ध्यानरत प्राणी उत्पन्न होगे।

"बोधिसत्त्व का बुद्धक्षत्र प्रज्ञाक्षेत्र है। उसके बोधि प्राप्त करने पर उसके बुद्धक्षेत्र मे सम्यक्त्व की प्राप्ति मे नियत प्राणी उत्पन्न होंगे

"बोधिसत्त्व का बुद्धक्षत्र चार अपरिमित भावनाए हैं। उसके बोधि प्राप्त करने पर उसके बुद्धक्षेत्र मे मत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा का अभ्यास करने वाले प्राणी उत्पन्न होगे।

"बोधिसत्त्व का बुद्धक्षेत्र चार सग्रहवस्तुऐं[२४] हैं। उसके बोधि प्राप्त करने पर उसके बुद्धक्षेत्र मे सव प्रकार की मुक्ति से परिगृहीत प्राणी उत्पन्न होगे।

"बोधिसत्त्व का बुद्धक्षेत्र उपायकौशल्य है। उसके बोधि प्राप्त करने पर उसके बुद्धक्षेत्र मे सभी प्रकार के उपायकौशल्य एव चर्याविधि में कुशल प्राणी उत्पन्न होगे।

"बोधिसत्त्व का बुद्धक्षेत्र सैंतीस बोधिपाक्षिकधम[२५] हैं। उसके बोधि प्राप्त करने पर उसके बुद्धक्षेत्र मे स्मृत्युपस्थान, सम्यक प्रधान (प्रहाण) ऋद्धिपाद, इन्द्रिय, बल, बोध्यग, और माग पर लगे हुये प्राणी उत्पन्न होगे।

'बोधिसत्त्व का बुद्धक्षत्र परिणामना चित्त है। उसके बोधि प्राप्ति करने पर उसके बुद्धक्षेत्र मे सभी गुणो के अलकार प्रकट होंगे।

---

२३ देखिये ऊपर टिप्पणी ४

२४ चार सग्रह वस्तुयें—१ दान, २ प्रियवचन, ३ अर्थचर्या, ४ समानार्थता।

२५ सैंतीस बोधिपाक्षिक धर्म निम्नलिखित हैं—

(अ) चार स्मृत्युपस्थान—१ कायस्मृत्युपस्थान, २ वेदनास्मृत्युपस्थान, ३ चित्तस्मृत्यु पस्थान, ४ धर्मस्मृत्युपस्थान।

(आ) चार सम्यक् प्रहाण—१ उत्पन्न कुशलमूलों का सरक्षण करना, २ अनुत्पन्न कुशल मूलों को उत्पन्न करना, ३ उत्पन्न अकुशल कर्मों का प्रहाण (परित्याग) करना, ४ अनुत्पन्न अकुशलकर्मों को न उत्पन्न करना।

"बोधिसत्त्व का बुद्धक्षेत्र आठ अक्षणों[२६] का विनाश करने वाला उपदेश है। उसके बोधि प्राप्ति करने पर उसके बुद्धक्षेत्र मे सभी दुर्गतियाँ पूर्णरूप से नष्ट हो जाएँगी और आठ अक्षण भी समाप्त हो जाएँगे।

"बोधिसत्त्व का बुद्धक्षेत्र स्वय शिक्षापदों के पालन मे स्थित रहना और अपराधो के लिये दूसरो को दोष न लगाना है। उसको बोधि प्राप्ति होने पर उसके बुद्धक्षेत्र मे आपत्ति (अपराध) शब्द भी नही सुनाई देगा।

'बोधिसत्त्व का बुद्धक्षेत्र दशकुशलकर्मपथ की परिशुद्धि है। उसको बोधि प्राप्ति होने पर उसके बुद्धक्षेत्र मे ऐसे प्राणी उत्पन्न होंगे जो चिरायु, धनवान पवित्र जीवन वाले सत्य के अनुरूप वचनो से अलकृत, मजुवाक्य बोलने वाले, फूट न डालने वाले और दलो के बीच सन्धि करवाने मे कुशल, ईर्ष्या व द्वेषरहित चित्त वाले और सम्यग्दृष्टि प्राप्त प्राणी उत्पन्न होगे।

'इस प्रकार, कुलपुत्र, जैसा बोधिसत्त्व का बोधिचित्तोत्पाद है, वसा ही उसका आशय है। जसा उसका आशय है वसा ही उसका गुणाभ्यास अथवा गुण प्रयोग है। उसका गुणाभ्यास उसके अध्याशय के समान है। उसका अध्याशय उसकी निष्पत्ति के समान है। उसकी निष्पत्ति उसकी प्रतिपत्ति के समान है। उसकी प्रतिपत्ति उसकी परिणामना

(इ) चार ऋद्धिपाद—१ छन्द समाधि-संस्कार के समन्वित विकास से उत्पन्न ऋद्धिपाद, २ चित्त-समाधि सस्कार के समन्वित विकास से उत्पन्न ऋद्धिपाद, ३ वीर्य समाधि सस्कार के समन्वित विकास से उत्पन्न ऋद्धिपाद, ४ मीमांसा समाधि-सस्कार के समन्वित विकास से उत्पन्न ऋद्धिपाद।

(ई) पाँच इन्द्रियाँ—१ श्रद्धा, २ समाधि, ३ वीर्य, ४ स्मृति, ५ प्रज्ञा।

(उ) पाँच बल—१ श्रद्धा, २ वीर्य, ३ स्मृति, ४ समाधि, ५ प्रज्ञा।

(ऊ) सात बोध्यंग—१ स्मृति, २ धर्मविचय, ३ वीर्य, ४ प्रीति, ५ प्रश्रब्धि, ६ समाधि, ७ उपेक्षा।

(ए) मार्ग के आठ अंग—१ सम्यक् दृष्टि, २ सम्यक् संकल्प, ३ सम्यक वाक् ४ सम्यक् कर्मान्त, ५ सम्यक् आजीव, ६ सम्यक् व्यायाम, ७ सम्यक् स्मृति ८ सम्यक् समाधि।

२६ आठ अक्षण निम्नलिखित हैं—१ नरक में उत्पत्ति, २ पशुयोनि में उत्पत्ति, ३ प्रेतयोनि (यमलोक) में उत्पत्ति, ४ दीर्घायु के देवताओं में उत्पत्ति, ५ प्रत्यन्तजनपदों में उत्पत्ति, ६ विकलेन्द्रिय रूप में उत्पत्ति, ७ मिथ्यादर्शन से ग्रस्त होना और ८ ऐसे युग में उत्पत्ति जब तथागत का आविर्भाव न हुआ हो।

के समान है। उसकी परिणामना उसके उपायकौशल्य के समान है। उसका उपाय कौशल्य उसके सत्त्वपरिशुद्धक्षेत्र के समान है। जसा उसका सत्त्वपरिशुद्धक्षेत्र है वसे उसके परिशुद्ध सत्त्व हैं। जसे उसके परिशुद्ध सत्त्व हैं वसा ही उसका परिशुद्ध ज्ञान है। जैसा उसका परिशुद्धज्ञान है वसा ही उसका परिशुद्ध शासन है। जैसा उसका परिशुद्ध शासन है वसा ही उसका परिशुद्ध ज्ञानसाधन है। जसा उसका परिशुद्ध ज्ञानसाधन है वसा ही उसका परिशुद्ध स्वचित्त है।

'अतएव, कुलपुत्र बोधिसत्त्व को बुद्धक्षेत्र की परिशुद्धि पूर्ण करने की इच्छा से अपने चित्त की परिशुद्धि का प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा क्यो ? जसे बोधिसत्त्व का चित्त परिशुद्ध होता है वसे ही बुद्धक्षेत्र की परिशुद्धि होती है।'

उस समय बद्ध के आनुभाव के कारण आयुष्मान शारिपुत्र ने सोचा— 'यदि परिशुद्ध चित्त के समान ही बोधिसत्त्व का बुद्धक्षेत्र पवित्र होता है तो क्या भगवान् शाक्यमुनि का चित्त जब वह बोधिसत्त्वचर्या मे लगे हुए थे परिशद्ध नही था ? अन्यथा यह बुद्धक्षेत्र इतना अपरिशुद्ध क्यो दिखाई देता है ?"

आयुष्मान् शारिपुत्र के मन मे उत्पन्न ऐसा वितक भगवान् ने (स्वय अभिज्ञा द्वारा) जान लिया और उन्होंने आयुष्मान् शारिपुत्र से कहा—

"शारिपुत्र, आप क्या मानते हैं ? क्या सूय और च द्र अपरिशुद्ध हैं क्यो कि जन्मा ध व्यक्ति उन्हे देख नही सकते हैं ?"

शारिपुत्र ने कहा नही भगवन् ऐसा नही है। यहाँ पर दोष जन्मान्धो का है, न कि सूर्य और चन्द्र का।'

भगवान् ने कहा— उसी प्रकार, शारिपुत्र, यदि कुछ सत्त्वो को तथागत के बुद्ध क्षेत्र के अलकृत गुण व्यूह दिखाइ नही देते हैं तो यह सत्त्वो के अज्ञान का दोष है, इसमे तथागत का दोष नही है। तथागत का बुद्धक्षेत्र परिशुद्ध है, परन्तु आपको यह नही दिखाई देता है।"

उस समय शिखी ब्रह्मा ने आयुष्मान् शारिपुत्र से कहा—' भद त शारिपुत्र, 'तथागत का बुद्धक्षेत्र परिशुद्ध नही है' ऐसा मत कहिए। भद त शारिपुत्र, भगवान् का बुद्धक्षेत्र परिशुद्ध है। भद त शारिपुत्र, भगवान् शाक्यमुनि के बुद्धक्षत्र की सुव्यवस्था (व्यूह) मैं वसी ही देखता हू जसी कि परनिर्मितवशवर्ति देवताओ के आवासो की सुव्यवस्था होती है।"

तब स्थविर शारिपुत्र ने शिखी ब्रह्मा से कहा—"ब्रह्मा, मैं तो इस महापृथिवी को ऊची, नीची, कण्टकपूर्ण, प्रपातो वाली, शिखरो वाली, और गड्ढो वाली मानो हीन कदम से भरी हुई हो, ऐसी देखता हू ।

शिखी ब्रह्मा ने कहा—"ऐसा देखने से ही बुद्धक्षेत्र आपको परिशुद्ध नही दिखाई देता । भदन्त शारिपुत्र, आपके ऊचे नीचे चित्त मे बुद्धज्ञान के लिये सीमित आशय होने के कारण (यह बुद्धक्षेत्र) अपरिशुद्ध लगता है । भदन्त शारिपुत्र, जिनके चित्त मे सभी सत्त्वो के प्रति समता होती है और जिनका बुद्धज्ञानाशय परिशुद्ध होता है, उन्हे यह बुद्धक्षेत्र परिशुद्ध दिखाई देता है ।"

तब भगवान् ने अपने पैर मे अँगूठे से इस त्रिसाहस्रमहासाहस्र लोकधातु के धरातल को स्पर्श किया । स्पर्श करते ही यह लोकधातु अनेक रत्नो का पुज हो गया, अनेक शत सहस्र रत्नो का सभार और अनेक शत सहस्र रत्न पुजो का सुव्यवस्थित संग्रह बन गया । यह लोकधातु वैसा ही दिखाई देने लगा जैसा कि रत्नव्यूह तथागत का अनन्तगुण रत्नव्यूह नामक लोकधातु है । तत्पश्चात् सम्पूर्ण परिषद् आश्चर्यान्वित हो गई और प्रत्येक व्यक्ति अपने को रत्नजटित सुव्यवस्थित पद्मासन मे बैठा हुआ समझने लगा ।

तब भगवान् ने आयुष्मान शारिपुत्र से कहा—"शारिपुत्र, आप इस बुद्धक्षेत्र के गुणों के वैभव को देखते हैं ?"

शारिपुत्र ने उत्तर दिया—"अवश्य देखता हूँ, भगवन् ! मेरे सामने वह वैभव है जो पहले कभी न देखा और न सुना था ।"

भगवान् बुद्ध ने कहा—"शारिपुत्र, यह बुद्धक्षेत्र नित्य ही इसी प्रकार का (परिशुद्ध) है । परन्तु हीन कोटि के प्राणियो की आध्यात्मिक व धार्मिक प्रगति करने के लिये तथागत इस बुद्धक्षेत्र को ऐसे अनेक दोषो से दूषित बताते हैं । उदाहरणार्थ, शारिपुत्र, जिस प्रकार देवतागण एक ही रत्नमय पात्र में भोजन भक्षण करते हैं फिर भी, अपने पुण्यो के संचय मे भिन्नता के कारण, दिव्य आहार से प्राप्त होने वाला अमृत (रस) उनका पोषण भिन्न भिन्न मात्रा मे करता है । इसी प्रकार, शारिपुत्र, एक बुद्धक्षेत्र मे उत्पन्न हुये प्राणी अपनी-अपनी परिशुद्धि के अनुसार बुद्धों के बुद्धक्षेत्रों के गुणों का वैभव देखते है ।"

बुद्धक्षेत्र के इस गुणालंकार के वैभव को देखकर चौरासी हजार प्राणियो ने सम्यक्‌सम्बोधि की प्राप्ति का विचार विकसित किया और जो पाँच सौ लिच्छविकुमार रत्नाकर के साथ आये थे, उन्होंने भी अनुलोमिकी (धर्म) क्षान्ति प्राप्त की ।

तब भगवान ने अपनी ऋद्धि विधि समेट ली और तुरन्त ही वह बुद्धक्षेत्र अपने पूववत् स्वभाव का होकर दिखाई दिया।

तब वहाँ पर जो श्रावकयानी देवता और मनुष्य थे उ होने सोचा—"सस्कार अनित्य हैं"[२७] (अनित्या वत सस्कारा)। ऐसा जानकर बत्तीस हजार प्राणियो ने सभी धर्मों के प्रति धर्मचक्षु को निमल विशुद्ध और निर्दोष किया आठ हजार भिक्षुओं ने अपने चित्तो को आस्रवो से विमुक्त किया और चौरासी हजार प्राणियो ने जो बुद्धक्षेत्र की महानता के प्रति श्रद्धाभाव रखते थे सभी धर्मों को मौलिक रुप मे विठपित[२८] (मायोपम) लक्षण वाले जानकर अनुत्तर सम्यक सम्बोधि का चित्त उत्प न किया।

प्रथम परिवर्त समाप्त।

---

२७ द्र० **दीघनिकाय**, खण्ड २, महापरिनिब्बानसुत्त, पृष्ठ १२०, (संस्कृत **महापरिनिर्वाणसूत्र**, पृष्ठ ३९८)—

अनिच्चा वत सखारा उप्पादवयधम्मिनो।

उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेस वूपसमो सुखो॥

२८ द्र० **वज्रमण्डाधारणी** (**प्रसन्नपदा**, पृ० १७ पर उद्धृत)—

"असन्त इमे सर्वधर्मा। विठपिता, इमे सवधर्मा। मायोपमा इमे सर्वधर्मा"

२ अचिन्तनीय उपायकौशल्य

उस समय महनगरी वैशाली मे विमलकीर्ति नामक एक लिच्छवि रहता था। उसने पूर्वकाल के तथागतो की सेवा की थी और उनकी उपासना करके कुशलमूलावरोपण किया था। उसने क्षान्ति प्राप्त कर ली थी और प्रतिभान (अविरत भाषण की निपुणता) भी। वह महान अभिज्ञाओ से क्रीडा करता था। उसको धारणियो[1] (मन्त्र शक्तियों) और वैशारद्यो की भी प्राप्ति थी। उसने मार को और विरोधियों को परास्त कर लिया था। वह गम्भीर धर्म के मार्ग पर भली प्रकार चलता था। वह प्रज्ञापारमिता[2] के अनुसार मुक्त था। उपायकौशल्य में पूर्णता प्राप्त और प्रतिभा सम्पन्न होने के कारण वह प्राणियो के विचारों और कार्यों का ज्ञाता था। प्राणियो की इन्द्रियो की शक्तियो और

---

१ धारणी का अर्थ मन्त्र और उसकी क्रान्तिकारी शक्ति है। धारणी से मेल खाती हुई पंक्तियों के समूह को पालि में 'परित्त' कहा गया है। धारणी का अर्थ धारण करके असाधारण कार्य हो सकते हैं। ऐसी मान्यता है। धारणी बौद्ध संस्कृत साहित्य की एक कोटि अथवा प्रकार भी है। इसकी रचना बहुत बड़ी सख्या में महायानसूत्रों व बौद्ध-तन्त्रों की रचना के मध्यकाल में भारत में हुई थी। कुछ धारणियाँ अटपटे से निरर्थक शब्दों का संग्रह मात्र हैं, कुछ धारणियाँ भक्ति से ओत प्रोत हैं (यथा रत्नोल्काधारणी) तो कुछ का विषय शून्यता हैं।

बोधिसत्वों की बारह धारणियाँ होती हैं जिन्हें वे कण्ठस्थ करके बुद्ध कार्य करते हैं— १ अभिषेचनी, २ ज्ञानवती, ३ विशुद्धस्वरनिर्घोषा, ४ अक्षयकरण्डा, ५ अनन्तावर्ता, ६ सागरमुद्रा, ७ पद्मव्यूहा, ८ असंगमुखप्रवेशा, ९ प्रतिसंविन्निश्चयावतारा, १० बुद्धालंकाराधिष्ठिता, ११ अनन्तवर्णा, १२ बुद्धकायवर्णपरिनिष्पत्ति-अभिनिर्हारा। (महाव्युत्पत्ति, ७४७ ७५८)। एक अन्य संक्षिप्त सूची में चतुर्विध धारणी का उल्लेख है— १ आत्मधारणी, २ ग्रन्थधारणी, ३ धर्मधारणी, ४ मन्त्रधारणी (धर्मसंग्रह, ५२)। आचार्य थानूर्वाक् ने लिखा है कि महासांघिक बौद्ध सम्प्रदाय के पवित्र साहित्य में एक संग्रह 'धारणीपिटक' भी था।

२ 'प्रज्ञापारमिता' की विस्तृत चर्चा के लिए देखिये लालमणि जोशी द्वारा सम्पादित एवं अनूदित वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमिता (सारनाथ, केन्द्रीय तिब्बती उच्चशिक्षा संस्थान, १९७८) की भूमिका पृ० १-३५।

दुर्बलताओं के ज्ञान में निष्णात् वह प्रत्येक प्राणी के योग्य धर्मोपदेश करने वाला था। महायान का अभ्यास करके, उसको भली प्रकार जानकर, सुनिश्चित कार्य करता था। वह बुद्ध की तरह व्यवहार करता था, बुद्ध के ईर्यापथ पर चलता था। उसकी उच्चकोटि की बुद्धि सागर के समान गम्भीर और प्रशस्त थी। सभी बुद्धों द्वारा वह प्रशंसित, सम्मानित और मान्य था। इन्द्र, ब्रह्मा और सभी लोकपाल उसको नमस्कार करते थे।

उपायकौशल्य द्वारा प्राणियों के परिपाचनार्थ (उनकी आध्यात्मिक प्रगति और मुक्ति प्राप्ति के लिए) वह महानगरी वैशाली में रहता था। अनाथों और दरिद्रों के पालन पोषण के लिये उसके पास अक्षय धन सम्पत्ति थी। दुराचारी अथवा दुःशील सत्त्वों की रक्षा के लिए वह पवित्र और शीलवान जीवन बिताता था। द्वेषी, अतिद्वेषी क्रुद्ध, निर्दयी और दुःशील प्राणियों में समवाय के लिये वह क्षान्ति व दम से सम्पन्न था। आलसी प्राणियों को प्रेरित करने के लिये उत्तप्त वीर्य वाला था। विक्षिप्त चित्त वाले प्राणियों की सहायता के लिये वह ध्यान, स्मृति और समाधि का अभ्यास करता था। दुष्प्रज्ञ और मूर्ख प्राणियों के लिये उसने प्रज्ञाविनिश्चय की प्राप्ति की थी।

यद्यपि वह (उपासक की तरह) श्वेतवस्त्र पहनता था तथापि वह श्रमणचरित से सम्पन्न था। यद्यपि वह गृहस्थ था, तथापि वह कामलोक, रूपलोक और अरूपलोक से सर्वथा दूर रहता था। यद्यपि उसके एक पुत्र, एक पत्नी और अन्तःपुर (सहचरियों का कक्ष) था, तथापि वह सदा ब्रह्मचारी था। यद्यपि वह परिवारपरिवृत (साथियों, नौकरों से घिरा हुआ) दिखाई देता था, तथापि वह विवेकचारी अथवा अकेला विचरण करता था। वह आभूषणों से अलंकृत प्रतीत होता था, परन्तु वह (महापुरुष के) लक्षणों से सुशोभित था।[3] यद्यपि वह भोजन करता और पेय पीता हुआ प्रतीत होता था, तथापि वह सदा ध्यान से उत्पन्न प्रीति-भोजन खाता था।[4] यद्यपि वह खेल के मैदान में और जुआ (द्यूत) खेलने के स्थान में दिखाई पड़ता था, तथापि उसका उद्देश्य खेल और जुये में अनुरक्त प्राणियों का नित्य धार्मिक विकास करना ही था। वह

---

३ तुलनीय धम्मपद, गाथा १४२—

"अलंकतो चे पि समं चरेय्य सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खु॥"

४ तु० धम्मपद, गाथा २००—

"सुसुखं वत जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं।
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा॥"

सब प्रकार के धर्माचार्यों के साथ गवेषणापूर्ण चर्चा करता था, परन्तु बुद्ध के प्रति उसमे अभेद्य आस्था थी। वह लौकिक एव लोकोत्तर मन्त्रो और विद्याओ का ज्ञाता था, तथापि सदा धर्म के सम्मोदन में आनन्द की भावना करता था। वह सब लोगो से ससग रखता था, तथापि सभी लोगो के मध्य वह प्रमुख और सम्मानित था।

लोक मे एकता लाने के लिये वह ज्येष्ठ लोगो से, मध्यम अवस्था के, और कुमारावस्था के लोगों से साथी रूप मे मिलता था, परन्तु सदा धर्म के अनुसार बोलता था। वह सभी प्रकार के व्यवहार व्यापार करता था परन्तु लाभ और सम्पत्ति का इच्छुक नही था। वह सब प्रकार के सत्वों को धर्म की शिक्षा देने के लिये वह सभी चौराहो मे और गलियो के कोनो मे भी दिखाई देता था, और सभी प्राणियो की रक्षा के लिये वह सरकारी राजकीय कार्यों मे भी लगा रहता था। लोगों को हीनयान से हटाने के लिये और उन्हे महायान की ओर अग्रसर करने के लिये वह सब प्रकार के धर्म वाचको और धर्म श्रोताओ के साथ दिखाई देता था। बालको के धार्मिक विकास के लिये वह सभी पाठशालाओ मे भी जाता था। काम विषयक दोषो का प्रकाशन करने के लिये वह गणिकाओ के निवास पर भी जाता था। मद्यपान करने वालो की स्मृति स्थापित करने के लिये वह सभी सुरा विक्रय स्थलो में जा पहुँचता था।

धर्म की श्रेष्ठता का उपदेश करने के कारण वह श्रेष्ठियो मे श्रेष्ठि (सेठों मे सेठ) रूप से सम्मानित था। सब कुछ सग्रह करने और ग्रहण करने की प्रवृत्ति का नाश करने के कारण वह गृहपतियो के मध्य गृहपति के रूप मे सम्मानित था। क्षान्ति, शूरता और बल की प्रतिष्ठा स्थापित करने के कारण वह क्षत्रियो के मध्य क्षत्रिय रुप में सम्मानित था। मान, मद और दर्प का नाश करने के कारण वह ब्राह्मणो के मध्य ब्राह्मण रूप में सम्मानित था। सभी राजकार्यों को धर्मानुरूप करने के कारण वह मन्त्रियो के मध्य मन्त्री रूप मे सम्मानित था। राजकीय भोग व ऐश्वर्य के प्रति आसक्ति का विवर्तन करने (अनासक्ति होने) के कारण वह राजकुमारो के मध्य राजकुमार रूप मे सम्मानित था। कुमारियो को धर्मोपदेश करने के कारण अन्त पुर मे भी वह एक कचुकी के रूप मे सम्मानित था।

प्राकृतिक व सरल पुण्यो की विशेषता समझने के कारण वह साधारण मनुष्यो के समुदाय के साथ समता रखता था। ईश्वरीय (दैवी) आधिपत्य (की अनित्यता) का उपदेश करने के कारण वह इन्द्रो के मध्य इन्द्र रूप मे सम्मानित था। ज्ञान की विशेषता का उपदेश करने के कारण वह ब्रह्माओ के मध्य ब्रह्मा के रूप मे सम्मानित था। और सभी प्राणियो को मोक्ष की ओर अग्रसर करने के कारण वह लोकपालो मे लोकपाल के रूप मे

सम्मानित था। इस प्रकार उपायकौशल्य का अपरिमित ज्ञान रखने वाला वह लिच्छवि विमलकीर्ति महानगरी वशाली मे रहता था।

इसी उपायकौशल्य से प्रेरित होकर विमलकीर्ति ने अपने आपको रोगी के रूप मे दिखाया था। उसके स्वास्थ्य का समाचार पूछने के लिये महानगरी वशाली के राजा, अमात्य अधिकारी, कुमारो के समूह ब्राह्मण गहपति, श्रेष्ठि नगरनिवासी, जनपदवासी, इतने ही नही अपितु कई हजार प्राणी उसके रोग के बारे मे पूछने के लिए उसके पास आए। जब वे वहाँ पहुँच गये तब लिच्छवि विमलकीर्ति ने चार महाभूतो से निर्मित काय से प्रारभ करते हुए उनको धम का उपदेश दिया—

'मित्रो! यह शरीर इतना अनित्य है, इतना नश्वर है कि विश्वास करने योग्य नही है। यह दुबल सार रहित, और लुप्त होने वाला है सीमित समय का, दुखमय, बहुत से रोगो वाला और परिवतनशील है। मित्रो! इस प्रकार का यह शरीर बहुत से रोगो का भाडा (भाजन) है। मनीषी जन इस पर निभर नही करते हैं।[५]

'मित्रो! यह शरीर (कुछ भी) धारण करने की क्षमता नही रखता है। यह फेनपिण्ड की तरह क्षणिक है। यह शरीर अधिक समय तक स्थित रहने वाला नही है। यह पानी के बुद्बुदे (बुलबुले) की तरह क्षणिक है। यह शरीर क्लेशो और तृष्णाओ से उत्पन्न हुआ है। यह मरीचिका के समान है।[६] यह शरीर असार है, केले के वृक्ष के तने के समान है। यह शरीर एक यन्त्र की तरह है, अस्थियो और नाड़ियो का बन्ध (समूह) मात्र है। यह शरीर विपर्यास की उपज है और मायावत् है। असत्य के

---

५ तु० धम्मपद, गाथा १४८—

"परिजिण्णमिद रूप रोगनीड पभगुर।
भिज्जति पूतिसन्देहो मरणान्त हि जीवित॥"

६ तुलनीय संयुत्तनिकाय, खण्ड २ पृ० ३६०—

"फेणपिण्डूपम रूप वेदना बुब्बुलूपमा।
मरीचिकूपमा सञ्ञा सखारा कदलूपमा।
मायूपमञ्च विञ्ञाणं दीपितादिच्चबन्धुना॥"

इन्हीं पक्तियों का सस्कृत रूपान्तर प्रसन्नपदा, पृ० १३ में एक सस्कृत सूत्र से उद्धृत है—

'फेनपिण्डोपम रूप वेदना बुद्बुदोपमा।
मरीचिसदृशी सज्ञा सस्कारा कदलीनिभा।
मायोपम च विज्ञानमुक्तमादित्यबन्धुना॥"

दशन की भाँति यह शरीर स्वप्न के समान है। यह शरीर प्रतिबिम्ब (छाया) की तरह है। यह पहले किये गये कर्मों का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। यह शरीर प्रत्ययो के अधीन है, आवाज की प्रतिध्वनि के समान है। विक्षिप्त चित्त की तरह यह शरीर पतन के लक्षण वाला है और मेघ के समान विलुप्त होता है। यह शरीर आकाश मे चमकती हुई बिजली की तरह है अस्थिर और प्रतिक्षण नष्ट होने वाला है। यह शरीर स्वामी रहित है और नाना प्रकार के प्रत्ययों से उत्प न हुआ है।

"यह शरीर निष्क्रिय है पृथिवी की तरह निर्व्यापार है। आत्मा रहित यह शरीर पानी के समान है। यह शरीर अग्नि (तेजस) की तरह जीवन रहित (निर्जीव) है। यह शरीर वायु के समान यक्ति रहित है। यह शरीर आकाश की तरह नि स्वभाव है।

"यह शरीर असत् है, चार महाभूतो का स्थान है। यह शरीर आत्मा और आत्मीय से रहित, शू-य है। यह शरीर तृण, काष्ठ दीवार, मिटटी के ढेले और प्रतिभास के समान जड है। यह शरीर हवा से चलने वाले य-त्र के समान वेदनारहित है। यह शरीर मल और पीब का ढर है और तुच्छ है। यह शरीर रिक्त है और नित्य लेप और मालिश करने के पश्चात् भी टूटने और नष्ट होने के स्वभाव का है।[७] यह शरीर चार सौ चार रोगो से ग्रस्त है।[८] यह शरीर पुराने कुए की तरह है और सदा जीणता से परास्त है। इस शरीर का अस्त मृत्यु मे होता है और इसकी स्थिति अनिश्चित है। यह शरीर स्कन्धो, धातुओ और आयतनों मे जकडा हुआ है जो क्रमश हत्यारो विषैले सर्पों और

---

७ तुलनीय **अंगुत्तरनिकाय**, खण्ड ४, पृष्ठ ३२—
"गण्डो ति खो भिक्खवे इमस्सेत चातुमहाभूतिकस्स कायस्स
अधिवचन मातापेत्तिकसम्भवस्स ओदनकुम्मासूपचयस्स
अनिच्चुच्छादनपरिमद्दनभेदनविद्धसनधम्मस्स।"

महावस्तु, खण्ड २, पृष्ठ २६९—
"मातापितृसम्भव कायो ओदनकुल्माषोपचयो।
उच्छादनपरिमर्दनस्वप्नभेदन विकिरणविध्वसनधम

८ चार-सौ-सार प्रकार के रोगों के स्पष्टीकरण के लिये देखिये
बोधिचर्यावतार, २ ५५ तथा **पञ्जिका** —
"इत्वर -याधिभीतोऽपि वैद्यवाक्य न लघयेत्।
किमु -याधिशतैर्ग्रस्तश्चतुर्भिश्चतुरुत्तरै॥"

जनशून्य ग्रामो के समान हैं।[१] इसलिये आपको इस शरीर से निर्वेद (उदासीन) होना चाहिये। आपको इसकी आशा छोडकर तथागतकाय के प्रति अधिमुक्ति का विकास करना चाहिए।

"मित्रो, तथागतकाय ज्ञान से उत्पन्न धर्मकाय है। तथागतकाय पुण्यों से उत्पन्न, दान से उत्पन्न, शील से उत्पन्न, समाधि से उत्पन्न, प्रज्ञा से उत्पन्न, विमुक्ति से उत्पन्न हुई है।[१] यह मत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा से उत्पन्न है। यह दान, दम और सयम से उत्पन्न है। यह दशकुशल कर्मपथ की उपज है। यह क्षान्ति और सौरत्य (सज्जनता) की उपज है। यह स्थिर वीर्य द्वारा रोपे गये कुशलमूलो की उपज है। यह ध्यान, विमोक्ष, समाधि और समापत्तियो की उपज है। यह पाण्डित्य, प्रज्ञा और उपाय कौशल्य की उपज है। यह सैतीस बोधिपाक्षिक धर्मों की उपज है। यह शमथ और विपश्यना की उपज है। यह दश बलो की अठारह आवेणिक बुद्ध धर्मों की और सभी पारमिताओ की उपज है। यह छ अभिज्ञाओ और तीन विद्याओ की उपज है। यह सभी अकुशल धर्मों के प्रहाण (विनाश) से और सभी कुशल धर्मों के सग्रह से उत्पन्न हुई है। यह सत्य से उत्पन्न हुई है। यह सम्यक्त्व से और अप्रमाद से उत्पन्न हुई है।

"मित्रो, तथागतकाय असख्य पुण्यकर्मों की उपज है। अतएव आपको इस प्रकार की काय के प्रति अधिमुक्ति का विकास करना चाहिये, और सभी प्राणियो के

---

१ तुलनीय **प्रथम भावनाक्रम** पृष्ठ २२२—

" स्कन्धेषु मायावत् प्रत्यवेक्षणा धातुष्वाशीविषवत् प्रत्यवेक्षणा आयतनेषु शून्यग्रामवत् प्रत्यवेक्षणा रूपस्य फेनपिण्डवत् प्रत्यवेक्षणा वेदनाया बुद्बुदवत् सज्ञाया मरीचिवत् सस्काराणा कदलीवत् विज्ञानस्य मायावत् प्रत्यवेक्षणा।"

द्र **सयुत्तनिकाय**, खण्ड ३, पृष्ठ १५६–१५९ (**आसीविसोपमसुत्त**)

१ तथागतकाय धर्मकाय, धर्मधातु, निर्वाण सम्यक्-सम्बुद्ध, प्रज्ञापारमिता, अद्वयपरमार्थ तथा महाबोधि समानार्थक हैं।

द्र० **वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्र** की भूमिका (पूर्व उल्लिखित ग्रन्थ)। पालि निकायों में तथागत को ब्राणभूत, धम्मभूत, ब्रह्मभूत, ब्रह्मकाय व धम्मकाय कहा गया है।

शील समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति एव विमुक्तिज्ञानदर्शन को धम्मक्खन्ध, लोकोत्तरधर्मस्कन्ध, अनास्रवस्कन्ध, एव असमसमस्कन्ध कहा जाता है।

देखिये **दीघनिकाय**, खण्ड २, पृष्ठ ९५ **महाव्युत्पत्ति**, १०४–१०८ **धर्मसग्रह**, २३ **रत्नकूटसूत्र** के अनुसार ये धर्म निर्वाण के सूचक हैं (**प्रसन्नपदा**, पृ० १६)

क्लेश रूपी रोगो का नाश करने के लिये आप लोगो को अनुत्तर सम्यक्सम्बोधि का विचार विकसित करना चाहिये ।'[११]

इस प्रकार जब लिच्छवि विमलकीर्ति ने रोग के विषय मे पूछने के लिए आये हुए उन लोगो को धम का उपदेश दिया तो अनेको शतसहस्र प्राणिया मे अनुत्तर सम्यक सम्बोधि का चित्त उत्प न हुआ ।

द्वितीय परिवर्त समाप्त ।

---

११ **तृतीयभावनाक्रम**, पृ १३—
'आर्यविमलकीर्तिनिर्देशे चोक्तम । शतपुण्यनिर्जाता सवकुशलधमनिर्जाता अप्रमाण कुशमूलकमनिर्जाता कायास्तथागतस्येति विस्तर ।"
तथागतोत्पत्तिसम्भवसूत्र (**तृतीयभावनाक्रम**, पृ० १३) का कथन भी द्रष्टव्य है—
"समुदागतैस्तावद् भो जिनपुत्रा अप्रमेयशतसहस्रदशकारणैस्तथागता समुदागच्छन्ति । कतमै दशभिर यदुत अप्रमेयपुण्यज्ञानसम्भारात्तृप्तिसमुदागमकारणेनेति विस्तर ।"

३ श्रावकों और बोधिसत्त्वों को भेजने की समस्या[1]

(क) श्रावक विमलकीर्ति के पास नहीं जाना चाहते हैं।

तब लिच्छवि विमलकीर्ति ने सोचा—'मैं रुग्ण हूँ और शय्या पर पड़ा हुआ दु खित हू, फिर भी तथागत अर्हत् सम्यक सम्बुद्ध ने मेरे बारे मे नही सोचा है मुझ पर अनुकम्पा नही की है और मेरे रोग के विषय म पूछने के लिए किसी को भी नही भेजा है।'

१ शारिपुत्र

भगवान् ने लिच्छवि विमलकीर्ति के मन मे उत्प न इस प्रकार के संकल्प को जानकर आयुष्मान शारिपुत्र से कहा—'शारिपुत्र लिच्छवि विमलकीर्ति के रोग के बारे मे पूछने के लिए जाओ।

ऐसा कहे जाने पर आयुष्मान शारिपुत्र ने भगवान् से कहा,—"भगवन मैं लिच्छवि विमलकीर्ति के रोग के बारे मे पूछने क लिए जाने को उत्साहित नही हूँ। क्योंकि भगवन् मुझे स्मरण है कि एक दिन जब म एक वृक्ष के मूल मे बठा हुआ ध्यानरत था तब लिच्छवि विमलकीर्ति भी उस वृक्ष के नीचे आ पहुचा और उसने मुझसे कहा, 'भद त शारि पुत्र जिस प्रकार आप ध्यानरत हैं उस प्रकार ध्यान मे रत नही होना चाहिये। आपको इस प्रकार से ध्यानरत होना चाहिये जिससे कि सम्पूर्ण त्रिधातुक विश्व (तीनो लोको) में कही भी शरीर और चित्त प्रकट नही होते। आपको इस तरह ध्यानरत होना चाहिए

---

१ **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र** के चीनी अनुवाद में इस परिवत को दो अध्यायों में विभक्त किया गया है। हमारा हि दी अनुवाद सूत्र के ति बती अनुवाद व सस्कृत पुनरुद्धार पर आधारित है और इस अनुवाद में यह एक लम्बा परिवर्त है। पाठकों की सुविधा और विषय वस्तु की दृष्टि से हमने इस परिवत को दो भागो में रखा है। (क) भाग में महाश्रावकों व बोधिसत्त्व विमलकीर्ति के बीच हुई धर्म-वार्ताओं का वर्णन है और (ख) भाग में गृहस्थ बोधिसत्त्व विमलकीर्ति तथा अ य बोधिस वों के मध्य धार्मिक प्रश्नोत्तर हैं।

२ त्रिधातु—१ कामधातु (कामावचर, कामलोक), २ रूपधातु (रूपावचर रूपलोक) तथा ३ अरूपधातु (अरूपावचर, अरूपलोक)।

जिससे कि निरोध की अवस्था से उठे बिना भी आप सब प्रकार का सामान्य व्यवहार (इर्यापथ) प्रकट कर सकें। आपको इस प्रकार ध्यान करना चाहिये जिससे अपनी लोकोत्तर उपलब्धि के लक्षणो को छोडे बिना भी सामान्य व्यक्तियो (पृथग्जनो) के लक्षण को भी प्रकट कर सकें। आपको इस प्रकार ध्यान लगाना चाहिये जिससे कि आपका चित्त न अध्यात्म (भीतर) मे स्थित रहे और न बाह्य वस्तुओ मे विचरण करने लगे। आपको इस प्रकार ध्यान लगाना चाहिये जिससे कि सारे मत मतान्तरो (दृष्टियो) से अविचलित रहते हुए भी सतीस बोधिपाक्षिक धर्मों[3] का अभ्यास हो। आपको इस प्रकार ध्यान लगाना चाहिये जिससे कि ससार क्षेत्र के क्लेशो का प्रहाण किये बिना भी आप निर्वाण और मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। भदन्त शारिपुत्र इस प्रकार जो ध्यानरत रहते हैं उनको भगवान् ध्यानरत कहते हैं।"

"भगवन्, उसके इस प्रकार के धर्मोपदेश को सुनकर, उसके प्रतिवाद का विसर्जन करने मे असमर्थ होने से मैं चुप हो गया था। यही कारण है कि मैं उस सत्पुरुष के रोग के बारे मे पूछने के लिये जाने को उत्साहित नहीं हूँ।"

२ महामौद्गल्यायन

तब भगवान् ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायन[4] से कहा— "मौद्गल्यायन लिच्छवि विमलकीर्ति के रोग के बारे मे पूछने के लिये जाओ।'

मौद्गल्यायन ने उत्तर दिया— 'भगवन, उस सत्पुरुष के रोग के बारे में पूछने के लिये जाने को मैं उत्साहित नही हूँ। क्योकि, भगवन्, मुझे स्मरण है एक दिन मैं महानगरी वैशाली की एक गली के मोड पर गृहपतियो को धर्म का उपदेश दे रहा था। वहाँ पर लिच्छवि विमलकीर्ति आ पहुँचा और उसने मुझसे कहा—भदन्त मौद्गल्यायन, जिस प्रकार आप श्वेतवस्त्र पहने हुये गृहपतियो को धर्मोपदेश करते हैं उस प्रकार धर्म का

---

३ देखिये प्रथम परिवर्त पादटिप्पणी २५

४ यह ध्यान देने योग्य और दिलचस्प बात है कि भगवान् शाक्यमुनि के सर्वश्रेष्ठ कोटि के महाश्रावकों—महास्थविर शारिपुत्र, महास्थविर महामौद्गल्यायन, महास्थविर महाकाश्यप, महास्थविर सुभूति महास्थविर पूर्णमैत्रायणीपुत्र, महास्थविर महाकात्यायन, महास्थविर अनिरुद्ध, महास्थविर उपालि, आयुष्मान राहुल, भदन्त आनन्द की पूरी श्रेणी को गृहस्थ (उपासक) विमलकीर्ति के बोधिसत्त्व स्वरूप का सामना करने में असमर्थ दिखाया गया है। श्रावकयान और बोधिसत्त्वयान के पारस्परिक सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक अन्तरों को स्पष्ट करने की शक्तिशाली पृष्ठभूमि इस परिवर्त में दिखाई देती है।

उपदेश नही हो सकता। भद त मौद्गल्यायन, धम का उपदेश धम (तत्व) के अनुसार होना चाहिये।

"भद त मौद्गल्यायन, धम सत्वरहित (नि सत्व) है क्योकि यह सत्त्व रूपी धूल से मुक्त है। यह निरात्मक (आत्मारहित) है क्योकि यह राग रूपी मल से मुक्त है। यह निर्जीव है क्योकि यह उत्पत्ति और च्युति (विनाश) से मुक्त है।[५] जो अनास्रव हैं वह पूर्वा त और अपरा त रहित है (अथवा जो निष्पुद्गल है वह भूतकाल और भविष्य काल की गतियो से रहित है)। धम का लक्षण शान्ति और उपशम है, क्योकि वह राग रहित है। वह अनालम्बनगामी (बाह्याधार रहित) है, और शब्दाक्षर से रहित है। वह अनभिलाप्य[६] (चर्चा का विषय नही) है क्योकि वह सभी प्रकार की मानसिक तरगों से रहित है। धम सव यापी (सर्वानुगत) है, क्योकि वह आकाश के समान असीमित है। वह बिना रग का, बिना चिह्न का और बिना आकार का है क्योकि वह सभी अवस्थाओ और प्रक्रियाओ से रहित है। उसमे मम (अपनापन) का अभाव है, क्योंकि वह ममकार (ममता के भाव से) रहित है। वह अविज्ञप्तिक (सीमित ज्ञान से रहित) है क्योकि वह चित्त मन, और विज्ञान से रहित है। वह अतुल्य है, क्योंकि उसका प्रतिपक्ष नही है। वह हेतु प्रतिकूल है अर्थात् कार्य कारण की सीमा का अतिक्रमण करता है, क्योकि वह प्रत्ययो (कारणो) की व्यवस्था से मुक्त है।

'वह सभी धर्मों मे समान रूप से विद्यमान है, क्योकि धमधातु मे सभी (धम) एकत्रित हैं। वह किसी का भी अनुगमन न करने के कारण तथता के अनुकूल है। वह अत्य त ही अकम्प्य (अस्थिरता रहित) है अत वह भूतकोटि मे स्थित है। वह अनाकम्प्य (स्थिर) है क्योंकि वह इ द्रियो के छ विषयो पर आश्रित नही है।[७] वह जहाँ तहाँ

---

५ तुल० **वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता**, पृ ३८—

'निरात्मान सर्वधर्मा नि सत्वा निर्जीवा निष्पुद्गला सर्वधर्मा ।" **विमलकीर्तिनिर्देश** के चीनी अनुवाद में 'अनास्रव' के स्थान पर निष्पुद्गल' शब्द है जो अधिक उपयुक्त है।

६ द्र० **महावग्ग**, पृ० ६— "अधिगतो खो म्याय धम्मो गम्भीरो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो।" इस महावाक्य के सस्कृत सस्करण देखिये **ललितविस्तर** पृ० २८९ **प्रसन्नपदा** पृ० २१७ **वज्रच्छेदिका**, पृ० ३१— "योऽसौ तथागतेन धर्मोऽभिसम्बुद्धो देशितो वा, अग्राह्य सोऽनभिलप्य।"

७ तुल० **पञ्चविंशतिसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता**, पृ० १६८—

"ऐषा धर्माणान्नोत्पादो न निरोधो ना यथात्व प्रज्ञायते रागक्षयो

आने-जाने (गमनागमन) से मुक्त है क्योंकि वह अप्रतिष्ठित है। वह शून्यता की एकत्रता (समवसरण) है। वह अनिमित्त होने के कारण सुस्फुटित (अच्छी प्रकार प्रकट) है, और अप्रणिहित लक्षणवाला होने के कारण कल्पना और निराकरण से रहित है। वह अपकार रहित और प्रक्षप (विनाश) रहित है क्योंकि वह उत्पाद और व्यय से परे है। वह अनालय है और आँख, कान, नाक, जीभ, काय और मन की सीमा (काय-क्षेत्र) के बाहर (समतिक्रान्त) है। वह न ऊंचा है और न नीचा है। वह अवस्थित और अचल भूत है।[८]

"भदन्त महामौद्गल्यायन सर्वचर्याविगत ऐसे धर्म की देशना किस प्रकार हो सकती है? भदन्त महामौद्गल्यायन, यह 'धर्मदेशना' नाम भी आरोपित वचन मात्र है व्यवहार वचन मात्र है। जो लोग इसे सुनते हैं वे भी केवल आरोपित का श्रवण करते हैं (परमार्थ सत्य का नहीं)। भदन्त मौद्गल्यायन, जहाँ आरोपित वचन नहीं है वहाँ धर्मदेशना नहीं है, श्रवण और ज्ञान भी नहीं है। अर्थात् आरोपित वचनों के बिना न धर्मोपदेशक हो सकता है, न धर्म श्रवण, और न धर्म-ज्ञान। अतएव धर्मदेशना की बात ऐसी है जैसी कि एक मायापुरुष द्वारा अन्य मायापुरुषों को धर्म का उपदेश देने की कथा है, अर्थात् यथार्थ में न तो धर्मोपदेशक है और न धर्म-श्रोता है।[९]

"इसलिये आपको अपने मन में इस बात का ध्यान रखकर धर्म का उपदेश करना चाहिये। आपको प्राणियों की शक्ति-सामर्थ्य (इन्द्रियों) के बारे में कुशल-ज्ञान होना चाहिये। प्रज्ञा चक्षु द्वारा भली प्रकार देखकर महाकरुणा का मूर्तरूप बनकर महायान

दोषक्षयो मोहक्षयश्च। तथता अवितथता अनन्यतथता धर्मता धर्मधातुर्धर्मस्थितिता धर्मनियामता भूतकोटि। इम उच्यन्ते असंस्कृता धर्मा।"

८ द्र० बोधिचर्यावतार-पंजिका, १७५- "सर्वप्रपञ्चविनिर्मुक्त स्वभाव परमार्थसत्यत्वम् अत सर्वोपाधिशून्यत्वात् कथं कयाचित् कल्पनया पठ्येत? कल्पनासमतिक्रान्तस्वरूप च शब्दा नामविषय।"

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० २५३- "न तथागता कुतश्चिदागच्छन्ति वा गच्छन्ति वा। अचलिता हि तथता। या च तथता स तथागत"।

अष्टादशसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० १०६-१०७-"अहो धर्माणा धर्मता न च नामेह कश्चिद्धर्मोऽकोश्यते वा परिभाष्यते वा छिद्यते वा भिद्यते वा हन्यते वा बध्यते वा।"

९ तुल० वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, पृ० ४०- "धर्मदेशना धर्मदेशना इति सुभूते नास्ति स कश्चिद्धर्मो यो धर्मदेशना नामोपलभ्यते।"

के स्वरूप का वणन करते हुये, बुद्ध के प्रति कृतज्ञता प्रकट करत हुये, विशुद्ध आशय द्वारा धम विषयक वाक्यो का विशिष्ट ज्ञान रखते हुये, त्रिरत्न की वश-परम्परा को अविच्छि न रखते हुये, आपको धर्मोपदेश करना चाहिये।"

"भगवन, विमलकीर्ति के इस प्रकार धर्मोपदेश करने के कारण उस गृहपति-परिषद् में से आठ सौ गृहपतियो ने अनुत्तर सम्यक-सम्बोधि का चित्त उत्पन्न किया। मैं तो, भगवन्, प्रतिभान रहित (वाक्य हीन) होकर रह गया। इसी कारण मे उस सत्पुरुष के रोग के बारे में प्रश्न पूछने के लिये जाने को उत्साहित नहीं हूँ।'

३ महाकाश्यप

तब भगवान् ने आयुष्मान् महाकाश्यप से कहा—'काश्यप लिच्छवि विमलकीर्ति के रोग के बारे मे पूछने के लिये जाओ।' महाकाश्यप ने भी कहा— भगवन्, मैं उस सत्पुरुष के रोग के बारे मे पूछने के लिये जाने को उत्साहित नही हूँ। क्योकि, भगवन्, मुझे स्मरण है, एक दिन मैं दरिद्रो की वीथिका मे पिण्डपात (भोजन ग्रहण) के लिये रुका हुआ था। लिच्छवि विमलकीर्ति ने वहाँ आकर मुझसे इस प्रकार कहा— भदन्त महाकाश्यप इस प्रकार धनी लोगो के घरो को छोडकर दरिद्र लोगो के घरों मे जाना पक्षपातपूण मत्री है।'

"अतएव महाकाश्यप धम-समताकी स्थिति करणीय है। आपको सभी प्रकार के प्राणियो का सवकाल में विचार करके भिक्षा (भोजन सामग्री) मांगनी चाहिये। आपको निराहार रूपी आहार खोजना चाहिये (अर्थात् परमाथ रूपी आहार की पर्येषणा करनी चाहिये)। आपको दूसरों के पिण्डग्राह को दूर करने के लिये पिण्डपात प्राप्त करने की चर्या का पालन करना चाहिये। अर्थात् आपके भिक्षाटन का उद्देश्य लोगों मे प्रचलित भौतिकवादी दृष्टि (पिण्डग्राह = वस्तुआ को सत समझकर उनमे ममत्व की भावना) का निराकरण करना होना चाहिए। भिक्षाटन के लिये आपको ग्राम मे ऐसे प्रवेश करना चाहिये जसे कि शून्य ग्राम मे प्रवेश करते है। ग्राम की शून्यता को ध्यान में रखकर ग्राम मे व्यवहार करना चाहिए।[१] तथापि पुरुषो और स्त्रियों के परिपाचन (बोधि प्राप्ति की

---

१० तुल० वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता पृ० ४३- "सचेत् भगवन् लोकधातुरभविष्यत् स एव पिण्डग्राहोऽभविष्यत्। यश्चैव पिण्डग्राहस्तथागतेन भाषित अग्राह स तथागतेन भाषित।"

दान देते व लेते समय बोधिसत्व का क्या दृष्टिकोण होना चाहिये, इस विषय पर देखिये बोधिचर्यावतार ९ १६८ तथा पञ्जिका पृ २८१। देय, दायक और प्रतिग्राहक इन तीनों की शून्यता भावना के साथ त्रिकोटिपरिशुद्ध पुण्य-सभार का उपचय करणीय है।

दिशा मे विकास) के लिये ग्राम मे प्रवेश करना चाहिये। आपको इस प्रकार घरो के भीतर जाना चाहिये जसे कि बुदध के परिवार मे प्रवेश करते हैं।

'कुछ भी न लेकर पिण्डपात स्वीकार करना चाहिये। ज मा ध की तरह रूपो (साकार वस्तुओ) को देखना चाहिये। श दो को ऐसे सुनना चाहिये मानो कि वह प्रतिध्वनियाँ मात्र हो। ग धो को वायु के समान सूधना चाहिये। अविज्ञप्तिपूवक रसो का अनुभव करना चाहिये। अर्थात रसो का अनुभव करते समय उनके बारे मे ज्ञान चर्चा नही करनी चाहिये। स्पृष्ट य वस्तुओ का स्पश करते समय ज्ञान के साथ स्पश के अभाव की स्मृति होनी चाहिये। मायापुरुष (काल्पनिक पुरुष) के विज्ञान से धर्मों को जानना चाहिए। जो न स्वभाव है और न पर भाव वह जलता नही है। जो जलता नही है, वह बुझता नही है।

' स्थविर महाकाश्यप, यदि आप मिथ्या माग के आठ अगो (अष्टाग माग के ठीक प्रतिकूल आठ अगो) का यतिक्रमण किये बिना ही अष्टविध विमोक्ष[11] (आठ प्रकार के विमोक्षो की समापत्ति) मे प्रवेश कर सकते हैं, मिथ्यात्व की समता द्वारा सम्यक्त्व की समता मे प्रवेश कर सकते हैं और यदि आप एक पिण्डपात मे से भी सारे प्राणियो को दे सकते हैं सभी बुद्धो को और सभी अहतो को दे सकते है, तो आप स्वय भी भोजन खा सकते हैं। इस प्रकार सब को देने के पश्चात् जब आप स्वय खाए तो ऐसे खाएं जिससे आप न क्लेशो से सम्प्रयुक्त हो और न क्लेशो से विप्रमुक्त हो, न समाधि मे

पञ्चविंशतिसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता (पृ० १८) में भगवान् शारिपुत्र से कहते हैं—'इह शारिपुत्र बोधिसत्त्वेन महासत्त्वन प्रज्ञापारमिताया स्थित्वा ऽस्थानयोगेन दानपरमिता परिपूरयितव्या अपरित्यागेन देयदायकप्रतिग्राहकानुपलब्धितामुपादाय।"

११ अष्टा विमोक्षा (अट्ठ विमोक्खा) की सूची बहुत्र मिलती है। द्र० दीघनिकाय, खण्ड ३, पृ० २०२ धमसग्रह ५९ (वैद्य के सस्करण में सात ही गिनाए गये हैं) महाव्युत्पत्ति १५११ १५१८ पञ्चविंशतिसाहस्रिका (पृ १६६–१६७) की सूची इस प्रकार है। १ रूपी रूपाणि पश्यति २ अध्यात्ममरूपसंज्ञी बहिर्धा रूपाणि पश्यति ३ शू यतायामधिमुक्तो भवति ४ सवशो रूपसंज्ञाना समतिक्रमात् प्रतिघसंज्ञानामस्तगमात् नानात्वसंज्ञानाममनसिकारात् अन तमाकाशमित्याकाशन त्यातनमुपसपद्य विहरति ५ सवश आकाशान त्यायतनसमतिक्रमादनन्त विज्ञानानमिति विज्ञाननान त्यायतनमुपसपद्य विहरति, ६ सर्वशो विज्ञानन्त्यातनसमतिक्रमात् नास्ति किञ्चिदित्याकिञ्च यायतनमुपसपद्य विहरति, ७ सवश आकिञ्च यायतनसमतिक्रमात् नैव संज्ञानासंज्ञायतनमुपसपद्य विहरति ८ सवशो नैव संज्ञानासंज्ञायतनसमतिक्रमात् संज्ञावदयितनिरोधमुपसपद्य विहरति। ये आठ विमोक्ष ध्यानरत बौद्ध योगी को निर्वाण प्राप्ति की दिशा में उत्तरोत्तर होने वाली उपलब्धियों के सूचक हैं।

समाहित हो और न समाधि से उठें, न ससार में प्रतिष्ठित हो और न निर्वाण मे प्रति ष्ठित हो ।[12]

"भद त, जो कोई आपको भोजन दान देते हैं, उनको न महत्फल होता हैं, न अल्पफल न मध्यफल और न विशेष फल होता है। वे बुद्ध प्रवृत्ति के साथ जाते है, न कि श्रावक गति के साथ। स्थविर महाकाश्यप, इस प्रकार पिण्डपात करके आप अमोघराष्ट्र पिण्ड[13] का भोजन करेंगे, अर्थात् यथाथ में पिण्डपात करेंगे।'

"भगवन् इस प्रकार दिए गये धर्मोपदेश को सुनकर मैं आश्चयचकित हो गया सभी बोधिसत्वो को प्रणाम। यदि एक गृहस्थी (बोधिसत्व) भी इस प्रकार से प्रतिभान सम्पन्न है, तो यहाँ कौन ऐसा व्यक्ति है जो अनुत्तर सम्यक सम्बोधि के लिये चित्तोत्पाद नहीं करेगा? ऐसा सोचकर, उस समय से महायान को न जानने वाले किसी भी प्राणी को मैं श्रावकयान व प्रत्येकबुद्धयान की ओर नही ले जाता हूँ। भगवन् इसी कारण मैं उस सत्पुरुष के रोग के बारे मे पूछने के लिये जाने को उत्साहित नही हूँ।"

४ सुभूति

तब भगवान् ने आयुष्मान सुभूति से कहा—"सुभूति, लिच्छवि विमलकीर्ति के रोग के बारे मे पूछने के लिए जाओ।"

सुभूति ने भी उत्तर दिया- "भगवन् मैं उस सत्पुरुष के रोग के बारे मे पूछने के लिये जाने को उत्साहित नही हूँ। क्योकि, भगवन् मुझे स्मरण है, एक दिन मैं महा नगरी वैशाली मे लिच्छवि विमलकीर्ति के घर पर पिण्डपात के लिये गया था। उसने मेरा भिक्षा पात्र लिया और उसको प्रणीत (उत्तम) आहार से भर कर मुझसे कहा—

भदन्त सुभूति, यदि आप इस आमिष (भोज्य पदाथ) की समता से सवधर्म समता समझते हैं और सवधमसमता से सभी बुद्ध गुणों की समता (सवबुद्धधमस

---

१२ द्र० धर्मसंगीतिसूत्र (शिक्षासमुच्चय, पृ० १७१)—

"बुद्धा भगवन्तो ससारनिर्वाणविमुक्ता ।"

मूलमध्यमककारिका, २५ २

निर्वाणस्य च या कोटि कोटि ससरणस्य च।
न तयोरन्तर किंचित्सुसूक्ष्ममपि विद्यत॥"

प्रसन्नपदा, पृ० २२८ - "निर्वाण न कस्यचित् प्रहाण नापि कस्यचिन्निरोध इति विज्ञेयम्। ततश्च निरवशेषकल्पनाक्षयरूपमेव निर्वाणम्।"

१३ अमोघराष्ट्रपिण्ड अर्थात् धर्मधातु (निर्वाण रूपी) भोजन।

मता) समझते हैं तो इस भोजन को खाइये[१४]। भदन्त सुभूति इस भोजन को खाइये यदि आप लोभ द्वेष और मोह का परित्याग किये बिना ही उनके साथ अप्रतिष्ठित रह सकते हैं,[१५] यदि आप सत्काय दृष्टि को हिलाये (उच्चालित किये) बिना एकायन[१६] मार्ग पर चल सकते हैं। यदि आप अविद्या और भवतृष्णा को समाप्त किये बिना भी विद्या और मुक्ति[१७] प्राप्त कर सकते हैं, यदि पाँच आनन्तर्य कोटि के अपराध[१८] और आप की मुक्ति समान है, यदि आप न विमुक्त हैं और न बन्धन मे हैं, यदि आपने चार आर्य सत्यो को नही देखा है और फिर भी आप उस जैसे नही हैं जिसने सत्य नहीं देखा है, यदि

---

१४ द्र० **अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता** पृ० २५३ – "न अन्यत्र एभ्यो धर्मेभ्यस्तथागत । या च एषामेव धर्माणां तथता या च सर्वधर्मतथता, या च तथागततथता एकैवैषा तथता।"

१५ स्थविरवादी श्रावकयानी कुछ ग्रन्थों में तीन 'अकुशल मूलों' —लोभ, द्वेष, मोह—के सर्वथा विनाश द्वारा निर्वाण लाभ की सम्भावना मानी गई है।

१६ एकायन का अर्थ है एकमात्र मार्ग। यह मार्ग नैरात्म्य का है जो सत्कायदृष्टि का प्रतिपक्ष है। **सतिपट्ठानसुत्त** में स्मृत्युपस्थानचतुष्टय के मार्ग को "एकायनो मग्गो" कहा गया है। **सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र** (पृ० २८, ३१) में बुद्धयान को एकयान कहा गया है।

१७ विद्या एवं मुक्ति निर्वाण के अधिवचन हैं। निर्वाण की कुछ संक्षिप्त झाँकियाँ इस प्रकार हैं—

सुत्तनिपात, गाथा २०–"सब्बसोक अतिक्कन्तो असोको होति निब्बुतो।"

संयुत्तनिकाय, खण्ड २, पृ० २३१–"निब्बान सब्बदुक्खप्पमोचन।"

गान्धारीधम्मपद, गाथा १६२–"निवण परमो सुह।"

धम्मपद, गाथा २०३–२०४ 'निब्बान परमं सुख।"

इतिवुत्तक (**खुद्दकनिकाय**, खण्ड १, पृ० २६४)–"परमा सन्ति निब्बान अकुतोभय।"

थेरीगाथा, ४७८–"निब्बान सुखा परमं नत्थि।"

धम्मपद, गाथा २३–"निब्बान योगक्खेम अनुत्तर।"

सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० ९३–"क्लेशबन्धनाद्विमुक्त प्रमुच्यते षड्गतिकात् त्रैधातुकात्।" **वही** पृ० ९१– सर्वधर्मसमतावबोधाद्धि निर्वाणम्। तच्चैकम् नद्वे न त्रीणि।"

रत्नावली (**प्रसन्नपदा**, पृ० २२९)–"भावाभावपरामर्शक्षयो निर्वाणमुच्यते।"

मूलमध्यमककारिका, १८ ५–"कर्मक्लेशक्षयान्मोक्ष।"

चतु शतक, १२ २३–"शून्यतामेव निर्वाणम्।"

प्रमाणवार्तिक, १ २५३–"मुक्तिस्तु शून्यतादृष्टेस्तदर्था शेष भावना।"

१८ पाँच आनन्तर्य (जघन्य) अपराध–१ मातृघात, २ पितृघात ३ अर्हद्घात, ४ संघभेद, ५ तथागतस्यान्तिके दुष्टचित्तरुधिरोत्पादन।

आपने फल (निर्वाण) नही प्राप्त किया है और फिर भी आप पृथग्जन नही हैं यदि आप मे साधारण व्यक्ति (पृथग्जन) के गुण हैं और फिर भी आप साधारण व्यक्ति नही हैं, यदि आप न स त (पवित्र आय) हैं और न असन्त (अपवित्र, अनाय), यदि आप सवधम प्रतिसयुक्त होते हुये भी सवधम सज्ञा से विप्रमुक्त हैं[19] तो इस भोजन को खाइये।

"इस भोजन को खाइये, भद त सुभूति, यदि बुद्ध (शास्ता) को देखे बिना, धर्म को सुने बिना और सघ की उपासना किये बिना आप ये जो छ (अ य तीर्थिक आचाय) शास्ता हैं यथा—पूरण काश्यप मस्करी गोशालिपुत्र सजयी वराडिपुत्र, ककुद कात्यायन अजित केशकम्बल तथा निर्ग्र थ ज्ञातिपुत्र[20] —उ हें अपना गुरु बनाकर उनके शासन मे प्रव्रजित हो सकते हैं।

'जिस माग से यह छ शास्तागण जाते हैं यदि उसी माग से जाने वाले स त (आय) सुभूति भी हैं, सव प्रकार के मतो (मिथ्यादृष्टियो) को अपना कर यदि आप न अन्त और न मध्य पर पहुँचते हैं यदि अष्ट अक्षणो[21] से ग्रस्त होने पर आप (शुभकर) क्षण नही प्राप्त करते हैं यदि क्लेशो से परिपूर्ण होकर आप विशुद्धि की प्राप्ति नहीं करते हैं यदि सभी प्राणियो की शुद्धि (अरण) भदन्त (सुभूति) की शुद्धि (अरण, क्लेश रहित स्थिति) है,[22] यदि आप को दान देने वाले (उस दान से) विशुद्ध नहीं होते यदि वे लोग जो आपको भोजन दान देते हैं और फिर भी दुर्गतियों मे पडते हैं यदि आप सभी मारों[23] के साथ रहते है और सभी क्लेशो[24] के मित्र हो जाते हैं, यदि जो क्लेश का स्वभाव है वही भदन्त (सुभूति) का स्वभाव है यदि सभी प्राणियो के प्रति आपका घातकचित्त है (अर्थात् आप सभी प्राणियो का हनन करना चाहते हैं) यदि आप सभी बुद्धो से घृणा करते हैं यदि आप बुद्ध की सभी शिक्षाओ की बुराई करते हैं

---

१९ चार आय सत्य—१ दु ख, २ दु खसमुदय ३ दु खनिरोध ४ दु खनिरोध मार्ग।

२० ये छ तीर्थिकाचार्य शाक्यमुनि बुद्ध के समकालीन थे। द्र० दीघनिकाय, सामञ्ञफल सुत्त।

२१ देखिये ऊपर प्रथम परिवर्त, पाद टिप्पणी २६।

२२ प्राचीन ग्रन्थों में महास्थविर सुभूति को "अरणविहारिन अग्गो" तथा "दक्खिणेय्यान अग्गो" कहा गया है।

२३ मार चार प्रकार के होते हैं—१ स्क धमार, २ क्लेशमार, ३ देवपुत्रमार, ४ मृत्युमार।

२४ क्लेश छ ह—१ राग २ प्रतिघ ३ मान ४ अविद्या ५ कुदृष्टि ६ विचिकित्सा।

सघ की शरण मे नही जाते हैं और यदि आप कभी भी परिनिर्वाण नही प्राप्त करते हैं तो इस भोजन को खाइये।'[२५]

"भगवन् इस प्रकार कहे जाने पर उसके इस निर्देश को सुनकर, मैं सोचने लगा 'मैं उससे क्या कहूँ क्या कहूँगा ? मुझे क्या करना चाहिये ?' सवत्र अन्धकार देखकर, उस भोजन पात्र को छोडकर, मैं उस घर से बाहर निकलने वाला ही था कि लिच्छवि विमलकीर्ति ने मुझसे यह कहा—

"भद त सुभूति, इन श दो से मत डरिये और इस पात्र को ले जाइये। भदन्त सुभूति, आप क्या समझते हैं यदि तथागत द्वारा कृत्रिम रुप से निर्मित (एक व्यक्ति) आपसे इस प्रकार कहे तो आप भयभीत हो जाएगे ?" मैंने उत्तर दिया "नही, कुलपुत्र।" तब उसने मुझसे कहा—' भद त सुभूति सभी धर्मों का स्वभाव माया से निर्मित वस्तुओ की तरह है, अतएव भयभीत मत हो जाइये। क्योकि इन सभी बचनो का स्वभाव वसा ही (मायावी) है।[२६] इसलिये ज्ञानी जन शब्दो व अक्षरो से सग (आसक्ति) नही रखते हैं और उनसे त्रस्त (भयभीत) नही होते हैं। क्योकि, वे सभी अक्षर (वचन, भाषा) अनक्षर (अवचन, अभाषा) हैं। इन सभी की सत्ता केवल विमोक्ष में है सभी धर्मों का लक्षण विमोक्ष है वे विमोक्षलक्षणा हैं।[२७]

---

२५ बौद्ध तन्त्रों व बौद्ध सिद्धों की रचनाओं में भी इसी प्रकार का विरोधाभास मिलता है। चीन व जापान में चान (ध्यान) अथवा जेन सम्प्रदाय के बौद्धाचार्यों की रचनाओं में में भी इस प्रकार की रहस्यमय विरोधपूर्ण एवं साकेतिक भाषा व पहेलियों का प्रयोग मिलता है। दूसरी ओर मध्यमक आम्नाय के आचार्यों ने और प्रज्ञापारमितासूत्रों ने भी समस्त वाङ्व्यापार को निरर्थक प्रपच घोषित किया है।

२६ तुलनीय **अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता**, पृ० २०–"मायानिर्मित सदृशा हि देवपुत्रा मम धार्मश्रवणिका द्रष्ट या। तत्कस्य हेतो ? तथा हि ते नैव श्रोष्यन्ति न च साक्षात्करिष्य ति।" "सवधर्मा अपि देवपुत्रा मायोपमा स्वप्नोपमा सम्यक्सम्बुद्धोऽपि मायोपम स्वप्नोपम निर्वाणमपि देवपुत्रा मायोपम स्वप्नोपममिति वदामि किं पुनर य धमम्।" (वही पृ० २०)। यह ध्यान देने योग्य बात है कि उक्त वाक्य स्थविर सुभूति ने देवताओं से कहा है। यही उपदेश हमारे सूत्र में विमलकीर्ति द्वारा स्थविर सुभूति को दिया गया है।

२७ **सत्यद्वयावतारसूत्र (प्रसन्नपदा,** पृ० १५९) में कहा गया है—
"यत्समा देवपुत्र परमार्थतस्तथता धर्मधातु अत्य ताजातिश्च तत्समानि परमाथत पञ्चा नन्तर्याणि यत्सम ससार तत्सम परमार्थत संक्लेश।"

"जब (विमलकीर्ति ने) य- उपदेश दिया तो उस समय दो सौ देवताओं ने सभी धर्मों (वस्तुओं) के प्रति पवित्र, निर्मल और विशुद्ध धमचक्षु प्राप्त किया और पाँच सौ देवताओ को आनुलोमिकी (धम) क्षान्ति [२८] का लाभ हुआ। मैं तो वाक्यहीन और उसकी बात का उत्तर देने मे असमथ हो गया था। यही कारण है, भगवन् कि मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय में पूछने के लिये जाने को उत्साहित नहीं हूँ।'

५ पूर्णमैत्रायणीपुत्र

तब भगवान् ने आयुष्मान् पूर्ण मत्रायणीपुत्र से कहा—' पूर्ण लिच्छवि विमलकिर्ति के रोग के विषय मे पूछने के लिए जाओ।

पूण ने भी उत्तर दिया—' भगवन् मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय में पूछने के लिए जाने को उत्साहित नही हूँ। क्योकि भगवन मुझे स्मरण है एक दिन मैं महावन मे एक स्थान पर बठकर कुछ आदिकर्मिक भिक्षओ (नवक भिक्षओ) को धर्मोपदेश कर रहा था। लिच्छवि विमलकीर्ति वहाँ आया और उसने मुझसे कहा— 'भदन्त पूण ध्यान पूवक इन भिक्षुओ के चित्तों को देखिये देखकर के धर्म का उपदेश कीजिये। महान रत्नों से जटित पात्र को अपवित्र (गन्दे) भोजन से मत भरिये। इन भिक्षुओ का अध्याशय कसा है, यह पहले जानिये वडूर्यमणिरत्न को काँच क मनके के समान मत समझिये।[२९]

शिक्षासमुच्चय पृ १३७-"सवधर्मा भगवन् बोधिस्वभावविरहिता बोद्धव्या। अन्तश आनन्तर्याण्यपि बोधि। तत्कस्य हेतो? अप्रकृतिका हि भगवन् बोधि अप्रकृतिकानि च पञ्चानन्तर्याणि।"

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, पृ ३२- 'बुद्धधर्मा इति सुभूते अबुद्धधर्माश्चैव ते तथागतेन भाषिता। तेनोच्यन्ते बुद्धधर्मा इति।

दु ख सुख, सत्-असत् बुद्ध बद्ध ससार निर्वाण, अहत्-पृथग्जन परमार्थ यवहार, पाप पुण्य निरय स्वर्ग मृत्यु अमृत गमन आगमन जीव निर्जीव, विद्या अविद्या इत्यादि ये सभी परस्पर विरुद्ध हैं, परस्पर सापेक्ष ई विकल्पज हैं और नि स्वभाव हैं। अत परस्पर समान हैं।

२८ आनुलोमिकाधमक्षान्ति वस्तुत अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्ति का ही एक पक्ष है। 'धर्मों' की उत्पत्ति नहीं होती है इस तथ्य को समझ कर इसे स्वीकार करना अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्ति है।

२९ विमलकीर्ति बोधिसत्वयान के पथिक एव उपदेशक हैं। वह पूर्ण से यह कहना चाहते हैं कि जो लोग बोधिसत्वयान की शिक्षा के योग्य हैं उनको श्रावकयान की शिक्षा नहीं देनी चाहिये बोधिसत्वयान यदि वैडूर्यमणि है तो श्रावकयान काच की गोली की तरह है।

"भदन्त पूर्ण, सत्त्वों की अध्यात्मिक शक्तियो (इन्द्रियों) का निर्णय किये बिना ही उनकी उन शक्तियो (इन्द्रियो) के एकागी होने का निष्कर्ष मत निकालिये। जो लोग घायल नहीं हैं उनको घायल मत कीजिये, अर्थात् जिनको व्रण नही लगे हैं उनमे व्रण उत्पन्न मत कीजिये। जो महामार्ग पर चलने के इच्छुक हैं उनको वीथिमजरी से जाने के लिये मत कहिये। अर्थात जो सत्त्व बोधिसत्त्वयान के पथिक हैं उनको श्रावकयान पर चलने की शिक्षा नही दीजिये। महासमुद्र के जल से गौ के खुर से बने पद चिह्न (गोखुरपद) को भरने का प्रयत्न मत कीजिये। सुमेरु पर्वत को सरसो के दाने (फल) मे रखने का प्रयत्न मत कीजिये। सूर्य की प्रभा को खद्योत (जुगनू) का उजाला मत समझिये। सम्यक सिंहनाद के प्रशसकों को शृगाल की आवाज मत सुनाइये।[३०]

"भदन्त पूर्ण, ये सभी भिक्षु पहले महायान की चर्या मे लगे हुये थे इन्होंने केवल अपना बोधिचित्त खो दिया है भदन्त पूर्ण, इन्हें श्रावकयान का उपदेश मत दीजिये। श्रावकयान तो अभूत है, श्रावकयान अ ततोगत्वा अप्रामाणिक मार्ग है। प्राणियो की शक्ति सामर्थ्य के क्रम के ज्ञान के विषय मे ये सभी श्रावकगण मेरे विचार से, जन्मान्धो की तरह हैं।

"उस समय लिच्छवि विमलकीर्ति ने ऐसी समाधि मे प्रवेश किया जिससे उन भिक्षुओ को विविध प्रकार के अपने पूर्व-जन्मो का स्मरण हुआ जिनमे उन्होने सम्यक सम्बोधि के लिये पाँच सौ बुद्धों की सेवा करके कुशलमूलावरोपण किया था। ज्योही उनको अपने बोधि चित्त का स्पष्ट ज्ञान हुआ, उन्होने उस सत्पुरुष (विमलकीर्ति) के चरणों मे अपने सिर झुकाकर हाथ जोड दिये (और इस प्रकार प्रणाम किया)। उनको उसने उसी प्रकार धर्मोपदेश किया जिससे वे सभी अनुत्तर सम्यक सम्बोधि की दिशा मे अविनिवर्त

---

३० बोधिसत्त्वयान (महायान, बुद्धयान, एकयान) तथा श्रावकयान व प्रत्येकबुद्धयान (हीनयान) के मध्य जो गम्भीर अन्तर है और बोधिसत्त्वयान की श्रावकयान की तुलना में जो श्रेष्ठता है उसका विस्तृत वर्णन सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र में मिलता है। प्रज्ञापारमितासूत्रों में इस विषय की दार्शनिक व्याख्यायें प्रस्तुत की गई हैं। रत्नकूटसूत्र के काश्यपपरिवर्त नामक भाग में बोधिसत्त्वों एव श्रावकों के सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक मतभेदों की विषद व्याख्या है और श्रावकों की कटु आलोचना भी। परन्तु **विमलकीर्तिनिर्देश** में तो और भी कठोर व चुभने वाली भाषा में श्रावकयान की निन्दा पाई जाती है। यह भी कम तीखी बात नहीं है कि बोधिसत्त्वयान के इस सिद्धान्त की शिक्षा देने वाला आचार्य विमलकीर्ति एक 'उपासक गृहस्थ' है और उसके श्रोता उच्चकोटि के महाश्रावक महास्थविर 'भिक्षु' हैं।

नीय अवस्था (अववर्तिक भूमि पीछे की ओर वापिस न लौटने की स्थिति) पर पहुँच गये। भगवन्, तब मैंने इस प्रकार सोचा—

' ये श्रावकगण, जो दूसरो के चित्त और आशय का ज्ञान नहीं रखते हैं, किसी को भी धम का निर्देश नही कर सकते हैं। क्योकि, श्रावक सभी प्राणियो की इन्द्रियो की श्रेष्ठता और हीनता का ज्ञाता नही होता है, और वह तथागत, अर्हत्, सम्यक सम्बुद्ध की भाँति सदा समाहित भी नही होता है। भगवन् इसी कारण मे उस सत्पुरुष के रोग के विषय में पूछने के लिये जाने को उत्साहित नही हूँ।"

६ महाकात्यायन

तब भगवान् ने आयुष्मान् महाकात्यायन से कहा— कात्यायन, लिच्छवि विमल कीर्ति के रोग के विषय मे पूछने के लिये जाओ।'

कात्यायन ने उत्तर दिया– "भगवन्, मै उस सत्पुरुष के रोग के विषय मे पूछने के लिये जाने को उत्साहित नही हूँ। क्योकि भगवन् मुझे स्मरण है एक दिन भगवान् द्वारा भिक्षुओ को अववादकसूत्र[31] का उपदेश दिये जाने के पश्चात, मैं उस सूत्र के कुछ वचनो की व्याख्या करते हुये अनित्यता दुख, नरात्म्य और शान्ति[32] का अथ स्पष्ट कर रह था। तभी लिच्छवि विमलकीर्ति वहाँ आ पहुँचा और उसने मुझसे कहा—

"भदन्त महाकात्यान, प्रचारसप्रयुक्त (गतिशील), उत्पन्न होने वाली और भग होने वाली धमता की व्याख्या मत करिये। कुछ भी कभी उत्पन्न नही हुआ था, न उत्पन्न होता है और न उत्पन्न होगा। कुछ भी कभी निरुद्ध नहीं हुआ था, न निरुद्ध होता है, और न निरुद्ध होगा।[33] यही अनित्यता का अथ है। पचस्कन्धो की शून्यता के अधिगम

---

३१ 'अववादकसूत्र' सम्भवत 'कात्यायनाववादसूत्र' ही है। इसका प्रसग स्थविर महाकात्यायन से है। आचार्य नागार्जुन ने मूलमध्यमककारिका १५ ७ में और आचाय चन्द्रकीर्ति ने प्रसन्नपदा, पृ० ११७-११८ में 'कात्यायनाववादसूत्र' से बुद्धवचन उद्धत किये हैं।

३२ दुख, अनित्य एव अनात्म ये संस्कृत धर्मों के तीन प्रसिद्ध लक्षण ह। इनको धर्ममुद्राए कहा जाता है। निम्नलिखित बुद्धवचनामृत को धर्मोद्दान(धमका सार) कहा जाता है। वस्तुत यह बुद्धके द्वारा कहे गये महावाक्य हैं—

१ अनित्या सर्वसस्कारा। २ दुखा सवसस्कारा।

३ निरात्मान सवसस्कारा। ४ शान्त निर्वाणम्।

(धर्मसग्रह, ५५ द्र० धम्मपद, गाथा २७७–२७९)।

३३ मूलमध्यमककारिका,१८ ७ – 'अनुत्पन्नानिरुद्धा हि निर्वाणमिव धमता।'

(प्राप्ति) द्वारा अनुपपत्ति (अनुत्पाद) का अवबोध होना ही दुख का अथ है। जो आत्मा और अनात्मा की अभावता है, वही नरात्म्य का अथ है। जो स्व भाव और पर भाव से रहित है, वह ज्वलनशील नही है, जो ज्वलनशील नही है, वह शा त नही होता है। जो अप्रशा त है वही शान्ति का अर्थ है।[३४]

'इस प्रकार दिये गये उपदेश के फलस्वरूप उन भिक्षुओ के चित्त आस्रवो से और उपादान से विमुक्त हो गये। इसी कारण से, भगवन्, मे उस सत्पुरुष के रोग के विषय मे पूछने के लिये जाने को उत्साहित नही हूँ"

७ अनिरुद्ध

तब भगवान् ने आयुष्मान् अनिरुद्ध से कहा— 'अनिरुद्ध लिच्छवि विमलकीर्ति के रोग के विषय मे पूछने के लिए जाओ"।

अनिरुद्ध ने उत्तर दिया—' भगवन्, मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय मे पूछने के लिये जाने को उत्साहित नही हूँ। क्योकि, भगवन् मुझ स्मरण है एक दिन मैं चक्रमण (टहराने के लिये निर्मित ऊचे माग) मे टहल रहा था। जहाँ पर मैं था वहाँ शुभ व्यूह नामक महा ब्रह्मा ने दश सहस्र ब्रह्माओ के साथ आकर के उस स्थान को अपनी किरणो से प्रकाशित करके, मेरे चरणो मे अपना सिर झुकाकर प्रणाम किया और एक और को होकर मुझसे पूछा—भद त अनिरुद्ध, भगवान् ने आपको दिव्यचक्षु से सम्पन्न शिष्यो मे प्रमुख बताया है।[३५] आयुष्मान् अनिरुद्ध का दिव्यचक्षु कितनी दूर तक (कहाँ तक) देखता है? मैंने उत्तर दिया—मित्र, जिस प्रकार (साधारण) आँख वाले पुरुष को हाथ की हथेली मे रखा हुआ आमलक (आवला) दिखाई देता है उसी प्रकार मुझे भगवान् शाक्यमुनि का यह बुद्ध क्षेत्र, यह सम्पूण त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु, दिखाई देता है। जब मैंने ऐसा कहा तभी लिच्छवि विमलकीर्ति उस स्थान पर आ पहुँचा और मेरे चरणो मे अपना सिर झुकाकर अभिव दना करके उसने मुझसे कहा—भद त अनिरुद्ध, आपका दिव्यचक्षु अभिसस्कार लक्षण

---

३४ तुल० तथागतगुह्यसूत्र (प्रस न्नपदा, पृ० १५४)—"तद्यथापि नाम शा तमत अग्निरुपादानतो ज्वलति, अनुपादानत शाम्यति एवमेव आलम्बनतश्चित्तं ज्वलति अनालम्बनत शाम्यति।"

३५ द्र० अगुत्तरनिकाय, खण्ड १ पृ० २३—"अग्गो दिब्बचक्खुकान अनुरुद्धो"। चक्षु पाच प्रकार के होते हैं— १ मासचक्षु, २ दिव्यचक्षु, ३ प्रज्ञाचक्षु, ४ धमचक्षु, ५ बुद्धचक्षु,। दिव्यचक्षु पाच अभिज्ञाओं में से एक अभिज्ञा है।

वाला है अथवा अभिसस्कार लक्षण रहित है ? अर्थात आपका दिव्यचक्षु सस्कृत है अथवा असस्कृत। यदि वह अभिसस्कार सहित है तो वह तीर्थिको (बाह्य आचार्यों) की अभिज्ञा के ही समान है। यदि वह अभिसस्कार रहित है तो वह असस्कृत है, अनभिसस्कार है, और देखने मे असमर्थ है। तब स्थविर आप देखते कसे है ?

'ऐसा कहे जाने पर मैं चुप हो गया। और वह ब्रह्मा भी उस सत्पुरुष से यह उपदेश सुनकर आश्चर्यान्वित हुआ। उसको प्रणाम करके ब्रह्मा ने कहा—लोक म दिव्यचक्षु वाला कौन है। विमलकीर्ति ने उत्तर दिया—लोक मे भगवान् बुद्ध दिव्यचक्षु वाले हैं। वे सभी बुद्धक्षत्रो को समाधि—स्थान (समाहित अवस्था) को छोड बिना और (अभिसस्कार व अनभिसस्कार के) द्वत से प्रभावित हुये बिना देखते हैं।

'इस निर्देश को सुनकर दस हजार स्वजनो सहित ब्रह्मा ने अध्याशय द्वारा प्ररित होकर अनुत्तर सम्यक सम्बोधि का चित्त उत्पादित किया। वे ब्रह्मागण मुझको और उस सत्पुरुष को नमस्कार करके और अभिव दना करके वही अ तर्धान (लुप्त) हो गये। मैं तो प्रतिभानरहित (वाक्यहीन) हो गया। इसी कारण से भगवन्, मै उस सत्पुरुष के रोग के विषय मे पूछने के लिये जाने की उत्साहित नही हू।

८ उपालि

तब भगवान् ने आयुष्मान् उपालि से कहा- उपालि, लिच्छवि विमलकीर्ति के रोग के विषय में पूछने के लिये जाओ।'

उपालि ने उत्तर दिया- 'भगवन, मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय मे पूछने के लिये जाने को उत्साहित नही हूँ। क्योकि, भगवन् मुझे स्मरण है, एक दिन दो भिक्षु कोई अपराध कर बठ थे। लज्जावश भगवान् के सामने उपस्थित न होकर वे दोनों मेरे समीप आकर के मुझसे इस प्रकार बोले—भद त उपालि हम दोनो ने अपराध किया है। (हम आपत्ति ग्रस्त हो गये है) और हमे भगवान् बुद्ध के समीप जाने मे लज्जा आती है। आयुष्मान् उपालि, कृपा करके हम दानो का सशय समाप्त कीजिये और हमको अपराध (आपत्ति) से दूर ले जाइये)।

'भगवन्, जब मैं उन दो भिक्षुओ को धर्मोपदेश कर रहा था उस समय वह लिच्छवि विमलकीर्ति भी वहाँ आ पहुँचा और उसने मुझसे कहा-भद त उपालि, आपको इन दो भिक्षुओ के अपराधो को दृढ़ नही करना चाहिये, और न बढ़ाना ही चाहिये। इन दोनों को अस तुष्ट किये बिना ही इनका पश्चाताप दूर कीजिये। भद त उपालि, अपराध न भीतर

प्रतिष्ठित है, न बाहर, और न भीतर बाहर के मध्य मे वह देखा जा सकता है। क्योकि, भगवान् ने कहा है—चित्त के क्लेशो से प्राणी क्लिष्ट हैं। चित्त की विशुद्धि द्वारा वे विशुद्ध होते हैं।[३६]

"भदन्त उपालि यथार्थ मे चित्त न भीतर (अध्यात्म) है न बाहर है और न इन दोनो के मध्य मे ही है। जसा चित्त है वसा ही अपराध भी है। जसा अपराध है वैसे ही सभी धर्म (वस्तुयें) है, वे तथता का अतिक्रमण नही करते हैं।[३७]

"भदन्त उपालि, यह चित्तस्वभाव, जिससे कि आपका चित्तस्वभाव विमुक्तचित्त होता है, क्या वह किसी चित्तस्वभाव से सकलिष्ट (दूषित) हो जाता है। मैंने उत्तर दिया—नही। विमलकीर्ति ने कहा–भदन्त उपालि सभी प्राणियो के चित्त का स्वभाव भी ऐसा ही है।

"भदन्त उपालि, क्लेश (वस्तुत) सकल्प है। (चित्त का) स्वभाव निर्विकल्प और कल्पनारहित है। सक्लेश (वस्तुत) विपर्यास (भ्रष्ट ज्ञान, मोहयुक्त ज्ञान) है। (चित्त) का स्वभाव विपर्यास रहित है। (वस्तुत) आत्मा का समारोप (आत्मा की धारणा का आरोप) करना ही सक्लेश है। (चित्त का) स्वभाव आत्मा का अभाव (नरात्म्य) है।[३८]

---

३६ रत्नगोत्रविभाग-महायानोत्तरतन्त्रशास्त्र, पृ० ६७ में उद्धत निम्नलिखित वाक्य सम्भवत हमारे सूत्र से लिया गया है—"तत उच्यते। चित्तसक्लेशात् सत्त्वा सक्लिश्यन्ते चित्त य वदानाद्विशुध्यन्त इति।"

तुलनीय अंगुत्तरनिकाय, खण्ड १, पृ १० "पभस्सरमिद भिक्खवे चित्त।
त च खो आगन्तुकेहि उपक्किलेसेहि उपक्किलिट्ठ
त च खो आगन्तुकेहि उपक्किलेसेहि विप्पमुत्त।"

द्र० सयुत्तनिकाय, खण्ड १, पृ० ३७—"चित्तेन नीयति लोको चित्तेन परिकस्सति, चित्तस्स एक धम्मस्स सब्बेव वसमन्वगू॥"

पञ्चविंशति साहस्रिका, पृ १२१–१२२ "चित्त न रागेण सयुक्त न विसयुक्त न द्वेषेण न मोहेन न पर्युत्थानै नावरणै नानुशयै न सयोजनै न दृष्टिकृतै संयुक्त। इय चित्तस्य प्रभास्वरता।"

३७ बोधिचर्यावतार-पंजिका, पृष्ठ १८८—"सवधर्मा शून्या शून्यतालक्षण चित्तम्। सवधर्मा विविक्ता विविक्ततालक्षण चित्त" (भगवद्वचन)।

३८ तुल मूलमध्यमककारिका, १८ ५, २३ १।

भदन्त उपालि सभी धर्म न उत्पन्न होते हैं न नष्ट होते हैं और न प्रतिष्ठित होते हैं। वे माया मेघ, और विद्युत के समान हैं। सभी धर्म अनवस्थित हैं (अस्थित, अनित्य हैं), क्षणमात्र भी नहीं टिकते हैं। सभी धर्म स्वप्न मरीचिनिभा (मरीचि की चमक) और अभूतदर्शन (असत् के दर्शन) के समान है। सभी धर्म पानी में दिखाई देने वाली चन्द्रमा की परछाई की तरह और दर्पण पर दिखाई देने वाली प्रतिमा के समान हैं। वे मन के संकल्पों से उत्पन्न होते हैं।[३९] जो कोई इस प्रकार जानते हैं, उनको विनयधर[४] कहा जाता है, और जो कोई इस प्रकार संयमित होते हैं उनको सुसंयमित (सुदान्त) कहा जाता है।

"तब उन दो भिक्षुओं ने कहा—यह गृहपति सुप्रज्ञावन्त (भली प्रकार प्रज्ञासमन्वागत) है। भदन्त उपालि को भगवान् ने विनयधरों में प्रमुख कहा था, परन्तु वह विमलकीर्ति के समान सुप्रज्ञावन्त नहीं है। उन दोनों से मैंने कहा—भिक्षुओ, आप गृहपति के विषय में इस प्रकार का विचार मत बनाइये। क्योंकि तथागत को छोड़कर कोई भी ऐसा श्रावक अथवा बोधिसत्त्व नहीं है जो प्रतिभान (अविरत भाषण करने की कला) में इसका (विमलकीर्ति का) सामना कर सकता है, अथवा प्रज्ञा के आलोक की दृष्टि से इसके समान है।

"तब दोनों भिक्षुओं ने विचिकित्सा (सन्देह) से मुक्त होकर उसी क्षण अध्याशय द्वारा अनुत्तर-सम्यक सम्बोधि का चित्त उत्पन्न किया और उस सत्पुरुष को अभिवन्दित करके इस प्रकार कहा—सभी प्राणी भी इसी प्रकार प्रतिभान प्राप्त करें। इसी कारण से

---

३९ तुलनीय वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, पृ ६९—

"गिरता हुआ तारा या अन्धकार,
टिमटिमाता दीप या माया-प्रसार,
ओस-बिन्दु या जल-पुञ्ज-व्यापार
स्वप्न-प्रिया या चमकनी बिजली सा,
जानो यह कल्पित-निर्मित संसार॥

लंकावतारसूत्र, २ १६४—

"आकाशं शशशृङ्गं च वन्ध्यायाः पुत्र एव च।
असन्तो ह्यभिलप्यन्ते तथा भावेषु कल्पना॥"

४ स्मरण रहे कि महास्थविर उपालि विनयधरों में शिरोमणि थे। उन्होंने ही प्रथम बौद्ध संगीति में विनयपिटक के मूल सूत्रों को कण्ठस्थ प्रस्तुत किया था।

भगवन् मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय मे पूछने के लिए जाने को उत्साहित नही हू।'

९ राहुल

तब भगवान् ने आयुष्मान् राहुल से कहा— 'राहुल, लिच्छवि विमलकीर्ति के रोग के विषय मे पूछने के लिए जाओ।'

राहुल ने उत्तर दिया—"भगवन्, मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय मे पूछने के लिए जाने को उत्साहित नही हूँ। क्योकि, भगवन मुझे स्मरण है, एकदिन अनेक लिच्छवि युवक जहाँ पर मैं था वहाँ आये और उन्होंने मुझसे कहा—भदन्त राहुल, आप भगवान् के पुत्र हैं। एक चक्रवर्ती राजा का राज्य छोडकर आपने प्रव्रज्या स्वीकार की है। आपने क्या उपलब्ध किया है प्रव्रज्या के गुण और लाभ क्या हैं? जब मैं उन्हें भली प्रकार से प्रव्रज्या के गुणो और लाभो के बारे मे समझा रहा था तो लिच्छवि विमलकीर्ति भी जहा मैं था वहां आ पहुँचा और मुझको प्रणाम करके उसने कहा—भदन्त राहुल, जिस प्रकार आप प्रव्रज्या के गुणो और लाभो का उपदेश कर रहे हैं उस प्रकार से उपदेश नही कीजिए। क्योकि प्रव्रज्या गुणरहित है और लाभरहित है। भदन्त राहुल जो सस्कृत कहा जाता है उसके गुण और लाभ होते हैं, परन्तु प्रव्रज्या तो असस्कृत है, और जो असस्कृत है उसमे न गुण है और न लाभ है।

"भदन्त राहुल, प्रव्रज्या अरूपिणी (निराकार, अभौतिक), रूपरहित, तथा आदि और अन्त की दृष्टियो से स्वतन्त्र है। यह निर्वाणपथ है। मनीषियो ने इसकी प्रशसा की है और पवित्र सन्तो ने इसको अपनाया है। यह सब प्रकार के मारो को पराजित करती है।[४१] यह पाँच प्रकार की गतियो से निस्तारा (छुटकारा) देती है[४२], पाच प्रकार के चक्षुओं का विशोधन करती है[४३] पाँच प्रकार के बलो की प्राप्ति करवाती है[४४], पाँच प्रकार की इन्द्रियो का आधार (आश्रय) है।[४५] प्रव्रज्या दूसरो के लिए दुख रहित है और पाप धर्मों (बुराइयो) के साथ मिश्रित नही है। यह दूसरे तीर्थिको का भली प्रकार दमन करती है और प्रज्ञप्ति (नामकरण स्वरूपनिणय) का अतिक्रमण करती है। प्रव्रज्या

४१ देखिये ऊपर इसी परिवर्तन की पादटिप्पणी २३।

४२ देखिये प्रथम परिवर्तकी पादटिप्पणी ९।

४३ देखिये ऊपर प्रथम परिवर्तकी पादटिप्पणी ३५।

४४ देखिये ऊपर प्रथम परिवर्तकी पादटिप्पणी २५(उ)।

४५ देखिये ऊपर प्रथम परिवर्त की टिप्पणी २५ (ई)।

कामरूपी कीचड मे कमल (पकज अथवा सेतु) है। आधारणरहित (विधारण करनेवाली) है। प्रव्रज्या में ममत्व का अभाव है और अहकार का भी अभाव है यह उपादान रहित (अनासक्त) है उपायास रहित (उपद्रवरहित) है और सक्षोभ का निराकरण करती है। यह स्वचित्त को विनीत करती है, परचित्त की रक्षा करती है, शमथ की सामग्री (ध्यान की सहगामिनी) है, और सब प्रकार से निर्दोष है, इसी कारण इसका नाम प्रव्रज्या है। जो कोई इस प्रकार से प्रव्रजित हुए हैं वे सही अर्थ मे प्रव्रजित हैं।

"युवको इस प्रकार के अच्छी तरह उपदिष्ट किये गये धम मे प्रव्रजित हो जाओ। बुद्ध का प्रगट होना अत्य त दुलभ है, क्षणसपदा (शुभ और सौभाग्यपूर्ण अवसर रूपी सपत्ति) भी अत्य त दुलभ है और पुन मनुष्य गति प्राप्त करना अत्यन्त दुलभ है।[४६]

'उन युवको ने कहा— गृहपति, जसा कि हमने सुना है, तथागत ने कहा है— 'माता पिता की आज्ञा के बिना किसी को प्रव्र जित नही होना चाहिये।' विमलकीर्ति ने उत्तर दिया—युवको अनुत्तर सम्यक सम्बोधि का चित्त उत्प न करते हुए आपको प्रयत्न पूवक अभ्यास करना चाहिये। इसी प्रकार आप लोग तत्त्वत (वास्तविक रूप से) प्रव्रजित होकर उपसम्पदा प्राप्त करेंगे।

'उस समय तीन हजार दो सौ लिच्छविकुमारो ने अनुत्तर सम्यक सम्बोधि का चित्त विकसित किया था। भगवन्, इसी कारण से मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय में पूछने के लिए जाने को उत्साहित नहीं हूँ।

---

४६ बुद्धदशन, धमश्रवण एव मनुष्य जीवन की दुर्लभता का वर्णन बौद्ध सूत्रों एव शास्त्रों में अनेक बार हुआ है।

द्र० ललितविस्तर प० ७४– 'कदाचित्कर्हिचिद्बहुभि कल्पकोटिनयुतैर्बुद्धा भगवन्तो लोके उत्पद्यन्ते।"

सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, प २७ गण्डव्यूहसूत्र, प ९ –

"दुर्लभा अष्टाक्षणविनिवृत्ति। दुर्लभो मानुष्य प्रतिलाभ।

दुलभा क्षणसंपद्विशुद्धि। दुर्लभो बुद्धोत्पाद

दुर्लभो बुद्धधर्मश्रवण दुर्लभा धर्मानुधर्मप्रतिपत्ति।"

तुलनीय बोधिचर्यावतार-पंजिका, पृ ४–५, शिक्षासमुच्चय, पृ ५।

१० आनन्द

तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—"आनन्द लिच्छवि विमलकीर्ति के रोग के विषय में पूछने के लिए जाओ।"

आनन्द ने उत्तर दिया—"भगवन् मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय मे पूछने के लिए जाने को उत्साहित नही हूँ। क्योकि, भगवन् मुझे स्मरण है, एक दिन जब भगवान् के शरीर मे एक रोग प्रगट हुआ तो उसको (शरीर को) दूध की आवश्यकता पड गई थी। मैं पात्र लेकर एक सम्भ्रान्त (महाशाल) ब्राह्मण परिवार के (महल) के द्वार के समीप चला गया था। लिच्छवि विमलकीर्ति भी उस स्थान पर आ पहुँचा, और मुझको प्रणाम करके उसने कहा—

'भदन्त आनन्द, आप प्रातःकाल के समय पात्र लेकर इस परिवार के (घर के) द्वार पर किस लिए स्थित हैं? मैंने उससे कहा—भगवान् के शरीर मे एक रोग प्रगट हुआ है। उस शरीर की चिकित्सा के प्रयोजन से (कुछ) दूध की खोज मे आया हूँ। विमलकीर्ति ने मुझसे कहा—भदन्त आनन्द, ऐसा मत कहिए। भदन्त आनन्द, तथागत की काय वज्र के समान ठोस है उसकी सारी अकुशलवासना का नाश हो चुका है? उसमे सारे कुशलधर्म (सद्गुण) उपस्थित हैं रोग ऐसे शरीर मे कैसे हो सकता है? ऐसे शरीर को आतक या बेचनी कैसे हो सकती है।

"भदन्त आनन्द भगवान् पर झूठा आरोप (दोष) मत लगाइये और चुप हो जाइये। इस प्रकार की बात दूसरो से मत कहिये अन्यथा अनेक बुद्ध क्षेत्रों से यहाँ आये हुए महान शक्तिशाली और तेजस्वी देवता और बोधिसत्त्व (इस बात को) सुनेंगे। भदन्त आनन्द जब सीमित कुशलमूलो से सम्पन्न चक्रवर्ती राजा भी निरोग होता है, तब अप्रमेय (असीमित) कुशलमूलों से सम्पन्न भगवान् को रोग कैसे हो सकता है? यह असम्भव है।

'भदन्त आनन्द हमे लज्जित मत कीजिये और चले जाइये, अन्यथा अन्य तीर्थिक, मीमासक, परिव्राजक, निर्ग्रन्थ (जिन) और आजीविक भी (इस बात को) सुनेंगे। वे सोचेंगे—'अहो (लज्जास्पद) है इन लोगों का शास्ता अपने ही रोग की चिकित्सा करने में भी असमर्थ हैं। दूसरे प्राणियो की रोग से रक्षा कैसे कर सकता है।' भदन्त आनन्द, छिप जाइये, अन्तर्धान हो जाइये कोई देख (सुन) लेगा।

भदन्त आनन्द, तथागत धर्मकाय है।[४७] यह (काय) आहार से पोषित होने वाली देह नही है। तथागतो की लोकोत्तर काय होती है जो लोक के सभी (लौकिक) गुणो (विशेषताओ) का अतिक्रमण कर चुकी होती हैं।

'तथागतकाय उपद्रवरहित है, क्योंकि वह आश्रवो से निवृत्त है। तथागतकाय असस्कृत है, क्योकि वह सस्कार रहित है। भदन्त आनन्द, इस प्रकार के शरीर मे भी याधि हो सकती है, ऐसा विश्वास करना अनुचित और अशोभनीय है।

'जब मैंने ये शब्द सुने, तब मुझे (सन्देह) हुआ—क्या मैंने भगवान् से मिथ्या सुना था, मिथ्या समझा था। ऐसा सोचता हुआ मैं बहुत लज्जित हो गया था। तब मैंने अन्तरिक्ष से एक स्वर सुना (अर्थात् मैंने आकाशवाणी सुनी)— आनन्द, जो गृहपति कहता

---

४७ धर्मकाय का सिद्धान्त बौद्धधर्मदर्शन का हृदय समझना चाहिए। निम्नलिखित उद्धरणों से धमकाय की गम्भारता एव परिनिष्पन्नता का कुछ परिचय मिलता है–

सयुत्तनिकाय, खण्ड २, प ३८० ३४१– यो खो वक्कलि धम्म पस्सति सो म पस्सति। यो म पस्सति सा धम्म पस्सति।"

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता प ६६–

"रूप से मुझको जो देखते हैं, मेरे शब्दों का अनुगमन जो करते हैं।

मिथ्या प्रयास वे सब करत हं, ऐसे प्राणी मुझ नहीं देख सकते हैं॥

धर्म से बुद्ध को देखना चाहिए, धमकाय का अनुगमन करना चाहिए।

परन्तु धर्मता–ज्ञान की चेष्टा यथ हे, क्यों कि इसको जानना सम्भव नहीं हं।"

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० ४८– "धर्मकाया बुद्धा भगवन्त। मा खलु पुनरिम भिक्षव सत्काय काय मन्यध्वम्। धमकायपरिनिष्पत्तितो मा भिक्षवो द्रक्ष्यथ। एष च तथागत कायो भूतकोटिप्रभावितो द्रष्टव्या यदुत प्रज्ञापारमिता।" वही, पृ २५३— 'न हि तथागतो रूपकायतो दृष्टव्य। धर्मकायास्तथागता।"

मूलमध्यमककारिका २२ १५–

'प्रपञ्चयन्ति ये बुद्ध प्रपञ्चातातम ययम्।

ते प्रपञ्चहता सव न पश्यन्ति तथागतम्॥"

द्वाध्याशयपरिवर्त (रत्नगोत्रविभागमहायानोत्तरतन्त्रशास्त्र, पृ० २) में कहा है– "अनिदर्शनो ह्यानन्द तथागत स न शक्यश्चक्षुषा द्रष्टुम्।" श्रीमालासिंहनादसूत्र (रत्न गोत्रविभाग, प० ३) के अनुसार अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि, निर्वाणधातु एव तथागतधमकाय एक दूसर के अधिवचन (पर्यायवाची) हैं। अनूनत्वापूर्णत्वनिर्देशपरिवर्त (रत्नगोत्रविभाग, पृ० १२) में कहा गया है– शिवोऽय धमकायोऽद्वयधर्माविकल्पधर्मा।' द्र वही, प ५६–

है वह तथ्य है। तथापि पाच कषायो[४८] (दोषो) के समय मे प्रगट होने के कारण, भगवान् करुणावश सामा य प्रकार का यवहार करके प्राणियो को शिक्षित करते हैं।[४९] अतएव, आनन्द, लज्जित हुए बिना दूध लेने के लिए जाओ।

भगवन्, लिच्छवि विमलकीर्ति द्वारा पूछ गये प्रश्न के मेरे उत्तर का उपदेशपरक समाधान इस प्रकार हुआ। भगवन् इसी कारण से मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय में पूछने के लिए जाने को उत्साहित नही हूँ।

इसी प्रकार पाँच सौ श्रावको ने लिच्छवि विमलकीर्ति के पास जाने के लिए अनुत्साहित होते हुए (अनिच्छा प्रगट करते हुए) भगवान् से 'अपनी भाषण कुशलता (स्वप्रतिभान) का प्रतिवेदन किया और प्रत्येक श्रावक ने लिच्छवि विमलकीर्ति के साथ हुए अपने वार्तालाप का सम्पूण वणन भगवान से कहा।[५०]

(ख) बोधिसत्त्व विमलकीर्ति के पास नहीं जाना चाहते हैं।

११ मैत्रेय

तब भगवान् ने बोधिसत्त्व मत्रेय से कहा— मत्रय, लिच्छवि विमलकीर्ति के रोग के विषय मे पूछने के लिए जाओ।

'सर्वाकारैरसरवैरचि त्यैरमलैर्गुणै
अभिन्नलक्षणो मोक्षो यो मोक्ष स तथागत इति ॥"

सुवर्णप्रभाससूत्र, प ९—
"धर्मकायो हि सम्बुद्धो धर्मधातुस्तथागत ।
ईदृशी भगवत्काय ईदृशी धर्मदेशना ॥"

४८ पाच कषाय— १ क्लेशकषाय २ दृष्टिकषाय, ३ सत्वकषाय ४ आयु कषाय, ५ कल्पकषाय।

४९ तुलनाय सुवणप्रभाससूत्र १ ३०–३१(पृ ९)
'न बुद्ध परिनिर्वाति न धर्म परिहीयते।
सत्वाना परिपाकाय परिनिर्वाण निदर्शयेत ॥
अचि त्यो भगवान्बुद्धो नित्यकायस्तथागत ।
देशेति विविधा व्यूहा सत्वाना हितकारणात् ॥"
द्र० सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, प० १९०–१९१—
'सत्वाना नानाचरिताना नानाभिप्रायाणा मज्ञाविकल्पचरिताना कुशलमूलसंजननार्थम् विविधान् धर्मपर्यायान विविधैरारम्बणै याहरति।"
'सत्वानह कुलपुत्रा अनेन पर्यायेण परिपाचयामि।"

५० विमलकीर्ति के चीनी अनुवादों में तृतीय परिवर्त यहा पर समाप्त हो जाता है।

मैत्रेय ने उत्तर दिया—"भगवन्, मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय मे पूछने के लिए जाने को उत्साहित नही हूँ। क्योंकि, भगवन, मुझे स्मरण है एक दिन मैं तुषित लोक के देवताओ के साथ, सतुषित नामक देवता[५१] और उसके साथी देवताओ के साथ बोधिसत्वों–महासत्वों की अववर्तिक भूमि के विषय को लेकर धर्मचर्चा कर रहा था। उस समय लिच्छवि विमलकीर्ति वहाँ आया और उसने मुझसे कहा—

'मैत्रेय भगवान् बुद्ध ने आपके विषय मे व्याकरण (भविष्यवाणी का प्रकाशन) किया है कि आपको अनुत्तर सम्यक सम्बोधि प्राप्त करने तक केवल एक बार जन्म लेना है।[५२] मैत्रेय इस व्याकरण का सम्बन्ध कौन से जन्म से है? क्या अतीत (भूतकाल) से है? क्या अनागत (भविष्यकाल) से है? अथवा प्रत्युत्पन्न (वर्तमान काल) से है? जो अतीत का जन्म है वह क्षीण हो चुका है जो अनागत का जन्म है वह अभी प्राप्त नही हुआ है वर्तमान जन्म (प्रत्युत्पन्न) नाम की कोई चीज का अस्तित्व नही है। (अर्थात् भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल की जो काल्पनिक धारणाए हैं वह व्यवहार वचन मात्र हैं)।[५३] जैसा कि भगवान् ने ठीक ही कहा है— भिक्षुओ एक क्षण मे तुम जन्मते हो बृद्ध होते हो, मरते हो और पुन जन्म लेते हो।[५४] (क्या वह व्याकरण अनुत्पाद की स्थिति से सम्बन्धित था)। अनुत्पाद की स्थिति मे नियाम मे प्रवेश होता है जो जन्मरहित और व्याकरणरहित है। (नियाम वह निश्चित अवस्था है जिसमें निर्वाण

---

५१ सन्तुसितो नाम देवपुत्तो (सन्तुषित नामक देवता) का उल्लेख दीघनिकाय, खण्ड १ पृ० १८७ में भी हुआ है।

५२ इस व्याकरण (भविष्यवाणी) का उल्लेख पालि सूत्रोंमें भी मिलता है। द्र० दीघनिकाय, खण्ड ३ प० ६०– मेत्तेय्यो नाम भगवा लोके उप्पज्जिस्सति अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा।' तुलनीय सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, प १८४– मैत्रेयो नाम बोधिसत्वो महासत्वो भगवत शाक्यमुनेरनन्तर व्याकृतोऽनुत्तरायां सम्यक्सबोधौ।"

५३ काल (समय) की धारणाओं की महायानी व्याख्या के लिए द्र० मूलमध्यमककारिका "कालपरीक्षा," पृ० १९३–१६७ तथा तत्त्वसग्रह, 'त्रैकाल्यवादपरीक्षा', कारिका १७८५–१८५५।

५४ सुत्तनिपातट्ठकथा में यह बुद्धवचन उद्धृत है—
"खन्देसु जायमानेसु जीयमानेसु च खणे खण त्व भिक्खु जायसे च मीयसे च"
"खन्देसु" के स्थान पर खन्धेसु पाठ होना चाहिये।

की प्राप्ति निश्चित और अटल है)। अनुत्पाद की अवस्था नियाम की अवस्था है जिसमे न ज म होता है और न याकरण। अतएव (इस याकरण का अथ) अनुत्पद्यमान अवस्था नही हो सकता। मत्रेय, आपने किस रूप मे (किस अथ मे) याकरण प्राप्त किया है? (अर्थात् आपके विषय मे किया गया व्याकरण किस स्थिति से सम्बद्ध है), ज म (जाति) की तथता से अथवा निरोध की तथता से? तथता उत्पाद और निरोध से रहित है, तथता न उत्प न होती है और न निरुद्ध होती है।[५५]

"मत्रेय, जो सभी प्राणियो की तथता है जो सभी धर्मों की तथता है, और सभी पवित्र स तो (अहतो) की तथता है वही आपकी तथता है। यदि इस प्रकार आपके लिए बुद्धत्व का व्याकरण किया जा सकता है तो सभी सत्वो (प्राणियो) के लिए भी इसी प्रकार का व्याकरण किया जा सकता है। क्योकि तथता द्वत से अप्रभावित है और नानात्व (विभि नता) से अप्रभावित है। इसलिए, मत्रेय, जब आपको सम्बोधि की प्राप्ति होगी तब सभी प्राणियो को उसी प्रकार की सम्बोधि प्राप्त होगी। क्योकि बोधि सभी प्राणियो का अनुगमन करती है (बोधि सभी प्राणियो से सम्बन्धित है)। मैत्रय, जब आप परिनिवृत होगे तब सभी प्राणी भी परिनिवृत्त होगे। क्योकि, यदि सभी प्राणी अपरिनिवृत्त हैं तो तथागत भी अपरिनिवृत्त हैं। वे सभी प्राणी सुपरिनिर्वृत्त हैं[५६] इसीलिए वे निर्वाणजातीय (निर्वाण प्राप्ति के स्वभाव वाले) दिखाई देते हैं। अतएव मत्रेय इन देवताओ को गुमराह मत कीजिये, धोखा मत दीजिए।

---

५५ तुलनीय अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० २५३ तथा लकावतारसूत्र, १० १७४–
"अद्वया तथता शू या भूतकोटिश्च धर्मता।
निर्विकल्पश्च देशेमि ये ते निष्पन्नलक्षणा।"

५६ तुलनीय रत्नमेघसूत्र (प्रसन्नपदा, पृ० ९८)
"आदिशा ता ह्यनुत्पन्ना प्रकृत्यैव च निर्वृता।
धर्मास्ते विवृता नाथ धमचक्रप्रवर्तने॥"
बोधिचर्यावतार, ९ १५१–
"स्वप्नोपमास्तु गतयो विचार कदलीसमा।
निवृतानिर्वृताना च विशेषो नास्ति वस्तुत॥"
वैपुल्यसूत्र (अभिधर्मसमुच्चय, पृ० ८४)–
"नि स्वभावा सवधर्मा अनुत्पन्ना अनिरुद्धा आदिशा ता प्रकृतिपरिनिर्वृता।"
गौडपादकारिका २ ३२ "न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधक।
न मुमुक्षुन वै मुक्त इत्येषा परमाथता॥" द्र० वही, ४ ९१ ९३।

"बोधि मे न कोई प्रतिष्ठित होता है और न इससे कोई विवर्तित (वापिस) होता है। अतएव मत्रेय, इन देवताओ की बोधि विषयक काल्पनिक दृष्टि का उत्सजन कीजिये (बोधि विषयक सकल्पज-य धारणाओ का निराकरण कीजिये)। बोधि का अभिसम्बोध (पूण ज्ञान) न काय से होता है और न चित्त से होता। बोधि सव प्रकार के निमित्त व्यूह (लक्षण व्यवस्था) का उपशमन् है। बोधि सभी प्रकार के आलम्बनो (बाह्यार्थों) के आरोप से मुक्त है। बोधि सभी प्रकार की मनस्तरगो (मानसिक प्रयत्नो) के प्रचार से रहित है। बोधि सभी प्रकार के दृष्टिगत (ज्ञान) का विनाश है। बोधि सव प्रकार के परितक से रहित है। बोधि सर्व प्रकार की अस्थिरता चित्त की गति और चलनशीलता से मुक्त है। बोधि किसी प्रणिधान (व्रत, निश्चय) मे भी प्रवृत्त नही है। बोधि सव प्रकार के उद्ग्रहण से रहित विराग (अश्लेष, मुक्ति) है। बोधि धमधातु मे मिश्रित (आधृत) हैं। बोधि तथता का सक्षात्कार है। बोधि भूतकोटि मे अवस्थित है। बोधि मे न मन है और न धम है अतएव वह अद्वय है। बोधि आकाश की भाति सम है। बोधि असस्कृत है क्योकि वह न उत्पन्न होती है न -यय होती है और न स्थित है। इसमे अ यथात्व (परिवतन) का सवथा अभाव है।"[५७]

"बोधि सभी प्राणियो के चित्त, चर्या और अध्याशय का परिज्ञान है। बोधि (छ) आयतनो का द्वार नही है। बोधि सभी वासनाओं प्रतिसन्धियो (मृत्यु और पुनज म के मध्य की स्थितियों) और क्लेशो से सवथा मुक्त और असम्बद्ध है। बोधि स्थान और अस्थान से सवथा विसयुक्त होने कारण किसी वस्तु (विषय, पदार्थ) मे प्रतिष्ठित नही है किसी स्थान पर स्थित नहीं है। बोधि सम ततो (सव प्रकार से सभी ओर से) प्रादुर्भाविनी है तथता में भी अनुपस्थित है। बोधि केवल नाम है, यह नाम भी अचल है। बोधि आव्यूह (प्रयत्न, चेष्टा) और नियूह (त्याग विवेक) से रहित और निस्तरग है। बोधि निरुपायास (उपद्रवरहित) है स्वभावत परिशुद्धि है। प्रभास (प्रकाश) है इसका स्वभाव ही विशुद्धि है। बोधि न ग्राहक है और न ग्राह्य (न उद्ग्रहण करती है और न आलम्बन

---

५७ तुलनीय पञ्चविंशतिसाहस्रिका, पृ० १९८— "तथता अवितथा अ-यतथता धमता धर्मधातु धर्मस्थितिता धमनियामता भूतकोटि। इम उच्य-ते असस्कृता धर्मा।'

बोधिचर्यावतार पञ्जिका, पृ० १७१—"परम उत्तम अर्थ परमार्थ अकृत्रिम वस्तुरूपम् यदधिगमात् सर्वावृतिवासनानुसधिक्लेशप्रहाण भवति। सर्वधर्माणा नि स्वभावता शू-यता तथता भूतकोटिधमधातुरित्यादि पर्याया।"

वाली है)। बोधि सवधमसमता है और इसका अधिगम अभिन्न (अद्वयस्वरूप) है। बोधि अनुपम है इसलिये इसका उदाहरण व विश्लेषण नहीं हो सकता है। (अथवा बोधि की उपमा उदाहरण विश्लेषण से नही की जा सकती है)। बोधि का अवबोध अति कठिन है क्योकि यह अत्य त सूक्ष्म है।'[५८]

'बोधि आकाश के स्वभाव की होने के कारण सवत्रगा है (अर्थात सवव्यापक है)। बोधि का साक्षात्कार काय से अथवा चित्त से नही किया जा सकता है क्योकि, काय तृण (घास), काष्ठ, दीवार (कुड्य) पथ और प्रतिभास की चमक की तरह है। और चित्त अरूप, अदृश्य, निराधार (अनिश्रय) और ज्ञान रहित (अविज्ञप्तिक है।

"भगवन्, (विमलकीर्ति द्वारा) इस उपदेश के प्रकाशित होने पर उस परिषद मे से दो सौ देवताओ ने अनुत्पत्तिक धर्मक्षाति प्राप्त की थी। मैं तो प्रतिभान रहित हो गया था। इसी कारण से भगवन् मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय मे पूछने के लिये जाने को उत्साहित नही हूँ।"

१२ प्रभाव्यूह—

तब भगवान् ने लिच्छविकुमार प्रभाव्यूह से कहा–' प्रभाव्यूह लिच्छवि विमलकीर्ति के रोग के विषय में पूछने के लिये जाओ।'

प्रभा ग्रूह ने उत्तर दिया–' भगवन्, मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय में पूछने के लिये जाने को उत्साहित नहीं हूँ। क्योकि भगवन, मुझे स्मरण है एक दिन मैं महानगरी वशाली के बाहर जा रहा था और लिच्छवि विमलकीर्ति (वैशाली नगर मे) आ रहा था तो राह मे हमारी भेंट हुई थी। उसने मेरा अभिवादन किया और तब मैंने उससे कहा–गृहपति, कहाँ से आये हो ? उसने उत्तर दिया–मैं बोधिमण्ड से आया हूँ। मैंने पूछा–बोधिमण्डका क्या अथ है। तब उसने मुझसे कहा—कुलपुत्र, बोधिमण्ड अकृत्रिम होने के कारण आशयमण्ड है। मानवीय (धार्मिक) काय– यापार–चलाने का श्रोत होने के कारण यह योगमण्ड है। विशिष्ट अधिगम (साक्षात्कार) होने वे कारण यह अध्याशय है। समवि स्मरण होने के कारण यह बोधिचित्तमण्ड है। (समान रूप से विस्तृत हो जाने के कारण यह बोधिचित्त का सार है)।

---

५८ तुलनीय ललितविस्तर, पृ० २८९—"गम्भीर खल्वय मया धर्मोऽभिसम्बुद्ध सूक्ष्मो निपुणो दुरनुबोध अतर्कोऽतर्कावचर।"

विपाक (फल) की प्रतिकाक्षा (इच्छा) रहित होने के कारण यह दानमण्ड है (अर्थात् दान से होने वाले पुण्यफल की आशा से रहित होने के कारण यह दानमण्ड है)। सभी प्रणिधानो (प्रतिज्ञाओ) की पूणता के कारण यह शीलमण्ड है। सभी प्राणियो के प्रति प्रतिघ (द्वष, क्रोध) के अभाव के कारण यह क्षान्तिमण्ड है। अविनिवतनीय (अववर्तिक) होने के कारण यह वीयमण्ड है। चित्त की कमण्यता के कारण यह ध्यानमण्ड है। प्रत्यक्ष दशन (प्रत्यक्षदर्शी) होने के कारण यह प्रज्ञामण्ड है।[५९]

"सभी प्राणियो के प्रति समचित्त होने के कारण यह मत्रीमण्ड है। सभी प्रकार के उपक्रमों को सहन (सब प्रकार की हिंसा सहन) करने के कारण यह करुणामण्ड है। धर्मानन्द मे अभिरति और अधिमुक्ति के कारण यह मुदितामण्ड है। अनुनय (प्रम) और प्रतिघ से मुक्त होने के कारण यह उपेक्षामण्ड है।[६०]

"छ अभिज्ञाओ[६१] की प्राप्ति होने के कारण यह अभिज्ञामण्ड है। निर्विकल्प होने के कारण विमोक्षमण्ड है। प्राणियों का (पारमार्थिक) विकास करने के कारण यह उपायमण्ड[६२] है। सभी प्राणियो का सग्रह करने के कारण यह सग्रहवस्तुमण्ड[६३] है। प्रतिपत्ति (धमचर्या) के सार का व्यापार (कार्यान्वयन) करने के कारण यह श्रवणमण्ड है। योनिश प्रत्यवेक्षण (मौलिक और परिपूण विपश्यना, आमूल प्रतिवेध) करने के कारण यह निध्यप्तिमण्ड (ध्यानजनित प्रज्ञामण्ड) है। सस्कृत और असस्कृत (के द्वत) का प्रहाण करने के कारण यह बोधिपाक्षिकधममण्ड[६४] है। सम्पूर्ण लोक मे किसी का भी वचन न करने (किसी को भी धोखे मे न रखने) के कारण यह सत्यमण्ड है। अविद्या आस्रव के क्षय से जरामरण के क्षय तक सभी आस्रवो का क्षय कर देने के

---

५९ दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान एव प्रज्ञा—ये छ पारमितायें ह जिनके पूणत्व में बोधिसत्त्व बुद्धत्व का लाभ करता है।

६० करुणा, मैत्री, मुदिता एव उपेक्षा—ये चार अप्रमेय भावनायें हैं जि हें 'ब्रह्मविहार' कहा जाता है।

६१ देखिये ऊपर प्रथम परिवत पादटिप्पणी ३।

६२ द्र० सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र उपायकौशल्य परिवत।

६३ देखिये ऊपर प्रथम परिवर्त पादटिप्पणी २४।

६४ सैंतीस बोधिपाक्षिक धर्मों की सूची द्र० ऊपर प्रथम परिवर्त, पादटिप्पणी २५।

कारण यह प्रतीत्यसमुत्पादमण्ड[६५] है। यथाभूत (परमार्थस्वरूप) के अभिसम्बोध के कारण यह सर्वक्लेशप्रशममण्ड है।

"सभी प्राणियों की निःस्वाभावता के कारण यह सर्वसत्त्वमण्ड है। शून्यता के सम्यक ज्ञान के कारण यह सर्वधर्ममण्ड है। अचल होने के कारण यह सर्वमारप्रमर्दनमण्ड है। प्रवेश वियोग (कहीं भी प्रवेश करने से मुक्ति) के कारण यह त्रिधातुमण्ड[६६] है। अभय और असन्त्रास के कारण यह सिंहनाद करने वाला वीर्यमण्ड है। सर्वत्र अनिन्दित रहने के कारण यह बलों[६७], वैशारद्यों[६८] और आवेणिक बुद्धधर्मों[६९] का मण्ड है। क्लेशों के अशेष (सम्पूर्ण विनाश) के कारण यह त्रविद्यतामण्ड[७०] (त्रिविद्यामण्ड) है। सर्वज्ञ ज्ञान के समुदागम के कारण यह एक ही क्षण में सभी धर्मों (भूत भौतिक व चित्त चैतसिक वस्तुओं और असंस्कृत तत्त्वों) का सम्पूर्ण रूपेण साक्षात ज्ञान वाला मण्ड (स्थान, सार) है।

"कुलपुत्र, जब भी पारमिताओं[७१] से ओत प्रोत, प्राणियों के पारमार्थिक विकास के लिये समर्पित हुये, सद्धर्म धारण में जुटे हुये, और कुशलमूलों समेत ये बोधिसत्त्व गण पैर ऊपर उठाते हैं अथवा भूमि पर रखते हैं तो वे बोधिमण्ड से ही आते हैं, वे बुद्ध गुणों से आते हैं, बुद्ध गुणों में प्रतिष्ठित रहते हैं।

"भगवन्, विमलकीर्ति द्वारा इस प्रकार का उपदेश दिये जाने पर पाँच सौ देवताओं और मनुष्यों ने बोधिचित्तोत्पाद किया था। मैं तो प्रतिभान रहित हो गया था। इसी

---

६५ प्रतीत्यसमुत्पाद के १२ अंग('आस्रव') निम्नलिखित हैं—
१ अविद्या, २ संस्कार, ३ विज्ञान, ४ नामरूप, ५ षडायतन, ६ स्पर्श ७ वेदना, ८ तृष्णा, ९ उपादान, १० भव, ११ जाति, १२ जरामरण-शोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्य-उपायास।

६६ देखिये ऊपर इसी परिवर्त, की पादटिप्पणी २।

६७ देखिये ऊपर प्रथम परिवर्त, पादटिप्पणी ६व१५।

६८ देखिये ऊपर प्रथम परिवर्त, पादटिप्पणी ७।

६९ देखिये ऊपर प्रथम परिवर्त, पादटिप्पणी ८।

७० तीन विद्याएँ १ पूर्वनिवासानुस्मृतिज्ञान २ च्युतिउत्पत्तिज्ञान, ३ आस्रवक्षयज्ञान अङ्गुत्तर०, खण्ड १, पृ० १५१-१५२ मज्झिम०, खण्ड १, पृ० ३० ३१।

७१ पारमिताएँ दस हैं—१ दान, २ शील ३ क्षान्ति, ४ वीर्य, ५ ध्यान, ६ प्रज्ञा, ७ उपायकौशल्य, ८ प्रणिधि, ९ बल, १० ज्ञान।

कारण से, भगवन् मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय मे पूछने के लिये जाने को उत्साहित नही हूँ।"

१३ जगतींधर

तब भगवान् ने बोधिसत्त्व जगतीधर से कहा—"जगतीधर लिच्छवि विमलकीर्ति के रोग के विषय में पूछने के लिये जाओ।'

जगतीधर ने कहा—'भगवन्, मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय में पूछने के लिये जाने को उत्साहित नही हूँ। क्योकि, भगवन् मुझे स्मरण है एक दिन जब मैं अपने घर मे स्थित था, तब पापी मार बारह हजार अप्सराओ के साथ इन्द्र के वेश मे वाद्य और सगीत (साज और अवाज) सहित मेरे समीप आ पहुचा। उसने अपने सिर से मेरे चरणो में प्रणाम किया। सपरिवार (साथी अप्सराओ सहित) मेरा सम्मान करके एक ओर को हो गया। उसको देवराज शक्र (इन्द्र) समझकर मैंने उससे कहा—कौशिक, आपका स्वागत है। सभी कामो (इच्छाओ) और विषय भोगो मे अप्रमत्त (जागरूक) रहो। काय जीवन और भोगो के सार का सदुपयोग करते हुये अनित्यता का बहुधा विचार करना चाहिये।

"तब मार ने मुझसे कहा—सत्पुरुष, मुझसे इन बारह हजार अप्सराओ (देव कन्याओ) को स्वीकार कर लिजिये ये आपकी सेवा करेंगी। मैंने उससे कहा—कौशिक अयोग्य वस्तु श्रमण (साधु) और शाक्यपुत्र (बुद्धपुत्र) को मत दीजिये। इन कन्याओ को रखना मेरे लिये उचित नही है। मैंने ऐसा कहा ही था कि लिच्छवि विमलकीर्ति वहाँ आ पहुँचा और उसने मुझसे कहा—कुलपुत्र यह इन्द्र (शक्र) है ऐसा मत समझिये। यह तो पापी मार है। आपकी विडम्बना करने के लिये (आपकी हसी उडाने के लिय) आया है। यह इन्द्र नही है।

तब लिच्छवि विमलकीर्ति ने उस पापी मार से कहा—पापी मार, ये अप्सराए इस श्रमण शाक्यपुत्र (बोधिसत्त्व जगतीधर) के लिय उपयुक्त नही हैं। इन्हे मुझको दे दो।'

'तब पापी मार भयभीत और सविग्न (उद्विग्न) हो गया और उसने सोचा यह लिच्छवि विमलकीर्ति मुझ ठगने के लिये (मेरा भेद खोलने के लिये) आया है। वह अन्तर्धान होने की इच्छा से प्रयत्न करने लगा परन्तु असमर्थ रहा। उसने अपनी सभी

ऋद्धिविधियो[७२] का प्रयोग करके अन्तर्धान (लुप्त) होने की चेष्टा की परन्तु वह वसा करने मे असफल रहा।

तब अन्तरिक्ष (आकाश) से एक घोष निकला (आकाशवाणी हुई) पापी, इन अप्सराओ को इस सत्पुरुष को भेंट करो तभी तुम अपने स्थान को वापिस जा सकोगे। तब पापी मार तो और भी अधिक भयभीत हो गया, और उसने अपनी इच्छा के प्रतिकूल उन अप्सराओ को दे दिया।

'तब लिच्छवि विमलकीर्ति ने उन अप्सराओ को ग्रहण किया और उनसे कहा—पापी मार ने तुम्हे मुझे दे दिया है, इसलिये तुम सभी को अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि का चित्तोत्पाद करना चाहिये। उसने उन अप्सराओ को बोधि—प्राप्ति की दिशा म विकास के अनुकूल धम कथा का उपदेश दिया और उ होने शीघ्र ही बोधिचित्तोत्पाद किया। विमलकीर्ति ने उनसे पुन कहा—आपने अभी बोधिचित्त का उत्पादन किया है, अब से भविष्य मे आपको धम के आन द मे प्रसन्नतापूवक अधिमुक्ति करनी चाहिये, कामगुणो (विषयभोगो) के सुख मे अभिरुचि नही रखनी चाहिय। इस प्रकार उसने उ हे आज्ञा दी। उन्होने (अप्सराओ ने) पूछा—वह धमसमोदरति क्या है? (अर्थात् धम के आन द मे प्रसन्नता क्या है?)

'उसने (विमलकीर्ति ने) कहा—वह रति (प्रसन्नता) बुद्ध मे अभद्य (अख ण्ड) श्रद्धा है[७३], धमश्रवण की इच्छा मे प्रसन्नता रति है, सघ की सेवा मे प्रसन्नता रति

---

७२ ऋद्धि (पालि इद्धि) आठ प्रकार की असाधारण, अतिमानवाय शक्तियों को कहते हैं। द्र० दीघनिकाय, खण्ड १, प० ६८–६९—१ एक होकर बहुत हो जाना और बहुत होकर एक हो जाना, २ प्रकट होकर लुप्त हो जाना, ३ सरलता से निर्बाध होकर दीवार अथवा प्राचीर अथवा पर्वतसे पार हो जाना मानो हवा(आकाश) से गया हो, ४ पथ्वी में भीतर और बाहर(नीचे और ऊपर) होना मानो पानी के भीतर और बाहर हो रहा हो, ५ पानी में ऐसे चलना जैसे पृथ्वी पर चल रहा हो, ६ पलथी लगाकर (पद्मासनमें) आकाशमें चलना जैसे पखों पर पक्षी रहता है, ७ च द्रमा और सूर्य, जो कि इतने अधिक बडे और शक्तिशाली है, को भी हाथ से स्पश और अनुभव करना, ८ शरीर सहित ब्रह्मके लोक तक पहुच जाना। तुलनीय योगसूत्र, ३ ४५ पर यास भाष्य की सूची—

१ अणिमा, २ लघिमा, ३ प्राप्ति ४ प्राकाम्य, ५ महिमा, ६ ईशित्व, ७ वशित्व, ८ कामावसायिता। बौद्ध तान्त्रिक योग सिद्धि के लिए द्र० गुह्यसमाजतन्त्र, १८ १२६ १४५।

७३ तुलनीय सयुत्तनिकाय, खण्ड २, पृ० ५९—

है गुरु के सत्कार में मानरहित होना रति है धातुओं[७४] मे और विषयो मे स्थित न होना रति है। पंचस्कन्धो[७५] को घातक समझना रति है धातुओं[७६] को सर्प के विष के समान समझना रति है और आयतनों[७७] को शून्यग्राम समझ कर विवेक करना रति है। बोधिचित्त की सरक्षा मे सत्त्वो (प्राणियो) का हित करना रति है। दान द्वारा (अपनी सम्पत्ति व सुख का) विभाजन करने और परिपूर्ण शील का अभ्यास करने का नाम रति है। क्षान्ति मे क्षमण (क्षमा) और दम रति है वीर्य पूर्वक कल्याण का सम्पादन रति है, ध्यानपरिभोग (ध्यान का आनन्द लेने मे) और प्रज्ञा मे क्लेशो का अभाव

"बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति सघे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति।"

बहुधा श्रद्धा, विश्वास, प्रसाद, प्रीति समानार्थक रूप में प्रयुक्त होते हैं। धम्मपद, गाथा २०४ में कहा गया है, 'विस्सास परमा ञाति निब्बान परम सुख।"

दशधर्मसूत्र (शिक्षासमुच्चय, पृ० ६) में कहा गया है—

"श्रद्धा हि परम यान येन निर्यान्ति नायका।
तस्माच्छ्रद्धानुसारित्व भजेत मतिमान्नर॥
अश्राद्धस्य मनुष्यस्य शुक्लो धर्मो न रोहति।
बीजानामग्निदग्धानामकुरो हरितो यथा॥"

शिक्षासमुच्चयकारिका २—

"दु खा त कर्तुकामेन सुखान्त गन्तुमिच्छता।
श्रद्धामूल दृढीकृत्य बोधौ कार्यामतिर्दृढा॥"

द्र० भिक्षु प्रासादिक द्वारा तिब्बती से अग्रेजी में अनूदित सूत्रसमुच्चयका प्रथम भाग जर्नल आफ रिलीजियस स्टडीज" वॉल्यूम ७ अक १ (पटियाला) १९७९, जहाँ पर आचार्य नागार्जुन ने श्रद्धा की विस्तृत चर्चा की ह।

७४ यहाँ पर कामधातु रूपधातु व अरूपधातु से अभिप्राय है।

७५ पाँच स्कन्ध - १ रूप, २ वेदना, ३ सज्ञा, ४ सस्कार, ५ विज्ञान।

७६ अठारह धातु निम्नलिखित हैं—१ चक्षु धातु, २ श्रोत्र०, ३ घ्राण०, ४ जिह्वा०, ५ काय०, ६ मन०, ७ रूप०, ८ गन्ध०, ९ शब्द, १० रस०, ११ स्पर्श १२ धर्म०, १३ चक्षु विज्ञान धातु, १४ श्रोत्र विज्ञान, १५ घ्राण विज्ञान०, १६ जिह्वा विज्ञान०, १७ काय विज्ञान०, १८ मन विज्ञान०।

७७ बारह आयतन निम्नलिखित हैं—१ चक्षु, २ श्रोत्र, ३ घ्राण, ४ जिह्वा, ५ काय, ६ मन, ७ रूप, ८ गन्ध, ९ शब्द, १० रस, ११ स्पर्श, १२ धर्म।

रति है, बोधि का प्रसार करना रति है मार निग्रह करना (मार को परास्त करना) रति है, क्लेशो का वध करना और बुद्धक्षेत्र का विशोधन करना रति है। लक्षणो और अनुव्य ञ्जनो[७८] के विकास के लिये सभी कुशलमलो का सचय करना रति है। निर्भयतापूर्वक गम्भीरधर्मश्रवण करना धर्मसमोदरति है। विमोक्ष के तीनो मुखो (द्वारो)[७९] का प्रविचय (प्रतिवेध) करना और निर्वाण का अध्यालम्बन करना रति है। बोधिमण्ड का का अलकार होना रति है अकाल मे (अनुपयुक्त समय मे) निर्वाण प्राप्त न करने मे रति है जो समानभागीय हैं उनकी सेवा करना रति हैं जो असमानभागीय हैं (अपने से श्रेष्ठतर भाग्यवाले हैं) उनसे द्वेषण और शत्रुता न करना रति है। कल्याणमित्रो का साथ करना और पापी मित्रो के साथ न रहना रति है।[८०] धर्म के प्रति अधिमुक्ति (भक्ति) श्रद्धा और प्रामोद्य की अवस्था रति है। उपाय सग्रह रति है, अप्रमादपूर्वक बोधिपक्ष्यधर्मों का विकास करना रति है। इस प्रकार बोधिसत्त्व धर्मसमोद (धर्मानन्द) की अभिरति से ओत प्रोत होता है।

"तब पापी मार ने उन अप्सराओ से कहा—अब हमे अपने आवास को जाना चाहिये। उन्होने कहा—आपने हमे इस गृहपति को दे दिया है। अब हमे अभी से धर्म समोद, धर्म अभिरति और धर्म अधिमुक्ति का विकास करना है, काम विषयो की अभिरति और भक्ति नही करनी है। तब पापी मार ने लिच्छवि विमलकीर्ति से कहा—यदि यह सत्य है कि बोधिसत्त्व महासत्त्व सर्वस्वपरित्यागी है और चित्तग्राहक (केवल चित्त मे सर्वस्व परित्याग का विचार रखने वाला) नही है, तो गृहपति, इन अप्सराओ को (मेरे साथ) भेज दीजिये। विमलकीर्ति ने कहा—पापी मार, इन्हे दे दिया है, अत अब तुम सपरिवार जाओ। तुम सभी प्राणियो का धर्माशय (धार्मिक अभिलाषाओ वाला अध्याशय) परिपूर्ण

---

७८ महापुरुष के लक्षणों एवं अनुव्यञ्जनों की सूची के लिए द्र० धर्मसंग्रह ८३ ८४।

७९ तीन प्रकार के विमोक्ष—१ शून्यता २ अनिमित्त, ३ अप्रणिहित।

८० तुलनीय मंगलसुत्त २—

'असेवना च बालान पण्डितान च सेवना।
पूजा च पूजनीयान एत मगलमुत्तम॥"

धम्मपद, गाथा २०७—

"दुक्खो बालेहि सवासो अमित्तेनेव सब्बदा।
धीरो च सुखसवासो ञातीन व समागमो॥"

करने मे समथ हो जाओ। तब उन अप्सराओ ने विमलकिर्ति को प्रणाम करके उससे कहा—गहपति हमे मार के घर में किस प्रकार रहना चाहिये ?

"विमलकीर्ति ने कहा—बहनो अक्षयप्रदीप नाम का एक धममुख (धम का प्रवेश द्वार) है, उसका अभ्यास करो (उसमे प्रवेश करो)। वह क्या है? बहिनो, जिस प्रकार एक प्रदीप से सकडो—हजारो प्रदीप प्रज्वलित होते हैं फिर भी वह प्रदीप स्वय नही घटता है, उसी प्रकार, बहिनो, एक बोधिसत्त्व सैकडो हजारो प्राणियो को बोधि मे स्थापित करके भी स्वय उसके चित्त की स्मृति कम नही होती है। वस्तुत वह न केवल कम नही होती है अपितु और भी बढती है। इसी प्रकार जसे जसे आप सारे कुशलधर्मों (पुण्यकर्मों) को दूसरो को दिखाऐंगी और उन्हे बताऐंगी वसे ही बुद्धशासन के सभी कुशलधम प्रवर्धित होते रहेंगे। यही अक्षयप्रदीप नामक धममुख है। मार के लोक मे रहते हुये आप असख्य देवताओ और देवियो को बोधिचित्त का विकास करने के लिये प्रेरित कीजिये। इस प्रकार आप तथागत के प्रति कृतज्ञ रहेंगी और सभी प्राणियो की सहायक बनेंगी।

'तत्पश्चात् उन अप्सराओं ने लिच्छवि विमलकीर्ति के चरणो मे अपना सिर झुकाकर प्रणाम किया और मार के साथ चली गईं। भगवन्, मैंने लिच्छवि विमलकीर्ति के ऋद्धिबल (विकुर्वण) की इस प्रकार की विशिष्टताओं को देखा था। इसी कारण भगवन् मैं उस सत्पुरुष के रोग के बारे मे पूछने के लिय जाने को उत्साहित नही हूँ।'

१४ सुदत्त (अनाथपिण्डद)

तब भगवान् ने श्रेष्ठिपुत्र सुदत्त[८१] से कहा—' कुलपुत्र लिच्छवि विमलकीर्ति के रोग के विषय मे पूछने के लिये जाओ।' सुदत्त ने उत्तर दिया— 'भगवन्, मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय में पूछने के लिय जाने को उत्साहित नही हू। क्योकि भगवन् मुझे स्मरण है एक दिन मेरे पिता के निवेशन (निवास स्थान) मे एक महायज्ञ पूरा करने के लिये मैं सात

---

८१ सुदत्त का दूसरा अधिक परिचित नाम अनाथपिण्डद अथवा अनाथपिण्डिक है। अङ्गुत्तर निकाय, खण्ड १, पृ० २६ में उसको दाताओं में अग्रणी (अग्गो दायकान सुदत्तो अनाथ पिण्डिको) कहा गया है। उसने श्रावस्ती नगरमें राजकुमार जेत से स्वर्णमुद्राएँ बिछाकर जेतवनाराम खरीदकर बौद्ध सघ को और भगवान् बुद्ध को भेंट किया था।

दिनो तक सभी श्रमणो ब्राह्मणो दरिद्रो, दु खियो, कृपणो (असहायो), भिखारियो और विह्वल हुये लोगो को दान दे रहा था। उस महा दानयज्ञ के अंतिम और सातवें दिन लिच्छवि विमलकीर्ति उस महायज्ञ की भूमि पर आ पहुँचा। उसने मुझसे कहा—श्रेष्ठ पुत्र, इस प्रकार यज्ञ नही करना चाहिए जिस प्रकार आप कर रहे हैं। धमयज्ञ कीजिये।[८२] आमिषयज्ञ (भौतिक वस्तुओ के दान) से पर्याप्त लाभ हो गया है (अर्थात आमिष यज्ञ इतना ही पर्याप्त है)।

"मैंने उससे पूछा—धमयज्ञ कसे किया जाता है? उसने उत्तर दिया—धर्मयज्ञ उसे कहते हैं जिसके द्वारा प्राणियो का अनादि और अनन्त परिपाचन होता है। (अर्थात् बोधि प्राप्ति के माग पर प्राणियो की उन्नति का जिसमे न प्रारम्भ हो और न अ त, ऐसा धर्मयज्ञ)। वह क्या है? (ऐसा धमयज्ञ कौन सा है?) यह वह महामत्री है जिसका उपहार (परिणाम) बोधि है, यह वह महाकरुणा है जो सद्धमसग्रह सम्पन्न करती है, यह वह महामुदिता है जो सभी प्राणियो की प्रसन्नता की भावना उत्पन्न करती है, और यह वह महाउपेक्षा है जो ज्ञानसग्रह से सम्पन्न होती है।

"धर्मयज्ञ वह दानपरमिता है जो शान्ति एव दम मे परिपूर्ण होती है। यह वह शीलपारमिता है जो दु शील प्राणियों के परिपाचन मे पूणता को प्राप्त होती है। यह वह क्षान्तिपारमिता है जो धम नैरात्म्य मे पूणत्व प्राप्त करती है। यह वह वीयपारमिता है जो बोधि की दिशा मे प्रयत्न प्रारम्भ होने से सम्पन्न होती है। यह वह ध्यानपारमिता है जो काय चित्त के विवेक मे सम्पादित होती है। यह वह प्रज्ञापारमिता है जो सर्वज्ञ-ज्ञान में सम्पन्न होती है।

"धर्मयज्ञ वह शून्यताभावना है जिसकी पूणता सभी प्राणियो के परिपाचन में होती है। यह वह अनिमित्तभावना है जिसकी पूणता सभी सस्कृत (वस्तुओ) के परिशोधन मे होती है। यह वह अप्रणिहितभावना है जिसकी पूर्णता स्वेच्छा से पुनर्जन्म धारण करने मे होती है।

"धमयज्ञ वह बलपराक्रम है जिसकी पूर्णता सद्धम धारण करने मे होती है। यह वह जीवितेन्द्रिय (जीवनशक्ति) है जिसकी पूणता सग्रहवस्तुओ के सम्पादन मे होती

---

८२ तुलनीय धम्मपद, गाथा ३१४—

'सब्बदान धम्मदान जिनाति, सब्बरस धम्मरसो जिनाति।

सब्बरतिं धम्मरतिं जिनाति, तण्हक्खयो सब्ब दुक्खं जिनाति॥"

है। यह वह निर्मानता (अभिमान का अभाव) है जिसकी पूणता सभी प्राणियो का भत्य (सेवक) और शिष्य बनने मे होती है।[८३] यह काय, जीव एव अथ के वे लाभ है जिनकी पूणता असार से सार निकालने में होती है। यह वह स्मृति है जिसकी पूणता छ प्रकार की स्मृतियो में होती हैं।[८४] यह वह आशय है जिसकी पूणता सम्मोदनीय धम के द्वारा होती है। यह वह जीवनपरिशुद्धि है जिसको पूणता सम्यक प्रतिपत्ति मे होती है। यह वह आयपयपासन (अहतो का सत्कार) है जिसकी पूणता श्रद्धापूवक और प्रसन्नतापूर्वक रहने मे होती है। यह चित्त की वह गम्भीरता (चित्तनिष्पत्ति) है जिसकी पूर्णता साधारण व्यक्तियो (पृथग्जनो) के प्रति अद्वेष (अथवा प्रेम रखने) में होती है। यह वह अध्याशय है जिसकी पूणता प्रव्रज्या द्वारा होती है। यह वह श्रवण कौशल (ज्ञान कौशल्य) है जिसकी पूणता धमचर्या (बोधिचर्या प्रतिपत्ति) में होती है। यह वह अरण्यवास है जिसकी पूणता विशुद्ध-तत्त्व (अरण धर्म) के अवबोध मे होती है। यह वह एकान्त ध्यान है जिसकी पूणता बुद्धज्ञान की प्राप्ति में होती है। यह वह योगाचारभूमि है जिसकी पूणता सभी प्राणियों को क्लेश से मुक्त करने के योग में होती है।

"धमयज्ञ वह पुण्यसभार है जिसकी पूणता लक्षणों और अनुव्यजनो में होती है जो बुद्धक्षेत्र के अलकरण हैं, और उन सब उपायो मे होती है जिनसे सत्त्वो का परिपाचन होता है। यह वह ज्ञानसभार है जिसकी पूणता सभी प्राणियो को उनके चित्त और काय के अनुसार धर्मदेशना करने में होती है। यह वह प्रज्ञासभार है जिसकी पूणता उस एक नयज्ञान मे होती है जो सभी वस्तुओ के सम्बन्ध मे उपादेय और हेय के भेद से रहित है। यह वह कुशलमूलसभार है जिसकी पूणता सभी क्लेशो, आवरणों और पापो

८३ द्र० मेरी पुस्तक स्टडीज इन दि बुद्धिस्टिक कल्चर ऑफ इण्डिया (द्वितीय सस्करण) पृ ९१ ११६

बोधिचर्यावतार, ३ १८—
"दीपार्थिनामह दीप शय्या शय्यार्थिनामहम्।
दासार्थिनामह दासो भावेय सर्वदेहिनाम्॥"

८४ छ प्रकार की अनुस्मृतियाँ—१ बुद्धानुस्मृति, २ धर्मानुस्मृति, ३ सघानुस्मृति, ४ त्यागानुस्मृति ५, शीलानुस्मृति ६ देवानुस्मृति,। इनकी विस्तृत चर्चा के लिये देखिये विसुद्धिमग्ग, सातवा परिच्छेद।

(अकुशलधर्मों) के प्रहाण (परित्याग) में होती है। यह सभी बोधिपक्ष्य धर्मों का वह उत्पाद है जिसकी पूर्णता सभी कुशलधर्मों (पुण्यो) के सम्पन्न होने और सवज्ञ ज्ञान के अधिगम मे होती है। यह, कुलपुत्र, धमयज्ञ है। इस प्रकार के धमयज्ञ मे प्रतिष्ठित रहने वाला बोधिसत्त्व यज्ञदायक है (दानयज्ञ—कर्ता है) यज्ञ को भली भाँति करने वाला है और वह देवताओ सहित सारे लोक मे दक्षिणीय (दक्षिणा या दान देने योग्य) है।[८५]

"भगवन् इस प्रकार उस गृहपति द्वारा निर्देश दिये जाने पर उस ब्राह्मण परिषद में से दो सौ ब्राह्मणों ने अनुत्तर सम्यक सम्बोधि का चित्त उत्पन्न किया था। मैं भी श्रद्धा से आश्चर्यान्वित हुआ था मैंने उस सत्पुरुष के चरणो की व दना की, और एक लाख (स्वण मुद्राओं) के मूल्य का मुक्ताहार अपने कण्ठ से उतार कर भेंट किया। परन्तु उसने मुक्ताहार स्वीकार नहीं किया। तब मैंने उससे कहा—कृपा करके इस मुक्ताहार को स्वीकार कीजिये, और अपनी इच्छानुसार किसी को भी दे दीजिय। तब विमलकीर्ति ने उस मुक्ताहार को स्वीकार कर लिया और उसको दो भागों में विभाजित कर दिया। उसने मुक्ताहार का एक भाग उस यज्ञस्थान (दानशाला) में सभी के द्वारा निन्दित नगर के दरिद्रतम लोगो को दे दिया। दूसरा भाग उसने दुष्प्रसह तथागत को भेंट किया। तब उसने ऐसा प्रातिहार्य (चमत्कार) दिखाया जिससे उस परिषद् में उपस्थित सभी ने मरीचि नाम का लोकधातु और दुष्प्रसह नाम के तथागत को देखा। तथागत दुष्प्रसह के शीष मे वह मुक्ताहार मुक्ताहारो से निर्मित एक कूटागार (ऊपरी कक्ष) के रूप मे स्थित हो गया, उस मुक्ताहारकूटागार का आकार चतुस्र (चौकोर), चार स्तम्भों पर आधारित समभाग और सुविभक्त, दशनीय और विचित्र था। इस प्रकार का प्रातिहार्य दिखा कर विमलकीर्ति ने कहा— वह दायक जो नगर के दरिद्रतम लोगों को दान देता है और उन्हें तथागत के समान दक्षिणीय समझता है, वह दानपति जो बिना भेद भाव किये महाकरुणा से ओत प्रोत चित्त से दान देता है और विपाक (दान के पुण्यफल) की आकाक्षा नही रखता है वह धमयज्ञ परिनिष्पन्न करता है।

---

८५ प्राचीन बौद्ध धर्म ग्रन्थों में बहुधा श्रावकसघ को "आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो" कहा गया है। वास्तविक 'महायज्ञ' के बौद्ध स्वरूप के वणन के लिये द्र० दीघनिकाय, खण्ड १ (कूटदन्तसुत्त), पृ० १०९ १२७।

तब नगर के वे दरिद्रजन उस प्रातिहार्य को देख कर और उस धर्मोपदेश को सुनकर इतने प्रभावित हुये कि उन्होने अनुत्तर सम्यक-सम्बोधि का चित्त उत्पन्न किया। भगवन इसी कारण से मैं उस सत्पुरुष के रोग के विषय मे पूछने के लिये जाने को उत्साहित नही हूँ।

इसी प्रकार, उन सभी बोधिसत्त्वों और महासत्त्वों ने भी उस सत्पुरुष के साथ हुय अपने वार्तालाप का वणन किया, जो नाना प्रकार के उपदेश विमलकीर्ति ने दिये थे उन्हें सुनाया। सभी ने उसके पास जाने मे अपना अनुत्साह प्रगट किया।

तृतीय परिवर्त समाप्त।

४ अस्वस्थ बोधिसत्त्व का सन्तोषण

तदुपरान्त भगवान् बुद्ध ने मञ्जुश्री कुमारभूत से कहा—"मञ्जुश्री, लिच्छवि विमलकीर्ति के रोग के विषय मे पूछने के लिए जाओ।

मञ्जुश्री ने कहा—' भगवन्, लिच्छवि विमलकीर्ति एक विलक्षण (दुरासद) यक्ति है। वह गम्भीरनय (गम्भीर धर्म) मे प्रतिभान सम्पन्न है और यत्यस्त (वक्र व पेचीदे) वाक्यो तथा पुष्कल (सुन्दर व सुस्पष्ट) वाक्यो की याख्या (निष्पादन) मे कुशल है। उसकी भाषणकला का प्रवाह अविरल है, सभी प्राणियो मे उसकी बुद्धि अप्रतिहत है। उसने बोधिसत्त्व के सभी काय कर लिये हैं। उसने सभी बोधिसत्त्वो और प्रत्येकबुद्धो क गुह्य रहस्यो का भलीभाति अभ्यास किया है। वह मार के सभी स्थानो का विनिवर्तन करने मे (दूर हटाने या पीछे की ओर भगा देने मे) कुशल है। वह महान अभिज्ञाओ से क्रीडा करता है। प्रज्ञा और उपाय मे वह निष्णात् है। वह अद्वय धमधातु के सम्पूण क्षत्र की चरमसीमा पर पहुँचा हुआ है। वह धमधातु की एक व्यवस्था (यूह) के अन्तगत धम के अनन्त आकार प्रकार के यूहो का उपदेश करने मे निपुण है। वह सभी प्राणियो की सामथ्य (इन्द्रिय) के अनुसार (बोधि की) प्राप्ति की उपाय यवस्था का जानकार और पण्डित है। वह उपायकौशल्य की पूणता प्राप्त कर चुका है। प्रश्नो (के उत्तर) का निणय करने की क्षमता उसको प्राप्त है। यद्यपि उसका सन्तोषपूवक सामना करने के लिए मेरे अस्त्र शस्त्र (वमसनाह) बहुत लघु और कम (परीत्त) हैं, और मैं असमथ हूँ तथापि बुद्ध की सहायता से (बुद्धाधिष्ठानेन) वहाँ जाकर, आपके आनुभाव से यथाशक्ति उसके साथ बोलने की इच्छा करता हूँ।'

तदनन्तर, उस परिषद मे उन बोधिसत्त्वो, महाश्रावको, इन्द्रो, ब्रह्माओ, लोकपालो और देवी देवताओ के मन मे यह विचार उठा—'जहाँ मञ्जुश्री कुमारभूत और उस सत्पुरुष दोनो का वार्तालाप होगा, वहाँ अवश्य ही महाधमकीर्तिकथा (महान धम और उसके गुणों की चर्चा) होगी।'

तब एक लाख बोधिसत्त्व,[1] पाँच सौ श्रावक बहुत से इन्द्र, ब्रह्मा और लोकपाल और अनेको शतसहस्र देवता धर्मश्रवणार्थ मञ्जुश्री कुमारभूत के पीछे चल दिये। मञ्जुश्री कुमारभूत उन सभी बोधिसत्त्वो महाश्रावको, शक्रो, ब्रह्माओ, लोकपालो और देवताओ से परिवृत और पुरस्कृत होकर महानगरी वैशाली में प्रविष्ट हुए।

तब लिच्छवि विमलकीर्ति ने अपने मन म सोचा—"मञ्जुश्री कुमारभूत बहुत से अनुगामियो के साथ यहाँ आ रहे है इसलिए मेरा यह घर शून्य हो जाय।' शीघ्र ही उसका वह घर शू य (रिक्त) हो गया। घर का द्वारपाल भी नही रहा। उस घर में एक मात्र आसन वही था जिस पर अस्वस्थ विमलकीर्ति सोया हुआ था। उसके अतिरिक्त वहाँ कोई मच पीठिका या आसन कुछ भी नही दिखाई देता था।

तद तर मञ्जुश्री सपरिवार (अनुगामियो समेत) जहाँ विमलकीर्ति का आवास था वहाँ पहुचे। समीप जाकर, आवास मे प्रवेश किया और उस घर को शून्य देखा। वहाँ द्वारपाल भी नही था। जिस एकमात्र शय्या पर विमलकीर्ति पडा हुआ था उसके अतिरिक्त अ य कोई मञ्च पीठ (कुर्सी) अथवा आसन वहाँ पर नही था, तब लिच्छवि विमलकीर्ति ने मञ्जुश्री कुमारभूत को देखा और कहा—

मञ्जुश्री, आपका स्वागत है, मञ्जुश्री आपका सुस्वागत है। बिना आए आप यहाँ हैं बिना देखे आप दिखाई देते हैं, बिना सुने आप सुनाई देते हैं।'

मञ्जुश्री ने कहा —' गृहपति आप ठीक कहते हैं। जो आता है, वह पुन नही आता है, जो जाता है वह भी पुन नही जाता है। क्योकि, आने पर भी आने वाला ज्ञात नही होता है जाने पर भी जानेवाला ज्ञात नहीं होता है, जिस कारण से जो दिखाई देता है वह भी दिखाई देने वाला नही है।[2]

---

१ ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहा गया है कि उस परिषद् में ३२ बोधिसत्त्व उपस्थित थे। अन्य बोधिसत्त्व दूसरे बुद्धक्षेत्रों से आकर शामिल हो गये होंगे।

२ तुलनीय तथागत' (तथा + गत और तथा + आगत) के गमनागमन की चर्चा अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० २५३—'न खलु कुलपुत्र तथागता कुतश्चिदागच्छन्ति वा गच्छन्ति वा। न च कुलपुत्र धर्मता आगच्छति वा गच्छति वा। एवमेव कुलपुत्र नास्ति तथागता नामागमन वा गमन वा।"
द्र० मूलमध्यमककारिका, 'गतागतपरीक्षा' तथा 'तथागतपरीक्षा'।

' सत्पुरुष, आपकी कसी दशा है ? आपकी दशा सहनीय है ? क्या यह यापनीय (जीवित रहने योग्य) है ? आपके (शारीरिक) धातु हलचल तो नही करते है ? क्या आपकी बीमारियाँ (दु ख वेदनाए) घट रही है अथवा बढ रही हैं ? भगवान् बुद्ध ने भी आपके विषय मे पूछा है—क्या आपको अल्पबाधा है, अल्प आतक है, अल्प आतुरता है, थोडी सी बीमारी है, आपका दु ख थोडा है, चलने फिरने मे सहायता मिलती है शरीर मे बल है, निर्दोष सुख है, और क्या आप सुख के स्पश मे रह रहे हो ? गृहपति, आपका यह रोग कसे उत्पन्न हुआ है ? कितने समय से उत्प न हुआ है ? किस पर आश्रित है ? कब इसका शमन हो सकता है ?'

विमलकीर्ति ने कहा—''मञ्जुश्री जब तक अविद्या और भवतृष्णा है, तब तक मेरा रोग भी है। जब तक सभी प्राणियो का रोग है, तब तक मेरा रोग भी है। जब सभी प्राणी वीतरोग (निरोग) हो जायेंगे तब मेरा रोग भी नहीं होगा। क्योकि, मञ्जुश्री, बोधिसत्त्व के लिए प्राणी ही ससार स्थान हैं और रोग भी ससार स्थान मे निहित है। जब सभी प्राणी वीतरोग होते हैं तो बोधिसत्त्व भी स्वस्थ होता है। उदाहरणार्थ मञ्जुश्री, जब किसी श्रेष्ठि (सेठ) का एकमात्र पुत्र अस्वस्थ होता है तो उसके दोनो माता पिता भी अपने पुत्र की बीमारी के कारण अस्वस्थ हो जाते हैं। जब तक वह एकमात्र पुत्र स्वास्थ्य लाभ नही करता है, तब तक वे दोनों माता पिता भी दु खी रहते हैं। मञ्जुश्री, इसी प्रकार बोधिसत्त्व को सभी प्राणी प्रिय होते हैं, मानो कि प्रत्येक प्राणी उसका एकमात्र पुत्र है। सभी प्राणियो के रोगी होने से वह भी रोगी हो जाता है, प्राणियों के स्वस्थ होने पर वह भी स्वस्थ हो जाता है। मञ्जुश्री, आप मुझसे पूछते हैं— आपका यह रोग कसे उत्पन्न हुआ।' बोधिसत्त्वो का रोग उनकी महाकरुणा से उत्पन्न होता है।'

मञ्जुश्री ने पूछा—''गृहपति, आपका घर शू य क्यो है ?

आपके पास कोई सेवक (परिवार) क्यो नहीं है ?''

विमलकीर्ति ने कहा—''मञ्जुश्री, सभी बुद्धक्षत्र भी शून्य हैं ?''

मञ्जुश्री— 'वे किसके कारण शू य हैं ?''

विमलकीर्ति—' वे शू यता के कारण शू य हैं ?

मञ्जुश्री—''शू यता में शून्य क्या है ?

विमलकीर्ति—''सकल्प शू यता के कारण शून्य हैं।''

मञ्जुश्री—"क्या शून्यता सकल्प समर्थ है ?

विमलकीर्ति—"वह परिकल्प शून्य है और शून्यता के कारण शून्यता निर्विकल्पा है।'[3]

मञ्जुश्री—'गृहपति शून्यता की खोज कहाँ करनी चाहिये ?"

विमलकीर्ति—'मञ्जुश्री, शून्यता की खोज बासठ दृष्टियो मे करनी चाहिए।'

मञ्जुश्री—'बासठ दृष्टियो की खोज कहाँ करनी चाहिये ?"

विमलकीर्ति—"उनकी खोज तथागत की मुक्ति में करनी चाहिये।'[4]

मञ्जुश्री—'तथागत की मुक्ति की खोज कहाँ करनी चाहिये ?

विमलकीर्ति—"इसकी खोज सभी प्राणियों की प्रथम चित्तचर्या में करनी चाहिये।

"मञ्जुश्री, आप पूछते हैं 'क्या आपका कोई सेवक नहीं है।' परन्तु सभी मार और सभी विरोधी मेरे सेवक है। क्योकि सभी मार ससार (जन्म मरण पुनर्जन्म) के प्रशसक (हिमायती) हैं और ससार बोधिसत्त्व का सेवक है। विरोधी (तीर्थिक आचार्य) दृष्टियों के प्रशसक और प्रचारक हैं और बोधिसत्त्व दृष्टियो से अप्रभावित (अडिग) रहता है। अतएव सभी मार और सभी प्रवादी (विरोधी) मेरे सेवक हैं।"

मञ्जुश्री ने पूछा—"गृहपति, आपका रोग कैसा है ?'

विमलकीर्ति ने उत्तर दिया—'यह अरूप (रूपरहित) और अनिदर्शन (अदृष्ट) है ?"

मञ्जुश्री—'क्या यह रोग शारीरिक है अथवा मानसिक है ?'

विमलकीर्ति—"यह कायिक (शारीरिक) नही है। क्योकि काय स्वयं विविक्त है यह मानसिक भी नही है क्योंकि चित्त (मन) मायास्वभाव है।"

---

३ तुलनीय अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ १७७ "सर्वकल्पविकल्प प्रहीणो हि तथागत।"

४ द्र० बासठ दृष्टियों का वर्णन दीघनिकाय, ब्रह्मजालसुत्त, विचारणीय मूलमध्यमककारिका, १३ ८—

"शून्यता सर्वदृष्टीनां प्रोक्ता निःसरणं जिनैः।
येषां तु शून्यता दृष्टिस्तानसाध्यान् बभाषिरे॥"

मञ्जुश्री एव विमलकीर्ति के मध्य हुई बातचीत' (धर्मचर्चा एव तत्त्वचिन्तन) वाला यह परिवर्त प्रसग (पैराडॉक्स) और विरोधाभास (कन्ट्राडिक्शन) की दृष्टि से अति रोचक एव महत्त्वपूर्ण है। इस परिवर्त में मध्यमक खण्डन पद्धति का पुष्ट रूप निखरता है।

मञ्जुश्री—"इन चार धातुओ—पृथिवी, अप तेज, और वायु[५] में से कौन सा धातु उपद्रव करता है ?

विमलकीर्ति—"मञ्जुश्री सभी प्राणियो के जो कोई भी धातु रुग्ण हैं उ ही के कारण मैं भी अस्वस्थ हूँ।'

मञ्जुश्री[६]—"गृहपति, एक बोधिसत्त्व द्वारा किसी अस्वस्थ बोधिसत्त्व का समोदन (स तोषण) किस प्रकार किया जाना चाहिए ?'

विमलकीर्ति—"उसकी काय की अनित्यता का उपदेश करके समोदन करना चाहिए न कि निर्वेद अथवा विराग का उपदेश करके, काय दु खमय है, ऐसा कहकर स तोषण करना चाहिए न कि निर्वाण का रस समझाकर, काय आत्माहीन है, परन्तु सत्वो का परिपाचन करना है, ऐसा कहकर स तोषण करना चाहिये, काय शान्त है, ऐसा कहकर, न कि उपशम की महिमा कहकर स तोषण करना चाहिए अपने दुश्चरित्रो (पाप कर्मों) का वर्णन करने के लिए कहना चाहिए पर तु उनकी सक्राति (स्थाना तर) के लिए नही सतोषण करना चाहिये। अपनी अस्वस्थता के कारण उसको दूसरे रोगी प्राणियो के प्रति करुणा बढानी है, अनादि काल से स्वय भोगे हुए नाना प्रकार के दु खो का स्मरण करके प्राणियो के हित के लिए काय करने की स्मृति का अभ्यास करना है। इस प्रकार से उस रोगी बोधिसत्त्व का उत्साह वधन करना चाहिए। उससे कहना चाहिए कि उसको कुशलमूलो का साक्षात्कार करना है, आदि विशुद्धि (पूणशुद्धि) और तृष्णा के अभाव के लिए नित्य प्रयत्न करना है। इस प्रकार उसे चाहिये कि वह ऐसा भषज्यराज (चिकित्सकों का राजा) बनने की चेष्टा करे जो सभी रोगो का अभाव कर सके (सभी रोगो की चिकित्सा कर सके)। इस प्रकार एक बोधिसत्त्व द्वारा किसी अस्वस्थ बोधिसत्त्व का समोदन (स तोषण) किया जाना चाहिए जिससे वह प्रसन्न हो सके।"

मञ्जुश्री—'कुलपुत्र, अस्वस्थ बोधिसत्त्व को अपने चित्त में सघन ध्यान किस प्रकार करना चाहिए ?'

---

५ विमलकीर्तिनिर्देश के तिब्बती अनुवाद में आकाश' नामक पाँचवें धातु का उल्लेख त्रुटिपूर्ण एव प्रक्षिप्त समझना चाहिये।

६ तिब्बती संस्करण व उसके सस्कृत रूपा तर में यह प्रश्नकर्त्ता विमलकीर्ति है जो कि असगत है। हमने हिन्दी अनुवाद में सूत्र के चीनी सस्करण के अनुसार सुधार और परिवर्तन किया है। अतएव इस प्रश्न का उत्तर विमलकीर्ति द्वारा दिया जा रहा है।

विमलकीर्ति—"अस्वस्थ बोधिसत्त्व को स्वचित्त मे सघन ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—अनादि काल से चले आ रहे विपर्यास (भ्रांतिपूर्ण) कर्मों मे प्रवृत्त रहने के कारण व्याधि (बीमारी) उत्पन्न होती है। असत् सकल्पो से उत्पन्न क्लेशो के कारण आतुर (रोगी) नामक चीज् (धम) की उत्पत्ति होती है अत वास्तव मे कोई भी ऐसी अन्य चीज नही है (जिसके विषय में कहा जा सके कि वह रोगी हो गई है)। क्योंकि, यह शरीर (काय) चार महाभूतों से हुआ है इन धातुओ (महाभूतों) का कोई अधिपति (मालिक) अथवा जनक (कर्ता, पिता) नही है। इस आत्मारहित शरीर मे आत्म अभिनिवेश (काल्पनिक आत्मा के साथ मोह या आसक्ति) के अतिरिक्त परमाथत अस्वस्थ (रोगी) नाम की कोई वस्तु उपलब्ध नही है। अतएव यह सोचते हुए कि, यह आत्माभिनिवेश मिथ्या और असत है और मुझको रोग के मूल के ज्ञान मे विहार करना चाहिये, उस बोधिसत्त्व को आत्मा का विचार (आत्मसज्ञा) छोडकर 'धम का विचार (धमसज्ञा) म एक धम' हूँ, ऐसा विचार उत्पन्न करना चाहिये और इस प्रकार सोचना चाहिए यह शरीर अनेक धर्मों का सग्रह (सनिपात) है जब यह उत्पन्न होता है तो धर्म ही उत्पन्न होते हैं जब यह निरुद्ध होता है तो धम ही निरुद्ध होते हैं। इन धर्मों को न एक दूसरे का ज्ञान है और न इनमे एक दूसरे की वेदना ही है। जब वे उत्पन्न होते हैं तो मैं उत्पन्न हूँ ऐसा नही सोचते हैं जब वे निरुद्ध होते हैं तो मैं निरुद्ध हूँ' ऐसा भी नहीं सोचते हैं।[७]

धमसज्ञा का समुचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए बोधिसत्त्व को इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये—धर्मों की जो यह सज्ञा है अर्थात यह जो धमसज्ञा है वह भी विपर्यास (भ्रान्ति) है। विपर्यास एक महारोग (महामारी) है। मुझे उस महारोग से मुक्त होना है, इस व्याधि के प्रहाण के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

"यह व्याधिवजन (रोगमुक्त होना) क्या है ? यह अहकार और ममकार (मैं और मेरा) का वजन (त्याग) है। अहकार ममकार का वजन क्या है ? यह द्वय (द्वत भावना)

---

७ द्र० महापरिनिर्वाणसूत्र (इ वाल्दश्मिट द्वारा सम्पादित) खण्ड १ पृ० ३९८—

'अनित्या वत सस्कारा उत्पादव्ययधर्मिण ।
उत्पद्य हि निरुध्यन्ते तेषा व्युपशमस्सुखम् ॥"

तुलनीय दीघनिकाय (महापरिनिब्बानसुत्त), खण्ड २, पृ० १२०—

"अनिच्चा वत सखारा उप्पादवयधम्मिनो ।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेस वूपसमो सुखो ॥"

से मुक्ति (विसयोग) है। द्वय से मुक्ति क्या है ? यह अध्यात्म और बहिर्धा (आ तरिक और बाह्य) व्यवहार (समुदाचार) का अभाव है। आ तरिक और बाह्य व्यवहार का अभाव क्या है ? यह समता से चलायमान न होना (अचल), अस्थिर न होना (स्वचल) और विचलित न होना (व्यचल) है।

"समता क्या है ? यह आत्मा से लेकर निर्वाण तक सभी (वस्तुओ) की समता है। क्योंकि, आत्मा और निर्वाण दोनो मे शू यता के कारण समता है (दोनो ही शू य है, सम हैं)। ये दोनो शू य कसे हैं ? नाम-यवहार (-यवहारमात्र के नाम अथवा शब्द) होने से यह दोनो शू य हैं, अतएव वे अपरिनिष्प न हैं (दोनो मे कोई एक भी परमाथ पर आधारित नही है)। इसी प्रकार इस समता दशन से रोग और शू यता मे अभिन्नता है। शून्यता का रोग के अतिरिक्त अ य कोई आकार नही है और रोग ही शू यता है।

"अस्वस्थ बोधिसत्त्व को यह जानना चाहिये कि वेदना (यथाथ मे) निर्वेदना है, इसलिए उसको वेदना के निरोध का साक्षात्कार नही करना चाहिये। यद्यपि बुद्ध गुणों की पूर्ण प्राप्ति के साथ (सुख और दु ख) दोनों प्रकार की वेदनाए परित्यक्त हो जाती हैं, परन्तु उसके पश्चात् दुर्गतियो में पडे हुए सारे सत्त्वो के लिए महाकरुणा की पूर्णाहुति का भी अभाव हो जाता है। अतएव बोधिसत्त्व को इस प्रकार से सारे प्राणियो का पूर्णरूपेण ध्यान करना चाहिये जिससे कि व्याधि का निराकरण (निवारण) हो सके।

"इन प्राणियो को न कोई चीज (धर्म) देनी है और न कोई चीज इनसे दूर करनी है। उनको धम का उपदेश देना चाहिए जिससे वे उस आधार का ज्ञान प्राप्त कर सकें जिससे रोग उत्प न होता है। वह आधार क्या है ? अध्यालम्बन (बाह्यार्थ को पकडना, बाह्य वस्तुओ को सत् समझना वह आधार है। बाह्याथ पर आधारित जब तक आलम्बन (आधार) है तब तक रोग का आधार भी है। किसका अध्यालम्बन होता है ? जीवन के त्रिधातुओं (तीनों लोको) का अध्यालम्बन होता है। (अर्थात् कामधातु, रूपधातु और अरूपधातु के धर्मों को यथाथ समझ कर उनका गृहण होता है। अध्यालम्बन के आधार का परिज्ञान क्या है ? यह अनालम्बन और अनुपलब्धि है (अर्थात् बाह्याथ का उद्गृहण नही करना है, क्योकि उसकी सत्ता है ही नही)। जो अनुपलब्धि है वही अनालम्बन है। अनुपलब्धि क्या है ? जो यह आत्मदशन (आत्मदृष्टि, आन्तरिक, ग्राहक को देखना) और परदर्शन (परदृष्टि, बाह्य-ग्राह्य को देखना) है वे दोनो ही दशन-दृष्टियाँ असत् है, अनुपलब्ध हैं। अतएव यह अनुपलब्धि कहलाते हैं।

"मञ्जुश्री, इस प्रकार अस्वस्थ (आतुर) बोधिसत्त्व को जरा (बुढ़ापा), व्याधि (रोग) मरण (मृत्यु) और जाति (जन्म) पर विजय प्राप्त करने के लिए स्वचित्त को पूर्णरूपेण समाधिस्थ करना चाहिए। मञ्जुश्री, बोधिसत्त्वों का रोग इस प्रकार का होता है। यदि ऐसा नही होता तो (उनका) सारा व्यवसाय (बोधिसत्त्वचर्या का प्रयत्न) निरर्थक हो जाता। उदाहरणार्थ जिस प्रकार कोई व्यक्ति विरोधियो को परास्त करने के कारण वीर कहा जाता है, इसी प्रकार, जरा, व्याधि, मरण और दुःख का शमन करने के कारण कोई व्यक्ति बोधिसत्त्व कहलाता है।

'अस्वस्थ बोधिसत्त्व को इस प्रकार समझना और विचार करना चाहिये—जिस प्रकार मेरा रोग अभूत और असत् है उसी प्रकार सभी प्राणियो का रोग भी अभूत और असत् है। इस प्रकार समझते हुए और ऐसा प्रक्षण करते हुए वह प्राणियो के लिए महाकरुणा उत्पन्न करता है और अनुनयदृष्टिकरुणा से भ्रष्ट भी नही होता है। (अनुनयदृष्टि का वही अर्थ है जो अनुशंसदर्शन का है भावकतापूर्ण करुणा जिसमे लाभ प्राप्ति की इच्छा निहित होती है वह अनुशंसदर्शनकरुणा कहलाती है, ऐसी करुणा से बोधिसत्त्व को पथ भ्रष्ट होने का डर रहता है)। वह ऐसी महाकरुणा उत्पन्न करता है जो प्राणियो में (आत्मा का) आरोप किये बिना ही उनके आगन्तुक क्लेशो का प्रहाण करने के लिए होती है। क्योकि लाभ दृष्टि से ओत प्रोत महाकरुणा द्वारा बोधिसत्त्व के नाना जन्म व्यर्थ मे बीत जाते हैं। परन्तु लाभ दृष्टि के अभ्युदय से रहित महाकरुणा द्वारा बोधिसत्त्व के नाना जन्म व्यर्थ मे व्यतीत नही होते हैं। वह दृष्टियो सहित जन्म नही लेता है, वह प्रवृत्तियो और दृष्टियो से रहित चित्त के साथ जन्म लेता रहता है। वह मुक्त की भाँति जन्म धारण करता है वह मुक्त की भाँति उत्पन्न होता है। मुक्त की भाँति जन्म लेता हुआ और मुक्त की भाँति उत्पन्न होता हुआ वह बन्धन मे पडे हुए सत्त्वो को ऐसे धर्म का उपदेश करने की शक्ति और सामर्थ्य रखता है जिससे उन सत्त्वों की बन्धन से मुक्ति होती है। जैसा कि भगवान् ने कहा है—'यह सम्भव नही है कि स्वयं बन्धन में रहते हुए कोई व्यक्ति दूसरो को बन्धन से मुक्त कर दे। परन्तु जो स्वयं मुक्त है वह दूसरो को बन्धन से मुक्त कर सकता है, यह सम्भव है।'[८] इसलिए बोधिसत्त्व को मुक्ति के लिए कार्य करना चाहिये न कि बन्धन के लिए।

"बन्धन क्या है ? और मुक्ति क्या है ? उपाय के बिना (उपायकौशल्य अथवा दूसरो को मुक्त करने के विविध उपायो मे कुशल हुए बिना) भव मुक्ति के प्रयत्न करना बोधि

---

८ तुलनीय अंगुत्तरनिकाय, खण्ड १, पृ० २७–२८ (असम्भव बातों की सूची)।

सत्त्व का बन्धन है। उपाय के द्वारा अथवा उपाय सहित ससार (भव) के जीवन यापार (प्रवृत्ति) मे अवतरित होना बोधिसत्त्व के लिए मुक्ति है। उपाय रहित होकर ध्यान, समाधि और समापत्ति का स्वाद लेना बोधिसत्त्व का बन्धन है। उपाय के साथ ध्यान और समाधि का स्वाद लेना उसकी मुक्ति है। उपाय रहित प्रज्ञा बन्धन है। उपाय मे निष्ठित प्रज्ञा मुक्ति है। प्रज्ञा रहित उपाय बन्धन है। प्रज्ञा मे निष्ठित उपाय मुक्ति है।[१]

"उपाय रहित प्रज्ञा बन्धन क्या (कसे) है? केवल शून्यता, अनिमित्त और अप्रणिहित का सघन ध्यान करना, लक्षणो व अनुव्यजनो के विकास मे बुद्धक्षेत्रो के अलकरण मे, और सत्त्वों के परिपाचन मे सघन ध्यान न देना, ये सब उपाय रहित प्रज्ञा के उदाहरण है, और यह उपाय रहित प्रज्ञा बन्धन है।

'उपायनिष्ठ (उपाय सहित) प्रज्ञा मुक्ति कसे है? लक्षणो, अनुव्यजनो, बुद्धक्षेत्र के अलकरणो और सत्त्वपरिपाचन के कार्यों का चित्त में सघन ध्यान करना और शून्यता, अनिमित्त व अप्रणिहित पर पूर्ण दक्षता का प्रयत्न करना ये सब उपायनिष्ठ प्रज्ञा के उदाहरण हैं, और यह उपायनिष्ठ प्रज्ञा मुक्ति है।

'प्रज्ञा रहित उपाय बन्धन कसे है? (बोधिसत्त्व द्वारा) बोधि परिणामना (बोधि को समर्पित किये) बिना ही सारे कुशलमूलो का सग्रह (व्यापार) करना, और सभी दृष्टियो, क्लेशो भोग्य वस्तुओ (पर्युत्थान), अनुशयो (पश्चातापो), अनुनयो और घृणाओ की पकड मे स्थित रहना, यह सब प्रज्ञा रहित उपाय है जो बन्धन है।

'प्रज्ञानिष्ठ उपाय मुक्ति कैसे है? (बोधिसत्त्व द्वारा) सभी दृष्टियो, क्लेशो, भोग्य वस्तुओ, अनुशयो, अनुनयो, और शत्रुताओ पर पूर्ण विजय प्राप्त करना और सारे कुशल मूलो के सग्रह को बोधि (सम्यक सम्बोधि) के निमित्त समर्पित करके, सवथा नाम रहित भावना करना, यह बोधिसत्त्व का प्रज्ञानिष्ठ उपाय हैं जो उसकी मुक्ति हैं।

---

१ तुलनीय कमलशीलकृत प्रथमभावनाक्रम पृ १९४—
'यथायविमलकीर्तिनिर्देशे "प्रज्ञारहित उपाय उपायरहिता च प्रज्ञा बोधिसत्वाना बन्धनम्" इत्युक्तम्।' विमलकीर्तिनिर्देश का उल्लेख पृ० १९५ व १९८ में भी लिया गया है। तृतीय भावनाक्रम, पृ १३, २२ व २७ में भी आचार्य ने इस सूत्र का उल्लेख किया है। पृ० २२ में लगभग वही बात कुछ भिन्न शब्दों में उद्धत है। प्रज्ञा तथा उपाय दोनों के समवाय एव सामञ्जस्य से सम्बद्ध विमलकीर्ति का यह कथन अवधूत अद्वयवज्रपाद विरचित अद्वयवज्र संग्रह, पृ० २ में भी उद्धृत किया गया हैं।

मञ्जुश्री अस्वस्थ बोधिसत्त्व को इन धर्मों के विषय मे इस प्रकार ध्यानपूर्वक सोचना चाहिये। शरीर मन और रोग को अनित्य, दुःख शून्य और नरात्म्य जानना उसकी प्रज्ञा है। शरीर के रोगो को जीतने मे अपना जन्म व्यर्थ न करना, ससार मे पुन जन्म लेने का क्रम न तोडना और प्राणियो के हित के लिए सतत प्रयोग और उद्योग करना उसका उपाय है। काय, चित्त और रोग एक साथ अथवा परम्परागत रूप से न तो नवीन हैं और न पुराने ही हैं ऐसा जानना उसकी प्रज्ञा है। काय, चित्त और रोग के उपशम अथवा निरोध का प्रयत्न न करना उसका उपाय है।

मञ्जुश्री, इस प्रकार अस्वस्थ बोधिसत्त्व को अपने चित्त को निध्यप्ति (सघन ध्यान) मे लगाना चाहिए। परन्तु उसको न निध्यप्ति मे और न अनिध्यप्ति मे विहार करना चाहिए। क्योकि निध्यप्ति मे लगा रहना पृथग्जनो (साधारण जनो) का गुण है अनिध्यप्ति मे विहार करना श्रावको का गुण है।[1] इसलिए बोधिसत्त्व को न तो निध्यप्ति में विहार करना है और न अनिध्यप्ति मे ही रहना है। उक्त दोनो मे ही न विहार करना (अप्रतिष्ठित रहना) बोधिसत्त्वगोचर (बोधिसत्त्व का विहार क्षेत्र) है।

"जो पृथग्जन का गोचर (क्षेत्र) नही हैं और जो सन्त (अर्हत्) का गोचर नही हैं, वह बोधिसत्त्व का गोचर हैं। जो ससार गोचर होते हुए भी क्लेश-गोचर नही हैं, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो निर्वाण ज्ञान गोचर होते हुए भी अत्यन्त परिनिर्वाण गोचर (महापरिनिर्वाण गोचर) नही हैं, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो चतुर्विधमार देशना गोचर होते हुए भी सर्वमारविषय अतिक्रमण गोचर (चतुर्विध मार के राज्य से निर्मुक्त होने का क्षेत्र) हैं, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो सर्वज्ञता के ज्ञान की खोज का गोचर होते हुए भी अकाल (अनुचित समय) मे ज्ञान प्राप्ति का गोचर नही है, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो चार सत्यो का ज्ञान गोचर होते हुए भी अकाल में सत्यो का साक्षात्कार करने का गोचर नहीं है वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो अध्यात्म प्रत्यवेक्षण गोचर होते हुए भी (अन्तस्तल के गम्भीर प्रविचय का क्षेत्र होने पर भी, अर्थात् आत्मविश्लेषण द्वारा नरात्म्य का प्रविचय करने का क्षेत्र होने पर भी) स्वेच्छा से पुन ससार में अवतरित होने की अभिलाषा

---

१ चीनी अनुवाद के अनुसार निध्यप्ति में लगा रहना श्रावकों का धर्म और अनिध्यप्ति में विहार करना पृथग्जनों का धर्म है।

के परिग्रह का गोचर है[11] वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो अनुत्पाद प्रत्यवेक्षण गोचर होते हुए भी नियतप्राप्ति (निर्वाण प्राप्ति) मे प्रवेश करने का गोचर नही है, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो प्रतीत्य समुत्पाद गोचर होते हुए भी किसी भी दृष्टि विषय का गोचर नहीं है, वह बोधिसत्त्वगोचर है। जो सभी प्राणियो के साथ ससग का गोचर (क्षेत्र) होते हुए भी क्लेश और अनुशय का गोचर नही है, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो विवेक गोचर होते हुये भी काय और चित्त का क्षयस्थान-गोचर नही है, वह बोधिसत्त्व-गोचर है। जो त्रधातुक-गोचर होते हुए भी धमधातु को अलग करने का क्षेत्र (धमधातु व्यवच्छेदकरण गोचर) नही है वह बोधिसत्त्व गोचर है। (अर्थात् त्रधातुक-गोचर और धमधातु गोचर परस्पर अविच्छिन्न है और यही बोधिसत्त्व का विचार बिन्दु है)। जो शू यता गोचर होते हुए भी सभी गुणो की खोज का गोचर है, वह बोधिसत्त्व-गोचर है। जो अनिमित्तगोचर होते हुए भी सभी प्राणियो की मुक्ति पर आधारित व्यवसाय का गोचर है, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो अप्रणिहित-गोचर होते हुए भी स्वेच्छा से (जानबूझ कर) ससार की गतियो मे प्रगट होने का गोचर है, वह बोधिसत्त्व गोचर है।

"जो अभिसस्कार (धार्मिक काय यापार) रहित गोचर होते हुये भी सभी कुशल मूलो को निर तर उत्पन्न करने का गोचर है, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो छ पारमिताओ[12] का गोचर हैं, और जो सभी प्राणियो के मन और आचरण (चित्त चर्या) का पारायण गोचर है, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो छ अभिज्ञाओ[12] का गोचर होते हुये भी क्षीणास्रव[12] गोचर नही हैं वह बोधिसत्त्व गोचर हैं। जो सद्धमस्थान-गोचर (सद्धम के अनुसार जीवन यापन करने का क्षेत्र) हैं और जिसमे कुमाग (अधर्माचरण) दिखाई नहीं देता है, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो चार अप्रमेय गुणो (ब्रह्मविहारों)[12] का गोचर होते हुये भी ब्रह्मलोक में ज म प्राप्त न करने का गोचर है, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो छ अनुस्मृतियो[12] का गोचर हैं परन्तु किसी भी आस्रव का गोचर नहीं हैं वह बोधिसत्त्व गोचर हैं। जो ध्यान समाधि, और समापत्ति[13] का गोचर है, पर तु जहाँ ध्यान समाधि

---

११ ति बती सस्करण व उसके सस्कृत अनुवाद में 'है' के स्थान पर नहीं है' (मा यिन पा, नास्ति) का होना त्रुटिपूण है। यह वाक्य सूत्र के कुमारजीव कृत चीनी अनुवाद में उपलब्ध नहीं है। हमने प्रसग के अनुसार सुधार किया है।

१२ इन सभी पारिभाषिक श दोंकी सूचियाँ ऊपर की टिप्पणियों में दी जा चुकी हैं।

१३ ध्यान, समाधि, योग, एकाग्रचित्त एव शमथ समानार्थक हैं। समापत्तिका अर्थ प्राप्ति है। ध्यान चार प्रकार का कहा गया है —

समापत्ति के बल पर (अरूपावचर मे) पुनर्जन्म नहीं होता है, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो स्मृत्युपस्थान गोचर है, परन्तु जहाँ काय, वेदना, चित्त और धर्म का अतिरेक (अत्यधिक महत्त्व) नहीं हैं वह बोधिसत्त्व गोचर हैं। जो प्रहाण[१४] का गोचर है परन्तु जो कुशल और अकुशल के द्वयालम्बन का गोचर नहीं हैं वह बोधिसत्त्व गोचर है परन्तु जहाँ बिना प्रयत्न (अनाभोग से) ऋद्धिपाद वश मे हो जाते हैं वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो पञ्चेन्द्रिय गोचर है परन्तु जिसमे सभी सत्त्वो की इन्द्रियो के उत्तम मध्यम, व अधम होने का ज्ञान होता है, वह बोधिसत्त्व-गोचर है। जो पाँच प्रकार के बलो के साथ रहने का गोचर है परन्तु जिसमे तथागत के दश बलो की अभिरति होती है वह बोधिसत्त्व-गोचर है। जो सात बोध्यगो की परिनिष्पत्ति का गोचर है परन्तु जहाँ बुद्धि प्रविचय

---

१ सवितर्क सविचार विवेकज प्रातिसुख, २ अध्यात्मप्रमोदनात् प्रातिसुख, ३ उपेक्षास्मृति सप्रज यसुख, ४ उपेक्षास्मृतिपरिशुद्धिरदु खाशुखा वेदना।

चार प्रकार की समापत्तियाँ वस्तुत उपर्युक्त चार ध्यानोंके पश्चात् उत्तरोत्तर प्राप्त होने वाली ध्यानावस्थाएँ —

१ आकाशानन्त्यायतन, २ विज्ञानानन्त्यायतन, ३ आकिंचन्यायतन, ४ नैवसज्ञानासज्ञायतन। कभी कभी निरोध समापत्ति को शामिल करके ऊपर के चार ध्यानों सहित नौ समापत्तियाँ गिनाई जाती हैं।

ध्यानों व समाधियों की अनेक पेचेदी सूचियाँ भी बौद्ध शास्त्रोंमें मिलती हैं। द्र० **विसुद्धिमग्ग**, परिच्छेद १ ११ शूरगम, गगनगञ्ज, विमलप्रभ, एव सिंहविक्रीडित नामक भी चार समाधियाँ कही गयी हैं। **धर्मसग्रह** १३६।

एक अन्य सूची के अनुसार आलोकसमाधि, वृतासमाधि, एकादशप्रतिष्ठसमाधि तथा आनन्तर्य समाधि नामक चार समाधियाँ हैं **धर्मसग्रह**, १०१। उत्तरोत्तर प्रगति की दृष्टि से अनेक पालि ग्रन्थों में त्रिविध समाधि का उल्लेख मिलता है—परिकम्म समाधि, उपचार समाधि एव आपन्न समाधि।

लकावतारसूत्र, २ १५९ में चतुर्विध ध्यान इस प्रकार कहे गये हैं —

बालोपचारिक ध्यान, अर्थप्रविचय ध्यान, तथतालम्बन ध्यान एव ताथागत ध्यान।

बौद्ध ध्यान-योग की आधुनिक चर्चा के लिए द्र० एडवर्ड काज का ग्रन्थ **बुद्धिस्ट मेडीटेशन** तथा ञाणपोनिक थेर कृत **दि हार्ट ऑफ बुद्धिस्ट मेडीटेशन**।

१४ प्रहाण (सम्यक् प्रहाण, पालि पधान, बौद्ध सस्कृत प्रधान) के दो अर्थ हैं—१ छोडना २ प्रयत्न करना।

और ज्ञान का कौशल्य होता है, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो अष्टाग माग के आश्रय का गोचर है पर तु जिसमे कुमाग दिखाई नही देता है, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो शमथ और विपश्यना[१५] के आरम्भ और पूर्णत्व का गोचर है, पर तु जिसमे अत्य त उपशम के रूप मे पतन नही होता है वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो सभी धर्मों के अनुत्पन्न स्वभाव के ज्ञान का गोचर है पर तु जिसमे लक्षण अनु यजन और बुद्धकाय के विभूषणो की परिपू णता है वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो श्रावको व प्रत्येकबुद्धो के चरित्र दशन का गोचर है पर तु जिसमे बुद्ध धर्मो (सम्यक्सम्बुद्ध के गुणो) का निर तर विकास और व्यवहार होता है, वह बोधिसत्त्व गोचर है। जो अत्य त विशुद्ध स्वभाव वाले सभी धर्मों का अनुगमन करने का गोचर (क्षेत्र) है पर तु सभी प्राणियो के साथ उनकी अधिमुक्ति के अनुसार यवहार (ईर्यापथ) प्रगट करने का भी गोचर है, वह बोधिसत्त्व गोचर है। सभी बुद्धक्षेत्र अत्य त विनाश और सृजन से रहित है और आकाश की भाँति अन त स्वभाव वाले हैं, इस प्रकार के साक्षात्कार (अधिगम) का जो गोचर है वही बुद्धक्षेत्र के गुणो के विविध प्रकार की व्यव स्थाओ के अनेक रूपो को प्रगट करने का भी गोचर है, और बोधिसत्त्व गोचर है। जो सद धर्मचक्र प्रवतन करने का और महापरिनिर्वाण प्रगट करने का गोचर है, वही बोधिसत्त्वचर्या का कभी भी त्याग न करने का गोचर है, यह बोधिसत्त्व का गोचर है।[१६]

विमलकीर्ति द्वारा इस प्रकार उपदेश करने पर मञ्जुश्री कुमारभूत के साथ आये हुये उन देवताओ में से आठ हजार (देवताओ) ने अनुत्तर सम्यक सम्बोधि का चित्तोत्पाद किया।

चतुर्थ परिवर्त समाप्त

---

१५ विपश्यना(पालि विपस्सना)अ तर्दृष्टि अथवा प्रतिवेधमयी प्रज्ञा।

१६ यह अन्तिम पंक्तियाँ शिक्षासमुच्चय, पृ० १४५ में भी उद्धत हैं। शूरंगमसमाधिसूत्र में इस विषय की विस्तृत चर्चा है।

८ अचिन्तनीय विमोक्ष का निर्देश

उस समय आयुष्मान् शारिपुत्र के मन मे यह विचार उठा 'इस घर मे तो आसन (कुर्सियाँ) भी नही हैं ये बोधिसत्त्व और महाश्रावक कहाँ बठते हैं ?"

तब लिच्छवि विमलकीर्ति ने आयुष्मान् शारिपुत्र के मन मे उत्पन्न हुआ वह वितक (प्रश्न) जानकर, आयुष्मान् शारिपुत्र से कहा भद त शारिपुत्र क्या आप धर्म के लिये आए हैं अथवा आसन के लिये आए हैं ?'[1]

शारिपुत्र ने कहा—' मैं धम के लिये आया हूँ आसन के लिये नही आया हूँ।'

विमलकीर्ति ने कहा— भदन्त शारिपुत्र जो धम मे रुचि रखता है वह अपने शरीर में रुचि नही रखता है आसन की अभिलाषा रखने का प्रश्न ही कहाँ से आया ? भदन्त शारिपुत्र, जो धर्मकाम है (धम मे रुचि रखता है) वह रूप वेदना सज्ञा सस्कार और विज्ञान का इच्छक नही होता है। वह स्कन्धों, धातुओ और आयतनो का इच्छक नही होता है। जो धम का इच्छुक है वह कामधातु रूपधातु और अरूपधातु का इच्छुक नही है। जो धम का इच्छक है, वह बुद्ध के प्रति आसक्ति का इच्छक नही है, धम के प्रति आसक्ति का इच्छुक नही है और सघ के प्रति आसक्ति का इच्छुक नही है।

"भदन्त शारिपुत्र, जो धम का इच्छुक हैं, वह दु ख के परिज्ञान का इच्छुक नहीं ह दु ख की उत्पत्ति के प्रहाण का इच्छुक नही है दु ख निरोध का साक्षात्कार करने का इच्छुक नही है, और दु खनिरोधक माग का अभ्यास करने का इच्छुक नही हैं। क्योंकि, धम वास्तव मे अप्रपञ्च और अनक्षर है[2] (अर्थात धम प्रपञ्चातीत और शब्दातीत है)।

---

१ द्र सयुत्तनिकाय, खण्ड २ पृ २७४—'अत्तदीपा, भिक्खवे, विहरथ, अत्तसरणा अनञ्ञ सरणा, धम्मदीपा धम्मसरणा अनञ्ञसरणा।"

२ तुलनीय मूलमध्यमककारिका २५ २४—

'सर्वोपलम्भोपशम प्रपञ्चोपशमः शिव।
न क्वचित्कस्यचित्कश्चिद्धर्मो बुद्धेन देशित ॥"

प्रसन्नपदा, पृ २४६—

"अवाचोऽनक्षरा सवशून्या शान्तादिनिर्मला।
य एव जानति धर्मान् कुमारो बुद्ध सोच्यते ॥"

"जो व्यक्ति दुःख परिज्ञात करना चाहिये, दुःखसमुदय का प्रहाण करना चाहिये, दुःखनिरोध का साक्षात्कार करना चाहिये दुःखनिरोधमार्ग का अभ्यास करना चाहिये[3] इस प्रकार सोचता हुआ, यही सर्वाधिक करणीय है, ऐसा समझता है वह धर्मकाम नहीं है वह प्रपञ्चकाम है।

'भदन्त शारिपुत्र धर्म उपशान्त और प्रशान्त है। जो उत्पाद और विनाश के कार्य में लगा हुआ है, वह धर्मकाम नहीं है, विवेककाम नहीं है वह तो उत्पाद और विनाश का इच्छुक है। भदन्त शारिपुत्र, धर्म निर्मल (अरज) और पवित्र (विरज) है। यदि कोई किसी धर्म के साथ अनुनय (स्नेह) रखता है, भले ही वह धर्म निर्वाण है (यदि वह निर्वाण से भी अनुनय रखता है), तो वह धर्म का इच्छुक नहीं है, वह तो राग और मल का इच्छुक है (वह तो राग के मल का इच्छुक है)। धर्म कोई विषय (ग्राह्य वस्तु) नहीं है।[4] जो विषयगणना करता है (विषयों के पीछे चलता है) वह धर्मकाम नहीं है, वह विषयकाम है।

"धर्म अनाव्यूह (प्रयत्नरहित, स्वीकृतिरहित) और अनिर्व्यूह (प्रहाणरहित, अस्वीकृतिरहित) है। जो किसी धर्म (वस्तु) को ग्रहण करता है अथवा त्याग देता है, वह धर्मकाम नहीं है, वह ग्रहण और त्याग का इच्छुक (अभिग्रहण उत्सर्ग काम) है।

---

३ द्र० अध्याशयसंचोदनसूत्र (प्रसन्नपदा, पृ० २२५)—

"दुःखं परिज्ञातव्यम्, समुदयः प्रहातव्यः, निरोधः साक्षात्कर्तव्यः, मार्गो भावयितव्यः।"

संयुत्तनिकाय, खण्ड ४, पृ० ३६१–३६२—

"इदं दुक्खं अरियसच्चं परिञ्ञेय्यं ... इदं दुक्खसमुदयं अरियसच्चं पहातब्बं ... इदं दुक्खनिरोधं अरियसच्चं सच्छिकातब्बं ... इदं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं भावेतब्बं।"

४ तुलनीय वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, पृ० ३१—"योऽसौ तथागतेन धर्मोऽभिसम्बुद्धो देशितो वा, अग्राह्यः सोऽनभिलाप्यः। न स धर्मो नाधर्मः।" वही, पृ० ३६– "अचिन्त्योऽयं धर्मपर्यायः।" मज्झिमनिकाय, खण्ड १, पृ० ७—

"यो पि सो, भिक्खवे भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिक्खीणभवसंयोजनो सम्मदञ्ञा विमुत्तो सो पि निब्बानं निब्बानतो अभिजानाति निब्बानं निब्बानतो अभिञ्ञाय निब्बानं न मञ्ञति, निब्बानस्मिं न मञ्ञति, निब्बानतो न मञ्ञति, निब्बानं मे ति न मञ्ञति, निब्बानं नाभिनन्दति। तं किस्स हेतु? परिञ्ञातं तस्सा ति वदामि।"

'धम अनालय हैं (आलयरहित अथवा अनासक्त है) । जो आलय मे मस्त हैं, आलयरत हैं वे धमकाम नही हैं वे आलयकाम हैं । धम अनिमित्त (निमित्तरहित, चिन्ह रहित) और शून्य है । जिनका विज्ञान निमित्तो का अनुगमन करता है, वे धमकाम नहीं हैं वे निमित्तकाम हैं । धम समाज (अथवा सहवास) नही है, जो किसी धम के साथ विहार करते हैं (धम का सहवास करते हैं) वे धमकाम नही हैं वे विहारकाम (सहवास के इच्छक) हैं । धम दष्ट श्रुत मत व विज्ञात नही है (अर्थात् धम दिखाई देने, सुनाई देने विचार बनाने व ज्ञात होने वाली चीज नही है) । जो लोग दृष्ट, श्रुत, मत व विज्ञात मे विचरण करते हैं वे दष्ट श्रुत मत विज्ञात के इच्छक हैं, वे धम के इच्छुक नही हैं ।[५]

'भदन्त शारिपुत्र धर्म न सस्कृत है और न असस्कृत है ।[६] जो सस्कृत मे विचरण करते हैं, वे धमकाम नही है, वे सस्कृतकाम हैं । भदन्त शारिपुत्र, यदि आप धम की इच्छा करते हैं तो आपको सभी धर्मों की अनिच्छा करनी चाहिये (अर्थात यदि आपकी रुचि धम मे है तो अन्य सभी चीजो के प्रति आपकी अरुचि होनी चाहिये) ।

विमलकीर्ति के इस प्रवचन का निर्देश होने पर पाँच सौ देवताओ ने धर्मों के प्रति विशुद्ध धर्मचक्षु प्राप्त किया था ।[७]

---

५ तुलनीय भगवद्वचन प्रसन्नपदा पृ० ११५ में सुरक्षित—
"अनक्षरस्य धर्मस्य श्रुति का देशना च का ।
श्रूयते देश्यते चापि समारोपादनक्षर ।"
मज्झिमनिकाय, खण्ड १, पृ० १८०–१८१ में भगवान् तथागत ने भी "दिट्ठ सुत मुत विञ्ञात पत्त" की दृष्टि की भर्त्सना की है । द्र० **बोधिचर्यावतार पजिका**, पृ० १७७—
य पुन परमार्थ सोऽनभिलाप्य अनाज्ञेय , अपरिज्ञेय , अविज्ञेय , अदेशित , अप्रकाशित , यावदक्रिय , अकरण , यावन्न लाभो नालाभो न सुख न दु ख न यशो नायशो न रूप नारूपम् ।"

६ यद्यपि अन्यत्र बौद्धागमों में निर्वाण (= धर्म = बुद्ध = तत्त्व) को असस्कृत कहा गया है तथापि प्रज्ञापारमितानय के अनुसार और मध्यमक पद्धति के अनुसार 'सस्कृत' एव 'असस्कृत' 'ससार' एव 'निर्वाण' परस्पर सापेक्ष हैं । अतएव धर्म (परमार्थ) न सस्कृत है और न असस्कृत द्र **बोधिचर्यावतार पजिका**, पृ० १७५—"सर्वप्रपञ्चविनिमु क्तस्वभाव परमार्थसत्यस्वम्, सर्वोपाधिशून्यत्वात् कल्पनासमतिक्रान्तस्वरूप च शब्दानामविषय ।"

७ तुलनीय **विनयपिटक, महावग्ग**, पृ १५—"अथ खो आयस्मतो च वप्पस्स आयस्मतो च भद्दियस्स भगवता धम्मिया कथाय ओवदियमानान अनुसासियमानान विरज वीतमल धम्मचक्खु उदपादि ।"

तत्पश्चात् लिच्छवि विमलकीर्ति ने मञ्जुश्री कुमारभूत से कहा—"मञ्जुश्री, आपने दसो दिशाओ के असख्य शत सहस्र बुद्धक्षेत्रो की यात्रा (बुद्धक्षेत्रचारिका) की है। कौन से बुद्धक्षेत्र मे आपने सवश्रेष्ठ, सवगुणसम्पन्न, सिहासन देखे थे ?

मञ्जुश्री कुमारभूत ने लिच्छवि विमलकीर्ति से कहा— 'कुलपुत्र यहा से पूव दिशा की ओर बत्तीस गगा नदियो के बालुकणो की सख्या के बराबर बुद्धक्षेत्रो की यात्रा करने के पश्चात् एक लोकधातु आता है जिसका नाम मेरुध्वज लोकधातु है। उस लोकधातु मे मेरुप्रदीपराज नामक तथागत रहते है और उस लोकधातु को धारण करते हैं। मेरुप्रदीप राज तथागत के शरीर की ऊचाई का प्रमाण चौरासी हजार योजन है। उनके सिंहासन की ऊचाई का प्रमाण अठसठ सौ हजार योजन है। उस लोकधातु मे रहने वाले बोधिसत्त्वो के शरीर की ऊचाई का प्रमाण बयालीस सौ हजार योजन है, और उनके बठने के सिंहासनो की ऊचाई का प्रमाण चौतीस सौ हजार योजन है। कुलपुत्र, मेरुप्रदीपराज तथागत के मेरुध्वज नामक उस लोकधातु मे सर्वोत्तम और सर्वगुणसम्पन्न सिंहासन हैं।"

तब उसी क्षण मे, उसी प्रकार के (सिंहासनो के) अभिप्राय की इच्छा से, लिच्छवि विमलकीर्ति ने ऐसी ऋद्धि विधि का प्रदर्शन किया जिससे भगवान् मेरुप्रदीपराज तथागत ने अपने मेरुध्वज लोकधातु से बत्तीस हजार (अथवा बत्तीस सौ हजार) सिंहासन इस लोकधातु मे भेज दिये। वे सिंहासन इतने ऊचे, इतने विशाल तथा इतने दशनीय थे कि वहाँ पर उपस्थित बोधिसत्त्वो, महाश्रावकों, शक्रो ब्रह्माओ, लोकपालो तथा देवपुत्रो ने ऐसे सिंहासन पहले कभी नही देखे थे। वे सिंहासन ऊपर आकाश से आकर लिच्छवि विमलकीर्ति के घर मे स्थापित हो गये। वे बत्तीस हजार विविध प्रकार के सिंहासन उपद्रव अथवा जमघट किये बिना वहाँ व्यवस्थित हो गये और वह घर भी आवश्यकतानुसार विशाल होता दिखाई दे रहा था। उन सिंहासनो के कारण महानगरी वशाली भी आवृत नहीं होने पाई जम्बुद्वीप (भारतवष का महाद्वीप) और चतुर्द्वीप लोकधातु भी आवृत नही होने पाए। वे सभी (घर, नगर, द्वीप व महाद्वीप) पूववत ही दिखायी दे रहे थे।

तत्पश्चात लिच्छवि विमलकीर्ति ने मञ्जश्री कुमारभूत से कहा—"मञ्जुश्री आप इन सभी बोधिसत्त्वो के साथ सिंहासनों के अनुरूप अपने शरीरो का विस्तार करके सिंहासनासीन हो जाइये।'

तत्पश्चात जो अभिज्ञा सम्पन्न बोधिसत्त्व थे उन्होंने अपनी अपनी काय का विस्तार बयालीस सौ हजार योजन की ऊचाई तक कर लिया और उन विशाल सिंहासनो मे विराजमान हो गये। पर तु जो आदिकर्मिक (प्रारम्भिक अवस्थाओ तक ही पहुँचे हुए) बोधिसत्त्व थे, वे उन सिंहासनो मे नही बठ सके। तब लिच्छवि विमलकीर्ति ने उन बोधिसत्त्वो को ऐसा धर्मोपदेश दिया जिससे उनको पाँच अभिज्ञाओ की प्राप्ति हो गयी। अभिज्ञाए प्राप्त कर लेने पर ऋद्धि द्वारा उन्होने बयालीस सौ हजार योजन ऊचाई के अपने शरीरो का निर्माण किया और उन ऊचे सिंहासनो पर बठ गए।

परन्तु वे महाश्रावकगण उन ऊचे सिंहासनो पर बठने मे अभी भी असमर्थ थे। लिच्छवि विमलकीर्ति ने आयुष्मान शारिपुत्र से कहा—'भदन्त शारिपुत्र सिंहासन मे बठिये। शारिपुत्र ने कहा— कुलपुत्र, ये सिंहासन अत्यधिक ऊच है, मैं इनमे नही बठ सकता हूँ। विमलकीर्ति ने कहा— भदन्त शारिपुत्र उन भगवान् तथागत मेरुप्रदीप राज को प्रणाम कीजिये तब आप बठ सकेंगे। तब उन महाश्रावको ने भगवान् तथागत मेरुप्रदीपराज की अभिव दना की और सिंहासनो में बठ गय।

तत्पश्चात आयुष्मान् शारिपुत्र ने लिच्छवि विमलकीर्ति से कहा—"कुलपुत्र, आश्चय है कि इस प्रकार के ये कई हजार सिंहासन, जो अत्यधिक ऊचे हैं, इस छोटे से घर मे प्रविष्ट हो गय हैं (अर्थात् छोटे से मकान मे फिट हो गये हैं) और महानगरी वशाली इनसे ढकी नहीं गयी है जम्बुद्वीप के ग्राम, नगर निगम, राष्ट्र और राजधानियाँ तथा अन्य चतुमहाद्वीप लोकधातु भी कतई आवृत नही हुए हैं, देवताओ, नागों, यक्षो ग धर्वों, असुरो, गरुडो, किन्नरो और महोरगो के निवास स्थान भी बिना किसी बाधा के दिखाई देते हैं ये सभी जसे पहले थे उसी प्रकार दिखायी देते हैं।'

लिच्छवि विमलकीर्ति ने कहा— भद त शारिपुत्र, बुद्धो और बोधिसत्त्वो का एक विमोक्ष है जिसे अचिन्त्य (अचि तनीय) कहते हैं। उस अचिन्त्य विमोक्ष में विहार, करने वाला बोधिसत्त्व, पर्वतराज सुमेरु को जो कि इतना ऊचा और अत्यधिक विपुल (विशाल) है सरसों के एक दाने (बीज) के भीतर रख सकता है। ऐसा आश्चर्यमय काय वह सरसो के दाने को विशाल बनाये बिना और सुमेरु को घटाये बिना कर सकता है। और चातुमहाराजकायिक देवता (सुमेरु पवत के चतुर्दिक रहने वाले चतुर्महाराजाओ के देवलोको के निवासी) तथा त्रायस्त्रिंश लोक के देवता (पवतराज सुमेरु की चोटी पर निवास करने वाले देवता) यह भी नही जानते हैं कि हमे कहाँ रखा गया है। केवल वे

ही सत्त्व, जो ऋद्धि विधि द्वारा विनयशील (ऋद्धियुक्त विनय से सम्पन्न) होते हैं, यह जानते हैं और देखते हैं कि वह पर्वराज सुमेरु सरसो के भीतर रखा गया है। यही, भद त शारिपुत्र बोधिसत्त्वो का अचि तनीय विमोक्ष[८] के क्षेत्र मे प्रवेश है।

भद त शारिपुत्र, इतना ही नही, अचि त्यविमोक्ष में विहार करने वाला बोधि सत्त्व चारो महासमुद्रो के जल के स्कधो (ढरो) को अपनी त्वचा के एक रोमकूप (रोम अथवा लोम के छिद्र) मे डाल सकता है, और ऐसा करने पर भी मछली (मत्स्य), कच्छप, (कूम), शिशुमार (मकर), मेढक (मण्डूक), आदि अ य जल मे होने वाले प्राणियो की हिंसा नही होती है और नागो यक्षो ग धर्वों, असुरो को भी पता नही चलता है कि हम कहाँ डाल दिये गये हैं। यह सारी क्रिया उन सभी प्राणियो को बिना उपघात व सक्षोभ हुये दिखाई देती है।

'अचिन्त्य विमोक्ष मे विहार करने वाला बोधिसत्त्व इस त्रिसाहस्रमहासाहस्र लोक धातु को अपने दाहिने हाथ मे लेकर ऐसे घुमा सकता है (प्रवर्तित कर सकता है) जसे कि वह कुम्हार की चाक (कुम्हार का चक्र) हो, उसको गगानदी के बालुकणो के समान (असख्य) लोकधातुओ से दूर फेंक सकता है ऐसा होने पर भी उन लोकधातुओ मे रहने वाले प्राणी यह नही जानते हैं कि'हमे कहाँ से उठा दिया, हम कहाँ आ पहुँचे हैं। वह बोधिसत्त्व उसे पुन पकडकर अपने स्थान मे रख सकता है और यद्यपि यह सारी क्रिया दिखाई देती है, अपने स्थानो मे प्रतिष्ठित वे प्राणी अपने गमन और आगमन को नही जानते हैं।

भदन्त शारिपुत्र, इतना ही नही कुछ सत्त्व ऐसे हैं जिनके (धार्मिक) प्रशिक्षण और (अध्यात्मिक) विकास मे अप्रमय समय लगता है और कुछ सत्त्व ऐसे भी हैं जिनके

---

८ प्रोफेसर लामॉत का सुझाव है कि 'अचि त्यसूत्र' अथवा 'अचि त्यविमोक्षसूत्र' अवतसक कोटि के एक वैपुल्यसूत्र का नाम है। द्र० ल त्रेते दे ला ग्रन्द् वितु दे साजेसे दे नागार्जुन(महा प्रज्ञापारमिताशास्त्र), खण्ड १, पृ० ३११, गण्डव्यूहसूत्र पृ० ८२ ८९ में सम्भवत इस सूत्र का एक बडा अंश सुरक्षित है। गण्डव्यूहसूत्र, पृ० ८५ में, 'अशोकक्षेमध्वजविमोक्ष' को 'बोधिसत्त्वविमोक्ष' कहा गया है जिसका ज्ञान आशा उपासिका को प्राप्त था। सभी प्राणियों की बोधिसत्त्वचर्या को परिपूर्ण करने के लिये बोधिसत्त्व असाधारण, अप्रमेय एव अचिन्तनीय कार्य करने की सामर्थ्य अथवा स्वतन्त्रता प्राप्त करते हैं। यह उनका अचि त्यविमोक्ष कहलाता है।

प्रशिक्षण और विकास का समय सक्षिप्त किया जा सकता है। अचिन्त्य विमोक्ष विहारी बोधिसत्त्व, उन प्राणियो का प्रशिक्षण विकास करने के लिये जिनके प्रशिक्षण विकास मे अप्रमेय काल लगता है, एक सप्ताह को एक कल्प के समान (दीर्घ) दर्शा सकता है जिनके प्रशिक्षण विकास मे सक्षेप्य समय लगता है उनके प्रशिक्षण विकास के लिये वह बोधिसत्त्व एक कल्प को एक सप्ताह के समान (लघु) दर्शा सकता है। (इस प्रकार) जिन प्राणियो के प्रशिक्षण विकास मे अप्रमय समय लगता है उन्हें एक सप्ताह का व्यतीत होना एक कल्प का व्यतीत होना दिखाई देता है (अर्थात् एक सप्ताह के बीतने पर वे समझते है कि एक कल्प बीत गया है), और जिन प्राणियो के प्रशिक्षण विकास मे सक्षिप्त (अथवा सक्षेप्य) समय लगता है उन्हे एक कल्प के बीत जाने पर एक सप्ताह के बीत जाने का ज्ञान होता है (अर्थात् एक कल्प के व्यतीत हो जाने पर उनको एक सप्ताह के व्यतीत हो जाने का ज्ञान होता है)।

"इस प्रकार अचिन्त्य विमोक्ष विहारी बोधिसत्त्व एक ही बुद्धक्षेत्र में सभी बुद्धक्षेत्रो के गुणो के वैभवो (संग्रहो) को दिखा सकता है इसी तरह वह सभी सत्त्वो को अपने दाहिने हाथ की हथेली मे रखकर, चित्त की तीव्र गति से ऋद्धि विधि पूर्वक चलकर स्वय एक बुद्धक्षेत्र में रहते हुए भी उन्हें सभी बुद्धक्षेत्रों के दर्शन करवा सकता है। दसों दिशाओं में भगवान् बुद्ध को समर्पित किये गये पूजा के सभी साधनो को वह अपने एक रोमकूप मे प्रदर्शित कर सकता है और दसो दिशाओ मे जितने चन्द्रमा सूर्य और तारागणो के रूप है उन सब को वह अपने एक रोमकूप मे प्रदर्शित कर सकता है।

"दशो दिशाओ से वायुमण्डलों मे उठने वाले जो भी आँधी तूफान हैं उन सब को वह (बोधिसत्त्व) अपने मुख मे निगल सकता है। ऐसा करने पर भी उसकी देह नष्ट नही होती है, और उन सब बुद्धक्षेत्रो के तृण और वृक्ष (वनस्पतियाँ) प्रपतित नही होते हैं।

दसो दिशाओ के सभी बुद्धक्षेत्रो के लोगो का दहन करने वाली कल्पान्तकारिणी अग्निराशि को वह (बोधिसत्त्व) अपने उदर (पेट) म रखकर भी उसको जो कार्य करना है उसे करता है। नीचे की ओर बहती हुई गगा नदी के बालुकणो के समान बुद्धक्षेत्रो को पार करके, एक बुद्धक्षेत्र को ऊपर उठाकर वह गगा नदी के बालुकणो के समान बुद्धक्षेत्रो के ऊपर से होकर वह (बोधिसत्त्व) उस बुद्धक्षेत्र को ऊपर स्थापित कर सकता है। जिस प्रकार से महाबली पुरुष द्वारा सूची (सुई) की नोक (अग्र भाग) से एक बदरपत्र (बेर के

पत्त) को ऊपर उठाया जाता है उसी प्रकार से वह बुद्धक्षेत्र को ऊपर उठाकर रख सकता है ।

' इसी प्रकार अचिन्तनीय विमोक्ष मे विहार करने वाला बोधिसत्त्व सभी सत्त्वो का रूप धारण करता है वह चक्रवर्ती राजा का रूप धारण करता है, इसी प्रकार लोक पाल, इन्द्र, ब्रह्मा श्रावक प्रत्येकबुद्ध बोधिसत्त्व का, सभी प्राणियो का और बुद्ध का भी रूप धारण करता है ।[१]

'वह बोधिसत्त्व दसो दिशाओ के सभी प्राणियो के उत्तम, मध्यम, और हीन शब्दो से विभूषित (प्रसिद्ध) होता है । जो कोई भी शब्द सुनाई देते हैं या प्रगट होते हैं उन सब को वह बुद्ध के शब्द के स्वर मे परिवर्तित करके उन्हें बुद्ध, धर्म, व सघ के शब्दों मे रूपान्तरित कर देता है। इस प्रकार रूपान्तरित शब्दो और स्वरो से अनित्यता दुःख शून्य व नैरात्म्य शब्दो के स्वर निकालता है । दसो दिशाओ मे भगवान बुद्ध जिस प्रकार का भी उपदेश देते हैं उन्ही उपदेशो का उच्चारण वह सभी शब्दो—स्वरो से प्रगट करवाता है ।

''भदन्त शारिपुत्र, यह अचिन्तनीय विमोक्ष मे विहार करने वाले बोधि सत्त्व के विषय क्षेत्र का परिचय (प्रवेश) है जो मैंने आपको केवल सक्षिप्त रूप मे दर्शाया है ।

''भदन्त शारिपुत्र, अचिन्तनीय विमोक्ष मे विहार करने वाले बोधिसत्त्व के विषय प्रवेश का यदि तत्त्वत विस्तार पूर्वक वर्णन किया जाय तो एक कल्प से अधिक अथवा उससे भी अधिक समय लग जाता (अथवा लगेगा) ।'

तब स्थविर महाकाश्यप ने बोधिसत्त्व के अचिन्त्य विमोक्ष का उपदेश सुनकर, आश्चर्यान्वित और चकित होकर, स्थविर शारिपुत्र से कहा— आयुष्मान शारिपुत्र जिस प्रकार जन्म से अन्धे पुरुष के सामने सभी प्रकार की वस्तुऐं और क्रियाऐं दिखा देने पर भी वह जन्मान्ध पुरुष एक भी वस्तु नही देखता है, उसी प्रकार आयुष्मान शारिपुत्र, जब यह अचिन्तनीय विमोक्ष का द्वार दिखाया जाता है उस समय सभी श्रावकगण

---

१ अभिज्ञाओं के प्रयोग द्वारा अर्हतों व महाश्रावकों द्वारा भी कुछ असाधारण चमत्कारपूर्ण कार्य करने की सूचनाएँ पालि ग्रन्थोंमें उपलब्ध हैं ।

शूरंगमसमाधिसूत्र में भी कुछ तुलनीय सूचनाएँ मिलती हैं । द्र० भिक्षु प्रासादिक द्वारा अनूदित **एक्सेर्प्ट्स फ्रॉम दि शूरंगमसमाधिसूत्र**, पृ० १० **सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र** में तथागत शाक्यमुनि के अचिन्तनीय उपायकौशल्य का विशद वर्णन मिलता है ।

और प्रत्येकबुद्धगण जन्मान्ध पुरुष की तरह चक्षहीन होते हैं, और अचिन्त्य विमोक्ष का एक भी द्वार वे नही देखते हैं। इस अचिन्त्य विमोक्ष के निर्देश को सुनने के पश्चात विचारशील व बुद्धिमान् व्यक्तियो में कौन एसा है जो अनुत्तर सम्यक सम्बोधि का चित्तोत्पाद नही करता है ?

हम लोग, जिनकी शक्तिया (इन्द्रियाँ) दुबल (प्रणष्ट) हो गई है जले (भुने) हुए और सडे हुये बीज के समान हैं [1] यदि हम इस महायान के भाजन (स्वीकार करनेवाले) नही होते हैं तो अब और क्या कर सकते हैं? इस धर्मोपदेश को सुनकर हम सभी श्रावको और प्रत्येकबुद्धो को आतस्वर से क्रन्दन करते हुए (जोर की आवाज से रोते हुये) सम्पूण त्रिसाह्स महासाहस्र लोकधातु को (अपने रुदन के) शब्द से स्तब्ध कर देना चाहिये । (कदाचित् तात्पय यह है कि अभी तक बोधिसत्त्वचर्या न अपनाने का रो करके प्रायश्चित्त करना चाहिये) । सभी बोधिसत्त्वो को इस अचिन्त्य विमोक्ष के विषय मे सुनकर उसी प्रकार प्रसन्न होना चाहिये जिस प्रकार एक युवक राजपुत्र मुकुट लेकर प्रसन्नता के साथ राज्याभिषेक स्वीकार करता है और इस अचिन्त्य विमोक्ष के लिए अपनी अधिमुक्ति को और भी प्रबल करना चाहिये ।[11] जिसकी इस अचिन्तनीय विमोक्ष मे अधिमुक्ति और निष्ठा है उसके लिए सभी मार भी क्या कर सकते हैं ? ”

स्थविर महाकाश्यप द्वारा इस प्रकार उपदेश दिये जाने पर बत्तीस हजार देवताओ ने अनुत्तर-सम्यक सम्बोधि का चित्तोत्पाद किया था ।

तब लिच्छवि विमलकीर्ति ने स्थविर महाकाश्यप से कहा—“भदन्त महाकाश्यप दशो दिशाओ के अपरिमित लोकधातुओ में जो कोई भी मार हैं और मार का काय करते हैं वे सभी अचिन्तनीय विमोक्ष मे विहार करनेवाले बोधिसत्त्व ही हैं जो उपायकौशल्य

---

१ तुलनीय अङ्गुत्तरनिकाय, खण्ड १ पृ० १२५ १२६—

“सेय्यथापि भिक्खवे, बीजानि अखण्डानि अपूतीनि अवातापनहतानि
सारादानि सुखसयितानि सुखेत्ते सुपरिकम्मकताय भूमिया निक्खित्तानि ।”

थेरगाथा, गाथा ३६३—

“उपारम्भचित्तो दुम्मेधो सुणाति जिनसासन ।
न विरूहति सद्धम्मे खेत्ते बीज व पूतिक ।”

११ महाश्रावक शारिपुत्र द्वारा श्रावकयान की हीनता एव बोधिसत्त्वयान की महानता की स्वीकृति के लिये देखिये सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० ४४ ।

के द्वारा सत्त्वों के परिपाचन (बोधि प्राप्ति की दिशा मे प्रगति) के लिए मार के कार्यों का नाटक कर रहे हैं।

"भद त महाकाश्यप, दसो दिशाओ के अपरिमित लोकधातुओ के बोधिसत्त्वो के पास जो भिखारी (याचक) माँगने के लिये आते हैं और हाथ, पर कान, नाक, रक्त, स्नायु अस्थि, मज्जा, चक्षु शरीर का पहला भाग (पूवकाय), शीष, अग प्रत्यग राज्य (सिंहासन), राष्ट्र, प्रदेश भार्या, पुत्र, क या दास, दासी, अश्व हाथी, रथ, वाहन, सुवण, चाँदी मणि मोती, शङ्ख, स्फटिक, शिला, प्रवाल, वडय, अमूल्य मणि रत्न, आहार, पेय (पान), रस, वस्त्र माँगते हैं वे सभी याचक भी वास्तव मे अचि तनीय विमोक्ष मे विहार करनेवाले बोधिसत्त्व हैं जो उपायकौशल्य द्वारा इन बोधिसत्त्वो (देनेवाले बोधिसत्त्वो)का (परीक्षण करके) अध्याशय दृढ़ और परिपक्व करते हैं। क्योकि, भद त महाकाश्यप, अध्याशय की दृढता दिखाने के लिये ही बोधिसत्त्वगण कठोर (कटुक) तपस्याए करते हैं। साधारण लोग (पृथग्जन) विना अवसर दिये बोधि सत्त्वों से माँगने की शक्ति (अनुभाव) नही रखते हैं। अवसर दिये विना साधारण लोग बोधिसत्त्वो को न मार सकते हैं और न उनसे कोई चीज माँग सकते हैं।

भावाथ यह है कि सभी प्राणियो के हित, सुख, व परम कल्याण के लिये ज म ज मा तरो से प्रयत्न करते हुये अचि तनीय और विचारातीत विमुक्ति मे प्रविष्ट ये बोधि सत्त्वगण दाता के रूप मे याचको के हाथ लूटे जाते हैं और मारे भी जात हैं, याचक भी तो बोधिसत्त्व हैं जो दाताओ के अध्याशय की परीक्षा करते हैं और उनकी बोधिचर्या को दृढ व पुष्ट करते हैं। दाता तो बोधिसत्व हैं ही इसीलिये वे याचको को अवसर देते रहते हैं कि उ हें मारें पीटें और माँग माँग कर उ हें दरिद्र बना डालें। दाता बोधिसत्त्व स्वेच्छा से याचक बोधिसत्त्व को ऐसा करने का अवकाश (अवसर) देकर अपना दृढ़ाध्याशय और भी दृढ करते हैं। अ यथा जनसाधारण मे इतनी हिम्मत और शक्ति है ही कहाँ कि वे बोधिसत्त्व से कुछ ले सकें या बोधिसत्त्वों के सामने कोई माँग रख सकें। असख्य याचक बोधिसत्त्वो और असख्य दाता बोधिसत्त्वो का यह अनादि काल से चला आ रहा अन त देना लेना अचि तनीय विमोक्ष मे विहार करने का एक पहलू मात्र है।

"भद त महाकाश्यप, जिस प्रकार एक खद्योत (जुगनू) के द्वारा सूयमण्डल के प्रकाश मे आक्रमण नही किया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार भद त महाकाश्यप, विशेष अवसर प्रदान किये बिना जनसाधारण बोधिसत्त्व के निकट पहुँच भी नही सकते हैं, बोधि

सत्त्व पर आक्रमण तो कर ही नही सकते। भद त महाकाश्यप जिस प्रकार नागराज (हाथियो का राजा) कुजरमातग (श्रेष्ठतम हाथी) पर एक गदभ (गदहा) प्रहार करने मे असमथ होता है ठीक उसी प्रकार, भद त महाकाश्यप, जो स्वय बोधिसत्त्व नही है वह बोधिसत्त्व पर प्रहार (सबाधा) नही कर सकता है। पर तु जो स्वय बोधिसत्त्व है वह दूसरे बोधिसत्त्व को परेशान (सबाध) कर सकता है, और इस प्रकार एक बोधिसत्त्व द्वारा की गई परेशानी या आघात को दूसरा बोधिसत्त्व ही सहन कर सकता है।

'भद त महाकाश्यप, यह अचि तनीय विमोक्ष म विहार करनेवाले बोधिसत्त्वों के उपायकौशल्य के ज्ञान के बल का परिचय है।'

पचम परिवर्त समाप्त।

६ देवी

मजुश्री कुमारभूत ने लिच्छवि विमलकीर्ति से कहा— सत्पुरुष को सभी सत्वो को किस प्रकार देखना चाहिये ?

विमलकीर्ति ने कहा—' मजुश्री बोधिसत्त्व को सभी प्राणियो को उसी प्रकार देखना चाहिए जिस प्रकार एक विज्ञ परुष (ज्ञानी व्यक्ति) जल मे चन्द्रमा की परछाई को देखता है, अथवा जिस प्रकार एक मायाकार (जादूगर) माया से निर्मित मनुष्य को देखता है। मजुश्री, बोधिसत्त्व को सभी प्राणियो को दपण मे मुख की तरह देखना चाहिये, मगतृष्णा के जल की तरह देखना चाहिये, आकाश मे मेघराशि की तरह, फेनपिण्ड के प्रारम्भिक क्षण की तरह पानी के बुदबुदे के उदय व्यय (उत्पन्न होने व नष्ट होने) की तरह, केले के तने के सार (भीतरी खोखलेपन) की तरह, विद्युत् की चमक की तरह [1] पाँचवें धातु के समान[2], सातवें आयतन के समान [3] अरूपधातु मे रूप दशन के समान, जले हुये बीज से निकले हुये अकुर की भाँति, मण्डूक (मेढक) के रोम से बनी चादर (अथवा मण्डूक के केशो के ढक्कन) के समान, मरने के इच्छुक व्यक्ति की खल कूद मे रति के समान स्रोतापन्न साधु की सत्कायदृष्टि की भाति, सकृदागामी के तीसरे जन्म

---

१ पुद्गल-नैरात्म्य अथवा पुद्गल शून्यता का सिद्धान्त बौद्ध दशन का सुविदित सिद्धान्त है। महायान सूत्रों व शास्त्रों में पुद्गल शून्यता के समान धर्म शून्यता की भी प्रबल व्याख्या मिलती है। **प्रज्ञापारमिता हृदयसूत्र** में पुद्गल (पञ्चस्कन्ध) की और सभी धर्मों (वस्तुओं, भावनाओं, विचारों, घटनाओं) की शून्यता अथवा नि स्वभावता के उपदेश का सुन्दर साराश मिलता है। इस लघु सूत्र का हिन्दी अनुवाद हमारे **वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता** के सस्करण की भूमिका (पृ० १९ २०) में द्रष्टव्य है। तुलनीय **ललितविस्तर,** १३, ९७–९८ **प्रसन्नपदा,** पृ० १३, २४०

२ पाँचवाँ धातु आकाश है।

३ यहाँ से असम्भव बातों की सूची प्रारम्भ होती है। सातवाँ आयतन है ही नहीं, अरूप में रूप ही नहीं तो दशन किसके जले भुने बीज में अकुर नहीं निकलता, मण्डूक के रोम ही नहीं होते, इत्यादि।

के समान अनागामी की गर्भ में अवक्रान्ति (पुनर्जन्म) के समान, अर्हत् मे राग द्वेष और मोह होने के समान, क्षान्तिलाभी बोधिसत्त्व में मात्सर्य (ईर्ष्या), दुःशीलता (दुश्चरित्रता), व्यापाद (शत्रुता) और विहिंसा चित्त (हिंसक विचार) होने के समान, तथागत मे वासना होने के समान, जन्मान्ध द्वारा रूप-दर्शन के समान, निरोध समापत्ति प्राप्त सन्त द्वारा आनापान (श्वास प्रश्वास) करने के समान, आकाश मे पक्षी के मार्ग (पद) के समान, षण्डक के लाङ्गुलारोहण (नपुंसक पुरुष की लिंगेन्द्रिय के खडे होने) के समान, बाँझ (वन्ध्या) स्त्री को पुत्र प्राप्ति के समान, जागृत होने पर स्वप्न मे देखे हुये दृश्य को देखने के समान, सकल्प रहित मनीषी मे क्लेश होने के समान, अकारण ही अग्नि उत्पन्न होने के समान (अथवा विना इंधन के अग्नि जलने के समान), परिनिर्वाण प्राप्त सन्त की प्रतिसन्धि (पुनर्जन्म) के समान, बोधिसत्त्व को सारे प्राणी पहचानने चाहिये। मञ्जुश्री, इस प्रकार परमार्थत नैरात्म्य के प्रबोधन से बोधिसत्त्व को सभी सत्त्वो को देखना चाहिये। (अर्थात् जो बोधिसत्त्व नैरात्म्य की परमार्थता का ज्ञाता है वह सभी सत्त्वो की पृथक सत्ता को उपर्युक्त असम्भव दृष्टान्तो के समान मानता है)

मञ्जुश्री ने पूछा— 'कुलपुत्र, यदि बोधिसत्त्व सभी प्राणियो को इस प्रकार से (असत) समझता है (प्रत्यवेक्षण करता है) तो वह सभी प्राणियो के लिये महामैत्री (महान् प्रेमपूर्ण मित्रता की भावना) कैसे विकसित करता है ?'[४]

विमलकीर्ति ने उत्तर दिया— मञ्जुश्री, जब बोधिसत्त्व इस प्रकार से सभी प्राणियो को समझता है तो वह सोचता है, इस प्रकार धर्म को जानकर इन सभी प्राणियो को (धर्म का) उपदेश करता हूँ। इस प्रकार से वह सभी प्राणियो के लिये मैत्री उत्पन्न करता है जो (सभी प्राणियो की) सम्यक शरण है।

उपादानरहित (भौतिक आधार अथवा आसक्ति रहित) होने के कारण बोधिसत्त्व का मैत्री उपशान्त मैत्री है क्लेशो के अभाव के कारण उसकी मैत्री ज्वररहित (अताप) मैत्री है, तीनो कालो मे समतापूर्ण होने के कारण वह (सर्व उपमता मैत्री है (अर्थात् सर्वत्र उपमा के समान होने के कारण यथाभूत मैत्री है) दोषो के उत्थान के अभाव के कारण वह अविरोध मैत्री है आन्तरिक और बाहरी के बीच भेदरहित होने के कारण वह अद्वय मैत्री है सुनिष्ठित होने के कारण वह अक्षोभ्य मैत्री है। बोधिसत्त्व जो

४ तुलनीय मेत्तसुत्त—"मेत्त सब्बलोकस्मि मानस भावये अपरिमाण", सुत्तनिपात, गाथा १४९।

मत्री उत्पन्न करता है वह अभद्य है और उसका अभिप्राय (आशय) वज्र की तरह है इसलिये उसकी मत्री दृढ मत्री है स्वभाव से विशुद्ध होने के कारण वह विशुद्ध मत्री है, आशय की समता के कारण वह समता मैत्री है शत्रु (अरि) के हनन के कारण वह अर्हत् मत्री (अर्ह मत्री)[५] है (राग, द्वेष मोह अर्हत्व के शत्रु हैं) । प्राणियो का निरतर (अनाच्छेद्य) परिपाचन करने के कारण वह बोधिसत्त्व मत्री है । इतना ही नही, तथता साक्षात्कार करने के कारण वह तथागत मत्री है, प्राणियों को उनकी (अविद्या रूपी) निद्रा से जगाने के कारण वह बुद्ध मत्री है, स्वय अभिसम्बोधि प्राप्त करने के कारण[६] स्वयम्भू मैत्री है, एकरस (तुल्यरस) होने के कारण वह बोधि मत्री है अनुनय (प्रेम) और (शत्रुता) के प्रहाण (छोड देने) के कारण वह अनारोप मत्री है, महायान को व्यक्त करने के कारण वह महामत्री है, शू यता और नराात्म्य का प्रत्यवेक्षण करने के कारण वह परिखेद मत्री है (अक्षुण्ण मत्री है), आचाय मुष्टि अभाव के कारण वह धमदान मत्री है,[७] (आचाय मुष्टि उन आचार्यों के उपदेश करने के ढग को कहते हैं जो अपनी मुट्ठी में कुछ ज्ञान (सूचनाएँ) छिपा कर रखते थे और सबको समानरूप से ज्ञानदान नही करते थे) । दु शील (दुश्चरित्र) प्राणियों को सुधारने के कारण वह शील मत्री है अपनी

---

५ तुलनीय आलोकव्याख्या पृ० २७३—"हतारित्वात् अर्हन्त ।"
सुमंगलविलासिनी, खण्ड १, (नालन्दा १९७४) पृ० १६६—
अरीन अरान च हतत्ता पच्चयादीन अरहत्ता ।"
द्र० वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता पृ० ९३–९४ ।

६ तुलनीय महावग्ग, पृ० ११ 'सय अभिञ्ञाय,"
सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, १ ६७ "स्वय स्वयम्भुव"

७ तुलनीय दीघनिकाय, खण्ड २, प० ८०—
"नत्थान द, तथागतस्स धम्मेसु आचरियमुट्ठि"
ललितविस्तर, पृ० १३०—"बोधिसत्त्वो आचार्यमुष्टिविगतो ।" द्र काश्यपपरिवर्त, पृ० २ 'आचार्यमुष्टि' की परम्परा वैदिक परम्परा के आचार्यों की विशेषता थी । 'उप निषद्' शब्द का अर्थ 'गुप्त', 'गोपनीय', (गुरु के) निकट बैठकर (सीखने की विद्या) इस तथ्य का सूचक है कि वैदिक-उपनिषदिक धम दर्शन कुछ इने गिने लोगों के लिए था । जनसाधारण के लिए वैदिक ब्रह्मविद्या के द्वार बन्द थे । इसके प्रतिकूल बौद्धधर्म,दर्शन का प्रकाशन 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय" हुआ था । देखिये महावग्ग, पृ० २३ ललितविस्तर, पृ० २९३ ।

व दूसरो की रक्षा करने के कारण वह क्षाति मत्री है सभी सत्वो (की मुक्ति प्राप्ति) का भार (उत्तरदायित्व) वहन करने के कारण वह वीय मत्री है अनास्वाद के कारण (किसी भी वस्तु के स्वाद मे लिप्त न होने के कारण) वह ध्यान मैत्री है, उचित समय मे प्राप्ति (आसाधन) करवाने के कारण वह प्रज्ञा मत्री है (उचितकाल मे बोधि प्राप्ति का कारण होने से प्रज्ञा मत्री है), सवत्र द्वार दिखाने के कारण (सवत्र मुक्ति का माग खोलने के कारण) वह उपाय मत्री है परिशुद्ध अभिप्राय के कारण वह औपचारिक मिथ्याचार (कुहन) से रहित मत्री है पश्चाताप रहित होने के कारण वह निश्चल मत्री है, नगण (काम वासना) से रहित होने के कारण वह अध्याशय मत्री है अकृत्रिम होने के कारण वह मायाविमत्री (छल कपट रहित मत्री) है बुद्ध के सुख मे प्राणियो को प्रतिष्ठापित करने के कारण वह सुख मत्री है। मजुश्री बोधिसत्त्व की मत्री इस प्रकार की है।

मजुश्री ने पूछा—"बोधिसत्त्व की महाकरुणा क्या है?"

विमलकीर्ति ने उत्तर दिया—'अपने सभी सचित कुशलमूलो का सभी प्राणियों के लिये उत्सजन (त्याग) कर देना।"

मजुश्री—"बोधिसत्त्व की महामुदिता क्या है?"

विमलकीर्ति—"दान देकर प्रसन्नचित्त होना और प्रायश्चित्त न करना।'

मजुश्री—"बोधिसत्त्व की उपेक्षा क्या है?"

विमलकीर्ति—"दोनो का (अपना और दूसरो का) हितोपाजन करना।"

मजुश्री—"ससार से भयभीत (यक्ति) को किसका सहारा लेना चाहिये (अथवा, किस पर निभर करना चाहिये)? [८]

विमलकीर्ति— मजुश्री ससार से भयभीत, बोधिसत्त्व को बुद्ध माहात्म्य (बुद्ध गुणो की महानता) पर निभर करना चाहिये।"

मजुश्री— बुद्ध के माहात्म्य पर निभर करने (स्थित रहने) के इच्छुक (बोधिसत्त्व) को कहाँ स्थित रहना चाहिये?

विमलकीर्ति— बुद्ध माहात्म्य मे स्थित रहने के इच्छुक "यक्ति को सव सत्त्व समता में स्थित रहना चाहिये।"

---

८ यह प्रसिद्ध प्रश्नोत्तर अशत शिक्षासमुच्चय, प० ८० ८१ में उद्धृत है।

मजुश्री— 'सब सत्त्व समता मे स्थित रहने के इच्छुक व्यक्ति को कहाँ स्थित रहना चाहिये ?''

विमलकीर्ति—''सब सत्त्व समता मे स्थित रहने के इच्छुक (बोधिसत्त्व) को सभी प्राणियो के विमोक्ष के लिये स्थित रहना चाहिये ।''

मजुश्री—''सभी प्राणियो के प्रमोक्ष (निर्वाण) के लिये काय करने के इच्छुक (बोधिसत्त्व) को क्या करना चाहिये ?''

विमलकीर्ति—''सभी प्राणियो के प्रमोक्ष के लिये काय करने के इच्छुक (बोधि सत्त्व) को उन्हें क्लेशो से मुक्त करना चाहिये ।''

मजुश्री— 'क्लेशों का प्रहाण करने के इच्छुक को कसे प्रयोग (प्रयत्न) करना चाहिए ?'

विमलकीर्ति—''क्लेशो का प्रहाण करने के इच्छुक को मौलिक (योनिश) प्रयत्न करना चाहिये ।''

मजुश्री—''किस प्रकार प्रयत्न करने से वह मौलिक प्रयत्नशील (योनिश प्रयुक्त) होता है ?''

विमलकीर्ति—''अनुत्पाद और अनिरोध का अभ्यास करना योनिश प्रयोग (मौलिक अथवा आमूल प्रयत्न) करना है ।''

मजुश्री—''अनुत्पन्न (अनुदय) क्या है, और अनिरोध क्या है ?'

विमलकीर्ति—''अकुशल (अपुण्य) अनुदय है, और कुशल (पुण्य) अनिरोध है ।'

मजुश्री—''कुशल और अकुशल का मूल क्या है ?''

विमलकीर्ति— 'सत्कायदृष्टि (शाश्वत आत्मा का विचार) कुशल और अकुशल का मूल है ।''

मजुश्री—''सत्कायदृष्टि का मूल क्या है ?'

विमलकीर्ति— 'सत्कायदृष्टि का मूल राग है ।'

मजुश्री—''राग का मूल क्या है ?''

विमलकीर्ति—''राग का मूल अभूतपरिकल्प है (असत की सत् के रूप मे कल्पना करना राग का मूल है) ।''[१]

मजुश्री—"अभूतपरिकल्प का मूल क्या है?"

विमलकीर्ति—"अभूतपरिकल्प का मूल विपर्यासग्रस्त विचार (सज्ञा) है।'

मजुश्री— 'विपर्यासग्रस्त विचार का मूल क्या है?"

विमलकीर्ति— विपर्यासग्रस्त विचार का मूल केवल निराधारता (अप्रतिष्ठान) है।'

मजुश्री—"निराधारता का मूल क्या है?

विमलकीर्ति—"मजुश्री जो निराधार (बेबुनियाद) है उसका मूल कुछ भी नही है। (न तस्य किंचि मूलम्)। अतएव सभी वस्तुए निराधारता पर आधारित हैं (अप्रष्ठिानमूलप्रतिष्ठिता सवधर्मा)"[१०]

उस घर मे एक स्थान पर एक देवी रहती थी जो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो की इस धमदेशना को सुनकर प्रसन्नता से गद्गद् चित्त होकर मूर्तरूप मे वहाँ पर प्रकट हुई। उसने बोधिसत्त्वो-महासत्त्वो तथा महाश्रावको के ऊपर दवी पुष्पो की वर्षा की। जो पुष्प बोधिसत्त्वो के शरीरो मे विकीर्ण हुये थे वे भूमि पर गिर गये। परन्तु जो पुष्प महाश्रावको के शरीरो पर विकीण हुये थे वे वही पर चिपक (जुड) गये और भूमि पर नही गिरे। महाश्रावको ने ऋद्धि विधि का प्रयोग करके प्रातिहाय (चमत्कार) द्वारा पुष्पो को अपने शरीरों से गिरा देने का प्रयत्न किया, फिर भी वे पुष्प नही गिरे। तब उस देवी ने आयुष्मान् शारिपुत्र से कहा—"भदन्त शारिपुत्र, आप इन पुष्पो को क्यो हिला रहे हैं?"

शारिपुत्र ने उत्तर दिया—"देवि, ये पुष्प (मेरे लिये) उपयुक्त नही है, इसीलिये मैं इन्हें हटा रहा हूँ।'[११]

देवी ने कहा— 'भदन्त शारिपुत्र, ऐसा मत कहिये। क्योकि ये पुष्प वास्तव मे उपयुक्त हैं। क्योकि ये पुष्प निर्विकल्प हैं निर्विकल्पो मे स्थविर शारिपुत्र कल्पना और विकल्प सहित हैं। भदन्त शारिपुत्र, इस प्रकार अच्छी तरह उपदिष्ट धम-विनय मे जो लोग प्रव्रजित हुये हैं उनके लिये कल्पना करना और विकल्प मे पडना उचित नहीं है। कल्पना और विकल्पना से जो मुक्त और निर्विकल्प है वही ठीक (उपयुक्त) है।[१२]

---

१० ऊपर के प्रश्नोत्तर **शिक्षासमुच्चय,** प० १४ में उद्धत हैं।

११ ध्यान रहे कि भिक्षुओं के दस शिक्षापदों में आठवाँ शिक्षापद इस प्रकार है—"माला गन्ध विलेपन धारण मण्डन विभूसनट्ठाना वेरमणिसिक्खापद समादियामि।"

१२ तुलनीय **अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता,** प० १७७—

"भदन्त शारिपुत्र, देखिये ये पुष्प बोधिसत्त्वो महासत्त्वो के शरीरो से नही चिपकते (जुडते) हैं, इसका कारण यह है कि उन्होने कल्प और विकल्प का प्रहाण (परित्याग) कर दिया है। उदाहरणार्थ, भयभीत मनुष्यो पर अमानुषी जीव (हानिकारक भूत प्रेत) हावी (प्रभावकारी) होते हैं (परन्तु निर्भीक मनुष्यो पर नही)। इसी प्रकार ससार से भयभीत मनुष्य रूप, शब्द, गन्ध, रस एव स्प्रष्टव्य वस्तुओ के प्रभाव के अधीन होते हैं। जो सभी प्रकार के क्लेशो और सस्कारो से रहित हैं उनका रूप शब्द, गन्ध, रस एव स्प्रष्टव्य वस्तुए क्या कर सकती हैं ? जिनकी वासना छूटी नही है (जिनकी वासना का प्रहाण नही हुआ है) उनसे पुष्प भी चिपक (जुड) जाते हैं। जिनकी वासना प्रहीण (नष्ट) हो गई है उनके शरीर मे पुष्प नही चिपकते। अतएव, जिन्होने सभी वासनाओ को छोड दिया है, उनके शरीर मे पुष्प आसक्त नही होते।'

तब आयुष्मान् शारिपुत्र ने देवी से कहा— 'देवि, आप इस घर मे कितने समय से रहती हैं ?"

देवी ने उत्तर दिया— "मैं यहाँ पर उतने ही समय से रहती हूँ जितने समय से स्थविर विमोक्ष मे रहते हैं।"

शारिपुत्र—"आप इस घर मे थोडे समय से ही रहती हैं।"

देवी—"स्थविर को विमोक्ष मे रहते हुये कितना समय हो गया है ?'

इस (प्रश्न) पर स्थविर चुप हो गये।

देवी—"स्थविर, आप तो 'महाप्रज्ञावन्तों मे अग्रणी' हैं,[१३] मौन क्यो हैं ? अब इस प्रश्न का उत्तर क्यो नही दे रहे हैं ?"

"सर्वकल्पविकल्पप्रहीणो हि तथागत ।"

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, पृ ३५ —

"सर्वसंज्ञापगता हि बुद्धा भगवन्त ।"

तथागतगुह्यसूत्र (प्रसन्नपदा, पृ० २३६) —

"तथागतो न कल्पयति न विकल्पयति। सर्वकल्पविकल्पजालवासनाप्रपञ्चविगतो हि शान्तमते तथागत ।"

१३ तुलनीय अङ्गुत्तरनिकाय, खण्ड १, पृ० २३—

"एतदग्ग, भिक्खवे, मम सावकान भिक्खून महापञ्ञान यदिद सारिपुत्तो।"

थेरगाथा, गाथा १ १४—" पञ्ञापारमित्त पत्तो महाबुद्धि महामति।"

शारिपुत्र—"देवि, विमोक्ष अनभिलाप्य है (चर्चा का विषय नही है), उसके विषय मे क्या कहा जाय मैं नही जानता हूँ।"[१४]

देवी—"स्थविर ने जो अक्षर (शब्द) कहे हैं, वे सभी विमोक्ष लक्षण हैं। (उनका स्वभाव विमोक्ष है)। क्योकि, जो विमोक्ष है वह न अन्तगत है, न बहिर्धा (बाहर) है और न इन दोनो मे अनुपलब्ध ही है। इसी प्रकार अक्षर (शब्द) न भीतर है, न बाहर है, और न भीतर व बाहर दोनो से अन्यत्र ही उपलब्ध हैं। अतएव, भदन्त शारिपुत्र, अक्षरो को त्यागकर के विमोक्ष की ओर सकेत मत कीजिये। (अक्षरो व शब्दो का बहिष्कार करके विमोक्ष का प्रतिवेदन न कीजिये)। क्योकि, उत्तम विमोक्ष सभी धर्मो की समता है।[१५]'

शारिपुत्र ने कहा—'देवि, राग द्वेष मोह की अनुपस्थिति क्या विमोक्ष नही है?'[१६]

देवी ने कहा—'राग द्वेष मोह की अनुपस्थिति विमोक्ष है, यह अभिमानियो का उपदेश है। जो अभिमान रहित हैं उनके लिये तो राग, द्वेप और मोह की स्वभावता विमोक्ष है"।

शारिपुत्र—"साधु, देवि, आपने क्या प्राप्त किया है, क्या साक्षात्कार किया है, जिससे आप ऐसी प्रतिभानवती हैं?

---

१४ तुलनीय सुत्तनिपात, गाथा १ ७६ (नालन्दा सस्करण, पृ० ४३०)—
अत्थंगतस्स न पमाणमत्थि
येन न वज्जु त तस्स नत्थि।
सब्बेसु धम्मेसु समूहतेसु
समूहता वादपथा पि सब्बे।"

१५ तुलनीय भगवद्वचन प्रसन्नपदा, प० १४८—
"शून्यमाध्यात्मिक पश्य पश्य शून्य बहिर्गतम्।
न विद्यते सोऽपि कश्चिद्यो भावयति शून्यताम्।"
द्र० सद्धर्म पुण्डरीकसूत्र, पृ० ९१-
'सवधर्मसमतावबोधाद्धि, काश्यप, निर्वाणम्।"

१६ तुलनीय सयुत्तनिकाय, खण्ड २, प० २६२—
"यो, भिक्खवे, रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो। अय वुच्चति, भिक्खवे, परिञ्ञा।"
पालि परिञ्ञा = सस्कृत परिज्ञा = पर्णज्ञान = बोधि = मोक्ष = निर्वाण

देवी—'भदन्त शारिपुत्र, मैने कुछ भी प्राप्त नही किया है, कुछ भी साक्षात्कार नही किया है। अतएव मेरा प्रतिभान ऐसा है। जो यह सोचते हैं, हमने प्राप्त कर लिया है, साक्षात्कार कर लिया है, उनको इस भलीभाँति उपदिष्ट धर्म—विनय मे अतिमानिक (अत्यन्त अभिमानी) कहा जाता है।

शारिपुत्र— देवि क्या आप श्रावकयानी हैं अथवा प्रत्येकबुद्धयानी हैं, अथवा महायानी हैं ?" (आप श्रावकयान को मानती हैं, या प्रत्येकबुद्धयान को, या महायान को ?)।

देवी—' जब श्रावकयान का उपदेश करती हू तब मैं श्रावकयानी हूँ, जब द्वादशाग प्रतीत्यसमुत्पाद के प्रवेश का उपदेश करती हूँ तब मैं प्रत्येकबुद्धयानी हूँ, महाकरुणा का परित्याग कभी भी नही करती हूँ इसलिये मैं महायानी हूँ।[17]

'तथापि, भदन्त शारिपुत्र, जिस प्रकार चम्पक वन (चम्पक के पुष्पो के उद्यान) मे प्रविष्ट होकर एरण्ड (रेंडी) की गन्ध नही सूघी जा सकती है, चम्पक वन मे केवल चम्पक की ही गन्ध (सुगन्ध) सूघी जाती है उसी प्रकार, भदन्त शारिपुत्र, भगवान् बुद्ध के धर्म के गुणों की सुगन्ध से परिपूर्ण इस घर मे रहने वाले को श्रावको और प्रत्यकबुद्धो की गन्ध (महक) का अनुभव नही होता है।[18]

---

१७ सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० ५२ ५३ में श्रावकयान, प्रत्यकबुद्धयान एव महायान (बोधिसत्त्वयान) की उपमा क्रमश अज रथ, मृग रथ, एव गो रथ से की गई है। यानों की त्रिविध योजना महाकारुणिक तथागत का सत्त्वपरिमोचनार्थ किया गया उपायकौशल्य मात्र है। वस्तुत यान एक ही है क्योंकि बोधि एक है। ऐसा भी इस सूत्र में उपदिष्ट है। द्र० वही, पृ० २७—एकमेवाहं शारिपुत्र यानमारभ्य सत्त्वाना धर्म देशयामि यदिद बुद्धयान। न किंचिच्छारिपुत्र द्वितीय वा तृतीय वा यान सविद्यते।"
आचार्य नागार्जुन अथवा राहुलभद्र द्वारा विरचित प्रज्ञापारमितास्तुति, श्लोक १६ में कहा गया है—

"बुद्धै प्रत्येकबुद्धैश्च श्रावकैश्च निषेविता।
मार्गस्त्वमेका मोक्षस्य नास्त्य य इति निश्चय ॥"

महायान को एकयान, बुद्धयान, बोधिसत्त्वयान तथा पारमितानय भी कहा जाता है।

१८ तुलनीय सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, २ ५४ ५५—
'एक हि यान द्वितीय न विद्यते ततीय हि नैवास्ति कदाचि लोके।

"भद त शारिपुत्र, जो इन्द्र, ब्रह्मा, लोकपाल, नाग यक्ष ग धव, असुर गरुड, किन्नर और महोरग गण इस घर मे रहते है, वे भी इस सत्पुरुष (विमलकीर्ति) का धर्मोपदेश सन कर, बुद्ध के धम के गुणो की सुग ध से प्रेरित होकर बोधिचित्तोत्पाद मे अग्रसर होते हैं।

भद त शारिपुत्र, इस घर मे मैंने बारह वर्षो से महामत्री और महाकरुणा से ओतप्रोत और बुद्ध के अचि तनीय गुणो से परिपूण धमचर्चा के अतिरिक्त कभी भी श्रावको तथा प्रत्येकबुद्धो से सम्ब धित कथा नही सुनी है। भद त शारिपुत्र इस घर मे आठ प्रकार की आश्चयजनक और अनोखी घटनायें सदा ही प्रकट होता हैं। कौन सी आठ घटनाए ?

'इस घर मे सुवणवण की प्रभा (स्वर्ण के रग को ज्योति) सदव विद्यमान रहती है जिसके फलस्वरूप रात्रि और दिन का अ तर करना कठिन है। इस घर मे च द्रमा और सूय न पहचाने जाते हैं और न दिखाई देते हैं। यह प्रथम आश्चयजनक और अनोखा गुण इस घर का है।

'भद त शारिपुत्र, जो इस घर मे प्रवेश करते हैं, उनके सभी क्लेश इस घर में प्रविष्ट होने के साथ ही, उनको सताना छोड देते हैं (इस घर मे प्रवेश करने के क्षण से ही लोग अपने क्लेशो की बाधा से मुक्त हो जाते हैं)। यह इस घर का दूसरा आश्चय जनक और अनोखा गुण है।[१९]

"भद त शारिपुत्र इन्द्र, ब्रह्मा, लोकपाल, तथा सभी बुद्धक्षेत्रो से आये हुये बोधि सत्त्व सदा ही इस घर में रहते हैं (अर्थात् ये देवतागण और बोधिसत्त्वगण इस घर को कभी भी खाली नहीं रखते हैं)। यह इस घर का तीसरा आश्चयजनक और अनोखा गुण है।

भद त शारिपुत्र इस घर मे नित्यप्रति लगातार धर्मविघोष, छ पारमिताओ से सम्बद्ध कथा तथा अववर्तिक धमचक्र की कथा (पीछे की ओर, उलटे न चलने वाले, धम चक्र की चर्चा) होती है। यह इस घर का चौथा आश्चयमय और अनोखा गुण है।

अन्यमुपाया पुरुषोत्तमाना यद्यानननानात्वुपदशयन्ति ॥
बौद्धस्य ज्ञानस्य प्रकाशनार्थं लोके समुत्पद्यति लोकनाथ ।
एक हि काय द्वितीय न विद्यते न हीनयानेन नयन्ति बुद्धा ॥"
द्र० लकावतारसूत्र, २ २०१-२०३ तथा शिक्षासमुच्चय पृ ५६।

१९ यह दूसरा आश्चर्य शिक्षासमुच्चय, पृ० १४३ में उद्धृत है।

'भद त शारिपुत्र, इस घर मे सदा ही दवी एव मानुषी दु दुभियाँ बजती हैं, सगीत तथा वाद्य हमेशा सुनाई पडता है। उन दु दुभियो (ढोलो और ढोलको) से सभी कालो मे बुद्ध के धर्म की अप्रमेय (अन त) विधियो का उदघोष उत्पन्न होता है। वह इस घर का पाँचवा आश्चयजनक और अनोखा गुण है।

' भद त शारिपुत्र, इस घर म सव प्रकार के रत्नो से सम्पूण चार अक्षय निधियाँ विद्यमान रहती हैं।[20] महानिधियो का यह कुण्ड (भण्डार) कभी भी घटता नही है, यद्यपि सभी दरिद्र और यसन ग्रस्त यक्ति इनमे से इच्छानुसार ले जाते है। यह इस घर का छठा आश्चयमय और अनोखा गुण है।

' भद त शारिपुत्र, इस सत्पुरुष की इच्छा से, दसो दिशाओ से अपरिमित तथागत तथागत शाक्यमुनि, अमिताभ, अक्षोभ्य, रत्नश्री, रत्नर्चिष, रत्नच द्र, रत्न यूह, दुष्प्रसह, सर्वार्थसिद्ध, महारत्न (रत्नबहुल), सिहप्रसिद्ध (सिहकीर्ति), सिहस्वर आदि–इस घर मे आते हैं, और **तथागतगुह्य**, नामक **धर्ममुखप्रवेश**[21] का उपदेश करके चले जाते हैं। यह इस घर का सातवाँ आश्चयमय एव अनोखा गुण है।

भद त शारिपुत्र, इस घर मे सभी देवताओ के आवासो के वभव तथा सभी बुद्ध क्षेत्रो के गुणो के अलकरण प्रभासित (प्रकाशित) होते हैं। यह इस घर का आठवाँ आश्चयमय और अनोखा गुण है।

---

२० चार प्रकार की अक्षय निधियों (महानिधियों) की रक्षा करने वाले चक्रवर्ती राजाओं का उल्लेख अनेक बौद्ध ग्र थों में हुआ है। द्र० **दिव्यावदान**, पृ० ३७—

'चत्वारो महाराजाश्चतुर्महानिधिस्था —

पिंगलश्च कलिंगेषु मिथिलाया च पाण्डुक ।

एलापत्रश्च गा धारे शखो वाराणसीपुरे ॥"

२१ "**तथागतगुह्यनामधर्ममुखप्रवेश**" सम्भवत उस महायान सूत्र को कहा गया है जिसका दूसरा नाम **तथागतगुह्यसूत्र** अथवा **तथागताचि त्यगुह्यनिर्देश** है। द्र० मेरा लेख "दि तथागतगुह्यसूत्र एण्ड दि गुह्यसमाज तन्त्र", जर्नल ऑफ दि ओरियन्टल इ स्टीच्यूट वॉल्यूम १६, न० २ (१९६५)। **तथागतगुह्यसूत्र** से नौ उद्धरण **शिक्षासमुच्चय** में (पृ० ८, ७२, ८९, १३ , १४६, १६८, १९१,) तीन उद्धरण **प्रसन्नपदा** में (पृ० १५३, १५४, २३६) तथा दो उद्धरण **बोधिचर्यावतार प जिका** में (पृ० ६३ व २३१) मिलते हैं। इन उद्धृत अशों से ज्ञात होता है कि यह एक अत्य त महत्वपूर्ण महायान वैपुल्यसूत्र था।

'भद त शारिपुत्र, इस घर मे उक्त आठ आश्चयमय एव अनोखी बातें (विशेष ताए) दिखाई देती है इस प्रकार की अचि तनीय विशेषताओ के देखते हुये कौन श्रावक धम की इच्छा करेगा ? (कौन श्रावकयान मे श्रद्धा रखेगा ?)

शारिपुत्र ने कहा— 'दवि, आपके स्त्रीत्व (स्त्री भाव) को परिवतित करने मे क्या विरोध है ? (आप अपने स्त्रीरूप को क्यो नही परिवतित करती हैं ?)[२२]

देवी ने कहा—"मैंने बारह वर्षों से अपने स्वभाव को ढूढने (खोजने) का प्रयत्न किया है, वह अभी तक मुझे नही उपलब्ध हुआ है। भन्त शारिपुत्र, यदि एक मायाकार (जादूगर) माया करके एक स्त्री का निर्माण करता है तो क्या आप उस (मायाज य स्त्री) से यह कहेगे "आपके स्त्रीत्व को परिवतित करने मे क्या विरोध है ?"

शारिपुत्र—"इस (उदाहरण की स्थिति) मे तो कुछ भी निमित नही होता है (वह मायाज य स्त्री तो परिनिष्प न नही हैं, असत् है)।'

देवी—"भदन्त शारिपुत्र इसी प्रकार जब सभी धम उपरिनिष्पन्न (असत) हैं एव मायोत्पन्न स्वभाव के हैं तो क्या आप यह सोचेंगे 'आपके स्त्रीत्व को परिवर्तित करने मे क्या विरोध है ?' (देवी के कथन का भावाथ यह है—जिसका स्वभाव माया द्वारा निर्मित वस्तु की भाँति मायोपम है उसके बारे मे यह पूछना कि 'वह अपना स्त्रीभाव परि वर्तित क्यो नही करती' क्या उचित है ? परमाथत न स्त्री की सत्ता और न पुरुष की सत्ता है, कौन किसमें परिवर्तित हो सकता है)।

तत्पश्चात् देवी ने अपने ऋद्धिबल (अधिष्ठान) के प्रभाव से (अधिष्ठित) ऐसा चमत्कार दिखाया जिससे स्थविर शारिपुत्र उस देवी के रूप मे प्रकट हो गये और स्वय देवी स्थविर शारिपुत्र के रूप मे प्रकट हो गई।

---

२२ बौद्धग्रथों में इन्द्रिय परिवर्तन होने के उदाहरण मिलते हैं। सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० १६१ में सागर नागराज की लडकी के विषय में कहा गया है—

सर्वलोकप्रत्यक्षं स्थविरस्य च शारिपुत्रस्य प्रत्यक्ष तत् स्त्रीन्द्रियमन्तर्हित पुरुषेन्द्रिय च प्रादुर्भूत बोधिसत्त्वभूत चात्मान सन्दर्शयति।"

बौद्ध परम्परा के इतिहास में कुछ लोग ऐसे थे जिनका विश्वास था कि स्त्रियाँ बुद्ध, अर्हत ब्रह्मा शक्र, महाराज, चक्रवर्ती व अवैवर्तिक बोधिसत्व का स्थान पुरुषों की अपेक्षा अत्यन्त अधिक कठिनाई से प्राप्त करती हैं।

तब शारिपुत्र के रूप मे रूपान्तरित देवी ने देवी के रूप मे रूपान्तरित शारिपुत्र से पूछा— "भदन्त शारिपुत्र, आपके स्त्रीत्व को परिवर्तित करने में क्या विरोध है ?"

देवी रूप को प्राप्त हुये शारिपुत्र ने कहा—' मेरा पुरुष रूप अन्तर्निहित हो गया है, और स्त्री रूप प्राप्त हो गया है, इसमे जो विकार (परिवतन करने की चीज) है वह मुझे ज्ञात नहीं है।"

देवी ने कहा—"यदि स्थविर अपने स्त्रीरूप को पुन परिवर्तित करने मे समथ है तो सभी स्त्रियाँ अपने स्त्रीभाव (स्त्रीत्व) को परिवर्तित कर सकती हैं। जिस प्रकार स्थविर स्त्री के रूप में दिखाई देते हैं उसी प्रकार सभी स्त्रियाँ भी स्त्री के रूप मे दिखाई देती है। वास्तव मे वे स्त्रियाँ नहीहै फिर भी वे स्त्रियो के रूप मे दिखाई देती है। इसी अथ को ध्यान मे रखकर भगवान् ने कहा है—'सभी धर्मों में स्त्री और पुरुष का अभाव है।'

तत्पश्चात देवी ने अपने ऋद्धिबल (अधिष्ठान) को छोड दिया और आयुष्मान शारिपुत्र पुन अपने स्वरूप को प्राप्त हो गये और देवी ने भी पुन अपना स्वरूप प्राप्त कर लिया। तब शारिपुत्र से कहा—"भदन्त शारिपुत्र आप की स्त्री पुत्तली कहाँ है ?"

शारिपुत्र—"उसको (पुत्तली को) न मैंने बनाया था और न परिवर्तित (विकृत) ही किया।"

देवी—"इसी प्रकार, सभी धम भी न बनाये गये है और न विकृत (परिवर्तित) ही किये गये हैं। सभी धम न कृत (निर्मित) हैं और न विकृत (परिवतित) है, यही बुद्ध की शिक्षा है।" [२३]

शारिपुत्र—"देवि यहाँ मृत्यु होने के पश्चात् आप का पुनर्जन्म कहाँ होगा ?

देवी—"जहाँ तथागत के निर्माण (काय) प्रकट होंगे, वहाँ मैं भी उत्पन्न होऊँगी।"

शारिपुत्र—"तथागत की निर्माणकायों की उत्पत्ति तथा च्युति नही होती है।'

देवी—' सभी धम भी इसी प्रकार, उत्पत्तिरहित और च्युतिरहित हैं" [२४]

द० सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० १९१, अगुत्तरनिकाय, खण्ड १, पृ० २९, दीघनिकाय, खण्ड २, पृ० १०९ में स्थविरों का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट होता है।

२३ तुलनीय महायानकरतलरत्नशास्त्र पृ० ९९–"सर्वधर्माणा प्रपञ्चानुत्थान द्वयनिमित्तविविक्तता इय प्रज्ञापारमिता।"

२४ तुलनीय मूलमध्यमककारिका १८ ७–"अनुत्पन्नानिरुद्धा हि निर्वाणमिव धमता।"

शारिपुत्र—' कितने समय मे (कब) आप बोधि लाभ (बोधि की अभिसम्बोधि प्राप्त) करेंगी ? '

देवी—"जब स्थविर पृथग्जनधर्मसम्पन्न (साधारण व्यक्तियो के गुणो से भरपूर) हो जाएँगे तब मैं बोधि प्राप्त करूगी ।

शारिपुत्र— 'देवि, एक बार पुन मैं साधारण यक्तियो के गुणो वाला हो जाऊ, यह तो असम्भव है ।"

देवी— 'भदन्त शारिपुत्र, इसी प्रकार यह भी असम्भव है कि मैं बोधि प्राप्त कर लू ? क्योकि, बोधि असम्भव है । चूंकि यह असम्भव मे (प्रतिष्ठित) है इसलिये कोई भी इसको प्राप्त नही करता है ।'

स्थविर शारिपुत्र ने फिर कहा— 'परन्तु तथागत ने तो कहा है कि 'गगानदी के बालूकणों के समान असख्य तथागत हैं जि होने अभिसम्बोधि प्राप्त की है, अभिसम्बोधि प्राप्त कर रहे हैं, और अभिसम्बोधि प्राप्त करेंगे ।'

देवी ने कहा—"भद त शारिपुत्र, 'अतीत, भविष्य एव प्रत्युत्पन्न बुद्धो'—यह जो कथन है वह कुछ अक्षरो (शब्दो) की गणना से बना हुआ एक सकेत मात्र है । बुद्ध न अतीत हैं न अनागत हैं, और न प्रत्युत्प न (वतमान) है । बुद्धो की बोधि कालत्रय (तीनो कालो भूत, वतमान भविष्य) का अतिक्रमण करती है (बोधि त्रिकालातीत, तीनो कालो से परे, अकाल है) । स्थविर (आप यह बताइये) क्या आप अर्हत्त्व लाभी हैं ? (क्या आपने अर्हत्त्व प्राप्त कर लिया है ?)'

शारिपुत्र—' अप्राप्ति के कारण लाभी हूँ (अर्थात् मैंने अर्हत्व लाभ कर लिया है क्योंकि कुछ लाभ या प्राप्ति नही होती है ।)

आचार्य च द्रकीर्ति द्वारा उद्धृत (प्रसन्नपदा पृ० १८६), निम्नलिखित बुद्धवचन इस प्रसंग में विचारणीय है—

'जायते च्यवते चापि न च जातिन च च्युति ।
यस्य विजानत एष समाधिर्नास्य दुर्लभ ।।"

देवी—"इसी प्रकार अभिसम्बोधि के अभाव के कारण अभिसम्बोधि है" (अर्थात् अभिसम्बोधि है क्योंकि अभिसम्बोधि की प्राप्ति नहीं होती है)।[२५]

तत्पश्चात् लिच्छवि विमलकीर्ति ने आयुष्मान् स्थविर शारिपुत्र से कहा—

"भदन्त शारिपुत्र, इस देवी ने पहले ही बयानबे करोड खरब (द्विनवति कोटि नियुतानि) बुद्धो की सेवा उपासना की है। यह देवी अभिज्ञाओ के साथ खेलती है। इसने सारी प्रतिज्ञाए पूरी कर ली है यह क्षान्तिलाभिनी है और अववर्तिक भूमि प्राप्त कर चुकी है। प्राणियों के परिपाचन के लिये अपने प्रणिधान (दृढ निश्चय पूर्वक की गई प्रतिज्ञा) के कारण स्वेच्छानुसार यह देवी जहाँ चाहे जाती है और रहती है।'

षष्ठ परिवर्त समाप्त।

---

२५ तुलनीय वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, पृ० ३१—

"नास्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन अनुत्तरा सम्यक् सम्बोधिरित्यभिसम्बुद्ध, नास्ति धर्मो यस्तथागतेन देशित।"

वही, पृ ३२—"बुद्धधर्मा बुद्धधर्मा इति सुभूते अबुद्धधर्माश्चैव ते तथागतेन भाषिता। तेनोच्यन्ते बुद्धधर्मा इति।"

७ तथागत का गोत्र

मजुश्री कुमारभूत ने लिच्छवि विमलकीर्ति से पूछा—"कुलपुत्र बोधिसत्त्व किस प्रकार बुद्ध गुणो की प्राप्ति के माग का अनुगमन करता है ?

विमलकीर्ति ने उत्तर दिया—"मजुश्री, जब बोधिसत्त्व अगति (अमाग) से जाता है तो वह बुद्ध गुणो की प्राप्ति के माग का अनुगमन करता है।'

मजुश्री ने पुन पूछा—"बोधिसत्त्व का अगतिगमन (अमाग से जाना) क्या है ?"

विमलकीर्ति ने उत्तर दिया—'पाँच आन तय अपराधो को भी यदि बोधिसत्त्व कभी करता है तो उसमे -यापाद (शत्रुता) हिंसा अथवा प्रद्वेष (घृणा) नही होते हैं। यदि वह नरकगामी भी होता है तो भी सभी क्लेशो से मुक्त रहता है। यदि वह तियग्गति गामी (पशु गति को प्राप्त) होता है तो भी वह मूखता और अविद्या (अ धकार) रहित होता है। यदि वह असुरगतिगामी होता है तो भी वह मान मद और दप से मुक्त होता है। यदि वह यमलोकगतिगामी होता है तो भी वह सभी प्रकार के पुण्य एव ज्ञान का भण्डार उत्पन्न करता है। वह निश्चल गति और अरूपगति को प्राप्त होता है, पर तु उन गतियो मे नीचे नहीं उतरता है।

"वह रागगतिगामी (काम के माग का पथिक) होने पर भी सभी प्रकार की इच्छाओ और सम्भोगो से रहित (वीतराग) रहता है। द्वेषगतिगामी हो जाने पर भी वह सभी प्राणियो के प्रति क्रोधरहित रहता है। मोहगतिगामी होने पर भी वह सभी चीजो के प्रति प्रज्ञा और स्मृतिपूण चित्त रखता है।

"मात्सयगतिगामी (ईर्ष्या के मार्ग पर चलने वाला) होने पर भी वह अपनी देह और अपने जीवन से निरपेक्ष होता है तथा अपनी सभी आन्तरिक एव बाह्य वस्तुओ को छोड देता है। दु शीलगतिगामी होने पर भी वह अल्प अपराध से भयभीत रहता है अतएव सभी प्रकार के धूतगुणो[1] अथवा तपस्याओ का अनुगमन करता है। शत्रुता

---

१ धूतगुण अथवा धुतग तरह प्रकार की तपस्याएँ, व्रत अथवा योगाभ्यास हैं जो प्राचीन भारत में कुछ बौद्ध भिक्षुओं में प्रचलित थे।

(१) पांसुकूलिक, फेंके हुए पुराने कपडे के टुकडों से बने वस्त्र पहनने वाला।

और क्रोध के माग का अनुगामी होने पर भी वह पूरी तरह शत्रुतारहित और मित्रतापूवक रहता है। आलस्य के मार्ग पर चलता हुआ भी वह निरंतर प्रयत्नपूवक सभी कुशलमूलो की प्राप्ति मे लगा रहता है। इंद्रियो के यभिचार के मार्ग पर चलने पर भी वह स्वभाव मे स्थित और अमोघ (अटल) ध्यान मे रहता है। दुष्प्रज्ञ गतिगामी (झूठे ज्ञान के माग पर चलने वाला) होने पर भी वह प्रज्ञापारमिता की गति (अवस्था) को प्राप्त होने के कारण सभी लौकिक और पारलौकिक (लोकोत्तर) शास्त्रो (विद्याओ) का पण्डित होता है।

'कुहना[२] (वाणी का मिथ्याचार) एव लपना[३] (अपने विषय मे बढा चढ़ा कर बात करना, डींग हाँकना आदि इस तरह) का यवहार करते हुये भी वह रहस्यमय भाषाओं[४] (गूढ़ार्थों) का जानकार होता है और उपायकौशल्य के प्रयोग मे पारगत

---

(२) त्रैचीवरिक, केवल तीन चीवर (वस्त्र) पहनने वाला।

(३) पैण्डपातिक, माँग कर प्राप्त किये गये भिक्षान्न पर निर्भर रहने वाला।

(४) सपदानचारिक, दर दर से भिक्षान्न माँग कर भोजन करने वाला।

(५) एकासनिक, एक ही आसन में बैठकर भोजन करने वाला।

(६) पत्तपिण्डिक, एक ही पात्र से भोजन करने वाला।

(७) खलुपश्चाद्भक्तिक, पहले मनाही करने के बाद फिर अतिरिक्त भोजन करने वाला।

(८) आरण्यक, वन में निवास करने वाला।

(९) वृक्षमूलिक, वृक्ष के मूल में रहने वाला।

(१०) अभ्यवकाशिक (अभ्रावकाशिक), खुले आकाश के नीचे रहने वाला।

(११) श्मशानिक, श्मशान (मुर्दाघाट) में रहने वाला।

(१२) यथासस्तरिक, जहाँ पर रात हो जाय वहीं विस्तर फैलाकर सोने वाला।

(१३) नैषद्यिक, बैठे हुए सोने वाला, रात को भी बैठे हुए सो जाने वाला।

२ कुहन कुहना एक प्रकार का मिथ्याजीव है। भिक्षु जब उपासकों से दान लेने की इच्छा से वाक्चातुर्य दिखाता है तो उसका यह आचरण कुहन कहलाता है। ऐसा व्यक्ति कुहक कहलाता है।

३ लपन/लपना भी एक प्रकार का मिथ्याजीव है। भिक्षु जब अपने धामक गुणों का बढ़-चढ़ कर इस उद्देश्य से वणन करता है कि उसको उपासक खूब दान भेंट चढाएँ तो उसका यह आचरण लपना कहा जाता है। ऐसा यक्ति 'लपक कहलाता है।

४ सध्याभाषा/सधाभाषा ऐसी रहस्यमयभाषा जिसका यक्त अर्थ गुप्त (निहित) अर्थ से भिन्न

होता है। मान (अभिमान) का मार्ग दर्शाता हुआ भी वह सभी लोगो के (चलने के) लिये पुल (सेतु) एव पर रखने का ऊचा स्थान (वेदिका) होता है। क्लेश गतिगामी होते हुये भी वह अत्यन्त सक्लेशरहित एव स्वभाव से ही परिशुद्ध है।

"मार के मार्ग पर चलने पर भी वह सभी बुद्ध गुणो के बारे मे मार की शिक्षा का अनुसरण नही करता है। श्रावको के मार्ग पर चलने पर भी वह प्राणियो को ऐसा धर्म-श्रवण करवाता है जो उन्होने पहले नही सुना था (अर्थात् श्रावकयान मे रहते हुये भी वह लोगो को महायान का उपदेश सुनाता है)। प्रत्येकबुद्धो के मार्ग का अनुगामी होते हुये भी वह सभी प्राणियो के परिपाचन के लिये महाकरुणा से प्रेरित होता है। दरिद्रगतिगामी होता हुआ भी वह अपने हाथ मे धन का अक्षय रत्न (अर्थात् बोधिचित्त)[५] रखता है। अपगुओ (हतेन्द्रिय लोगो) के मार्ग का अनुगामी होते हुये भी वह सुन्दर और (महापुरुष) के लक्षणो से अलकृत होता है। हीनकुलीनगतिगामी (हीन कुल मे उत्पन्न हुये लोगो के मार्ग पर चलने वाला) होने पर भी वह अपने पुण्य एव ज्ञान के सचय के कारण तथागत के वश में उत्पन्न होता है। दुर्बल, कुरूप एव मन्द लोगो के मार्ग पर चलने पर भी वह दर्शनीय और नारायण[६] (शक्तिशाली) के समान (बलिष्ठ) शरीर वाला होता है।

'सभी सत्वो की, रोगी और दुखी लोगो की, चर्या वाला दिखाई देने पर भी वास्तव मे वह मृत्यु एव भय का अतिक्रमण करके उन पर पूर्ण विजय प्राप्त करता

हो। उपायकौशल्य की भाषा जिसका प्रयोग बुद्ध एव बोधिसत्व करते हैं और अथवा गुह्य योग साधन की भाषा जिसका प्रयोग बौद्ध सिद्धों ने किया था।

५ महायानसूत्रों व शास्त्रों में 'बोधिचित्त' को अक्षयनिधि, कल्पवृक्ष एव चिन्तामणि कहा गया है। सभी प्राणियों के कल्याण के लिये बुद्धत्व प्राप्त करने का दृढ निश्चय व विचार 'बोधिचित्त' कहलाता है।

६ नारायण' शब्द वैदिक उत्पत्ति का न होकर सिन्धुघाटी की प्राचीन भाषा की देन है। सम्भवत यह शब्द मेसोपोटामियाँ से भारत में आया था। इसका मूल अर्थ था 'जल में रहने वाला देवता' (नारा = जल)। कालान्तर में सस्कृत वैष्णव साहित्य में यह 'विष्णु' के नाम के रूप में अपनाया गया। विष्णु को भी शेषशायी के रूप में जल में विहार करने वाला देवता माने जाने लगा। बौद्ध ग्रन्थों में नारायण' अथवा 'महानारायण' एक काल्पनिक व अत्यन्त बलशाली पुरुष की शक्ति का प्रतीक है। विश्वास किया जाता हैं कि भगवान् बुद्ध का शारीरिक बल सैकड़ों नारायणों के बल से भी अधिक था।

है। धनी लोगों (अथवा धन) के माग पर चलता हुआ भी वह धनसग्रह की प्रवृत्ति से मुक्त होता है और बहुधा अनित्यता के विचार का गूढ मनन करता है। यद्यपि बोधिसत्व अन्तपुर के अनेक रसो मे रसिक दिखाई देता है परन्तु वह विवेकचारी (एकान्तवासी) तथा कामरूपी कदम (कीचड) से उत्तीण (पार गया हुआ) होता है। धातुओ और आयतनो की अवस्था (गति) मे रहने पर भी (अथवा चीनी अनुवादो के अनुसार मूक और असगत प्राणियो के मध्य रहता हुआ भी) वह धारणी प्राप्त (मन्त्रो की शक्ति से सम्पन्न) एव विविध प्रकार के प्रतिभान (भाषण कौशल) से विभूषित होता है। तीर्थिको (अन्य धर्मों व दशनो के आचार्यों व अनुयायियो) के माग का अनुगमन करने पर भी वह तीर्थिक नही होता है। लोक के सभी मार्गों पर चलने पर भी (सवलोकगतिगामी होने पर भी) वह सभी गतियो (जीवन की योनियो) को उलट देता है। निर्वाणगतिगामी (निर्वाण के माग पर चलता हुआ) होने पर भी वह ससार की यवस्था (ससार के प्राणियो क कल्याण का प्रब ध) नही छोडता है।

'मजुश्री, इस (उपयुक्त) प्रकार से बोधिसत्त्व अमाग (अगति) से चलता हुआ भी बुद्ध के गुणो की प्राप्ति के माग पर चलता है।

तब लिच्छवि विमलकीर्ति ने मजुश्री से पूछा—"मजुश्री तथागतो का गोत्र क्या है?"

मजुश्री ने कहा— कुलपुत्र सत्काय (अहकार) तथागतो का गोत्र है। तथागतो का गोत्र अविद्या, भव एव तृष्णा है, राग, द्वेष, मोह और चतुर्विध विपर्यास[७] है पाच नीवरण (बाधाए) छ आयतन, सात प्रकार की विज्ञान की

---

७ विपर्यास (पालि विपरियास, विपल्लास) अज्ञान पर आधारित गवेषणा या धारणा है। चतुर्विध विपर्यास द्र० **अङ्गुत्तरनिकाय,** खण्ड २, पृ ५४–५५ तथा **शिक्षासमुच्चय,** पृ १०९। १ अनित्य को नित्य समझना, अनात्मा को आत्मा समझना, ३ अशुभ (अशुचि) को शुभ (शुचि) समझना, ४ दुख को सुख समझना।

८ नीवरण का अर्थ रुकावट या बाधा है, पाँच नीवरणों की सूची द्र **दीघनिकाय,** खण्ड १, पृ० ९३–

१ कामच्छन्द (कामगुणों की इच्छा), २ व्यापाद (द्विष्ट विचार), ३ स्त्यानमिद्ध (प्रमाद व निद्रा, बेहोशी व सुस्ती), ४ औद्धत्य कौकृत्य (उद्धत व्यवहार एव पश्चात्ताप, दिल्लगी पूर्णता एव चिन्ता), ५ विचिकित्सा (सन्देह, विश्वासहीनता)।

स्थितियाँ,[९] मिथ्या[१०] माग के आठ अग, नौ प्रकार की आघात वस्तुएँ[११] एव दस प्रकार के अकुशल कम पथ[१२] हैं। कुलपुत्र तथागतो का गोत्र इस प्रकार का है। सक्षप मे कुलपुत्र, बासठ दृष्टियाँ तथागतो का गोत्र है।

विमलकीर्ति ने पूछा—"किस बात (कौन सी चीज) को ध्यान मे रखकर आप ऐसा कहते हैं?'

---

९ विज्ञान की सात स्थितियों (सत्त विञ्ञाणट्ठितियो) के लिए द्र० दीघनिकाय, खण्ड ३, पृ० १९४–१९५ अङ्गुत्तरनिकाय, खण्ड ३ पृ १८४।

(१) नाना प्रकार के मनुष्य, देवता व नारकीय प्राणी जिस स्थिति में हैं वह विज्ञान की पहली स्थिति है।

(२) नाना प्रकार के ब्रह्मकायिक देवता विज्ञान की दूसरी स्थिति में हैं।

(३) एक समान शरीर पर-तु विविध सज्ञा वाले आभास्वर देवता विज्ञान की तीसरी स्थिति में हैं।

(४) एक समान शरीर व सज्ञा वाले शुभप्रकाश देवता विज्ञान की चौथी स्थिति में हैं।

(५) जो प्राणा आकाशान-त्यायतन में विहार करते हैं वे विज्ञान की पाँचवीं स्थिति मे हैं।

(६) जो प्राणी विज्ञानान त्यायतन में विहार करते हैं वे विज्ञान की छठी स्थिति में हैं।

(७) जो प्राणी आकिंच यायतन में विहार करते हैं वे विज्ञान की सातवीं स्थिति में हैं।
यह सभी सातों स्थितियाँ ससार में ज-म लने वाले प्राणियों के विज्ञान की हं जो निर्वाण से सवथा दूर हैं।

१० अष्टांगमाग के ठीक प्रतिकूल मिथ्या मागागों से अभिप्राय है।

११ नौ प्रकार की आघात वस्तुएँ (पालि 'नव आघात पटिविनया') दीघनिकाय, खण्ड ३, पृ १०३ में इस प्रकार गिनाई गई हैं—

(१) उसने मुझे हानि पहुँचाई, (२) वह मुझे हानि पहुँचा रहा है (३) वह मुझे हानि पहुँचायेगा ( ) जो मेरा प्रिय है उसको हानि पहुँचाई (५) उसको हानि पहुँचा रहा हैं उसको हानि पहुँचायेगा (७) जो मेरा अप्रिय है उसको उसने लाभ पहुँचाया (८) उसको लाभ पहुँचा रहा है (९) उसको लाभ पहुँचायेगा। इस प्रकार की नौ बातों को सोचकर कलह व द्वेष में उलझना आघात वस्तुओं का आचरण करना है।

१२ दस कुशलकर्मपथों के ठीक प्रतिकूल दस अकुशलकर्मपथ हैं।

मजुश्री ने उत्तर दिया —"कुलपुत्र, असस्कृत दशन मे अवतरित (स्थित) रहने से अनुत्तर सम्यक सम्बोधि का चित्तोत्पादन नही हो सकता है। क्लेशो के घर (भण्डार) मे सस्कृत वस्तओ के बीच मे सत्य के दर्शन किये बिना अनुत्तर सम्यक सम्बोधि का चित्त उत्पन्न किया जा सकता है।

"कुलपुत्र, उत्पल (नील कमल), पद्म (रक्तकमल) कुमुद तथा पुण्डरीक (श्वेतकमल) जैसे सुगन्धियुक्त कुसुम जागल (सूखीभूमि) में उत्पन्न नही होते हैं, परन्तु पक (कीचड) और (तालाबो के) किनारे में उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार असस्कृत नियत-प्राप्ति वाले प्राणियो (जिन्हें असस्कृत, अर्थात् निर्वाण का प्राप्ति निश्चित रूप से होनी है ऐसे प्राणियो मे) बुद्ध गुणो की उत्पत्ति नही होती है। क्लेश रूपी पक के (तालाब के) किनारे के समान प्राणियों मे बुद्ध गुण उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार आकाश मे बीज नही उगते हैं अपितु भूमि पर उगते हैं उसी प्रकार असस्कृत की प्राप्ति मे नियत (स्थित) प्राणियो मे बुद्ध गुणो का विकास नही होता है सुमेरु के समान सत्कायदृष्टि (का पर्वत) पदा करके जो बोधिचित्तोत्पाद करते हैं उनमे बुद्ध गुणो का उत्पादन और विकास होता है।[13]

"कुलपुत्र, इन अनेक प्रकार के उदाहरणो को ध्यान मे रखते हुये सभी क्लेशो को तथागत का गोत्र (मार्ग) समझना चाहिये। उदाहरणार्थ, कुलपुत्र, महासमुद्र मे प्रवेश किये बिना अमूल्य रत्न प्राप्त करना सम्भव नहीं है, इसी प्रकार क्लेशो के सागर मे प्रवेश किये बिना ही सर्वज्ञता की प्राप्ति असम्भव है।"

तब स्थविर महाकाश्यप ने मजुश्री कुमारभूत का साधुकार करते हुये कहा—"साधु, साधु, मजुश्री। यह वचन सुभाषित है, यह सत्य है। तथागत का गोत्र क्लेश है। हम जैसे (श्रावको जैसे) लोग कसे बोधिचित्तोत्पाद कर सकते हैं? (अथवा कैसे बुद्ध गुणो का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं?) पाँच आनन्तय अपराधो के सयोग से ही बोधि चित्तोत्पाद हो सकता है और बुद्ध गुणो का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। उदाहरणार्थ, जिस प्रकार विकलेन्द्रिय (इन्द्रियों से रहित अथवा सदोष

---

१३ यह अन्तिम वाक्य शिक्षासमुच्चय पृ० ७ में उद्धृत है।

तुलनीय रत्नकूटसूत्र (प्रसन्नपदा, पृ० १०८)—" वर खलु काश्यप सुमेरुमात्रा पुद्गलदृष्टिराश्रिता, न त्वेव अभावाभिनिवेशिकस्य शून्यतादृष्टि.।"

इन्द्रियो वाले) पुरुषों मे पाच कामगुणो[१४] (इच्छा के विषयो) का कोई प्रभाव नही होता है (कामगुण निगुण हो जाते हैं क्योकि विकलेन्द्रिय पुरुष उनका उपभोग नही कर सकता है) इसी प्रकार जिन श्रावको ने सभी सयोजन छोड दिये हैं उन पर सभी बुद्ध गुणो का कोई प्रभाव नही हो सकता है, वे श्रावकगण बुद्ध गुणो को अपनाने मे असमथ होते हैं।

"अतएव मजुश्री, पृथग्जन (साधारण व्यक्ति) तथागत के प्रति कृतज्ञ है परन्तु श्रावकगण अकृतज्ञ हैं। क्योकि पृथग्जन बुद्ध गुणो के विषय मे सुनकर त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म, एव सघ) की गोत्र परम्परा को लगातार (अनुच्छिन्न) सुरक्षित रखने के लिये अनुत्तर सम्यक सम्बोधि का चित्त उत्पन्न करते हैं, परन्तु श्रावकगण जीवनभर बुद्ध के गुणो बलो एव वशारद्यो के विषय मे सुनने के पश्चात् भी अनुत्तर–सम्यक–सम्बोधि का चित्तोत्पाद करने में असमथ हैं।"

तत्पश्चात् उस परिषद् मे शामिल हुये वहाँ पर बठे हुये बोधिसत्त्व सवरूपसन्दशन ने लिच्छवि विमलकीर्ति से कहा–"गृहपति आपके माता और पिता, पुत्र, पत्नी, दास, दासी, मजदूर (काय करने वाले) और सेवक कहाँ हैं ? आपके मित्र, सगे सम्बन्धी एव नातेदार कहाँ हैं ? आपके परिचारक (नौकर), घोडे हाथी, रथ, वाहन एव अगरक्षक (पैदल सिपाही) कहाँ हैं ?"

लिच्छवि विमलकीर्ति ने बोधिसत्त्व सर्वरूपसन्दर्शन से निम्नलिखित गाथाओ में कहा —

---

१४ कामगुण = कामना, वासना अथवा इच्छारूपी रस्सी के ताने या धागे। जो तत्त्व काम के स्वरूप के अग हैं उन्हें काम गुण कहा जाता है। इनकी सख्या पाँच है। द्र० मज्झिम निकाय, खण्ड १, पृ० ११८–११९—

(१) चक्षुविज्ञान द्वारा ज्ञात रूप जो दिखाई देनेवाले, इष्ट प्रिय, सुखदायी, सुन्दर, काम से ओत प्रोत हैं और आपक हैं।

(२) श्रोत्रविज्ञान द्वारा ज्ञात शब्द आकर्षक हैं।

(३) घ्राणविज्ञान द्वारा ज्ञात गन्धयुक्त पदार्थ आकर्षक हैं।

(४) जिह्वाविज्ञान द्वारा ज्ञात रस आकर्षक हैं।

(५) कायविज्ञान द्वारा ज्ञात स्प्रष्टव्य वस्तुएँ आकर्षक हैं।

(१) विशुद्ध बोधिसत्त्वो की माँ है प्रज्ञापारमिता ।
पिता उपायकौशल्य इन्ही से उत्पन्न होते हैं लोकनेता ॥[१५]

(२) धर्मप्रीति उनकी पत्नी, लडकियाँ करुणा और मैत्री ।
धर्म एव सत्य हैं दो पुत्र, शून्यतार्थचिन्तन उनका घर ॥

(३) सारे क्लेश उनके शिष्य हैं इच्छानुसार सनियन्त्रित ।
बोधि के अग उनके मित्र हैं महाबोधि के सम्बधक ॥

(४) षट पारमितायें[१६] है उनकी सहेलियाँ, रहती सदा सहायक ।
सग्रहवस्तुयें हैं उनके नारीभवन, धर्मोपदेश उनका सगीत ॥

(५) विभूतियो का उनका उद्यान, जिसमे खिलते बोधि अग फूल ।
धर्ममहाधन के वृक्ष हैं इसमे विमुक्ति-ज्ञान के उत्तम फल ॥

(६) अष्ट विमोक्ष उनकी पुष्करिणी भरपूर, समाधि-जल ।
विशुद्धि-पद्मो से ढकी, जो नहाते इसमे हो जाते शुचि-निमल है ॥

(७) अभिज्ञाएँ हैं उनके वाहक, अनुत्तरमहायान उनका रथ ।
बोधिचित्त है उनका सारथि अष्टविध शान्ति उनका पथ ॥

(८) लक्षण और अनुव्यजन हैं बोधिसत्त्वो के आभूषण ।
कुशल आशय और लज्जा हैं उनके वस्त्र परिधान ।

(९) उनका धन है सद्धर्म[१७], इसका उपदेश उनका व्यापार ।
पवित्र प्रतिपत्ति उनका महालाभ, बोधि प्राप्ति उनका परिणाम ॥

---

१५ तुलनीय प्रज्ञापारमिता स्तुति, ६-७—
सर्वेषामपि वीराणां परार्थनियतात्मनाम् ।
पाधिका जनयित्री च माता त्वमसि वत्सला ॥
यद्बुद्धा लोकगुरव पुत्रास्तव कृपालव ।
तेन त्वमपि कल्याणि सर्वसत्त्वपितामही ॥

१६ छ परिमिताएँ—दान, शील क्षान्ति, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा ।

१७ सद्धर्मरूपी श्रेष्ठ धन सप्तविध माना गया है । द्र दीघनिकाय, खण्ड ३, पृ० १२६—
१ सद्धा (श्रद्धा), २ सील (शील), ३ हिरि (ही, सरलता), ४ ओतप्प (अपत्राप्य लज्जा),
५ सुत (श्रुत, ज्ञान), ६ चाग (त्याग), ७ पञ्ञा (प्रज्ञा) ।

(१०) चार ध्यान उनके शयनासन, शुद्धाजीव से हुए सुविस्तृत ।
ज्ञान है उनका प्रबोधन, वे सदा धमश्रवण मे दत्तचित्त ।।

(११) अमृत का वे भोजन करते निर्वाण रस का पान ।
शील उनका ग"ध विलेपन, शुद्ध अभिप्राय उनका स्नान ।।

(१२) क्लेश शत्रुओ का करके विनाश, हो गये वे अजेय वीर ।
मारचतुष्टय के विजेता, उत्तुग फहराते बोधिमण्डचीर[१८] ।।

(१३) स्वेच्छा से ज म दर्शाते, बोधिसत्त्व ज म और उत्पत्ति से परे ।
सभी बुद्धक्षेत्रो मे प्रभासित होते बोधिसत्त्व सूय से खरे ।।

(१४) कोटि कोटि बुद्धो की पूजा करते, सवविधि अचन और सम्मान ।
हमे बुद्धो की सेवा करनी चाहिये ऐसा कभी होता नही उनको भान ।।

(१५) सभी प्राणियो के हित के लिये, बुद्धक्षत्रो का वे करते भ्रमण ।
बुद्धक्षेत्रो को आकाशवत समझते, सत्त्वो को करत असत्त्व रूप मे स्मरण ।।

(१६ सभी[१] प्राणियो के रूप, शब्द स्वर और विविध यवहार ।
क्षण भर में दर्शा देते ये बोधिसत्त्व का वशारद्य ।।

(१७) मार कार्यों के ज्ञाता होने पर भी वे मार के साथ रह सकते हैं ।
उपायकौशल्य में निपुण ये बोधिसत्त्व सभी कार्यों को दर्शाते हैं ।।

(१८) प्राणियो के विकास के लिये वे मायावी क्रीडा करते हैं ।
अपने को वृद्ध और रोगी ही नही अपितु मृत भी दिखात हैं ।।

(१९) कल्पा"त मे होने वाले अग्निदाह से वे वसु धरा को जलते दिखाते हैं ।
नित्यता की धारणा वाले मनुष्य को अनित्यता दिखाने के लिये ।।

(२०) एक ही राष्ट म शत सहस्र प्राणियो का निम त्रण पाते हैं ।
पर सभी के घरा मे भोजन करते और बोधि को समर्पित करते हैं ।।

(२१) बोधिसत्त्व सभी प्रकार की म"त्रविद्याओ और विविध शिल्पस्थानो मे ।

---

१८ तुलनीय अङ्गुत्तर निकाय, खण्ड २, पृ० ५४—"धम्मो हि इसिन धजो ।"
धर्म ही ऋषि की ध्वजा है । चीर—ध्वजा, झण्डा ।

१ इस अनुवाद की १६ व १८ से ४१ तक की गाथाएँ मूलरूप में **शिक्षासमुच्चय**, पृ० १७२–१७४में उद्धृत हैं । अनूदित गाथाओं में क्रमसख्या अनुवादक ने डाल दी है । तिब्बती सस्करण व सस्कृतानुवाद में गाथाओं की क्रमसख्या नही है ।

सर्वत्र पूर्णता प्राप्त करते है और सभी प्राणियों को सुख देते हैं ।।

(२२) लोक मे प्रचलित सभी धार्मिक सम्प्रदायो मे प्रव्रजित होकर ।
नाना प्रकार की दृष्टियो से बधे हुये प्राणियो का परिपाचन करते हैं ।।

(२३) बोधिसत्व चन्द्रमा सूर्य अथवा इन्द्र, ब्रह्मा, प्रजापति हो सकते हैं ।
वे जल, अग्नि पृथिवी अथवा वायु का रूप धारण कर सकते हैं ।

(२४) रोगो से भरे अन्तरकल्पो मे ये बोधिसत्व उत्तम औषधि हो जाते हैं ।
जिससे वे सारे प्राणी निरोग, सुखी और मुक्त हो जाते हैं ।

(२५) अकाल और दुर्भिक्ष से पीडित अन्तरकल्पो मे वे भोजन पान हो जाते हैं ।
प्राणियो की भूख प्यास मिटा कर वे धर्म का उपदेश करते हैं ।।

(२६) शस्त्र (युद्ध) से ग्रस्त अन्तरकल्प मे वे मैत्री का ध्यान करते हैं ।
सकडों करोड प्राणियों को अहिंसा और अव्यापाद मे अग्रसर करते हैं ।।

(२७) महासग्राम के मध्य मे वे दोनो पक्षो के प्रति निष्पक्ष रहते है ।
क्योकि महाबलशाली बोधिसत्त्व सन्धि एव समझौते में आनन्द लेते है ।।

(२८) अचिन्त्य बुद्धक्षेत्रो मे जो कोई भी नरक हैं वहाँ स्वय ।
जानबूझ कर बोधिसत्त्व प्राणियो के हित के लिये जाते हैं ।।

(२९) जो कोई भी पशु योनियाँ हैं उन सभी मे वे प्रकट होते हैं ।
और सर्वत्र धर्म का उपदेश करने के कारण वे नायक कहलाते हैं ।।

(३०) विषयी लोगो मे वे कामभोगो को और ध्यानियो में ध्यान को प्रकट करते हैं ।
मार को परास्त करके पुन मार को वे प्रकट नही होने देते हैं ।।

(३१) अग्नि के मध्य जिस प्रकार कमल की सत्ता को असिद्ध करते हैं ।
उसी प्रकार वे कामभोगो और ध्यान की असत्ता को सिद्ध करते हैं ।

(३२) पुरुषो को आकर्षित करने को गणिकाओ का रूप धारण करते है ।
राग अकुर द्वारा लुभाकर उन्हे फिर बुद्धज्ञान मे स्थापित करते हैं ।।

(३३) प्राणियो के हित के लिये वे सदा ग्रामप्रमुख होते हैं ।
सार्थवाह पुरोहित, प्रधानमन्त्री, और मन्त्री भी हो जाते हैं ।

(३४) दरिद्र प्राणियो के लिये वे अक्षय निधि बन जाते हैं ।
उनके दान को पा करके प्राणी बोधिचित्तोत्पाद करते हैं ।।

(३५) अभिमानी और कठोर प्राणियो के लिये वे महावीर होते है ।
सभी प्राणियो का मान मर्दन करके उ हे बोधि के पथ पर लगाते ह ॥

(३६) भयभीत और त्रस्त प्राणियो के मध्य वे सदा अग्र स्थित रहते ह ।
उ हे भयरहित बनाकर बोधि के लिये उनका परिपाचन करते ह ॥

(३७) पाँच अभिज्ञाओ से सम्प न वे पवित्र चर्या वाले ऋषि होते हैं ।
प्राणियो को शील, क्षा ति, मृदुता और सयम मे अग्रसर करते हैं ॥

(३८) ये विशारद बोधिसत्त्व सभी प्राणियो को आदरणीय देखते हैं ।
उनके सेवक व दास हो जाते हैं अथवा उनकी शिष्य रूप मे सेवा करत हैं ॥[20]

(३९) महान उपायकौशल्य से सुशिक्षित वे सभी क्रियाए दर्शाते है ॥
जिस जिस क्रिया से प्राणी धर्म में अनुरक्त हो उसी को करते है ॥

(४०) बोधिसत्त्वो के सिद्धा त हैं अनन्त, अनन्त उनके काय प्रभाव क्षेत्र ।
अन त ज्ञान से सम्पन्न वे, अन त प्राणियो को मुक्त करते हैं ।

(४१) बोधिसत्त्व गुणो के वणन का बुद्धो द्वारा भी अ त नही होता है ।
एक करोड कल्पो अथवा सकडो करोड कल्पो तक भी उनका वणन नही होता है ॥

(४२) अज्ञानी और अधम प्राणियों के अतिरिक्त ।
कौन ज्ञानी इस धर्मश्रवण पर नही करेगा उत्तम बोधिचित्त ?

सप्तम परिवर्त समाप्त ।

---

२० तुलनीय बोधिचर्यावतार, ३ १८ ।

८ अद्वयधर्म का प्रवेशद्वार[1]

लिच्छवि विमलकीर्ति ने उन बोधिसत्त्वो से कहा— 'सत्पुरुषो ! बोधिसत्त्वो द्वारा अद्वयधर्म के द्वार मे प्रवेश कैसे होता है ? कृपया स्पष्ट कीजिये ।'

१ वहाँ पर उपस्थित धर्मविकुर्वाण नामक बोधिसत्त्व ने कहा— कुलपुत्र, उत्पाद और भग (विनाश) दो (द्वय) हैं, परन्तु जो अनुत्पन्न और जन्मरहित है उसमे कोई विनाश नहीं है वह नष्ट नही हो सकता है। अनुत्पत्तिक धर्म क्षान्ति की प्राप्ति अद्वय प्रवेश है।''

२ बोधिसत्त्व श्रीगुप्त ने कहा— ' मैं' और 'मेरा' द्वय हैं। आत्मा के आरोप के अभाव मे ममत्व (अपनत्व) नहीं होता है। इस प्रकार समारोप का अभाव अद्वय प्रवेश है।'

३ बोधिसत्त्व श्रीकूट ने कहा— ' सक्लेश (दोष) एव व्यवदान (शुद्धि) ये द्वय हैं। सक्लेश का पूर्ण ज्ञान होने पर व्यवदान का अभिमान नहीं होता है। सब प्रकार के मान के उन्मूलन का मार्ग अद्वय प्रवेश है।'

---

१ द्वैतवाद का निराकरण एव अद्वयपरमार्थ का स्पष्टीकरण इस परिवर्त का मुख्य विषय है। इस विषय को समुचित रूप से समझने के लिये पाठकों को निम्नलिखित बौद्ध शास्त्रों का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करना चाहिये—
नागार्जुनकृत-मूलमध्यमककारिका, चन्द्रकीर्ति विरचित प्रसन्नपदा मध्यमकवृत्ति, आर्यदेव रचित चतुःशतक तथा चन्द्रकीर्ति रचित चतुःशतकवृत्ति मैत्रेयनाथ विरचित मध्यान्त विभागशास्त्र; शान्तिदेव विरचित बोधिचर्यावतार का नवां परिच्छेद, प्रज्ञाकरमति की पंजिका के साथ वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमितासूत्र, समाधिराजसूत्र, काश्यपपरिवर्त तथा लङ्कावतारसूत्र। एतद्विषयक आधुनिक चर्चा एव पश्चिमी विद्वानों के ग्रन्थों की सूचना के लिये द्रष्टव्य मेरा लेख ट्रुथ, ए बुद्धिस्ट पर्सपेक्टिव (सत्य, एक बौद्ध दृष्टि) जर्नल ऑफ रिलीजियस स्टडीज, वॉल्यूम ४ न० १ (पटियाला पजाबी यूनिवर्सिटी, १९७२), पृ० ६५ ७६ ।

४ बोधिसत्त्व भद्रज्योति ने कहा—' 'चल एवं 'म यना' (चित्त की स्थिरता) ये द्वय हैं। जो अचल है उसमे म-यना नहीं है। उसका मनसिकार नही होता है, वह अधिकार से परे है। मानसिक अधिकार की अनुपस्थिति अद्वय प्रवेश है।'

५ बोधिसत्त्व सुबाहु ने कहा-' ोधिचित्त' एवं 'श्रावकचित्त' ये द्वय है। जब दोनो को मायाचित्त के समान देखा जाता है तब न बोधिचित्त होता है और न श्रावकचित्त होता है। इस प्रकार जो चित्त की समलक्षणता है वही अद्वय प्रवेश है।'

६ बोधिसत्व अनिमिष ने कहा-'' आदान एवं 'अनादान' ये द्वय हैं। जो अनुपा दान है वह अनुपलब्ध है। जो अनुपलब्ध है उसकी न तो कल्पना की जा सकती है और न उसका अपकर्षण (विरोध) ही हो सकता है। इस प्रकार सभी धर्मों की क्रिया और आचार का अभाव अद्वय प्रवेश है।'

७ बोधिसत्त्व सुनेत्र ने कहा- 'लक्षण वशिष्टय एवं लक्षणहीनता' यह द्वय है। जो कल्पना न करना और सकल्प न करना है वही लक्षण वशिष्टय और लक्षणहीनता का अभाव है। जो लक्षण विशेष और विलक्षणता (लक्षणहीनता) की समलक्षणता है वह अद्वय प्रवेश है।'

८ बोधिसत्त्व तिष्य ने कहा—'' 'कुशल एवं 'अकुशल' ये द्वय हैं। जो कुशल और अकुशल का सम्पादन न करना है और जो निमित्त और अनिमित्त के अद्वय का ज्ञान है वह अद्वय प्रवेश है।"

९ बोधिसत्त्व सिंह ने कहा—' सावद्य (पाप) एवं 'अनवद्य (पुण्य) ये द्वय हैं। प्रभद करने वाले ज्ञान रूपी वज्र[२] से न ब धन मे पडना और न मुक्त होना अद्वय प्रवेश है।'

१० बोधिसत्त्व सिंहमति ने कहा-'' यह सास्रव है यह अनास्रव है ऐसा कहना द्वय है।[३] जिसने समताधम प्राप्त कर लिया है जो सास्रव और अनास्रव की सज्ञा नही

---

२ पालि ग्रन्थों में प्रज्ञा (पञ्ञा) की उपमा खड्ग या शस्त्र से दी गइ है। मिलिन्दप्रश्न (मिलिन्दपञ्हो), पृ ६४, ८ में कहा गया है—
"जो कुछ काटा जा सकता है प्रज्ञा से ही काटा जा सकता है और कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो प्रज्ञा को काटे।"

३ तुलनीय अभिधर्मकोशकारिका १ ४ "सास्रवाऽनास्रवा धर्मा।"

रखता है पर तु जो सज्ञारहित भी नही है, जो समता मे न समता प्राप्त करता है और न सज्ञाग्रथि वाला ही है, इस प्रकार की अवस्था में आ पहुचना अद्वय प्रवेश है।'

११ बोधिसत्त्व सुखाधिमुक्त ने कहा—'' 'यह सुख है' यह सुख नही है यह द्वय है। जो सुविशुद्धज्ञान के द्वारा सभी प्रकार की गणित (सख्या) से मुक्त है जिसकी बुद्धि आकाश की भांति अलिप्त है[४], वह अद्वय प्रवेश करता है।''

१२ बोधिसत्त्व नारायण ने कहा— 'यह लौकिक हैं, 'यह लोकोत्तर है यह द्वय है। लोक की जो स्वभावशू यता है उसमें कुछ भी अतिक्रमण करना अथवा प्रवेश करना नही होता है, न अधिगति होती है और न अनधिगति ही होती है (अर्थात् न प्रगति होती है और न अप्रगति ही होती है)। जिसका न अतिक्रमण होता है और न जिसमे प्रवेश होता है, जहाँ न प्रगति है और न अवरोध है, वह अद्वय प्रवेश है।'

१३ बोधिसत्त्व विनयमति ने कहा—' 'ससार एव 'निर्वाण —यह द्वय है। जिसने ससार के स्वभाव को देख (जान) लिया है, उसके लिये न ससार है और न निर्वाण है। इस प्रकार का ज्ञान अद्वय प्रवेश है।'[५]

१४ बोधिसत्त्व प्रत्यक्षदर्शन ने कहा—' 'क्षय' एव 'अक्षय'—यह द्वय है। जो क्षय है वह सुक्षीण है (अर्थात् जो क्षय है उसका पूर्णरूपेण क्षय हो चुका है।)। जो सुक्षीण है उसका कुछ भी क्षय नही होता है, इसी कारण वह अक्षय कहलाता है। जो अक्षय है वह क्षणिक है जो क्षणिक है उसका क्षय नही है। इस तथ्य को इस प्रकार समझना अद्वय धम का अवगाहन करना है।

१५ बोधिसत्त्व समन्तगुप्त ने कहा—''आत्मा' और 'नरात्म्य'—यह द्वय है।[६] जब आत्मा की ही सत्ता नही है तो नरात्म्य किसका करना है? इस प्रकार इन दोनों (आत्मा व अनात्मा) के अद्वय स्वभाव का दशन करने से अद्वय प्रवेश होता है।'

---

४ तुलनीय प्रज्ञापारमितास्तुति २-
"आकाशमिव निर्लेपां निष्प्रपञ्चां निरक्षराम्।"

५ तुलनीय मूलमध्यमककारिका, २५ १९-२० हेवज्रतन्त्र, १ १ ३२
(पृ० ३८) "पश्चात्तस्य समाख्यात विशुद्ध ज्ञानरूपिणम्।
ससारव्यवदानेन नास्ति भेदो मनागपि॥"

६ तुलनीय मूलमध्यमककारिका, १८ ६—

१६ बोधिसत्त्व विद्युद्देव ने कहा—'विद्या एव 'अविद्या'—यह द्वय हैं। जो स्वभाव अविद्या का है वही विद्या का भी है, और सज्ञापथ (विचारमाग) से परे है। इस (तथ्य) का अभिसमय (साक्षात्कार) अद्वय प्रवेश है।"

१७ बोधिसत्त्व प्रियदशन ने कहा—"रूप शून्य है, रूप के नाश होने से वह शून्य नही होता है अपितु रूप का स्वभाव ही शून्य है। इसी प्रकार वेदना, सज्ञा, सस्कार, और विज्ञान भी शून्य है। एक ओर शून्यता की बात करना और दूसरी ओर रूप वेदना, सज्ञा सस्कार व विज्ञान की बात करना यह द्वय है।[७] (अर्थात शून्यता और स्कन्धो की बात करना द्वयग्रस्त होना है)। विज्ञान स्वय शून्य है। विज्ञान के नाश होने के कारण विज्ञान शून्य नही है अपितु स्वभाव से ही विज्ञान शून्य है। जो इन पाँच उपादान स्कन्धो को इस प्रकार स्वभावत शून्य जानता है, इस प्रकार के ज्ञान से ज्ञाता है, वह अद्वय प्रवेश करता है।

१६ बोधिसत्त्व प्रभाकेतु ने कहा—'चार (महा) धातु अन्य हैं और आकाश धातु अन्य है, ऐसा कहना द्वय है।[८] चार (महा) धातु ही आकाश स्वभाव है। पूर्वान्त (भूतकाल का प्रारम्भ बिन्दु) भी आकाश स्वभाव है। अपरान्त (भविष्य काल का अन्त बिन्दु भी आकाश स्वभाव है। इसी प्रकार प्रत्युत्पन्न (वर्तमान काल) भी आकाश

"आत्मेत्यपि प्रज्ञपितमनात्मेत्यपि देशितम्।
बुद्धैर्नात्मा न चानात्मा कश्चिदित्यपि देशितम् ॥"
रत्नावली, २ ३—
"नैवमात्मा न चानात्मा यथाभूत्येन लभ्यते।
आत्मानात्मकृते दृष्टी ववारास्मा महामुनि ॥"

७ तुलनीय **हेवज्रतन्त्र**, १ ८ ३५ (खण्ड २, पृ० २८)—
'न रागो न विरागश्च मध्यम नोपलभ्यते।
नात्र प्रज्ञा न चोपाय सम्यक्तत्त्वावबोधत ॥"
द्र० **प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र** में पचस्कन्धों की शून्यता का स्पष्टीकरण
मूलमध्यमककारिका, स्कन्धपरीक्षा।

८ अभिधर्म परम्परा में पृथिवी, जल, तेज व वायु को महाभूत अथवा महाधातु और आकाश को असस्कृत धर्म माना गया है। हमारे सूत्र में इस मान्यता का खण्डन है।
द्र० **मूलमध्यमककारिका**, धातुपरीक्षा।

स्वभाव है। (अर्थात् जो स्वभाव आकाश का है वही चार महाधातुओ और तीन कालो का भी है) । जो ज्ञान इस प्रकार धातुओ में प्रवेश करता है वह अद्वय प्रवेश है।'

१९ बोधिसत्त्व अग्रमति ने कहा—'चक्षु एव रूप—यह द्वय है। चक्षु को भली भाँति जानकर रूप के प्रति लोभ, द्वेष, एव मोह न होने का नाम 'शान्ति' है। इसी प्रकार श्रोत्र एव 'शब्द' 'घ्राण' एव गध' 'जिह्वा' एव 'रस', 'काय' एव 'स्प्रष्टव्य' 'मन एव 'धर्म'—यह सब द्वय हैं। परन्तु मन को भली भाँति जान कर धर्मों के प्रति लोभ, द्वेष एव मान न रखने का नाम 'शान्ति है। इस प्रकार का शान्तिविहार (शान्ति मे विचरण) अद्वय प्रवेश है।[९]'

२० बोधिसत्त्व अक्षयमति[१] ने कहा—''सर्वज्ञता की प्राप्ति के लिये दान (पारमिता) की परिणामना करना द्वय है। दान का स्वभाव ही सर्वज्ञता है[११] और सर्वज्ञता का स्वभाव ही परिणामना (समर्पण) है। इसी प्रकार शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान एव प्रज्ञा का सर्वज्ञता के लिये समर्पण करना भी द्वत है। सर्वज्ञता (वास्तव मे) शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान एव प्रज्ञा का स्वभाव है। परिणामना भी सर्वज्ञता स्वभाव है। इस अद्वितीय पथ (एकनय) मे प्रवेश करना अद्वय प्रवेश है।'

२१ बोधिसत्त्व गम्भीरमति ने कहा—''शून्यता अन्य है, अनिमित्तता अन्य है और अप्रणिहितता अन्य है, ऐसा समझना द्वय है। जो शून्य है उसमें कोई भी निमित्त (चिह्न) नहीं है जो अनिमित्त है वह अप्रणिहित (इच्छारहित) है। जो अप्रणिहित है उसमें चित्त मन, अथवा विज्ञान का सचार नही होता। सभी विमोक्ष द्वारो को एक विमोक्ष द्वार समझना अद्वय प्रवेश है।'

२२ बोधिसत्त्व शान्तेन्द्रिय ने कहा—''बुद्ध, धर्म एव सघ, यह कहना द्वय है। बुद्ध का स्वभाव धर्म है[१२] धर्म का स्वभाव सघ है। ये सभी असंस्कृत हैं। असस्कृत आकाश

---

९ शान्ति निर्वाण का ही दूसरा नाम है। ''शान्त निर्वाणम्।''

१ अक्षयमति अति प्रसिद्ध बोधिसत्त्व है। अक्षयमतिनिर्देशसूत्र से लगभग २४ उद्धरण शिक्षासमुच्चय तथा ६ बोधिचर्यावतार पंजिका में सुरक्षित है। इस सूत्र का उल्लेख सूत्रसमुच्चय में भी हुआ है।

११ तुलनीय रत्नमेघसूत्र (शिक्षासमुच्चय, पृ २२) ''दान हि बोधिसत्त्वस्य बोधि।''

१२ तुलनीय शालिस्तम्बसूत्र (महायानसूत्रसंग्रह, भाग १, पृ० १०)—
''यो धर्मं पश्यति, स बुद्धं पश्यति।''

के समान है । सभी धर्मों का नय (व्यवहार) आकाश के समान है । इस तथ्य का अनु गमन करना अद्वय प्रवेश ह ।

२३ बोधिसत्त्व अप्रतिहतेक्षण ने कहा—"सत्काय और 'सत्कायनिरोध' यह द्वय ह । सत्काय ही निरोध है । क्योकि अनुत्पन्न होने के कारण वास्तव मे सत्काय दृष्टि असत् हैं, अतएव इस प्रकार की (असत्) दष्टियाँ सत्काय अथवा 'सत्कायनिरोध की कल्पना नही करती हैं, जो अकल्पित है वह निर्विकल्प है । कल्पना की सर्वथा अनुपस्थिति से निरोध स्वभाव होता है (अर्थात् कल्पना का न होना ही निरोध है । जो असम्भव (न होना) और अविनाश है वह अद्वय प्रवेश है । "[13]

२४ बोधिसत्त्व सुविनीत ने कहा—"जिसे काय, वाक एव चित्त का सवर कहते हैं वह द्वय है ।[14] क्योकि इन धर्मों का स्वभाव अनभिसस्कार (निष्क्रिय) है । शरीर (काय) का जो निष्क्रिय स्वभाव (लक्षण) है वही निष्क्रिय स्वभाव वाक् का और वही निष्क्रिय स्वभाव चित्त का भी है । जो सभी वस्तुओ (धर्मों का निष्क्रिय स्वभाव है उसको जानना चाहिये और समझना चाहिये । क्योकि जो यह अनभिसस्कार ज्ञान (निष्क्रिय स्वभाव का ज्ञान) है वही अद्वय प्रवेश है ।"

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, भूमिका, पृ० १७—
"धर्मतो बुद्धा द्रष्ट या धर्मकाया हि नायका ।"
प्रज्ञापारमितापिण्डार्थं, श्लोक ।
"प्रज्ञापारमिता ज्ञानमद्वय सा तथागत ।"

१३ तुलनीय मूलमध्यमककारिका, मगलश्लोक ।
"अनिरोधमनुत्पादमनुच्छेदमशाश्वतम् ।
अनेकार्थमनानार्थमनागममनिर्गमम् ॥"

चतु शतक, १२ १३—
"अद्वितीय शिवद्वार कुदृष्टीना भयङ्करम् ।
विषय सवबुद्धानामिति नैरात्म्यमुच्यते ॥"

१४ द्र० धम्मपद, गाथा ३६१—
"कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय सवरो ।
मनसा सवरो साधु, साधु सब्बत्थ संवरो ॥"

२५ बोधिसत्त्व पुण्यक्षत्र ने कहा— 'पुण्य काय , 'अपुण्य काय' एव अनिञ्ज्य काय' (न पुण्य और न अपुण्य कार्य) का करना द्वय है।[१५] जो पुण्य, अपुण्य, एव अनिञ्ज्य कार्यो का न करना है वह अद्वय है। पुण्य, अपुण्य एव अनिञ्ज्य कार्यो का स्वभाव (स्वलक्षण) शून्यता है। इसमे (शून्यता मे) पुण्य, अपुण्य, अथवा अनिञ्ज्य नही होते हैं। इसमे क्रिया (अभिसस्करणता) भी नही होती है, इस प्रकार के कार्यो को प्रकट न करना अद्वय प्रवेश है।

२६ बोधिसत्त्व पद्म व्यूह ने कहा—' जो आत्म पर्युत्थान से (आत्मवाद के विकास से) उत्पन्न होता है वह द्वय है।[१६] परन्तु आत्म विश्लेषण से प्राप्त ज्ञान से द्वत भावना उत्पन्न नही होती है। इस प्रकार जो अद्वयस्थान (अद्वयावस्था) में विज्ञप्ति रहित होकर विचरण करता है वह विज्ञप्तिरहित होता है, विज्ञप्तिरहितावस्था ही अद्वय प्रवेश है।"

२७ बोधिसत्त्व श्रीगर्भ ने कहा—"उपलम्भ (बाह्यार्थ) का प्रभद द्वय है। जो अनुपलम्भ है (बाह्यार्थ की विविधता से रहित) है, वह अद्वय है। अतएव जिसमे न उपादान (पकडना, ग्राह) है और न उत्सर्ग (छोडना) है वह अद्वय प्रवेश है।'

२८ बोधिसत्त्व चन्द्रोत्तर ने कहा—' 'अन्धकार' एव 'आलोक' यह द्वय है। अन्धकार एव आलोक का अभाव अद्वय है। क्योकि, निरोध समापत्ति के समय न तो अन्धकार है और न आलोक है। यही बात सभी वस्तुओ के विषय में भी ठीक है। (अर्थात् सभी धर्मों का लक्षण या स्वभाव भी ठीक ऐसा ही है)। इस प्रकार की समता मे प्रवेश अद्वय प्रवेश है।

---

१५ धम्मपद, गाथा १८३–
"सब्बपापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपन एत बुद्धान सासन॥"

१६ वेदान्त परम्परा में इसके प्रतिकूल आत्मपर्युत्थान, आत्मदर्शन एव आत्मध्यान की महिमा मिलती है। आश्चर्य है कि आत्मवाद को भी 'अद्वैत-दर्शन' कहा जाता है। वस्तुत आत्मा शब्द ही द्वैत का बोधक है। अतएव आत्मवाद में अद्वय या अद्वैत की गवेषणा करना खपुष्प तोडने अथवा वन्ध्यादुहिता का नृत्य देखने की इच्छा के समान समझना चाहिये। आत्मा शब्द अहकार का बोधक है और अहकार मोक्ष का शत्रु है। आत्मवाद में मोक्ष अनुपलब्ध है और मोक्ष में आत्मा का अस्तित्व नहीं है।

२९ बोधिसत्त्व रत्नमुद्राहस्त ने कहा—'निर्वाण के प्रति अभिरति एव ससार के प्रति अरति, यह द्वय है। जो न निर्वाण मे अभिरति रखते हैं और न ससार से विरत रहते हैं वे अद्वय विहार करते हैं। क्योकि, जब बन्धन है तब नि सरण भी है, परन्तु जब लेशमात्र भी ब धन नही है तो मोक्ष की गवेषणा कसी ? जो भिक्षु न बन्धन मे है और न मुक्त (नि सरण प्राप्त) है उसको न रति होती है और न अरति, इस प्रकार वह अद्वय प्रवेश करता है।"[१७]

३० बोधिसत्त्व रत्नकूटराज ने कहा— माग' एव कुमाग'—यह द्वय है। जो मार्ग पर आरूढ है वह माग एव कुमाग से परे हैं। जो (बोधिसत्त्व) इस प्रकार के अनाचार स्थान (निर्लिप्तावस्था) मे विचरण करता है वह माग सज्ञा अथवा कुमार्ग सज्ञा से रहित होता है। सज्ञा का समुचित ज्ञान होने के कारण उसकी मति द्वय मे प्रवेश नही करती है। यही अद्वय प्रवेश है।

३१ बोधिसत्त्व सत्यरत ने कहा— 'सत्य एव मषा यह द्वय है।[१८] जब सत्य दशन द्वारा कोई सत्यता भी दिखाई नही देती है तो मिथ्यादृष्टि कहाँ से दिखाई दे सकती है ? क्योकि मास चक्ष से नही देखा जाता है अपितु प्रज्ञा चक्षु द्वारा देखा जाता है। (प्रज्ञा चक्षु द्वारा) वहाँ दिखाई देता है जहा न दशन (दिखाई देना) और न विदशन (न दिखाई देना) है। जहा न तो दशन है और न विदशन है, वह अद्वय प्रवेश है।[१९]

---

१७ तुलनीय मूलमध्यमककारिका, १६ ५—
"न बध्यन्ते न मुच्यन्ते उदय ययधर्मिण ।
संस्कारा पूववत्सत्त्वो बध्यते न न मुच्यते ॥"
वही, १६ १०—
"न निर्वाणसमारोपो न ससारापकषणम् ।
यत्र कस्तत्र ससारो निर्वाण किं विकल्प्यते ॥"

१८ तुलनीय वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, पृ ३६—
'अपि तु खलु पुन सुभूते, यस्तथागतेन धर्मोऽभिसबुद्धो देशितो निध्यात, न तत्र सत्य न मषा ।"

१९ तुलनीय महायानविंशिका, श्लोक १—
"न ज्ञानाच्छून्यता नाम काचिदन्या हि विद्यते ।"

इस प्रकार उन बोधिसत्त्वो ने अपने अपने निर्देश (उपदेश) देने के पश्चात् मजुश्री कुमारभूत से कहा—"मजुश्री, बोधिसत्त्व का अद्वय प्रवेश क्या है?" मजुश्री ने कहा—"सत्पुरुषो, यद्यपि आप सभी ने अच्छी याख्याए प्रस्तुत की हैं परन्तु आपके सारे कथन स्वय द्वयवादी हैं। यह जो एक भी उपदेश को न लेना (एक भी याख्या न करना) है, जो अनभिलाप्य है, अकथ्य है नही कहा गया है, जिसकी घाषणा नहीं हो सकती है, जिसका निर्देशन नही हो सकता है जो प्रज्ञप्तिरहित है—वह अद्वय प्रवेश है।"[२]

तब मजुश्री कुमारभूत ने लिच्छवि विमलकीर्ति से कहा—'कुलपुत्र, हम सभी ने अपने अपने निर्देश की याख्या कर दी है। आप भी अद्वयधर्म के प्रवेश द्वार के निर्देश के लिये अपना मत स्पष्ट कीजिये।"

इस प्रश्न को सुनकर लिच्छवि विमलकीर्ति ने मौन धारण कर लिया और कुछ भी नही कहा (विमलकीर्तिस्तूष्णीभूतोऽभूत)।[२१]

---

२० तुलनीय अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० २१—
"अत्र न कश्चिद्धर्मं सूच्यते, न कश्चिद्धर्मं परिदीप्यते, न कश्चिद्धर्मं प्रज्ञप्यते।"
मूलमध्यमककारिका, २५ २४—
"सर्वोपलम्भोपशम प्रपञ्चोपशम शिव।
न क्वचित्कस्यचित्कश्चिद्धर्मो बुद्धेन देशित॥"
तथागतगुह्यसूत्र में कहा गया है कि संबोधि की प्राप्ति की रात्रि से लेकर महापरिनिर्वाण प्राप्ति की रात्रि तक भगवान् तथागत ने एक भी शब्द का या एक अक्षर का भी उच्चारण नहीं किया था। विविध अधिमुक्ति वाले प्राणियों ने स्वय ही तथागत वाणी का अपनी सामर्थ्य के अनुसार उच्चारण किया था।

२१ तुलनीय प्रसन्नपदा, पृ० १९ "केनैतदुक्तमस्ति वा नास्ति वेति। परमार्थो ह्यार्याणां तूष्णींभाव। तत कुतस्तत्र प्रपञ्चसभवो यदुपपत्तिरनुपपत्तिर्वा स्यात्?"
तथागतगुह्यसूत्र (प्रसन्नपदा, पृ २३६)—
"तथागतो न कल्पयति न विकल्पयति। सर्वकल्पविकल्पजालवासनाप्रपचविगतो हि शान्तमते तथागत।"
आधुनिक चर्चा के लिये द्र० गदजिन एम० नगाओ का लेख "दि साइलेन्स ऑफ दि बुद्ध एण्ड इट्स माध्यमिक इण्टरप्रेटेशन "स्टडीज इन इण्डोलॉजी एण्ड बुद्धालॉजी, क्योटो, १९५५, पृ० १३७-१५१।

तब मजुश्री कुमारभूत ने लिच्छवि विमलकीर्ति का साधुकार करते हुए कहा—"साधु, साधु, कुलपुत्र। यही वास्तव मे बोधिसत्त्वो का अद्वय प्रवेश है। इसमे अक्षर, वचन एव विज्ञप्ति का प्रचार नहीं होता है।'

इस उपदेश के दिये जाने पर पाँच हजार बोधिसत्त्वो ने अद्वय धम के द्वार मे प्रवेश करके अनुत्पत्तिक धमक्षाति का लाभ प्राप्त किया।

अष्टम परिवर्त समाप्त।

९ निर्मित बोधिसत्त्व द्वारा भोजन का आदान

उस समय आयुष्मान् शारिपुत्र ने सोचा "यदि ये महान् बोधिसत्त्व मध्याह्न से पहले यहाँ से उठते नही हैं तो भोजन कहाँ करेंगे ?"

लिच्छवि विमलकीर्ति ने आयुष्मान् शारिपुत्र के चित्त में उत्पन्न विचार को अपने चित्त (ज्ञान) से जान लिया और आयुष्मान् शारिपुत्र से कहा—"भदन्त शारिपुत्र तथागत ने जिन आठ विमोक्षो का उपदेश किया है उन विमोक्षो को ध्यान मे रखिये और आमिष (भौतिक) वस्तुओ के मिश्रण से मुक्त चित्त से धर्म का श्रवण कीजिये। भदन्त शारिपुत्र, मुहूर्त की प्रतीक्षा कीजिये। आप ऐसा भोजन करेंगे जैसा पहले कभी नही किया था।"

तत्पश्चात लिच्छवि विमलकीर्ति ने ऐसी समाधि लगाई और ऐसी ऋद्धि का प्रदर्शन किया जिससे कि उन बोधिसत्त्वो और उन महाश्रावको को सर्वगन्धसुगन्धा नामक वह लोकधातु[1] दिखाई दिया जो यहाँ से ऊर्ध्वदिशा मे बयालीस गंगा नदियो के बालु कणो के बराबर बुद्धक्षेत्रो को पार करने के पश्चात स्थित है। इस बुद्धक्षेत्र मे सुगन्धकूट नामक तथागत रहते हैं, जो इसे धारण करते हैं और इसका पोषण करते हैं। इस लोकधातु के वृक्षो से एक सुगन्ध उत्पन्न होती है जो उस लोकधातु के दसो दिशाओ के सभी बुद्धक्षेत्रो की मानवीय एवं दैवी सुगन्ध से भी विशिष्टतर (श्रेष्ठतर) है। उस लोकधातु में 'श्रावक' एवं 'प्रत्येकबुद्ध' शब्द भी नहीं होते हैं।[2] तथागत सुगन्धकूट केवल बोधिसत्त्वो के गण (संघ) की सभा मे धर्म का उपदेश करते हैं। उस लोकधातु मे सभी कूटागार (उत्तुंग शिखर वाले निवास कक्ष) सभी चंक्रमण (भ्रमण करने के मार्ग स्थल) उद्यान, तथा भवन (विमान), धूपमय (सुगन्धित) हैं अर्थात् सुगन्ध से निर्मित हैं। वहाँ के बोधिसत्त्वो द्वारा खाये जाने वाले अन्न (भोजन) की सुगन्ध से असंख्य लोकधातु प्रभावित होते हैं।

---

१ द्र० प्रसन्नपदा, पृ० १४३ जहाँ पर विमलकीर्तिनिर्देश का तुलनीय अंश उद्धृत किया गया है।

२ तात्पर्य यह है कि श्रावकयान व प्रत्येकबुद्धयान के अनुयायी तथागत सुगन्धकूट के बुद्धक्षेत्र में होते ही नहीं। वहाँ केवल बुद्धयान के मानने वाले बोधिसत्त्व रहते हैं।

उस समय भगवान् सुगधकूट तथागत अपने बोधिसत्त्वो के साथ भोजन करने के लिये बठे थे। वहाँ पर गध-यूहृतपण नामक महायान का अनुगमन करने वाला एक देवता भगवान् की और उनके बोधिसत्त्वो की सेवा उपासना मे जुटा हुआ था। विमलकीर्ति के निवास पर एकत्रित सम्पूण परिषद् ने उस लोकधातु को, जहाँ तथागत सुगधकूट उन बोधिसत्वो के साथ भोजन के लिये बठ हुये थे स्पष्ट रूप से देखा।

लिच्छवि विमलकीर्ति ने अपने घर पर एकत्रित सभी बोधिसत्त्वो को सम्बोधित करते हुये कहा—'सत्पुरुषो आप लोगो के मध्य कौन ऐसा है जो उस बुद्धक्षेत्र से आहार लाने के लिये तयार (उत्साहित) है? (परन्तु) मजुश्री के अधिष्ठान (अतिमानवीय शक्ति के प्रभाव) के कारण कोई भी जाने को तयार नही हुआ।[3] तब लिच्छवि विमल कीर्ति ने मजुश्री कुमारभूत से कहा— मजुश्री इस प्रकार का आपका यह परिवार क्या लज्जास्पद नही है? मजुश्री ने उत्तर दिया—"कुलपुत्र क्या तथागत ने यह नहीं कहा है कि 'अशिक्षितो (अशक्षो) को हीनमना नहीं समझना चाहिये।?'[4]

तब लिच्छवि विमलकीर्ति ने अपनी शय्या से उठे बिना ही उन बोधिसत्त्वो के सम्मुख एक ऐसे (कृत्रिम) बोधिसत्त्व का निर्माण किया जिसकी देह सुवणवण की और लक्षणो एव अनुयजनो से अलकृत थी। निर्मित बोधिसत्त्व के इस प्रतिरूप के वर्ण की आभा से वह सारी परिषद् प्रकाशहीन सी हो गयी और उसी के रूप के प्रभास की तरह हो गयी।

लिच्छवि विमलकीर्ति ने उस निर्मित बोधिसत्त्व से कहा—" कुलपुत्र ऊध्व दिशा मे जाओ बयालीस गगा नदियो के बालुकणो के समान (असख्य) बुद्ध क्षेत्रो को पार करने के पश्चात् सवग धसुगन्धा नामक एक लोकधातु है। वहाँ तथागत सुगधकूट भोजन करने के लिये बठे मिलेंगे। वहाँ पहुच कर तथागत सुगधकूट के चरणो मे सिर झुकाकर प्रणाम करने के पश्चात् इस प्रकार निवेदन करना— भगवन् लिच्छवि विमलकीर्ति आपके

---

३ विमलकीर्ति के घर में उपस्थित सभी बोधिसत्त्वों म मजुश्री सर्वश्रेष्ठ बोधिसत्त्व थे जो प्रज्ञा मूर्ति एव असाधारण ऋद्धियुक्त थे।

४ अशैक्ष (असेख) वे भिक्षु हैं जो अभी अर्हत् पथ पर शिक्षा प्राप्त करने में लगे हैं और जिन्होंने अभी पूर्णता प्राप्त नहीं की है। अशैक्ष भी माननीय व दक्षिणेय है। द्र अंगुत्तर निकाय, खण्ड १, पृ ६ —
"द्वे, खो, गहपति, लोके दक्खिणेय्या-सेखो च असेखो च।"

चरणो मे शतसहस्र बार सिर झुकाकर प्रणाम करता है, और आपके स्वास्थ्य के बारे मे पूछता है—भगवन् को अल्पबाधा तो नही है, अल्प आतक (असुविधा) व थोड़ी बेचनी तो नही है, आप शक्तिपूर्ण, सुखी, निर्दोष, और सुख के स्पश मे विहार कर रहे हैं ? और यह भी प्रार्थना करता है कि भगवन् अपने भोजन का अवशिष्ट भाग मुझे दे दें। इस अवशिष्ट भोजन से विमलकीर्ति सहालोक[५] मे बुद्ध काय करेगा। जो प्राणी हीन अधिमुक्ति वाले हैं वे उदार अधिमुक्ति से प्ररित हो जाएगे, एव तथागत के लक्षण (बुद्धगुण) भी बढ़ेंगे।"

उस निर्मित बोधिसत्व ने लिच्छवि विमलकीर्ति से 'बहुत अच्छा' कहा और उसकी आज्ञा का पालन किया। उन बोधिसत्वो के सामने उस (निर्मित) बोधिसत्व ने ऊपर की ओर मुख किया और सीधे चल दिया, उन बोधिसत्वो ने उसे जाते हुो नही देखा। सवग धसुग धा नामक लोकधातु मे पहुँच कर उसने तथागत सग धकूट के चरण में सिर झकाकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—

"भगवन् बोधिसत्व विमलकीर्ति भगवान् के चरणो मे सिर झुकाकर प्रणाम करता है और इस प्रकार भगवान् का अभिवादन करता है—'भगवान् को अल्पबाधा तो नही है, अल्प आतक (असुविधा) व थोडी बेचैनी तो नही है ? आप शक्तिपूण, सुखी, निर्दोष और सुख के स्पश मे विहार कर रहे हैं ?' वह भगवान् के चरणो मे शतसहस्र बार सिर झुका कर प्रणाम करके यह याचना करता है—' भगवन् अपने भोजन का अवशिष्ट भाग मुझे दे दें। इससे मैं (विमलकीर्ति) सहालोक मे बुद्ध काय करुगा। जो हीन अधिमुक्ति वाले प्राणी हैं वे बुद्ध की भाँति उदार अधिमुक्ति से प्रेरित हो जाएगे और तथागत के लक्षण (बुद्ध गुण) भी बढेंगे।'

भगवान् सुगन्धकूट तथागत के बुद्धक्षेत्र के बोधिसत्वो ने आश्चयचकित होकर भगवान् सुग धकूट तथागत से पूछा—' भगवन्, इस प्रकार का महासत्त्व कहा से आया है ? वह सहा नामक लोकधातु कहाँ है ? हीन अधिमुक्ति के प्राणी का क्या अथ है ? इस प्रकार उन बोधिसत्त्वों ने तथागत से पूछा।

तब भगवान् सग धकूट तथागत ने उन बोधिसत्वो से कहा—"कुलपुत्रो, यहाँ से नीचे की ओर बयालीस गगानदियो के बालुकणो के बराबर बुद्ध क्षेत्रो को पार करने के

---

५ सहालोक अथवा सहालोकधातु हमारे विश्व का नाम है जिसमें हम सब प्राणी रहते हैं।

पश्चात् सहा नामक एक लोकधातु स्थित है। वहा शाक्यमुनि नामक तथागत उस पच कषायो वाले बुद्धक्षेत्र मे हीन अधिमुक्ति वाले प्राणियो को धम का उपदेश करते हैं। वहाँ अचि तनीय विमोक्ष में विहार करने वाला बोधिसत्त्व विमलकीर्ति बोधिसत्त्वो को धम का उपदेश करता है। उसने मेरे नाम की कीर्ति के लिये, तथा उन बोधिसत्त्वो के कुशलमूलो को सुतप्त (परिशुद्ध) करने के लिये, इस निर्मित बोधिसत्त्व को प्रेषित किया है।'

तब उन बोधिसत्त्वो ने कहा– भगवन् उस बोधिसत्त्व का बडा माहात्म्य है, उसके द्वारा निर्मित बोधिसत्त्व मे भी इस प्रकार की ऋद्धि, बल एव वशारद्य (निभयता) है।" तथागत सुग धकूट ने कहा— 'उस बोधिसत्त्व का ऐसा माहात्म्य है कि वह दसों दिशाओ के बुद्धक्षत्रो में निर्माणकायो को भजता है, वे निर्माणकाय उन सभी बुद्धक्षत्रो में सभी प्राणियो के कार्यों के लिये और बुद्ध के काय के द्वारा उपस्थित रहते हैं।

तत्पश्चात् सुगन्धकूट तथागत ने सभी सुग धो से युक्त एक पात्र में सभी प्रकार की सुग धो से सुगधित भोजन डाल दिया। उस पात्र को उन्होने उस निर्माण काय बोधिसत्त्व को दे दिया। उस समय उस लोकधातु के नब्बे लाख (नवति शत सहस्राणि) बोधिसत्त्व उस निर्माणकाय बोधिसत्त्व के साथ जाने के इच्छक हो गये थे।

उन्होने कहा– भगवन् हम भी उस सहा लोकधातु को, उन भगवान् शाक्यमुनि के दशनाथ, उनकी वन्दना करने के लिये उनकी सेवा करने के लिये, तथा विमलकीर्ति एव उन बोधिसत्त्वों के दशन करने के लिये जाते है।' भगवान् ने कहा—" कुलपुत्रो, यदि तुम इसे उपयुक्त समय समझते हो तो जाओ।

'कुलपुत्रो, निश्चय ही वे प्राणी (सहालोक के सत्त्व) उन्मत्त एव प्रमत्त हो जाएगे अतएव अपनी सुगन्ध से रहित होकर जाओ। उस सहालोकधातु के वे प्राणी मूर्छित हो जाते हैं अतएव अपने (सुन्दर) स्वरूप को पीछे छोड जाओ। उस लोकधातु मे हीन सज्ञा उत्पन्न होने से प्रतिघसज्ञा (घृणा की भावना) को उत्पन्न नही करना। क्योकि, कुलपुत्रो बुद्धक्षत्र आकाशक्षत्र की तरह है। प्राणियो के परिपाचनाथ बुद्ध भगवन्त (एक साथ ही) सम्पूण बुद्धगोचरो को नही दिखाते हैं।'

तत्पश्चात वह निर्माणकाय बोधिसत्त्व इस सवसुगन्धवासित भोजन को लेकर, नब्बे सौ हजार (नब्बे लाख) बोधिसत्त्वो के साथ भगवान् बुद्ध के अनुभाव से एव विमलकीर्ति के अधिष्ठान से, उस सवग धसुगन्धा लोकधातु से अन्तर्धान होकर एक क्षण के लव-मात्र मुहूत के भीतर ही लिच्छवि विमलकीर्ति के घर मे जा पहुँचा।

लिच्छवि विमलकीर्ति ने जसे सिंहासन पहले से वहाँ पर थे वसे ही नब्बे लाख सिंहासन और निर्मित कर दिये। उन सिंहासनो पर वे बोधिसत्त्व बैठ गये। तत्पश्चात उस निर्माणकाय बोधिसत्त्व ने भोजन से परिपूर्ण भाजन विमलकीर्ति को दे दिया।

उस भोजन की सुगध सम्पूर्ण महानगरी वशाली मे प्रविष्ट हो गई और (एक) सहस्र लोकधातु मे वह स्वादिष्ट सुगध प्रसारित हो गई। वशाली के जो ब्राह्मण व गृहपति थे और लिच्छवि गणराज्य के प्रधान लिच्छवि चद्रछत्र थे उन सब ने जब वह सुगध सूघी (नाक द्वारा ग्रहण की) तो वे आश्चर्यान्वित और चकित हो गये, इस प्रकार प्रसन्नचित्त और प्रसन्नकाय हुये चौरासी हजार लिच्छवि गण विमलकीर्ति के घर मे आ पहुँचे।

वे लिच्छवि गण उस घर मे विस्तृत, ऊचे एव विशाल सिंहासनो पर सभी बोधिसत्त्वो को बठे हुये देख कर प्रसन्न हुये और उन्होने अधिमुक्ति (बोधि का आशय) उत्पन्न किया। उन सभी ने वहाँ पर बठे महाश्रावकों तथा महाबोधिसत्त्वो की अभिनन्दना की और एक ओर को बठ गये। पृथिवी के देवता, कामावचर (कामलोक) के देवता, तथा रूपावचर (रूपलोक) के देवता भी उस सुगध से आकृष्ट (अथवा प्रेरित) होकर विमलकीर्ति के घर मे आ गये।

तत्पश्चात् लिच्छवि विमलकीर्ति ने स्थविर शारिपुत्र एव उन महाश्रावको से कहा–'भदन्तगण, तथागत का भोज्य, महाकरुणा से सुवासित यह अमृत (भोजन) खाइये। (परन्तु) प्रादेशिकचित्तता (सकीर्ण, श्रावकयानी विचार) से अपने को मुक्त रखिये अन्यथा आप इस भोजन दान का भोग करने मे असमर्थ रहेगे।''

तब कुछ श्रावकों ने सोचा—''इस थोडे से भोजन को यह इतनी विशाल परिषद् कसे खा सकती है?'' तभी उस निर्माणकाय बोधिसत्त्व ने श्रावको से कहा—'आयुष्मानो, अपने पुण्य एव प्रज्ञा की तुलना तथागत के पुण्य एव प्रज्ञा के साथ मत कीजिये। क्योकि समझ लीजिये कि चार महासमुद्र भले ही क्षीण हो सकते हैं परन्तु यह भोजन कभी भी (जरा सा भी) क्षीण (समाप्त) नही हो सकता है। इसी प्रकार यदि सभी प्राणी एक कल्प तक इस भोजन की सुमेरु पवत के समान मात्रा खाते रहे तब भी यह कम नही होगा। क्योकि, अक्षय शील अक्षय प्रज्ञा, एव अक्षय समाधि से निसृत तथागत के भोजन के पात्र मे बचा हुआ यह भोजन कभी भी क्षय को प्राप्त नही हो सकता है।''

यथार्थ मे उस भोजन से सम्पूर्ण परिषद् तृप्त हो गई, फिर भी वह भोजन समाप्त नही हुआ। उस भोजन को जिन बोधिसत्त्वो, श्रावको, इन्द्रो, ब्रह्माओ, लोकपालो एव अन्य प्राणियो ने खाया था, उनके शरीरों मे ऐसा सुख उत्पन्न (प्रकट) हुआ जैसा सुख सर्वसुखमण्डित नामक लोकधातु के बोधिसत्त्वो को प्राप्त है। उनके सारे रोमकूपो से ऐसी सुगन्ध उत्पन्न हुई जैसी कि सर्वसुगन्धा नामक लोकधातु के वृक्षो से निकलती है।[६]

तत्पश्चात लिच्छवि विमलकीर्ति ने जानबूझ कर उन बोधिसत्त्वो से कहा जो भगवान सुगन्धकूट तथागत के बुद्धक्षेत्र से आये हुये थे—"कुलपुत्रो, तथागत सुगन्धकूट की धर्मदेशना किस प्रकार की है? उन बोधिसत्त्वों ने कहा—"तथागत शब्द और भाषा द्वारा धर्म का उपदेश नही करते हैं।[७] उनकी सुगन्ध द्वारा ही बोधिसत्त्व विनीत हो जाते हैं। जो सुगन्ध वृक्ष वहाँ हैं जिनके मूल मे बोधिसत्त्व बैठते हैं, उनकी सुगन्ध जिस प्रकार की होती है उसी प्रकार के बोधिसत्त्व होते हैं (अथवा उन वृक्षो से उसी प्रकार की सुगन्ध निकलती है जिस प्रकार वे बोधिसत्त्व हैं)। जिस क्षण से बोधिसत्त्व उस सुगन्ध को सूँघते हैं उसी क्षण से वे 'सर्वबोधिसत्त्वगुणाकर समाधि प्राप्त कर लेते हैं। उस समाधि की प्राप्ति के समय से ही उनमे बोधिसत्त्व के गुण उत्पन्न हो जाते है।

उन बोधिसत्त्वो ने तब लिच्छवि विमलकीर्ति से पूछा—' भगवान् शाक्यमुनि किस प्रकार यहाँ धर्म की देशना करते हैं?

विमलकीर्ति ने कहा—' सत्पुरुषो, यहाँ के ये प्राणी दुर्विनेय हैं (इन्हें धर्मानुशासन में रखना कठिन है)। ऐसे खटुक[८] (कुटिल स्वभाव के) एव दुर्विनेय प्राणियो को वह

---

६ अक्षयभोजन के वर्णन का यह अंश शिक्षासमुच्चय, पृ० १४४ में द्रष्टव्य है।

७ तुलनीय तथागतगुह्यसूत्र (बोधिचर्यावतार पंजिका, पृ० १९९) में उद्धृत—
"यस्यां रात्रौ तथागतोऽभिसंबुद्धो यस्यां च परिनिर्वृत्त, अत्रान्तरे तथागतेन एकमप्यक्षरं नोदाहृतम्। तत्कस्य हेतो? नित्य समाहितो भगवान्। ये च अक्षरस्वररुतवैनेया सत्वा ते तथागतमुखात् कर्णाकोशात् उष्णीषात् ध्वनिं निश्चरन्त शृण्वन्तीत्यादि।" इसी सूत्र का लगभग इसी आशय का परन्तु अधिक विस्तृत गद्यांश प्रसन्नपदा, पृ० २३६ में उद्धृत है।

८ खटुक, कटुक, खडुक, खटक एक ही शब्द के विभिन्न रूप हैं। पालि ग्रन्थों में अस्स खडुक दुर्विनेय एव नटखट या पाजी घोडे के लिये प्रयुक्त हुआ है। काश्यपपरिवर्त में खटुक शब्द का बहुत्र प्रयोग हुआ है। अन्यत्र भी यह शब्द बहुधा प्रयुक्त हुआ है।

ऐसे उपदेश देते हैं जो दुर्विनेय एव खटुक प्राणियो के लिये उपयुक्त होते हैं। किस प्रकार वह खटुक एव दुर्विनेय प्राणियो को विनीत (अनुशासित) करते हैं? खटुक दुर्विनेय प्राणियो को अनुशासित करने वाले उपदेश कौन से है? ये इस प्रकार हैं—

"ये नरयिक (नरक मे रहने वाले प्राणी) हैं, यह तियग्योनि है, यह यमलोक है, ये अक्षण (प्रतिकूल समय) है ये इन्द्रियहीन प्राणी हैं।

'यह कायदुश्चरित (शारीरिक दुराचार या पाप) है, यह कायदुश्चरित का विपाक (कमफल) है। यह वाग्दुश्चरित (वाणी का दुराचार) है यह वाग्दुश्चरित का विपाक है। यह मानसिक दुराचार है यह मानसिक दुराचार का विपाक है।

"यह प्राणातिपात (हिंसा) है यह अदत्तादान (चोरी) है यह काम विषयक मिथ्याचार (अब्रह्मचय) है यह मृषावाद (असत्य भाषण) है, यह पशुन्यवाद (चुगल खोरी) ह, यह पारुष्यवाद (वचनो की क्रूरता या कठोरता) है, यह सभिन्नप्रलाप (व्यथ की बात चीत) ह, यह अभिध्या (लोभ) ह, यह व्यापाद (द्वष) ह, यह मिथ्या दृष्टि ह ये इनके विपाक हैं।

'यह मात्सय (ईर्ष्या) ह यह मात्सय का फल है, यह दुःशीलता ह, यह दुःशीलता का फल ह, (यह क्रोध ह,) यह क्रोध का फल है, यह कौसीद्य (आलस्य) है, यह कौसीद्य का फल ह (यह दुष्प्रज्ञता है) यह दुष्प्रज्ञता का फल ह।

"यह शिक्षापदो का अतिक्रमण ह, यह प्रातिमोक्ष है, यह करना चाहिये, यह नही करना चाहिये इसका अभ्यास करना चाहिये, इसका प्रहाण करना चाहिये, यह आवरण ह, यह अनावरण ह यह आपत्ति (अपराध) ह, यह आपत्ति से ऊपर उठना है, यह मार्ग है, यह कुमाग है यह कुशल (अपुण्य) है, यह अकुशल (पण्य) ह यह दोषपूण ह यह निर्दोष है यह सास्रव (अशुद्ध) ह, यह अनास्रव (विशुद्ध) ह, यह लौकिक ह, यह लोकोत्तर है, यह सस्कृत है यह असस्कृत ह यह सक्लेश (अपवित्रता) ह, यह व्यवदान (पवित्रता) ह; यह ससार ह, यह निर्वाण ह।

इस प्रकार इन विविध उपायो से धम की देशना करके शाक्यमुनि तथागत उन प्राणियों के चित्त को प्रशिक्षित (प्रतिष्ठापित) करते है जो खटुक अश्व (अविनम्र घोडे)

'कुहका खटुका कुशीला' (सत्वा)। जो कुटिल, दुर्दान्त, मूढ, शठ एव अस्पष्ट है जिन्हें धर्मपथ पर ले जाना कठिन है, उन्हें खटुक सत्त्व अथवा कटुक प्राणी कहा गया है।

की तरह हैं।[१] जिस प्रकार दुष्ट घोडे या जगली हाथी मम स्थान पर चोट मारने से विनीत होते हैं, उसी प्रकार दुष्ट एव दुर्विनेय (खटुक स्वभाव के) प्राणी भी सभी प्रकार के दु खो को दर्शाने वाले उपदेशो से विनीत एव अनुशासित होत हैं।"

उन बोधिसत्त्वो ने कहा —"इस प्रकार भगवान् बुद्ध शाक्यमुनि का माहात्म्य स्थापित है। हीन दरिद्र एव खटुक प्राणियो को अनुशासित करना आश्चय (का काय) है। जो बोधिसत्त्व इस प्रकार के औदारिक (कठोर) बुद्धक्षेत्र मे स्थिति है, उनकी महाकरुणा (वास्तव मे) अचि तनीय है।"

लिच्छवि विमलकीर्ति ने कहा—"ठीक ऐसा ही है सत्पुरुषो, जैसा आप कहते हैं वैसा ही है। जो बोधिसत्त्व यहाँ उत्पन्न होते हैं उनकी महाकरुणा सुदृढ होती है। वे इस लोकधातु मे एक ही ज म मे प्राणियो का बहुत सा हित सम्पादन करते हैं। उस सवग घ सुग धा लोकधातु में एक सौ हजार कल्पों मे भी प्राणियो का इतना (अधिक) हित सम्पन्न नहीं हो सकता है। क्योकि, सत्पुरुषो इस सहा लोकधातु मे दस प्रकार के कुशल धर्मों का सग्रह किया जा सकता है। ये कुशलधम अ य किसी बुद्धक्षेत्र में नही होत हैं। कौन से दस (कुशलधम) ? ये (दस कुशलधम) इस प्रकार हैं—

"१ दान द्वारा दरिद्रो को आकर्षित करना २ शील द्वारा दु शील जनो को आकर्षित करना ३ क्षान्ति द्वारा कटुक (कठोर) जनो को आकर्षित करना ४ वीय द्वारा आलसी जनो को आकर्षित करना ५ ध्यान द्वारा विक्षिप्त चित्त वाले जनों को आकर्षित करना, ६ प्रज्ञा द्वारा मूख जनो को आकर्षित करना, ७ अष्ट अक्षणों से पीडित लोगो को उन अक्षणो का अतिक्रमण करने की शिक्षा देना, ८ प्रादेशिक-यान (श्रावकयान) के अनुयायियो को बोधिसत्त्वयान (महायान) का उपदेश करना, ९ कुशल

---

१ सभी साधारण मनुष्यों का चित्त चचल एव दुन्मनीय होता है पर तु खटुक प्राणियों का चित्त और भी अधिक अस्थिर एव कठोर होता है। एक आधुनिक योगी ने गाया है—

"चचल मन भटकत है, भटकत है भटकावत है।

ज्यों मरकट तरु ऊपर डार डार पर लटकत है।"

तुलनीय सयुत्तनिकाय, खण्ड २, पृ० ८१ पर चित्त अथवा मन का चित्र "सेय्यथापि, भिक्खवे, मक्कटो अरञ्ञे पवने चरमानो साख गण्हति, न मुञ्चित्वा अञ्ञ गण्हति। एवमेव खो भिक्खवे, यमिद वुच्चति चित्त इति पि, मनो इति पि विञ्ञाणं इति पि ।"

मूलावरोपण द्वारा उन लोगो का सग्रह करना जिन्होने कुशलमूलो का उत्पादन नही किया है तथा १० चार सग्रह वस्तुओ द्वारा निरतर प्राणियो का परिपाचन करना। ये दस प्रकार परिग्रहणीय कुशलधम अन्य किसी बुद्धक्षेत्र मे विद्यमान नही ह।'

बोधिसत्त्वो ने फिर पूछा— "इस सहा लोकधातु से च्युत होकर, बिना किसी हानि एव उपद्रव से ग्रस्त हुये परिशुद्ध बुद्धक्षेत्र मे जाने के लिये बोधिसत्त्व को कितने गुणो से सम्पन्न होना चाहिये ?"

विमलकीर्ति ने कहा— 'इस सहा लोकधातु से च्युत होकर, किसी हानि एव उपद्रव से ग्रस्त हुए बिना परिशुद्ध बुद्धक्षेत्र मे जाने के लिये बोधिसत्त्वो को आठ गुणो से सम्पन्न होना चाहिए। कौन से आठ ? बोधिसत्त्व को ध्यानपूवक सोचना चाहिये कि—१ सभी प्राणी मेरे अनुग्राह्य हैं, मुझे स्वय अपना हित सोचे बिना सभी प्राणियो का हित सम्पादन करना चाहिये २ सभी प्राणियो के सभी दुखो को मुझे सहन करना चाहिये और मैंने जितने भी कुशलमूल प्राप्त किये हैं उन सब को सभी प्राणियो के लिय दे देना चाहिये[१०]। ३ किसी भी प्राणी के लिये मुझे बाधक नहीं होना चाहिये। ४ सभी बोधिसत्त्वो मे मुझे प्रसन्न रहना चाहिये मानो कि वे शास्ता ह। ५ श्रवण किये हुए और श्रवण न किये हुये उपदेशो को सुनकर मुझे उनका प्रतिक्षेप नही करना चाहिये (अर्थात् उन्हें छोडना नही चाहिये)। ६ मुझे दूसरो के लाभ को देखकर होने वाली ईर्ष्या से मुक्त होना चाहिये और स्वय अपने लाभ पर गव न करने वाला और अपने चित्त को ठीक से समझने वाला होना चाहिये। ७ मुझको स्वय अपने पतनो (दोषो) का ध्यान रखना चाहिये और दूसरो की उनके दोषो के लिये ताडना नही करनी चाहिये।[११] तथा ८ प्रमाद रहित होकर प्रसन्नतापूर्वक मुझे सभी गुणो का स्वागत करना चाहिय। जो बोधिसत्त्व उपयुक्त

---

१० प्रथमभावनाक्रम, पृ० १०३—"सकलजगतो हिताय बुद्धो भवेयम्।"
बोधिचर्यावतार, ३ ६—
"एव सवमिद कृत्वा य मयासादित शुभम्।
तेन स्यां सर्वसत्त्वाना सवदु खप्रशान्तिकृत्॥"

११ तुलनीय धम्मपद, गाथा ५०—
"न परेस विलोमानि न परेस कताकत।
अत्तनो व अवेक्खेय्य, कतानि अकतानि च॥"

आठ गुणो (धर्मों) से सम्पन्न ह, वे इस सहा लोकधातु से च्युत होने के पश्चात् बिना हानि व उपद्रव के परिशुद्ध बुद्धक्षेत्र को जाते हैं।"

लिच्छवि विमलकीर्ति द्वारा तथा मजुश्री कुमारभूत द्वारा वहाँ पर एकत्रित परिषद् को इस प्रकार धर्मोपदेश करने के समय एक लाख (शतसहस्र) प्राणियो ने अनुत्तर सम्यकसम्बोधि का चित्त उत्पन्न किया और दस हजार बोधिसत्त्वो ने अनुत्पत्तिक धम क्षान्ति प्राप्त की।

नवम परिवर्त समाप्त।

१०. क्षयाक्षय का असाधारण उपदेश

उस समय आम्रपाली के उद्यान मे, जहाँ भगवान धर्मोपदेश कर रहे थे, वहाँ का वह मण्डलाकार क्षेत्र, विस्तृत एव विशाल हो गया था और वहाँ की परिषद् सुवणवण की सी प्रकट हो गई थी।

तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवन्त से पूछा—"भगवन्, यहाँ का यह आम्रपाली वन (उद्यान) विस्तृत एव विशाल हो गया है, और सम्पूण परिषद् भी सुवणवण की दिखाई देती है ये किस के (कौन सी घटना के) पूव निमित्त ह ?"

भगवान् ने कहा—" आनन्द, ये पूव निमित्त लिच्छवि विमलकीर्ति तथा मजुश्री कुमारभूत के बहुत बडे परिवार (अनुचरो के समूह) से परिवृत एव पुरस्कृत होकर तथागत के समीप आगमन के सूचक है।"

उस समय लिच्छवि विमलकीर्ति ने मजुश्री कुमारभूत से कहा—"मजुश्री, ये महा सत्त्व भी तथागत के दशन करना और उनको प्रणाम करना चाहते हैं, अतएव हम सभी तथागत के समीप चलेगे।"

मजश्री ने कहा—'कुलपुत्र, यदि यह उचित समय समझते हो तो जाओ।"

तब लिच्छवि विमलकीर्ति ने ऐसा ऋद्धिकाय (चमत्कार प्रदशन) किया कि सिंहा सनो से परिपूण उस परिषद् को अपने दाहिने हाथ मे रख कर वह जहाँ भगवान् (शाक्य मुनि बुद्ध) थे वहाँ जा पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने उस सम्पूण परिषद् को भूमि पर प्रतिष्ठापित कर दिया। तब उसने भगवान् के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनकी सात बार प्रदक्षिणा करके एक ओर को हो गया। सुग धकूट तथागत के बुद्धक्षत्र से आए हुये उन बोधिसत्त्वो ने भी सिंहासनो से उतर कर, भगवान् के चरणो मे अपने सिर झुका कर उनकी अभिवन्दना की और भगवान् को हाथ जोड कर नमस्कार करते हुये एक ओर को खड़े हो गये। उन अ य सभी बोधिसत्त्वो, महासत्त्वो, तथा महाश्रावको ने भी अपने सिंहासनो से उतर कर, भगवान् के चरणो मे सिर झुका कर उनकी अभि

वन्दना की और एक ओर को हो गये। इसी प्रकार (वहाँ पर उपस्थित) सभी इन्द्रो, ब्रह्माओ, लोकपालों व देवताओ ने भी भगवान् के चरणो मे अपने सिर झुका कर उनकी अभिवन्दना की और एक ओर को हो गये।

तब भगवान् ने उन बोधिसत्त्वो को अपने धार्मिक वचनो से प्रसन्न करके कहा— 'कुलपुत्रो, अपने अपने सिंहासनो पर बठ जाओ'' । भगवान् के ऐसा कहने पर वे सिंहासनो पर बठ गये।

भगवान् ने शारिपुत्र से कहा— 'शारिपुत्र, आपने बोधिसत्त्वो व श्रेष्ठसत्त्वो द्वारा (ऋद्धियो का) विकुवण (चमत्कार प्रदशन) देखा ?

शारिपुत्र ने उत्तर दिया—''भगवन्, अवश्य देखा है ?''

भगवान् ने फिर पूछा— ' तो आपने उनके विषय मे कसी धारणा बनाई है ?''

शारिपुत्र ने उत्तर दिया— 'भगवन, मैंने अवश्य ही उनके विषय मे अचिन्तनीय धारणा बनाई है। उनके काय मुझ अचिन्तनीय दिखाई दिये यहाँ तक कि उनके विषय मे विचार करना, उनकी माप करना एव उनकी गणना करना (मेरी) शक्ति से बाहर है।''

तब आयुष्मान आनन्द ने भगवान् से पूछा—'' भगवन इस प्रकार की यह सुगन्ध किसकी है जसी कि मैंने पहले कभी सूघी ही नहीं थी ?''

भगवान् ने उत्तर दिया— 'आनन्द, इन बोधिसत्त्वो के शरीर के सभी रोमकूपो से इस प्रकार की सुगन्ध निःसृत होती है। [1]

शारिपुत्र ने भी कहा— आयुष्मान् आनन्द, हमारी देह के सभी रोमकूपों से भी इस प्रकार की सुगन्ध निश्चरित होती है।

आनन्द ने पुन पूछा— यह सुगन्ध कहाँ से आई है ?''

शारिपुत्र ने उत्तर दिया—' लिच्छवि विमलकीर्ति ने सुगन्धकूट तथागत के सवगन्धसुगन्धा लोकधातु नामक बुद्धक्षत्र से कुछ भोजन प्राप्त किया था। इस भोजन को खा कर के सभी के शरीरो से इस प्रकार की सुगन्ध निश्चरित होती है।'

---

१ बोधिसत्त्वों का घ्राणन्द्रिय की असाधारण परिशुद्धि और उनके द्वारा त्रिसाहस्रमहासाहस्र लोकधातुओं की विविध प्रकार की दुर्गन्धियों एव सुगन्धियों के अनुभव की चर्चा के लिये द्र० सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ २१३

तब आयुष्मान् आनन्द ने लिच्छवि विमलकीर्ति से कहा—"यह सुगन्ध कितने समय तक रहेगी ?"

विमलकीर्ति ने उत्तर दिया—"जब तक अन्न पच नही जाता है।"

आनन्द ने पुन पूछा—"कितने समय मे यह अन्न पच जायेगा ?।'

विमलकीर्ति ने उत्तर दिया—" यह अन्न सात दिन और सात रात मे पचेगा। तब भी एक सप्ताह तक इस भोजन की सुगन्ध प्रकट होती रहेगी, परन्तु भोजन न पचने के इस समय में कोई भी पीडा नही होगी।

"भदन्त आनन्द, यदि ऐसे भिक्षु, जो (बोधिसत्त्व की अन्तिम गति प्राप्त करने की) निश्चायक स्थिति मे नहीं पहुँचे हैं, इस भोजन को खाते हैं तो वे इसे तब पचा सकेंगे जब वे उस नियाम स्थिति (बुद्धत्व की प्राप्ति की निश्चयात्मक अवस्था) मे पहुँच जाएगे।[2] यदि नियाम स्थिति पर पहुँचे हुये व्यक्ति इस भोजन को खाते हैं तो वे तब तक उसे नहीं पचा सकते हैं जब तक उनके चित्त पूर्ण रूप से मुक्त नही हो जाते हैं। यदि बोधिचित्त उत्पन्न किये बिना ही कोई प्राणी इस भोजन को खाते हैं तो वे इसे तब पचा सकते हैं जब बोधिचित्तोत्पाद कर लेंगे। यदि बोधिचित्तोत्पाद किये हुये प्राणी इस भोजन को खाते हैं तो वे इसे तब पचा सकेंगे जब क्षान्ति प्राप्त कर लेंगे।[3] यदि क्षान्ति प्राप्त किये हुये प्राणी इस भोजन को खाते हैं तो उनके द्वारा यह भोजन तब पचाया जा सकेगा जब वे बुद्धत्व की प्राप्ति से केवल एक जन्म से दूर रह जाएगे, (एक जातिप्रतिबद्ध वे बोधिसत्त्व हैं जिन्हे बुद्ध होने के लिये केवल एक और जन्म लेना है)।[4]

'भदन्त आनन्द, जिस प्रकार 'सरस' नामक औषधि पेट मे पहुँच कर तब तक नही पचती है जब तक सभी विष समाप्त नही कर दिये जाते हैं, (पेट में उपस्थित अन्य सभी विषो की समाप्ति होने पर ही वह औषधि पचती है)।[5] इसी प्रकार, भदन्त आनन्द,

---

२ यह वाक्य शिक्षासमुच्चय, पृ० १४४ में उद्धृत है।

३ यह वाक्य भी शिक्षासमुच्चय, पृ० १४४ में उद्धृत हैं।

४ 'एकजातिप्रतिबद्ध' बोधिसत्त्व और 'सकृदागामिन्' श्रावक के मध्य समता होते हुये भी बहुत बड़ा अन्तर है। अनुत्तर-सम्यक्-सम्बोधि एवं श्रावक-सम्बोधि की प्राप्ति के मार्गों में भेद होने के कारण बोधिसत्व का अन्तिम जन्म श्रावक के अन्तिम जन्म से भिन्न समझना चाहिये।

५ तुलनीय रत्नकूटसूत्र (प्रसन्नपदा, पृ० १०८-१०९)—

जब तक क्लेशरूपी समस्त विष समाप्त नही हो जाते हैं तब तक वह भोजन नही पचता है। (जब क्लेश विष नष्ट हो जाते हैं उसके पश्चात् ही वह भोजन पचता है।"

तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से कहा—'भगवान्, यह भोजन ही बुद्ध कार्य करता है।"

भगवान ने कहा—"ऐसा ही है, आनन्द ऐसा ही है, जैसा तुम कहते हो। आनन्द, (१) कुछ बुद्धक्षेत्र हैं जिनमे बोधिसत्त्व बुद्ध काय करत हैं, (२) कुछ बुद्धक्षेत्र हैं जहाँ प्रभा (प्रकाश) के माध्यम से बुद्ध काय होता है (३) कुछ बुद्धक्षेत्र हैं जहाँ बोधिवक्ष के माध्यम से बुद्ध काय होता है (४) कुछ बुद्धक्षेत्र हैं जहाँ तथागत के लक्षणो (महा पुरुष लक्षणो) एव रूप के दशन द्वारा बुद्ध काय होता है, (५) कुछ बुद्धक्षेत्र हैं जहा चीवर (भिक्ष के कषाय वस्त्र) के माध्यम से बुद्ध काय होता है (६) कुछ बुद्धक्षेत्र है जहाँ भोजन के माध्यम से बुद्ध काय होता है (७) कुछ बुद्धक्षेत्र हैं जहाँ जल के माध्यम से बुद्ध काय होता है (८) कुछ बुद्धक्षेत्र हैं जहाँ उद्यान के माध्यम से बुद्ध काय होता है, (९) कुछ बुद्धक्षेत्र हैं जहाँ विमान (महल) के माध्यम से बुद्ध काय होता है (१०) कुछ बुद्धक्षेत्र हैं जहाँ कूटागार (उत्तुग शिखर युक्त कक्ष) द्वारा बुद्ध काय होता है, (११) कुछ बुद्धक्षेत्र ऐसे भी हैं आनन्द, जहाँ निर्मितरूप (निर्माणकाय) के माध्यम से बद्‍ध काय होता है, (१२) आनन्द, कुछ बुद्‍धक्षेत्र हैं जहाँ आकाश के माध्यम से बुद्ध काय होता है। इसी प्रकार (१३) आकाश के अ तरिक्ष (वायुमण्डल) से बुद्ध कार्य होता है। (क्योकि आनन्द), इन विविध उपायो से शिक्षित करने योग्य प्राणी अनुशासित (विनीत)होते हैं।

'इसी प्रकार, आनन्द (कुछ बुद्धक्षत्र हैं जहाँ) प्राणियो को अक्षरो, परिभाषाओ एव उदाहरणों यथा स्वप्न, प्रतिबिम्ब उदक चन्द्र, प्रतिश्रुति (प्रतिध्वनि), माया (भ्रम), मृगमरीचि की शिक्षा देकर बुद्ध काय सम्पन्न होता है। कुछ बुद्ध क्षेत्र ऐसे भी हैं जहाँ अक्षर (शब्द) के ज्ञान द्वारा बुद्ध काय होता है।[९] आनन्द, ऐसे भी बुद्धक्षत्र हैं जो पूणरूपेण

'तद्यथा काश्यप, ग्लान पुरुष स्यात्। तस्मै वैद्यो भैषज्य दद्यात्। तस्य तद्भैषज्य सर्वदोषानुच्चार्य स्वय कोष्ठगत न निःसरेत्। तत्किं मन्यसे काश्यप, अपि तु स पुरुषस्तु ग्लान्यान्मुक्तो भवेत्? नो हीद भगवन्। गाढतर तस्य पुरुषस्य ग्लान्य भवेत्।"

९ तुलनीय दशभूमिकसूत्र, पृ० ५२—

परिशुद्ध हैं, जहाँ प्राणियो के लिये बुद्धकाय वाणी के बिना (अवचनेन), मौन रहकर (अनभिलापन), स्पष्ट उपदेश के बिना (अनिदशनेन), तथा उच्चारण किये बिना (अनुदाहारेण) भी होता है।[७]

आनन्द, बुद्धो भगवन्तो के इर्यापथ (व्यवहार), उपभोग (खान पान), एव परिभोग (उपयोग की वस्तुओ) मे कुछ भी ऐसा नही है जो प्राणियो को अनुशासित नही करता है और जिससे बुद्ध काय नही सम्पन्न नही होता है। आन द, ये जो चतुर्विध मार हैं और चौरासी लाख (चतुरशीतिशतसहस्र) प्रकार के क्लेश द्वार हैं, जिनसे प्राणी सक्लिष्ट (पीडित) होते हैं, इ न सभी के द्वारा भी बुद्ध भगव त बुद्ध काय करत हैं।

यही वह धममुख है, आन द, जिसको सभी बुद्ध गुणो का प्रवेश द्वार कहते हैं। जो बोधिसत्त्व इस धममुख (धमद्वार) मे प्रविष्ट होते हैं वे सभी उत्तम गुणों के ऐश्वय से परिपूण बुद्धक्षेत्रो में जाकर न प्रसन्न होते हैं और न गव का अनुभव करते हैं, इसी प्रकार यदि वे सव प्रकार के उत्तम गुणों के ऐश्वय से रहित बुद्ध क्षेत्रो मे जाते हैं तो भी उदासीनता अथवा श्रेष्ठता की भावना नही रखत है। सभी परिस्थितियो मे वे तथागतो के प्रति समान आदश की भावना उत्पन्न करते हैं। यह (वास्तव) मे आश्चयमय है कि भगवन्त बुद्ध, जि होने सवधमसमता प्राप्त कर रखी है, प्राणियो के परिपाचन (बोधि प्राप्ति की दिशा मे विकास) के लिये नाना प्रकार के बुद्धक्षेत्रो को प्रकट कहते है।

"आन द जिस प्रकार यद्यपि विविध बुद्धक्षत्रो के विविध प्रकार के अन्यो य गुण होते हैं, फिर भी क्रियामाग की दृष्टि से (व्यवहार रूप मे) सभी विस्तृत बुद्धक्षेत्र आकाश की भाँति एक दूसरे से अभिन्न हैं, इसी प्रकार, आन द, यद्यपि तथागतो का रूप काय विविध प्रकार का होता है, फिर भी सभी तथागतो का असग (स्वत त्र) ज्ञान अभिन्न (एक समान) होता है।[८]

"स धर्मासने निषण्ण आकाक्षन् एकघोषोदाहारेण सर्वपर्षद नानाघोषरुतविमात्रतया सज्ञा पयति।" द्र० वही, ५३।

७ तुलनीय लकावतारसूत्र, पृ० ४३—

"न च महामते सवबुद्धक्षेत्रेषु प्रसिद्धोऽभिलाप। अभिलापो महामते कृतक।"

८ द्र० (१) सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र पृ० ९१—'निर्वाण एक है, न दो है, न तीन।'

(२) दशभूमिकसूत्र पृ ५३—'जैसा एक तथागत, वैसे ही सभी तथागत हैं।'

"आनन्द, परिनिष्पन्नता की दृष्टि से सभी बुद्धो मे समानता है, सभी बुद्धों का रूप, वर्ण, तेज, शरीर, उनके (महापुरुष) लक्षण उनकी कुलीनता, उनका शील, उनकी समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति, विमुक्तिज्ञानदर्शन, उनके बल, वैशारद्य, आवेणिक बुद्धधर्म, उनकी महामैत्री महाकरुणा उनका हित-अभिप्राय, ईर्यापथ, उनकी चर्या, उनका मार्ग, उनकी आयु का प्रमाण, उनकी धर्म देशना, उनका सत्त्व परिपाचन, उनका सत्त्व विमोचन एव उनका बुद्धक्षेत्र परिशोधन ये सभी समान होते है । इसलिये वे तथागत 'सम्यक् सबुद्ध' कहलाते हैं 'तथागत' एव 'बुद्ध' कहलाते है ।

"आनन्द, यदि तुम्हारा जीवन काल (आयुप्रमाण) एक कल्प भर तक (दीर्घ) हो तो भी तुम्हारे लिये इन तीन शब्दो (सम्यक्सम्बुद्ध तथागत एव बुद्ध) का विस्तृत अर्थ और वचन विभाजन (वाक्य विन्यास विश्लेषण) करना कठिन होगा, इनका (गम्भीर) अर्थ समझना सरल कार्य नही है ।[8b] आनन्द यदि इस त्रिसाहस्रमहासाहस्र लोकधातु में रहने वाले सभी प्राणी तुम्हारी तरह ही बहुश्रुतो (विद्वानो) और स्मृति एव धारणी मे निपुण व्यक्तियो मे श्रेष्ठता प्राप्त कर के, आनन्द, यदि वे सभी तुम्हारे ही प्रतिरूप हो करके भी कल्प भर तक इस कार्य मे जुटे रहे, तो भी, आनन्द, वे इन तीन शब्दो— सम्यक्सम्बुद्ध, तथागत एव बुद्ध—का नियत अर्थ समझने मे असमर्थ रहेगे । इस प्रकार, आनन्द, बुद्ध की बोधि अपरिमित (अप्रमाण) है तथागतो की प्रज्ञा एव प्रतिभान (भाषण कुशलता) अचिन्तनीय है ।"[9]

---

(३) सुत्तनिपात, गाथा ८८४—"सत्य एक ही है, दूसरा नहीं ।"

(४) रत्नगोत्रविभाग महायानोत्तरतन्त्रशास्त्र १ ८७—
"परमार्थत बुद्धत्व ही निर्वाण है जो अद्वय है ।"

(५) प्रज्ञापारमितापिण्डार्थ, श्लोक १—"प्रज्ञापारमिता अद्वयज्ञान है और वही तथागत है ।"

(६) रत्नावली, १ ५७—"यथाभूतपरिज्ञान से अद्वयमोक्ष होता है ।

(७) चतुःशतक, १२ १३—"जो सभी बुद्धों का विषय (गोचर) है, जिसको नैरात्म्य कहते हैं और जो मिथ्यादृष्टि वाले लोगों को भयावह लगता है, वही अद्वितीय शिवद्वार है ।"

८b द० दीघनिकाय, खण्ड २, पृ ८१ जहाँ पर आयुष्मान् आनन्द ने तथागत के स्पष्ट सकेत भरे वाक्यों को न समझने के कारण महापरिनिर्वाण स्थगित करने व कल्पभर जीवित रहने की उनसे प्रार्थना नहीं की थी ।

९ तुलनीय अंगुत्तर निकाय, खण्ड २, पृ ८४—

तब आयुष्मान आनन्द ने "भगवान् से कहा—भगवन्, आज से आगे को मैं अपने आप को बहुश्रुतो (विद्वानो) मे अग्रणी नही समझूँगा ।"

भगवान् ने कहा—"आनन्द, दैन्य उत्पन्न न करो (हीन भावना का विकास न करो) । क्योंकि, श्रावको को ध्यान मे रखकर, न कि बोधिसत्त्वो को ध्यान मे रखकर, मैंने तुमको 'बहुश्रुतो मे अग्रणी' घोषित किया था । आनन्द, बोधिसत्त्वो को देखना तो छोड दो वे तो पण्डितो के द्वारा भी अप्रमेय एव अग्राह्य हैं । आनन्द, सभी समुद्रों की गहराई को मापा (नापा) जा सकता है, परन्तु बोधिसत्त्वो की प्रज्ञा, उनके ज्ञान, उनकी स्मृति, उनकी धारणी, उनका प्रतिभान, एव उनकी गम्भीरता की माप करना असम्भव है ।

"आनन्द बोधिसत्वो की चर्या के प्रति तुम्हे उपेक्षा (समत्व भावना) करनी चाहिये । क्योंकि आनन्द, लिच्छवि विमलकीर्ति ने एक पूर्वाह्न के समय मे ये जो अनेक प्रकार के चमत्कारपूर्ण कृत्य कर दिखाये हैं, उन्हे सारे ऋद्धिप्राप्त श्रावक एव प्रत्येकबुद्ध एक लाख करोड (शतसहस्रकोटि) कल्पो तक सभी प्रकार की ऋद्धि विषयक एव काय निर्माण (रूपान्तर) से सम्बन्धित प्रातिहार्यों के द्वारा भी नही दिखा सकते है ।'

तब तथागत सुगन्धकूट के बुद्धक्षेत्र से आये हुये उन सभी बोधिसत्त्वो ने हाथ जोड कर तथागत शाक्यमुनि को नमस्कार करके उनसे यह वचन कहे—"भगवन्, इस बुद्धक्षेत्र में हमने जो हीन सज्ञा उत्पन्न की थी (इस बुद्धक्षेत्र के विषय मे हीन विचार प्रारम्भ

"बुद्धान बुद्धविसयो अचिन्तेय्यो, न चिन्तेतब्बो, य चिन्तेन्तो उम्मादस्स विघातस्स भागी अस्स ।"

महावंस १७ ५६ तथा थेरापदान (बुद्ध अपदान), गाथा ८२—
"एव अचिन्तिया बुद्धा बुद्धधम्मा अचिन्तिया ।" वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता, पृ० ३७
"अचिन्त्योऽय धर्मपर्यायस्तथागतेन भाषित ।"

प्रसन्नपदा, पृ० १८६ में एक सूत्र से निम्नलिखित पक्तियाँ उद्धृत की गई हैं—
"सुखिता सद ते नरलोके ये अचिन्तिय ज्ञातिमि धर्मा ।" तथा
"चित्तवितर्कण सर्वि प्रपञ्चा सूक्ष्म अचिन्तिय बुध्यथ धर्मान् ।"

१० चुल्लवग्ग पृ० ४०९ में कहा गया है कि भदन्त आनन्द ने प्रथम बौद्ध सगीति में सुत्तपिटक का कण्ठस्थ पाठ सुनाया था । अट्ठकथाओं के अनुसार आनन्द ने ८४ ० धर्मस्कन्धों का श्रवण किया था ।

किया था), उसे हम छोडना चाहते हैं। क्योकि भगवन् बुद्ध भगव तो के विषयक्षत्र एव उनके विविध उपायकौशल्य अचि त्य हैं। प्राणियो के परिपाचन के लिये वे इच्छानुसार क्षेत्र यूहों (काय क्षेत्र की यवस्थाओ को) प्रकट करते हैं (अर्थात् जिस प्रकार की प्राणियो की इच्छाए होती हैं उसी प्रकार के क्षेत्रो को प्रकट करते हैं)। भगवन्, हम को भी कोई ऐसा असाधारण धम उपदेश (धम-यौतक[११]) दीजिये जिससे हम सवग धसुग धा लोकधातु में जाकर (आप) भगवान् को स्मरण करें।

इस प्रकार प्राथना किये जाने पर भगवान् ने उन बोधिसत्त्वो स कहा—"कुलपुत्रो, बोधिसत्त्वो का एक विमोक्ष है जिस क्षयाक्षय (क्षय अक्षय) विमोक्ष कहते हैं। आप को इस क्षयाक्षय विमोक्ष मे प्रशिक्षित होना चाहिये। यह क्या है ? 'क्षय' का अथ सस्कृत है (सस्कृत वस्तुओ का नाम क्षय है), 'अक्षय का अथ असस्कृत है (असस्कृत वस्तुओ का नाम अक्षय है)। बोधिसत्त्व को न तो सस्कृत का विनाश करना चाहिये और न असस्कृत मे स्थित रहना चाहिये।[१२]

"सस्कृत के अक्षय (विनाश न करने) का अथ है महामत्री का विनाश न करना, महाकरुणा का त्याग न करना, अध्याशय (बोधि का दृढ़ अभिप्राय) द्वारा उत्पन्न सवज्ञ चित्त (सवज्ञता प्राप्त करने के विचार) को विस्मृत (लुप्त) न होने देना, प्राणियो के परिपाचन के काय में न थकना, सग्रहवस्तुओ का परित्याग न करना, सद्धम के परि

---

११ धर्मयौतक का अथ है धर्मदान, सिद्धा त रूपी भट, धर्मोपदेश की भेंट। धर्मशास्त्रों व स्मृतियों में क या को उसके विवाह के समय प्रदान किया जाने वाला सामान (सम्पत्ति, धन) 'यौतक' कहा गया है। **विमलकीर्तिनिर्देश** से ज्ञात होता है कि 'यौतक' असाधारण शिक्षा, उपदेश अथवा सिद्धा त के लिये प्रयुक्त हुआ है। 'क्षय' एव 'अक्षय' से परे परमार्थ की देशना वस्तुत असाधारण है। आचार्य नागार्जु न ने भी **रत्नावली** १ ६२ में 'धमयौतक' शब्द का प्रयोग 'अस्ति' एव 'नास्ति' के विचारों का अतिक्रमण करने वाले भगवान् बुद्ध के गम्भीर शासनामृत की देशना के लिये किया है।
सर्वग धसुग धा लोकधातु के बोधि सत्त्व अपने साथ हमारे इस सहालोक से तथागत भगवान् शाक्यमुनि से स्मृतिचिन्ह के रूप में धर्मयौतक माग रहे हैं।

१२ तुलनीय **मूलमध्यमककारिका**, २५ ३—"निर्वाण उसे कहते हैं जिसका प्रहाण नहीं होता है, जो प्राप्त नहीं किया जाता है, जो उच्छिन्न नहीं होता है, जो शाश्वत भी नहीं है, जिसका न निरोध होता है और न उत्पाद।'

ग्रह के लिये शरीर एव जीवन का त्याग करना,[13] (अवरोपित) कुशलमूलो मे सन्तुष्टि अनुभव न करना, परिणामना (बोधि की प्राप्ति के लिय समपण) के कौशल्य की व्यव स्था करना, धम की खोज में आलस्य न करना, धम की देशना में आचाय मुष्टि (शिक्षा देने में ज्ञान को छिपा कर रखने व भेद भाव रखने) का प्रयोग न करना, तथागत के दशन करने तथा उनकी पूजा करने के लिये प्रयत्न करना, स्वेच्छा से (जान बूझकर) पुन उत्पन्न होने (पुनज मधारण करने) मे भय न करना (निभय होना), सम्पत्ति मे गर्वान्वित न होना और विपत्ति (अवनति) मे हीन न होना, अशिक्षितो से घृणा न करना एव शिक्षितो का इस प्रकार आदर करना मानो वे शास्ता हो, बहुत से क्लेशो वाले व्यक्तियो के चित्त को ध्यान के लिये प्रेरित करना, विवेक (एकान्त) पसन्द करना परन्तु उसमे अनासक्त रहना, अपने सुख के प्रति आसक्ति न रखना परन्तु दूसरो के सुख के प्रति आसक्ति रखना, ध्यान, समाधि एव समापत्तियो के प्रति ऐसी धारणा रखना मानो कि वे अवीचि (नरक) हैं, ससार के विषय में ऐसा विचार रखना मानो कि वह निर्याण का उद्यान है, याचकों को कल्याणमित्र समझना, अपने सवस्व परित्याग को सवज्ञता की पूणता का माध्यम समझना, दु शील यक्तियो को अपना गोप्ता (रक्षक) समझना, पार मिताओं को माता पिता समझना, बोधिपाक्षिक धर्मों को स्वामी की सेवा की भाँति समझना,[14] सभी कुशलमूलो के सचय में अन्तुष्ट रहना, सभी बुद्धक्षेत्रो के गुणो का अपने

---

१३ तुलनीय **बोधिसत्वप्रातिमोक्ष (बोधिचर्यावतार पजिका, पृ० ४१)**—

"बोधिसत्व चित्तशूर होता है (चित्त का शौर्य दिखाता है), वह अपने हाथ का परित्याग (दान) करने वाला, पैर का परित्याग करने वाला, नाक, सिर और अग प्रत्यंग का परित्याग करने वाला, सवस्व का परित्याग करने वाला होता है।" **नारायणपरिपृच्छा सूत्र (बोधिचर्यावतार पंजिका, पृ० ४१ ४२)** में कहा गया है—"मेरा यह आत्मभाव भी सभी प्राणियों के लिए योछावर है, अन्य बाह्य वस्तुओं का तो कहना ही क्या।"

१४ अथवा 'बोधिपाक्षिक धर्मों को स्वामी का सेवक समझना।'

बोधिसत्त्वचर्या अनन्त है, क्योंकि अनन्त प्राणी अनन्त दुखों से पीड़ित हैं, और बोधिसत्व का बुद्धकार्य तबतक समाप्त नहीं होता जबतक सभी प्राणी विमुक्त और सुखी नहीं हो जाते। अतएव कुशलकर्मों के सम्पादन में वह सन्तुष्ट नहीं रह सकता है। ससार में रहकर ही बोधि सत्त्वचर्या एव धार्मिक वृद्धि हो सकती है। निर्वाण में न बोधि है, न सत्त्व हैं, और न चर्या ही है।

क्षेत्र में निष्पादन करना, (महापुरुष) लक्षणों एव अनु यजनो की परिपूणता के लिये मुक्तरूप से पवित्र यज्ञ एव त्याग करना, सब प्रकार के पापो को न करके शरीर, वाणी एव चित्त को अलकृत करना[१५] शरीर, वाणी एव चित्त की परिशुद्धि मे असख्य कल्पो तक ससार में रहना,[१६] अपरिमित बुद्ध गुणो के श्रवण मे चित्त के पराक्रम द्वारा उत्साह कम न करना, क्लेश रूपी शत्रु का निग्रह करने के लिय प्रज्ञा रूपी तीक्ष्ण शस्त्र धारण करना, सभी प्राणियो के भार को उठाने के लिये स्कन्धो, धातुओं एव आयतनो का ज्ञान प्राप्त करना, मार की सेना को मारने के लिये वीय से देदीप्यमान (प्रज्वलित,) रहना अभि मान रहित होने के लिये ज्ञान की खोज में रहना धर्म को सीखने एव ग्रहण करने के लिये कम इच्छाए रखना और सन्तोष करना, सभी लोगो को स तुष्ट एव प्रस न करने के लिये लोक के सभी धर्मों (वस्तुओ) मे असम्भेद (समान भाव) रखना, सभी लोगो के साथ सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए सभी प्रकार के इर्यापथ (व्यवहार) को बनाये रखना, सभी क्रियाओ के सप्रकाशन (सम्पादन) करने के लिये अभिज्ञाओ को प्राप्त करना, समस्त ज्ञान को धारण करने के लिए धारणी, स्मृति एव विविध ज्ञान प्राप्त करना सभी प्राणियों के सशयो का नाश करने के लिये प्राणियो की (आध्यात्मिक) शक्ति (इन्द्रिय) की आदि एव अन्त (इन्द्रिय वर-अवर) कोटि का ज्ञान होना, धम की देशना करने के लिये अप्रतिहत (अजेय) अधिष्ठान का प्रयोग करना, प्रतिभान की प्राप्ति के सुलाभ द्वारा अप्रतिहत प्रतिभान प्राप्त करना, कुशलकमपथो की परिशुद्धि करते हुये दैवी एव मानवीय उपलब्धियो का आस्वादन करना, चार अप्रमेय गुणो (ब्रह्मविहारो) की अभिवृद्धि करके पवित्रमाग को प्रतिष्ठापित करना, धमदेशना के लिये प्राथना करना (धमदेशना का)

---

१५ तुलनीय धम्मपद, गाथा १८३—

"सभी पापों को न करना, कुशल (पुण्य) कार्यों से सम्पन्न होना, एव अपने चित्त की परि शुद्धि करना-यही बुद्धों की शिक्षा है।"

१६ तुलनीय तत्त्वसग्रह, कारिका ५—

"अनल्पकल्पासख्येसात्मीभूतमहादय ।" अर्थात् सम्यक् सबुद्ध होने से पूव तथागत शाक्यमुनि ने अपनी बोधिसत्त्वचर्या के काल में बडे लम्बे असख्य कल्पों तक महाकरुणा का मूर्तरूप होकर ससार में रहकर परार्थ प्रयत्न किया था। सात्मीभूतमहादया, महाकरुणा ही उनकी आत्मा हो गयी थी। परात्मपरिवतन एव परात्मसमता के माध्यम से बोधिसत्त्वों की बोधि चर्या सम्पन्न होती है।

अनुमोदन करना, साधुकार करना और इस प्रकार बुद्ध स्वर प्राप्त करना, काय, वाक एव चित्त के सवर द्वारा विशेष आध्यात्मिक उन्नति करके तथा किसी भी वस्तु के साथ आसक्ति न रखकर बुद्ध के ईर्यापथ को प्राप्त करना, प्राणियो को महायान मे प्रवेश करवाने के लिये बोधिसत्त्व सघ का सग्रह करना और सभी गुणो की रक्षा के लिये सवदा अप्रमत्त एव जागरूक रहना। कुलपुत्रो ! जो बोधिसत्त्व इस प्रकार धर्माभियुक्त (धम सम्पादन मे जुटा हुआ) है, वह बोधिसत्त्व सस्कृत को समाप्त नही करता है।

"असस्कृत मे स्थित न रहना क्या है ? शू यता मे मुक्ति की खोज करना, पर तु शू यता का साक्षात्कार न करना, अनिमित्त मे मुक्ति की खोज करना, पर तु अनिमित्त का साक्षात्कार न करना, अप्रणिहित मे मुक्ति की खोज करना, पर तु अप्रणिहित का साक्षात्कार न करना, अनभिसस्कार (कर्मों का सग्रह न करना) अर्थात् कमसग्रहहीनता में मुक्ति की खोज करना, परन्तु अनभिसस्कार का साक्षात्कार न करना। (दूसरे शब्दो मे, असस्कृत में स्थित न रहने का अथ यह है कि बोधिसत्त्व शून्यता, अनिमित्त, अप्रणिहित, एव अनभिसस्कार का अभ्यास करता है परन्तु उनका साक्षात्कार नही करता है और इस प्रकार अपनी बोधिचर्या को समाप्त नही होने देता)।

"अनित्यता का पूरा ज्ञान रखना, पर तु कुशलमूलो से असन्तुष्ट रहना, दु ख का पूरा ज्ञान रखना, परन्तु जानबूझकर (स्वेच्छा पूवक) पुन जन्म लेना, न रात्म्य का पूरा ज्ञान रखना पर तु आत्मपरित्याग न करना।[१७]

"शान्ति का पूरा ज्ञान रखना, पर तु उपशम का उत्थान न करना, विवेक (एका त वास) का पूरा ज्ञान रखना पर तु कायिक एव मानसिक प्रयत्नो को न छोड़ना, अनालय (गृहहीनता) का पूरा ज्ञान रखना, पर तु वस्तुओ (धार्मिक कार्यों) के आलय का त्याग न करना अनुत्पाद का पूरा ज्ञान रखना, परन्तु प्राणियो के भार को धारण करना, अनास्रव का पूरा ज्ञान रखना, पर तु ससार प्रब ध का अनुसरण करना,

---

१७ अनित्य, दु ख, एव अनात्म इन तीन लक्षणों से सभी सस्कृत धर्म (= हेतु प्रत्ययों के संयोग से निर्मित प्राणी, पदार्थ, वस्तुएँ, घटनाएँ, विचार) लक्षित है। सम्पूर्ण चराचर एव दृष्टिगत जगत में कुछ भी ऐसा नहीं है जो लक्षणत्रय के आघात से मुक्त है। इन तीन लक्षणों का सम्यक् ज्ञान मुक्तिप्रापक है। द्र० धम्मपद, गाथा २७७ २७९ "सभी सस्कार अनित्य हैं, सभी सस्कार दु ख है सभी धर्म अनात्म है जो इस प्रकार देखता है और जानता है वह दु ख से ऊब जाता है, यही विशुद्धि का मार्ग है।"

अप्रचार (स्थिरता) का पूरा ज्ञान रखना, परन्तु प्राणियों के परिपाचन के लिये प्रचार (गतिशीलता) उत्पन्न करना, नरात्म्य का पूरा ज्ञान रखना, परन्तु प्राणियों के प्रति महाकरुणा का त्याग न करना, अप्ररोहण (अजाति) का पूरा ज्ञान रखना, परन्तु श्रावको की नियति (अन्तिम गति) में पतित न होना।

"सभी वस्तुओं (धर्मों) की तुच्छता, रिक्तता, नि सारता, अस्वामिकता (निभरता) व अनिकेतता का पूण ज्ञान रखना, परन्तु महान् (अतुच्छ) पुण्यो मे, ठोस (अरिक्त) ज्ञान मे, परिपूर्ण सकल्पो मे, स्वयम्भू (स्वय उत्पन्न, अपने आप प्राप्त होने वाले) ज्ञान के अभिषेक में, स्वयम्भू ज्ञान की प्राप्ति के सतत प्रयत्न मे, तथा बुद्धगोत्र के नीतार्थ (स्पष्ट) अर्थ मे प्रतिष्ठित रहना। कुलपुत्रो! इस प्रकार के धम मे अधिमुक्त (जुटा हुआ) बोधिसत्त्व न असस्कृत में स्थित (तिष्ठ) रहता है और न सस्कृत का व्यय करता है।

"कुलपुत्रो! पुण्यसभार की प्राप्ति के लिये भी बोधिसत्त्व असंस्कृत मे स्थित नही रहता है, और ज्ञानसभार की प्राप्ति के लिये भी सस्कृत का विनाश (व्यय) नही करता है। महामैत्री से परिपूर्ण होने से असस्कृत में स्थित नही रहता है, और महा करुणा से परिपूर्ण होने वे वह सस्कृत का विनाश नहीं करता है।

"प्राणियो के परिपाचन के लिये वह असस्कृत मे स्थित नहीं रहता है और बुद्ध गुणो मे अधिमुक्ति के कारण वह सस्कृत का विनाश नही करता है। बुद्धत्व के लक्षणो की परिपूर्णता के लिये वह असस्कृत में स्थित नही रहता है, और सवज्ञ ज्ञान की परिपूर्णता के लिये वह सस्कृत का विनाश नही करता है। उपायकौशल्य के कारण वह असस्कृत मे स्थित नही रहता है, और सुनिश्चित प्रज्ञा के कारण वह सस्कृत का विनाश नही करता है। बुद्धक्षेत्र की परिशुद्धि के लिये वह असस्कृत मे स्थित नही रहता है बुद्ध के अधिष्ठान के कारण वह सस्कृत का विनाश नही करता है। प्राणियो के हित का अनुभव करने के कारण वह असस्कृत में स्थित रहता है, और धर्म के अथ का सप्रकाशन करने के लिये वह सस्कृत का विनाश नहीं करता है।

"कुशलमूलों के सचय के लिये वह (बोधिसत्त्व) असस्कृत मे स्थित नही रहता है, और कुशलमूलो की वृद्धि की वासना (स्वाभाविक इच्छा) के कारण वह असस्कृत को समाप्त नहीं करता है। प्रणिधान की परिपूणता प्राप्त करने के लिये वह असस्कृत में स्थित

नहीं रहता है, और अप्रणिहित (इच्छारहित) होने के कारण वह सस्कृत को समाप्त नहीं करता है। आशय की परिशुद्धि होने के कारण (परिशुद्ध आशय होने के कारण) वह असस्कृत में स्थित नही रहता है, और अध्याशय (उच्चकोटि का अभिप्राय) शुद्ध होने के कारण वह सस्कृत को समाप्त नही करता है। पाँच अभिज्ञाओ से क्रीडा करने के कारण वह असस्कृत में स्थित नही रहता है, और बुद्धज्ञान की छ अभिज्ञाओं के लिये वह सस्कृत को समाप्त नहीं करता है।

"पारमिताओ के सचय की परिपूर्णता के लिये वह असस्कृत मे स्थित नही रहता है, और काल (सभी सत्त्वों द्वारा बोधि प्राप्ति तक का समय) पूरा करने के लिये वह सस्कृत को समाप्त नहीं करता है। धर्म रूपी धन के सग्रह के लिये वह असस्कृत में स्थित नही रहता है और प्रादेशिक धम (श्रावकयान की शिक्षा) के प्रति अनिच्छा के कारण वह संस्कृत को समाप्त नहीं करता है। धम भैषज्य (धर्म रूपी औषधियों) के सग्रह के लिये वह असस्कृत में स्थित नहीं रहता है और (रुग्ण प्राणियो की चिकित्सा के लिये) औषधियों का यथायोग्य प्रयोग करने के लिये वह सस्कृत को समाप्त नही करता है।

"अपनी प्रतिज्ञाओं को परिपक्व करने के लिये वह असंस्कृत मे स्थित नहीं रहता है और प्रतिज्ञाओं की हानि होने के पश्चात् उस हानि को पूरा करने के लिये वह सस्कृत को समाप्त नही करता है। धर्मौषधि (धर्म रूपी औषधि) की व्यवस्था करने के लिये वह असस्कृत मे स्थित नहीं रहता है, और इस प्रकार की मृदु (मधुर) धर्म औषधि के प्रयोग के लिये वह सस्कृत को समाप्त नही करता है। क्लेश रूपी सभी रोगो को पूर्ण रूपेण जानने के कारण वह असंस्कृत में स्थित नहीं रहता है और सभी रोगो का शमन करने के लिये वह सस्कृत का क्षय नहीं चाहता है। कुलपुत्रो, इस प्रकार बोधिसत्त्व सस्कृत का विनाश नही करता है और असस्कृत मे स्थित नहीं रहता है। यही बोधि सत्त्वो का क्षय अक्षय (क्षयाक्षय) नामक विमोक्ष कहलाता है। इस क्षयाक्षय विमोक्ष के लिये सत्पुरुषो ! आप को प्रयत्न करना चाहिये।"

तब वे बोधिसत्त्व गण, इस उपदेश को सुनकर सन्तुष्ट हुये एव प्रसन्न हुये, और खुशी से गद्गद हो गये। प्रमुदित होकर और प्रीतिसौमनस्य (श्रद्धा एव प्रीति से परिपूर्ण चित्त) को प्राप्त होने के कारण भगवान् बुद्ध शाक्यमुनि की पूजा करने के लिये, (वहाँ

पर उपस्थित सहालोक के) उन सभी बोधिसत्त्वो एव इस धमपर्याय (धर्मोपदेश) की पूजा करने के लिये, उन बोधिसत्त्वो ने इस सम्पूण त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु को सभी प्रकार के अनेको सुगन्धित चूर्णों, सुगन्धियो, धूपों एव पुष्पो से घुटनों की ऊचाई तक आच्छादित कर दिया । इस प्रकार तथागत की परिषद् को पुष्पों से आच्छादित करके, भगवान् के चरणो मे सिर झुका कर, उनकी वन्दना करके, भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा करके, उन्होने प्रीतिवाक्यो (उदानों) का उच्चारण किया । तत्पश्चात् वे बुद्धक्षेत्र से अन्तर्निहित (अन्तर्धान) होकर एक क्षण के लव मुहूर्त मे ही सवगन्धसुगन्धा लोकधातु में जा पहुँचे ।

दशम परिवर्त समाप्त ।

११. अभिरति लोकधातु एवं तथागत अक्षोभ्य के दर्शन

भगवान बुद्ध ने लिच्छवि विमलकीर्ति से कहा—"कुलपुत्र, जब आप तथागत को देखना चाहते हैं तब तथागत को किस प्रकार देखते हैं ?"

लिच्छवि विमलकीर्ति ने कहा—"भगवन्, जब मैं तथागत को देखने की कामना करता हूँ, तब मैं निश्चय ही तथागत को देखे विना उन्हें देखता हूँ (अर्थात् तथागत के दर्शन तथागत को देखे विना करता हूँ)। मैं तथागत को पूर्वान्त (भूतकाल) में अनुत्पन्न होने वाला, अपरान्त (भविष्य काल) में न जाने वाला एव प्रत्युत्पन्न (वर्तमान काल) मे अप्रतिष्ठित रहने वाला देखता हूँ। (ऐसा किस कारण ?)

"क्योकि, तथागत रूपतथतास्वभाव होते हुये भी रूपरहित हैं (अर्थात् रूपतथता के स्वभाव एव तथागत की तथता के स्वभाव में समानता (नि स्वभावता) है परन्तु तथागत रूप (भौतिक आकार) में नही हैं, वह रूपातीत हैं)। तथागत वेदनातथतास्वभाव हैं परन्तु वेदनारहित हैं। तथागत सज्ञातथतास्वभाव हैं परन्तु सज्ञारहित हैं। तथागत सस्कारतथता स्वभाव हैं परन्तु सस्कार रहित हैं। तथागत विज्ञानतथतास्वभाव हैं परन्तु विज्ञानरहित हैं। (अर्थात् परमार्थ स्वरूप तथागत पच-स्कन्धो से रहित हैं)। चार धातुओ मे अप्रतिष्ठित तथागत आकाशधातु के समान हैं, षडायतनो से अनुत्पन्न तथागत चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय एव मन के कार्यक्षेत्र से बाहर (समतिक्रान्त) हैं। तथागत त्रिधातुक ससार से सीमित नही हैं।[1] वह त्रिविध मल से रहित

---

१ तुलनीय आगमिक एव शास्त्रीय सूचनायें—

(क) सयुत्तनिकाय, खण्ड २, पृ० ३४१—"यो खो, वक्कलि, धम्मं पस्सति सो म पस्सति यो म पस्सति सो धम्म पस्सति।"

(ख) अंगुत्तरनिकाय, खण्ड २, पृ० ७५ "ये च रूपे पमाणिंसु, ये च घोसेन अन्वगू। छन्दराग वसूपेता, नाभिजानन्ति ते जना॥"

(ग) मज्झिमनिकाय खण्ड २ पृ० १८१-१८२—

"रूपसखाविमुत्तो खो, वच्छ, तथागतो गम्भीरो अप्पमेय्यो दुप्परियोगाल्हो-सेय्यथापि महासमुद्दो वेदनासखाविमुत्तो

सञ्ञासखाविमुत्तो सखारसखाविमुत्तो विञ्ञाणसखाविमुत्तो । ।"

(घ) **समाधिराजसूत्र**, २२ ३१ तथा २२ ३८—

"निमित्तापगता बुद्धा धर्मकायप्रभाविता ।
गम्भीराश्चाप्रमेयाश्च तेन बुद्धा अचिन्तिया ॥"
"अप्रमाण यथाकाश मातु शक्य न केनचित् ।
तथैव कायु बुद्धस्य आकाशसमसादृश ॥"

(ङ) **पञ्चविंशतिसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता**, पृ० १४६—

"अत्यन्तविशुद्धितामुपादाय अर्हन्त नोपलभते । प्रत्येकबुद्ध नोपलभते । बोधिसत्त्व नोपलभते । बुद्ध नोपलभते ।"

(च) **अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता**, पृ० ४८

"धर्मकाया बुद्धा भगवन्त । मा खलु पुनरिम भिक्षव सत्काय काय मन्यध्वम् । धर्मकाय परिनिष्पत्तितो मा भिक्षवो द्रक्ष्यथ । एष च तथागतकायो भूतकोटिप्रभावितो द्रष्टव्यो यदुत प्रज्ञापारमिता ।"

(छ) **वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता**, पृ ४१

"ये मा रूपेण चाद्राक्षुर्ये मा घोषेन चान्वगु ।
मिथ्याप्रहाणप्रसृता न मा द्रक्ष्यन्ति ते जना ॥
धर्मतो बुद्धा द्रष्टव्या धर्मकाया हि नायका ।
धर्मता च न विज्ञेया न सा शक्या विजानितुम् ॥"

(ज) **थेरगाथा**, गाथा ४६९

"ये म रूपेन पामिंसु ये च घोसेन अन्वगू ।
छन्दरागवसूपेता न म जानन्ति ते जना ॥"

यह गाथा **अगुत्तरनिकाय** में भी है, द्र० ऊपर (ख) ।

(झ) **दिव्यावदान**, पृ० ११ १२—

"दृष्टो मयोपाध्यायानुभावेन स भगवान् धर्मकायेन, नो तु रूपकायेन । दुर्लभदर्शना हि वत्स तथागता अर्हन्त सम्यक्सबुद्धा तद्यथा औदुम्बरपुष्पम् ।"

(ञ) **मूलमध्यमककारिका**, तथागतपरीक्षापरिवर्त ।

(ट) **बोधिचर्यावतार पंजिका**, पृ० २००

"बोधि बुद्धत्वम् एकानेकस्वभावविविक्तमनुत्पन्नानिरुद्धमनुच्छेदमशाश्वत सर्व प्रपञ्च विनिर्मुक्तमाकाशप्रतिसम धर्मकायाख्य परमार्थतत्त्वमुच्यते ।"

हैं[२] वह त्रिविध विमोक्ष प्राप्त कर चुके है,[३] उन्हें त्रिविध विद्या[४] प्राप्त हैं, तथागत ने अप्रतिलब्ध (जो प्राप्त नही किया जा सकता है उसे) सप्रतिलब्ध (भली भाँति प्राप्त) किया है।

"तथागत ने सभी वस्तुओ (धर्मों) के प्रति अश्लेष (अनासक्ति) भावना की पराकाष्ठा प्राप्त की हैं वह भूतकोटि रहित हैं, तथता में सुप्रतिष्ठित है, और अन्योन्यता (पारस्परिकता) से रहित हैं। तथागत न तो हेतुओं (कारणो) से उत्पन्न हैं और न प्रत्ययो (परिस्थितियों) से बधे हु[५] वह लक्षणो से रहित है और असलक्षण है (अर्थात् लक्षण युक्त नहीं हैं,) वह न एक लक्षण वाले हैं और न भिन्न लक्षणो वाले हैं,[६] वह अकल्पित, असकल्पित एव अविकल्पित हैं।[७] तथागत न पार (उस ओर का किनारा) हैं, न अपार (इस ओर का किनारा) है, और न मध्य ही हैं, तथागत यहाँ, अथवा वहाँ अथवा किसी अन्य स्थान पर नही हैं।[८] विज्ञान से तथागत को ज्ञात नहीं किया जा सकता है, वह विज्ञान स्थान नही हैं, तथागत न तम (अन्धकार) और न आलोक (उजाला) हैं।

---

२ राग, द्वेष, एव मोह ये तीन मल हैं।

३ शून्यता, अप्रणिहित एव अनिमित्त ये तीन प्रकार के विमोक्ष हैं।

४ पूर्वनिवासानुस्मृतिज्ञान, च्युति-उत्पत्तिज्ञान तथा आस्रवक्षयज्ञान ये तीन प्रकार की विद्याएँ हैं।

५ तुलनीय **मूलमध्यमककारिका**, १८ ९—
"अपरप्रत्यय शान्त प्रपञ्चैरप्रपञ्चितम्।
निर्विकल्पमनानार्थमेतत्तत्त्वस्य लक्षणम् ॥"

६ तुलनीय **अष्टादशसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता** पृ० १५१—
"इय प्रज्ञापारमिता अरूपिण्यनिदर्शना अप्रतिघा एकलक्षणा यदुतालक्षणा।"

७ तुलनीय **तथागतगुह्यसूत्र** (**प्रसन्नपदा**, पृ० २३६)
अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता पृ० १७७।

८ द्र० **धम्मपद**, गाथा १७९—
"यस्स जित नावजीयति,
जितं यस्स नो याति कोचि लोके।
त बुद्धमनन्तगोचर,
अपद केन पदेन नेस्सथ ॥"

तथागत नामरहित और निमित्तरहित है, वह न दुबल है न बलवान् है वह न किसी देश मे स्थित है और न किसी दिशा (पक्ष) मे स्थित है। तथागत शुभ (कुशल) एव अशुभ (अकुशल) से रहित है (अर्थात वह पुण्य एव पाप की सीमा के बाहर है) तथागत सस्कृत एव असस्कृत से रहित है तथागत के बारे में कोई चर्चा करना अथवा तथागत का कोई अथ बताना सम्भव नही है।[१] तथागत न दान है और न लोभ (मात्सय) है, न शील है और न दु शील है न क्षान्ति है और न द्वेष है न वीय (पराक्रम) है और न आलस्य है न ध्यान है और न औद्धत्य (अशान्ति) है न प्रज्ञा है और न मूखता है इन श दो द्वारा तथागत के विषय में अभिलाप नहीं किया जा सकता है। वह अनभिलाप्य है।

"तथागत न सत्य है और न मृषा (झूठ) है, वह न अवधारण (सीमित) है, और न अनवधारण (असीमित) है, वह न जगद् विधि (सासारिकता) है और न जगत अविधि (असांसारिकता) है तथागत सभी सिद्धा तो (वादो) एव यवहारो (चर्चाओ) का पूण रूपेण अ त है (अर्थात तथागत मे विचारो एव कार्यों का समूल नाश हो जाता है)। तथागत न तो (पुण्य) क्षत्र की सत्ता है और न (पुण्य) क्षेत्र का अभाव है, वह न दक्षिणीय (दान दक्षिणा देने योग्य) है और न दान दक्षिणा को पवित्र न करने वाला ही है; वह न ग्राहित य (ग्राह्य वस्तु) है, न स्पृष्टव्य (स्पशनीय वस्तु) है और न निमित्त ही है। तथागत असस्कृत (निर्वाण) है, सख्या रहित है, समतासम (समता के समान) ह, धमता के समान और असमान ह, वह अतुल्यवीय (पराक्रम प्रयत्न मे अतुल

---

१ यथोक्त सूत्र (प्रसन्नपदा, पृ० १५९)

"परमार्थसत्य कतमत् ? यत्र ज्ञानस्याप्यप्रचार , क पुनर्वादोऽक्षराणामिति।"

बोधिचर्यावतार पंजिका पृ० १७५

बुद्धे सर्वज्ञानानाम् समतिक्रान्तसर्वज्ञानविषयत्वादगोचर अविषय। कल्पनासमतिक्रा त स्वरूप च शब्दानामविषय ।

वही, पृ० १७७ पितापुत्रसमागमसूत्र—

"य पुन परमार्थं, सोऽनभिलाप्य , अनाज्ञेय अपरिज्ञेय , अविज्ञेय अदेशित अप्रकाशित , यावदक्रिय अकरण , यावन्न लाभो नालाभो न सुख न दु ख न यशो नायशो न रूप नारूपमित्यादि।"

नीय) ह, वह तुलना की परिधि के बाहर है (तुलनासमतिक्रान्त ह), तथागत न आता ह, और न समतिक्रण करता ह ।[१०]

"तथागत न दिखाई देता ह, न सुनाई पडता है, न ज्ञात (मत) होता ह, और न पहचाना जाता है, वह सब प्रकार के ग्रथो (उलझनो) से मुक्त ह[११] (अर्थात् तथागत सारी ग्रथियो (गाठो) से रहित ह) । तथागत ने सवज्ञ ज्ञान की समता प्राप्त कर ली है,[१२] तथागत ने सभी धर्मों (वस्तुओ) के प्रति ऐसी समता प्राप्त कर ली है जिसमे किसी चीज के प्रति विशेष अथवा अविशेष भाव नहीं है,[१३] तथागत सवत्र निरवद्य (अनिन्दनीय) है, सवस्वरहित (अकिचन) है, दोषरहित है ।[१४] कल्पनारहित है । विकल्परहित है । तथागत अकृत है, अनुत्पन्न है, अजात (अजन्मा) है, अभूत है, असम्भूत है[१५] अभावी है, अनभावी है, (न उत्पन्न है, न अनुत्पन्न है), निभय है, अनालय है, शोक

---

१० तुलनीय अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० २५३
"ये च तथागतस्यागमन च गमनं च कल्पयन्ति, सर्वे ते
बालजातीया दुष्प्रज्ञजातीया इति वक्तव्या ।
नास्ति तथागतानामागमन वा गमन वा ॥"

११ द्र० धम्मपद, गाथा ९०—"विसोकस्स", "विप्पमुत्तस्स" "सब्बगन्थप्पहीनस्स"

१२ अभिसमयालकार-वृत्ति, पृ० ३७—
"बुद्ध एव सर्वाकारज्ञता सर्वाकारज्ञतैव बुद्ध ।
बोधिरेव सर्वाकारज्ञता सर्वाकारज्ञतैव बोधि ॥"

१३ तुलनीय अष्टादशसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० ५५
"तद्यथापि नाम भगवस्तथागतस्य अर्हत सम्यक्सबुद्धस्य न कश्चित् प्रियो वा अप्रियो वा सविद्यते, एवमेव भगव प्रज्ञापारमिताया न कश्चित् प्रियो वा अप्रियो वा सविद्यते ।"

१४ शतपञ्चाशत्कस्तोत्र, श्लोक १—
सवदा सर्वथा सर्वे यस्य दोषा न सन्ति हि । सर्वे सर्वाभिसारेण यत्र चावस्थिता गुणा ॥

१५ तुलनीय उदान ८ २ ६ (खुद्दक० खण्ड १, पृ० १६२ ६३) "अत्थि, भिक्खवे, अजात अभूत अकत असखत ।'
चतु शतकवृत्ति, पृ० ५६
"अस्तिभिक्षवस्तदजातमभूतमसस्कृतम् ।"

रहित है, आन दरहित है तरगरहित है, और सवप्रकार के वाणी व्यापार व उपदेश से अवक्तव्य (अकथनीय) है।[१९]

"भगवन्, तथागतकाय इस प्रकार है, उसे इसी प्रकार से देखना चाहिये। जो इस प्रकार देखता है, वह सम्यक प्रकार से देखता है। जो अ यथा देखता है, वह मिथ्या देखता है।'

तब आयुष्मान् शारिपुत्र ने भगवान् से पूछा—"भगवन्, यह कुलपुत्र विमलकीर्ति कौन से बुद्धक्षेत्र से च्युत होकर (मरने के पश्चात्) इस बुद्धक्षत्र मे (पुन जन्म लेकर) आया है।"

भगवान् बुद्ध ने कहा—"शारिपुत्र, इस सत्पुरुष से ही पूछो कि वह कहाँ से च्युत होकर यहाँ आया है।'

तब आयुष्मान् शारिपुत्र ने लिच्छवि विमलकीर्ति से पूछा— 'कुलपत्र, आप कहा मरने के पश्चात् यहाँ आये ?"

विमलकीर्ति ने उत्तर दिया—"स्थविर ने जो धम साक्षात्कार किया है, क्या उसमें कोई चीज है जो मरती है और उत्पन्न होती है ?"

शारिपुत्र ने कहा—' इस धम मे कोई ऐसी चीज नही है जो मरती है और उत्पन्न होती है।"

विमलकीर्ति—"भद त शारिपुत्र, इसी प्रकार सभी चीजें (सभी धम) जब च्युति एव उत्पत्ति रहित हैं, तो आप ऐसा क्यो पूछते हैं 'तुम कहाँ से मरने के पश्चात् यहा आये हो' ? भदन्त शारिपुत्र, यदि मायाकार (मायावी जादूगर) द्वारा निर्मित किसी स्त्री अथवा पुरुष से यह पूछा जाय कि वह (स्त्री अथवा पुरुष) कहाँ मरने के पश्चात् यहाँ उत्पन्न है, तो इस प्रश्न का उत्तर क्या होगा ?"

शारिपुत्र—"वह मायाकार द्वारा निर्मित (निर्माणकाय) भी च्युति एव उत्पत्ति रहित है, इसलिये इस (प्रश्न) का क्या उत्तर होगा ?" (अर्थात् इस प्रश्न का उत्तर निरर्थक होगा)।

---

१९ अष्टादशसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० १७९—

"यत्र नैव भावो नाभाव स तादृशोऽभिसमय यत्रैते प्रपञ्चा न सविद्यन्ते अप्रपञ्च्यो निष्प्रपञ्चोऽभिसमय ।"

विमलकीर्ति—"भदन्त शारिपुत्र, क्या तथागत ने यह घोषणा नही की है कि 'सभी धर्म निर्माणस्वभाव है' ?"[१७]

शारिपुत्र—"हाँ, कुलपुत्र, यह ठीक है।"

विमलकीर्ति—"भदन्त शारिपुत्र, चूंकि सभी धर्म निर्माणस्वभाव के हैं (माया से उत्पन्न वस्तु की तरह उनका स्वभाव है), तो आप ऐसा क्यो पूछते हैं, 'तुम कहाँ मरने के पश्चात् यहाँ उत्पन्न हुये ?' भदन्त शारिपुत्र, च्युति (मृत्यु) का लक्षण अभिसस्कार (क्रिया व्यापार) को जारी रखना है। अतएव यद्यपि बोधिसत्त्व मरता है तो भी वह कुशलमूलो के अभिसस्कार को समाप्त नही करता है। वह यद्यपि जन्म लेता है, तथापि वह अकुशलकार्यों (पापो) की परम्परा को पुन नही पनपने देता है।"

तब भगवान् ने आयुष्मान् शारिपुत्र से कहा—"शारिपुत्र, यह सत्पुरुष तथागत अक्षोभ्य के पास से अभिरति लोकधातु से यहाँ आया है।"

शारिपुत्र ने कहा—"आश्चर्य है, भगवन्, कि यह सत्पुरुष उस विशुद्ध बुद्धक्षेत्र (अभिरति लोकधातु) से आकर मृत्यु की बहुलता से प्रदूषित इस बुद्धक्षेत्र (इस सहा लोक) में प्रसन्न है।"

लिच्छवि विमलकीर्ति ने कहा—"शारिपुत्र, आप क्या समझते हैं ? क्या सूर्य का प्रकाश अन्धकार के साथ होता है ?"

शारिपुत्र ने कहा—"बिलकुल ही नहीं, कुलपुत्र।"

विमलकीर्ति—"तो वे दोनों एक साथ नही होते हैं ?"

---

१७. तुलनीय अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० २०—
"मायोपमास्ते देवपुत्रा सत्त्वा । स्वप्नोपमास्ते देवपुत्रा सत्त्वा ।
इति हि माया च सत्त्वाश्च अद्वयमेतदद्वैधीकारम् ।
सर्वधर्मा अपि देवपुत्रा मायोपमा स्वप्नोपमा ।"
अष्टादशसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० १४३
"भगवान् आह एवमेव सुभूते तथागतेन
निर्मितोपमा सर्वधर्मा ज्ञाता गणिता अज्ञाननिर्मिता
ज्ञात्वा न कश्चित् सत्त्व उपलब्धो नापि विनीत ।"
पंचविंशतिसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० ४-५
"मायामरीच्युदकचन्द्रस्वप्नप्रतिश्रुत्काप्रतिभासप्रतिबिम्बनिर्माणोपमधर्माधिमुक्तै ।"

शारिपुत्र—"कुलपुत्र वे दोनो एक साथ नही होते हैं।

ज्यो ही सूयमण्डल उदित होता है, सर्व अधकार नष्ट हो जाते हैं।"

विमलकीर्ति—"जम्बूदीप मे सूय क्यों उदित होता है?

शारिपुत्र—"आलोक करने के लिये और अन्धकार नष्ट करन के लिये।'

विमलकीर्ति—'इसी प्रकार भदन्त शारिपुत्र, बोधिसत्त्व स्वेच्छा से (जानबूझ कर) अशुद्ध बुद्धक्षेत्रों में जम लेता है केवल प्राणियो की परिशुद्धि करने के लिये, ज्ञान का आलोक करन के लिये, और महान् अधकार का नाश करने के लिये। बोधिसत्त्व क्लेशो के साथ नही रहता है वह सभी प्राणियों के क्लेशान्धकार का विनाश करता है।'

उस समय उस सारी परिषद् (के सदस्यो के मन) में ऐसी इच्छा (भावना) हुई कि हमें भी उस अभिरति लोकधातु, तथागत अक्षोभ्य उनके बोधिसत्वो एव महा श्रावको का दशन करना चाहिये।

भगवान् बुद्ध ने उस सम्पूण परिषद् के (सदस्यो के) विचारो को स्वय जानते हुये, लिच्छवि विमलकीर्ति से कहा—"कुलपुत्र, यह परिषद् अभिरति लोकधातु को एव तथागत अक्षोभ्य को देखना चाहती है। अतएव, इस परिषद् को उनका दर्शन करवा दो।"

लिच्छवि विमलकीर्ति ने सोचा—'इस सिंहासन से उठे बिना ही मैं उस अभिरति लोकधातु को वहाँ के लाखो (शतसहस्राणि) बोधिसत्त्वो को, चक्रवाड पर्वत की गिरि माला से घिरे हुये भवनो को उस लोकधातु के देवताओ, नागों, यक्षों, गन्धर्वों एव असुरों को, वहाँ की नदियो, तडागों उत्सों (फव्वारो) जलधाराओ, समुद्रों, परिखाओ को, वहाँ के सुमेरु पवत अन्य पवतो एव हर्मिकाओं को, वहाँ के चन्द्र, सूय एवं तारागणो को, देवताओं, नागो यक्षो व गन्धर्वों के निवास स्थानों को वहाँ के ब्रह्मा के सपरिवार भवनों को, वहाँ के ग्राम नगर निगम, जनपद, राष्ट्र नर, नारी एव मकानो को, वहाँ के बोधिसत्त्वो एव श्रावको की परिषद् को, अक्षोभ्य तथागत के बोधिवृक्ष को भी, समुद्र के समान विशाल परिषद् के मध्य विराजमान होकर धर्मोपदेश करते हुये तथागत अक्षोभ्य को और उन कमल पुष्पो को जो दसो दिशाओ मे प्राणियो के लिये बुद्ध कार्य करते हैं— इन सब को मैं ले आता हू। जो रत्नमय तीन सीढ़ियाँ जम्बूद्वीप से त्रायस्त्रिंश भवन (स्वर्ग) तक जाती हैं, जिन सीढ़ियों मे चढ़कर त्रायस्त्रिंश निवासी देवतागण तथागत अक्षोभ्य के दशन करने के लिये, उनकी वन्दना करने के लिये, उनकी उपासना करने के

लिये एव उनसे धम श्रवण करने के लिये जम्बुद्वीप मे आते हैं, और जिन सीढियो से होकर जम्बूद्वीप के मनुष्य त्रायस्त्रिश वासी देवताओ के दशन करने के लिये त्रायस्त्रिश भवन मे चढ़ते हैं[१८], उनको भी—इस सम्पूण अभिरति लोकधातु को, इसके अप्रमेय पुण्यसचय सहित जल में स्थित इसके आधार (स्क'ध) से लेकर अकनिष्ठ भवन तक, कुम्भकार की चाक की भाँति सम्पूण को भद करके, दाहिने हाथ से पुष्पमाला की भाँति पकड कर, इस सहालोकधातु में लाकर रख दूगा, यहाँ रख कर इस परिषद् को दिखा दूँगा।'

तब लिच्छवि विमलकीर्ति ने ऐसी समाधि लगाई और इस प्रकार का ऋद्धि प्रद शन का काय किया जिससे उसने उस सम्पूण अभिरति लोकधातु को भेद करके (अथवा सक्षिप्त करके) दाहिने हाथ मे पकड कर के, इस सहालोकधातु में रख दिया।

उस अभिरति लोकधातु में श्रावक, बोधिसत्त्व, देवता एव मनुष्य दिव्यचक्षु नामक अभिज्ञा वाले थे वे क्र दन करने लगे (जोर से चीखने लगे)—"भगवन्, हम ले जाए जा रहे हैं (हमें भगा कर ले जाया जा रहा है), सुगत, हमें भगा कर ले जाया जा रहा है। सुगत, हमारी रक्षा कीजिये (हमें बचाइये)।" ऐसी प्राथना करने लगे।

उ हे विनीत अनुशासित करने के लिये भगवान् ने उनसे कहा—"बोधिसत्त्व विमलकीर्ति द्वारा आप ले जाये जा रहे हैं, यह तो मेरा क्षेत्र नहीं है।"

वहाँ (उस लोकधातु मे) जो अ'य देवता, मनुष्य आदि थे, उ'हे न ज्ञात हुआ और न दिखाई दिया कि वे कही (कहाँ) ले जाये जा रहे हैं।

यद्यपि अभिरति लोकधातु को इस सहा लोकधातु मे रख दिया गया था, तब भी सहालोकधातु न बढ़ा और न घटा, उस पर न दबाव पडा और न उसको कोई बाधा

---

१८ सकाश्य (संकिसा अथवा प्राचीन कपिथ) फरुखाबाद जनपद में एक स्थान का नाम है। परम्परा के अनुसार शाक्यमुनि बुद्ध जेतवनविहार (श्रावस्ती) से त्रायस्त्रिंश नामक देवलोक में जाकर अपनी माता महामाया देवी को तीन महीने तक धर्मोपदेश करने के पश्चात् सकाश्य में प्रकट हुये थे। भगवान् के उतरने के लिए इन्द्र (शक्र) ने तीन सीढियाँ स्वर्ण, माणिक्य एव रजत से निर्मित की थीं। सातवीं शती में चीनी बौद्ध भिक्षु एव शास्त्रकार ह्वान्-च्वांग ने सकाश्य में जाकर उस पवित्र स्थल को देखा था। द्र० टॉमस वाटर्स, ऑन युवान् च्वांग्स ट्रेवेल्स इन इण्डिया, खण्ड १, पृ० ३३४।

हुई। वह अभिरति लोकधातु भी आकार मे छोटा नही हुआ। दोनो ही लोकधातु पहले की तरह ही अब भी दिखाई देते थे।

तब भगवान् बुद्ध शाक्यमुनि ने उस सम्पूण परिषद को सम्बोधित करते हुये कहा— मित्रो अभिरति लोकधातु को तथागत अक्षोभ्य को उनके बुद्धक्षेत्र के श्रावको एव बोधिसत्त्वो के ऐश्वय को देखो।

उन सब ने कहा—' अवश्य ही देख रहे हैं, भगवन्।

भगवान् बुद्ध ने कहा—' जो बोधिसत्त्व इस प्रकार के बुद्धक्षेत्र का परिग्रहण करना चाहता है, उसको तथागत अक्षोभ्य के बोधिसत्त्वो की सब प्रकार की चर्या मे अपने को प्रशिक्षित करना चाहिये।

इस प्रकार विमलकीर्ति द्वारा अभिरति लोकधातु के तथा तथागत अक्षोभ्य के सन्दशन के ऋद्धिपूण काय के समय इस सहा लोकधातु क एक लाख चालीस हजार प्राणियो ने (देवताओ मनुष्यो, एव अन्य प्राणियो ने) [१८अ] अनुत्तर सम्यक सम्बोधि का चित्तोत्पादन किया। उन सभी ने उस अभिरति लोकधातु मे जन्म लेने के लिये प्रणिधान किया (निश्चित धारणा बनाई)। भगवान् ने भी उन सभी की भविष्य मे अभिरति लोकधातु मे उत्पन्न होने की भविष्यवाणी की।

लिच्छवि विमलकीर्ति ने इस सहा लोकधातु के उन सभी प्राणियो का परिपाचन करके जो इस प्रकार से परिपाचनीय थे, उस अभिरति लोकधातु को यथास्थान पुन प्रतिष्ठापित कर दिया।

तब भगवान ने आयुष्मान् शारिपुत्र से कहा—"शारिपुत्र तुमने उस अभिरति लोकधातु को और तथागत अक्षोभ्य को देखा ?

शारिपुत्र ने उत्तर दिया— जी हाँ भगवन्, मैंने उन्हें देखा। सभी प्राणी इसी प्रकार के बुद्ध क्षेत्र के गुणो के ऐश्वय मे रहे। सभी प्राणी कुलपुत्र लिच्छवि विमलकीर्ति की तरह की ऋद्धियो से सम्पन्न हो जावें। ऐसे (विमलकीर्ति जसे) सत्पुरुष को देखकर के हम कितने भाग्यशाली (महान् लाभो से लाभान्वित हुये है। जो प्राणी वतमान समय मे अथवा

---

१८ अ चतुदश अयुत = चौदह अयुत। एक अयुत = १००००। चौदह अयुत = एक लाख चालीस हजार।

तथागत के परिनिर्वाण के पश्चात् इस धर्मोपदेश को सुनेंगे, वे भी महान् लाभों को प्राप्त करेंगे, वे भी बडे भाग्यशाली प्राणी होगे । उन लोगो को होने वाले लाभो का तो कहना ही क्या है जो इस धमपर्याय को सुनकर इसपर दृढ़तापूवक विश्वास करते हैं, निभर करते हैं, इसे हृदयगम करते हैं, इसे धारण करते हैं, इसकी वाचना करते हैं श्रद्धापूवक इसका अर्थ समझते हैं, इसकी शिक्षा देते हैं, इसका पाठ करते है दूसरों के लिए इसको प्रकाशित करते है और ध्यानपूवक इसकी शिक्षा का अधिगम करने मे जुट जाते है ।[१९]"

"जो (प्राणी) इस धर्मोपदेश को भलीभाति सुनते समझते हैं उन्हें धम रूपी रत्नो की निधि प्राप्त होती है । जो इस धर्मोपदेश (धमपर्याय) का स्वाध्याय करते हैं, वे तथागत के साथी बनते हैं । जो इस सिद्धान्त (धम) के विशेषज्ञो (अधिमुक्तो) का सत्कार करते है और उनकी सेवा करते हैं वे ही धम के रक्षक होते है । जो इस धमपर्याय (इस सूत्र) को भली प्रकार लिखते हैं स्मरण रखते हैं, इसका सम्मान करते हैं, उनके घरो मे तथागत विहार करते हैं । जो इस धमपर्याय का अनुमोदन करते हैं, वे सभी पुण्यो की रक्षा करते है । जो (प्राणी) इस धमपर्याय से एक चतुष्पाद गाथा (श्लोक) का भी दूसरो के लिये उपदेश करते है, वे एक महाधमयज्ञ करते हैं ।[२०] जो प्राणी इस धमपर्याय (अर्थात् **विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र**) के लिये अपनी क्षान्ति, इच्छा, बुद्धि, अवबोधन, दशन एव दृढ विश्वास लगाते ह, उनका भी उसी प्रकार का (उज्ज्वल) भविष्य होता है (अर्थात् उनके द्वारा सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति की भविष्य वाणी निश्चित रूप से हो सकती है ।)

एकादश परिवर्त समाप्त ।

---

१९ तुलनीय **वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता**, पृ० ३६ व ५८

सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० २५ व १७२—

धर्मपर्याय श्रोष्यन्ति श्रद्धास्यन्ति, पत्तीयिष्यन्ति धारयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति लिखिष्यन्ति लिखापयिष्यन्ति, पुस्तकगत च कृत्वा सत्करिष्यन्ति गुरुकरिष्यन्ति मानयिष्यन्ति पूजयिष्यन्ति ।"

२० तुलनीय **सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र**, पृ० २३—

"य कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा अस्मात्
सद्धर्मपुण्डरीकाद् धर्मपर्यायाद् तश एकामपि चतुष्पदीगाथा
धारयेत वा वाचयेत, पयवाप्नुयात्, प्रतिपत्त्या च सपादयेत्, अत स
कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा तदोनिदान बहुतर पुण्य प्रसवेत् ।"

१२ पूर्वयोग एवं सद्धर्म परीन्दना[1]

तब शक्र देवेन्द्र ने भगवान् से कहा—'भगवन् प्राचीन काल मे मने तथागत से और मजुश्री कुमारभूत से अनेक शत सहस्र धमपर्याय (धर्मोपदेश) सुने हैं। परन्तु ऐसा असाधारण धमपर्याय जो अचिन्तनीय चमत्कारपूण कार्य की विधि मे प्रवेश करने का निर्देश है[2], इससे पहले मने कभी नही सुना है।[3]

भगवन् जो प्राणी इस धमपर्याय को सुनकर इसको स्वीकार करते हैं, धारण करते हैं इसका वाचन करते हैं, इमका अथ हृदयगम करते ह वे निश्चित रूप से इसके उपयुक्त धमभाजन बनेंगे। उन लोगो का तो कहना ही क्या जो भावनासमेत इसके अथ को अधिगम (प्राप्त) करते ह। वे तो सव प्रकार की दुगति के माग का उच्छद कर डालेंगे, और उनके लिये सब प्रकार की सुगति का माग प्रशस्त हो जायगा। वे सभी बुद्धो को प्रत्यक्ष देखेंगे (अथवा सभी बुद्ध उनकी देख भाल करेंगे), वे अपने सभी पर प्रवादियो (विरोधी विचारो वाले यक्तियो) पर विजय प्राप्त करेंगे सभी प्रकार के मार उनसे पराजित हो जाएगे, वे बोधिसत्त्व के पवित्र मार्ग का अनुगमन करेंगे, वे बोधि मण्ड मे अपना स्थान प्राप्त करके तथागत गोचर में प्रवेश करेंगे।

"भगवन जो कुलपुत्र एव कुलपुत्रियाँ इम धमपर्याय को धारण करेंगी, मैं अपने अनुगामियो सहित उनका सत्कार व उनकी सेवा करूगा। उन ग्रामो, नगरो, निगमो, जनपदो, राष्टों एव राजधानियो मे जहाँ भी इस धर्मोपदेश का आचरण होगा, इसका उपदेश एव प्रकाशन होगा, मैं सपरिवार धमश्रवण करने के लिये जाऊँगा। श्रद्धारहित कुलपुत्रो मे मैं श्रद्धा उत्पन्न करूगा और जो श्रद्धालु एव धार्मिक ह उनकी सहायता एव रक्षा करूँगा।"

---

१ परीन्दना का अर्थ है (सद्धम को अनुग्रहपूवक) प्रदान करना।
द्र० वज्रच्छेदिका (शब्दकोश), पृ० ९६, परीन्दन = देना, अर्पण करना, सौंपना।

२ अचिन्त्यविकुर्वणनयनिर्देश। चीनी बौद्ध स्रोतों से ज्ञात होता है कि अचिन्त्यविकुर्वणभूत नयसूत्र नामक एक महायानसूत्र कभी विद्यमान था।

३ शक्र-देवेन्द्र को इन्द्र, देवराज व कौशिक भी कहा जाता है।

शक्र के ऐसा कहने पर भगवान ने शक्र देवेन्द्र से कहा—"साधु, देवेन्द्र, साधु। आपके सुवचनों से तथागत भी प्रसन्न हू। देवेन्द्र, भूत, वतमान तथा भविष्य के बुद्धो की जो बोधि है वह इस धमपर्याय मे निर्दिष्ट है। अतएव देवेन्द्र, जो कुलपुत्रियाँ एव कुलपुत्र इस धमपर्याय को ग्रहण करते हैं, पुस्तक के रूप मे लिखते ह, इसका पाठ करते ह और इसको भली भाँति समझते हैं, वे वस्तुत भत, वतमान एव भविष्य कालो मे उत्पन्न भगवन्तों बुद्धो की पूजा करते हैं।

'कल्पना करो (उदाहरण स्वरूप मान लो) देवेन्द्र, कि यह सम्पूण त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु तथागतो से उसी प्रकार परिपूण है जिस प्रकार कि यह इक्षु (गन्ने) के वनो, नड के वनो, बाँस के वनो तिल के वनो एव खदिर के बनो से परिपूण है, एक कुलपुत्र अथवा कुलपुत्री एक कल्प तक अथवा एक कल्प से भी अधिक समय तक उन तथागतों का सम्मान करती है, उन्हे गुरु (आदरणीय) मानती है, उनका सत्कार करती है पूजा करती है, और सुख सुविधा के सभी साधनो से उनकी सेवा करती है। उन सभी तथागतो के परिनिर्वाण हो जाने के पश्चात् प्रत्येक तथागत के पवित्र एव सुरक्षित शारीरिक धातु शेष की पूजा करने के लिये निर्मित ऐसे स्तूपो की पूजा करती है जो सवप्रकार के रत्नो से जटित हैं, जो विस्तार में इतने बडे हैं जितना कि चार महाद्वीपो वाला एक लोकधातु (विश्व) है, ऊंचाई मे इतने हैं कि ब्रह्मलोक तक ऊपर पहुँचते हैं, और छत्रो, पताकाओ, यष्टियों (स्तम्भो) एव दीपको से सुशोभित है। उन सभी तथागतो के लिये अलग अलग निर्मित इन स्तूपो को सव प्रकार के पुष्पों, गन्धो, ध्वजाओ, पताकाओ के प्रदान व दुन्दुभियो तथा तूरियो के स्वर के साथ पूजा करने मे एक कल्प अथवा एक कल्प से अधिक समय लगाती है।

"इस प्रकार का काय किये जाने पर, देवेन्द्र, आप क्या मानते हैं (क्या समझते हैं)? क्या वह कुलपुत्र अथवा कुलपुत्री इस काय के परिणामस्वरूप महान् पुण्य उत्पन्न करेगी?"

शक्र देवेन्द्र ने उत्तर दिया—"बहुत पुण्य, भगवन् बहुत पुण्य, सुगत। यदि कोई व्यक्ति सकडो हजारो करोडो कल्पो तक उसके पुण्य की सीमा की माप करता रहे तो भी वह सफल नहीं होगा।'

भगवान् ने कहा—"देवेन्द्र, विश्वास करो, यह आपको समझना चाहिये जो कुलपुत्र अथवा कुलपुत्री इस अचिन्त्यविमोक्षनिर्देश नामक धर्मोपदेश को ग्रहण करती है,

इसका पाठ करती है, इसको भली भाँति समझती है, वह उससे भी अधिक पुण्य पैदा करती है (जो ऊपर वर्णित कार्यों के सम्पादन से पदा होते हैं)। ऐसा किस कारण ? देवेन्द्र, बुद्धो भगवन्तों की बोधि धम से उत्पन्न होती है, उस बोधि की पूजा[४] धम की पूजा करने से होती है, न कि आमिष (भौतिक) पूजा से, इस प्रकार का उपदेश, देवेन्द्र आपको जानना चाहिये।'

भगवान् बुद्ध ने शक्र से आगे कहा—"देवेन्द्र, बहुत पहले की घटना है, अतीतकाल मे, असख्य कल्पो से पहले, असख्य से भी अधिक अप्रमेय, अचिन्तनीय कल्पो से पूव, तथागत भषज्यराज[५] का प्रादुर्भाव हुआ था जो कि अहत् सम्यक्सम्बुद्ध विद्या एव आचरण से सम्पन्न सुगत, लोक के ज्ञाता, अनुत्तर विनय के पथ पर दमनीय पुरुषो के सारथि, देवताओ और मनुष्यो के गुरु (शास्ता) बुद्ध एव भगवन्त थे। उनका आविर्भाव विचारण नामक कल्प मे और महाव्यूह नामक लोकधातु मे हुआ था। भषज्यराज नामक तथागत अहत सम्यक्सम्बुद्ध का आयु प्रमाण बीस अन्तरकल्पो (लघु कल्पो) का था।[६] भषज्य

---

४ बौद्ध परम्परा में पूजा सात प्रकार की मानी गई है—

१ वन्दना २ पूजना ३ पापदेशना ४ अनुमोदना ५ अध्येषणा ६ बोधिचित्तोत्पाद तथा ७ परिणामना। ये अनुत्तर पूजा के प्रकार हैं।

धम की पूजा धर्म का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके, सम्यक् चर्या द्वारा अनुत्तर सम्यक् सबोधि के अधिगम से होती है। सवसत्त्वहिताय बोधिचित्त का उत्पादन करके, कुशलभार की परिणामना करके अनुत्तर पूजा सम्पन्न होती है। स्तूप निर्माण, मूर्ति पूजा, भोजन व वस्त्र पूजा में भेंट करना, भिक्षुओं को दान दक्षिणा देना इत्यादि आमिष पूजा के स्वरूप कहे जा सकत हैं।

५ भैषज्यराज एक बोधिसत्त्व का नाम है जिसका उल्लेख **सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र** में हुआ है। **ललितविस्तर** से पता चलता है कि भैषज्यराज एक पूवकाल में हुए बुद्ध का नाम भी है। हमारे सूत्र में उल्लिखित तथागत भैषज्यराज सम्भवत वही हैं। **भैषज्यगुरुवैदूर्यप्रभराज-सूत्र** से ज्ञात है कि भैषज्यगुरुवैदूर्यप्रभ वैदूर्यनिर्भासा नामक लोकधातु में प्रतिष्ठित तथागत का नाम है।

६ **सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र**, पृ० ९७ में कहा गया है कि भगवान् बुद्ध के श्रावक काश्यप का जब रश्मिप्रभास नामक तथागत के रूप में आविर्भाव होगा तो उनका आयु प्रमाण बारह अन्तरकल्पों का होगा।

राज तथागत के अनुगामी श्रावको की सख्या छत्तीस कोटिनयुत थी, उनके अनुगामी बोधि सत्वो की सख्या बारह कोटिनयुत थी ।

' उसी युग मे रत्नच्छत्र नामक एक चक्रवर्ती सम्राट हुआ था जिसका शासन चारो महाद्वीपो मे था और जो चक्रवर्ती के सातों रत्नो से सम्पन्न था । उसके एक सहस्र पुत्र थे जो शूर, वीर, सुरूप एव शत्रु की सेना को परास्त करने वाले थे । राजा रत्नच्छत्र ने पाच लघु कल्पो तक भगवान तथागत भषज्यराज का उनके परिवार (श्रावको बोधिसत्वो के सघ) समेत सब प्रकार के सुख साधनों के दान से सम्मान किया था । उन पाँच अ तर कल्पों के व्यतीत होने पर, देवेन्द्र राजा रत्नच्छत्र ने अपने एक सहस्र पुत्रो से कहा—'पुत्रो, मैंने तथागत की पूजा की है अतएव अब तुम लोग भी तथागत की पूजा करना ।' उन राजकुमारो ने अपने पिता राजा रत्नच्छत्र की आज्ञा सुनी और उसका स्वागत किया । उन सभी (पुत्रों) ने भी पाँच अन्तरकल्पों तक तथागत भषज्यराज का सब प्रकार के सुख साधनों का दान देकर सम्मान किया था ।

''उनमें से चन्द्रच्छत्र नामक राजकुमार ने एकान्त मे बठकर स्वय विचार किया और अपने आपसे पूछा—'क्या इस प्रकार की पूजा से विशिष्टतर एव अधिक उदार कोई पूजा नही है ?' 'भगवान बुद्ध क अधिष्ठान (ऋद्धिबल) से अन्तरिक्ष के देवताओ ने आकाशवाणी की 'हे सत्पुरुष, धमपूजा सभी पूजाओ मे श्रेष्ठ है' ।[७]

''चन्द्रच्छत्र ने पूछा—'धमपूजा क्या है ?'

' देवताओं ने कहा— सत्पुरुष, तथागत भषज्यराज के समीप जाकर उनसे पूछो कि धमपूजा क्या है, वह आपको बताएगे ।'

' तत्पश्चात्, देवेन्द्र, राजकुमार चन्द्रच्छत्र जहाँ भषज्यराज तथागत अहत् सम्यक सम्बुद्ध थे वहाँ पहुँच कर भगवान् के चरणों मे अपना सिर झुकाकर प्रणाम करके एक ओर को बठ गया । एकान्त मे बैठकर राजकुमार चन्द्रच्छत्र ने भगवान् भषज्यराज तथागत से कहा—'भगवन्, धर्मपूजा का नाम मैंने सुना है, वह धमपूजा क्या है' ?[८]

---

७ तुलनीय धम्मपद, गाथा ३५४—
"सब्बदानं धम्मदानं जिनाति, सब्बरसं धम्मरसो जिनाति ।"

८ तुलनीय महानिद्देस पृ० २७१—

"भगवान् ने कहा— कुलपुत्र, धर्मपूजा वस्तुतः तथागत द्वारा उपदिष्ट गम्भीर सूत्रान्तों (उपदेशों) की पूजा है। ये सूत्रान्त गम्भीर प्रकाश वाले हैं, ये सूत्र सर्वप्रकार से लोकमत के प्रतिकूल (लोकोत्तर) हैं,[९] इन सूत्रान्तों को समझना कठिन है, देखना कठिन है और इनका ज्ञान प्राप्त करना कठिन है। ये सूत्रान्त सूक्ष्म, निपुण (परिनिष्पन्न) एवं अतर्कावचर (तर्कातीत) हैं।[१०] ये सूत्रान्त बोधिसत्त्वपिटक के अन्तर्गत (महावैपुल्य सूत्रों में) संग्रहीत हैं। ये सर्वश्रेष्ठ धारणी एवं सर्वश्रेष्ठ सूत्रान्त की मुद्रा से मुद्रांकित हैं। ये कभी भी पीछे की ओर न मुड़ने वाले (अवर्वर्तिक) धर्मचक्र का संदर्शन करते हैं, छः पारमिताओं की परिनिष्पत्ति से उद्भूत ये सूत्रान्त सभी प्रकार के दृष्टिग्राह से सर्वथा मुक्त हैं।

ये सूत्रान्त बोधिपाक्षिक धर्मों से सम्पन्न हैं और बोध्यंगों के निष्पादन में तत्पर हैं। प्राणियों में ये महाकरुणा का आविर्भाव करते हैं और महामैत्री का संदर्शन करते हैं, ये सूत्रान्त सर्वप्रकार की मार सम्मत दृष्टियों को समाप्त करते हैं और प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम का प्रकाशन करते हैं।

"कतमा सद्धम्मपूजा? सक सत्थारं सक्करोति गरुं करोति मानेति पूजेति 'अयं सत्था सब्बञ्ञू', ति सद्धम्मपूजा।"

९ द्र० अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृ० १५२—
"सर्वलोकविप्रत्यनीकोऽयं धर्मो देश्यते।"
सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ० १४५—
'सर्वेषां धर्मपर्यायाणामयमेव धर्मपर्यायः सर्वलोकविप्रत्यनीकः सर्वलोकाश्रद्दधनीयः। तथागतस्याप्येतद् आध्यात्मिकधर्मरहस्यं।"
अंगुत्तरनिकाय, खण्ड १, पृ० ६८—"भिक्खू ये ते सुत्तन्ता तथागतभासिता गम्भीरा गम्भीरत्था लोकुत्तरा सुञ्ञतापटिसंयुत्ता तेसु भञ्ञमानेसु न सुस्सूसन्ति न सोतं ओदहन्ति न अञ्ञाचित्तं उपट्ठपेन्ति न च ते धम्मे उग्गहेतब्बं परियापुणितब्बं मञ्ञन्ति।"

१० तुलनीय महावग्ग, पृ० ६ दीघनिकाय खण्ड १, पृ० ३०—
"धम्मो गम्भीरो दुद्दसो दुरनुबोधो सन्तो पणीतो अतक्कावचरो निपुणो पण्डितवेदनीयो।"
द्र० दीघनिकाय, खण्ड १, पृ० १२।
ललितविस्तर, पृ० २८९ "गम्भीरः खल्वयं मया धर्मोऽभिसंबुद्धः सूक्ष्मो निपुणो दुरनुबोधः दुर्दृशः अतर्कोऽतर्कावचरः पण्डितविज्ञवेदनीयः सर्वलोकविप्रत्यनीको दुर्दृशः। द्र० आलोकव्याख्या पृ०, ४५५।

"ये सूत्रा त अनात्म नि सत्व, निर्जीव, निष्पुद्गल शू यता, अनिमित्त, अप्रणिहित और अनभिसस्कार का उपदेश देते हैं ये धर्मों के अनुत्पाद एव असम्भव का स दश देते हैं। ये बोधिमण्ड (बोधि प्राप्ति के वज्रासन) पर पहुँचाते हैं और धमचक्र का प्रवतन करत हैं। ये सूत्रान्त देवताओ नागो, यक्षों, ग धर्वों, असुरो गरुडो, किन्नरो एव महोरगो क अधिपतियो द्वारा प्रशसित एव वर्णित हैं। ये सूत्रा त सद्धम की वशपरम्परा अनुच्छि न रखते हैं, धमकोश के ग्राहक हैं, और सर्वोत्कृष्ट धमपूजा का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये सूत्रा त सभी स तजनो (अहतो) द्वारा स्वीकृत हैं, सभी बोधिसत्त्वो की चर्या का प्रकाशन करते हैं और धम के वास्तविक अथ के विशिष्ट ज्ञान का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये सूत्रा त अनित्यता, दु ख, नरात्म्य एव शा ति का निर्देश करके मोक्ष की ओर ले जाने वाले हैं।

"ये सूत्रा त मात्सय, अनतिकता, द्वेष, आलस्य, विस्मृति अज्ञानता, अवसाद (चित्त की दुबलता), विरोधी विचार, कुदृष्टि, सव प्रकार के (बाह्य) आलम्बनो के अभिनिवेशो का परित्याग करवाते हैं, सभी बुद्धो ने इनकी प्रशसा की है ये ससार (ज म मरण यवस्था) के पक्ष का प्रतिपक्ष (विरोध) प्रस्तुत करते हैं और निर्वाण सुख का समुचित प्रकाशन करते हैं।"[११] इस प्रकार के सूत्रा तो की स्पष्ट याख्या

---

११ सूत्रों अथवा सूत्रा तों का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय 'धर्म' है। बौद्ध परम्परा में धर्म के तीन मुख्य अथ पाये जाते हैं। अभिधमदशन में जिन भौतिक ग्व चैतसिक वस्तुओं अथवा घटनाओं का विस्तृत विश्लेषण है उ हें स्वलक्षण धारण करने के कारण धर्म कहा जाता है। दुर्गतियों में ज म होने से जिन कुशलकर्मों द्वारा रुकावट होती है उ हें उनकी इस विधारण शक्ति के कारण धर्म कहते हैं। पाँचों गतियों (तीन दुर्गतियों एव दो सुगतियों) में ससार में आवागमन के चक्र में फँसने से जो रोकता है उस निर्वाण को भी उसकी इस विधारण शक्ति के कारण धर्म कहा जाता है। इस प्रकार धम श द के तीन मुख्य अर्थ हैं—१ भौतिक व चैतसिक तत्त्व २ कुशलपथ अथवा सद्धर्म का आचरण (शील) एव ३ निर्वाण अथवा मोक्ष। द्र० प्रसन्नपदा, पृ० १३२—

"धर्मशब्दोऽय प्रवचने त्रिधा व्यवस्थापित स्वलक्षणधारणार्थेन सर्वे सास्रवा अनास्रवाश्च धर्मा इत्युच्यन्ते। कुगतिगमनविधारणार्थेन दशकुशलादयो धर्मा इत्युच्यन्ते। पाञ्चगतिक ससारगमन विधारणार्थेन निर्वाणो धर्म इत्युच्यते धर्म शरण गच्छतीत्यत्र।" अ ततोगत्वा निर्वाणप्राप्ति ही वास्तविक धर्मपूजा है।

करना, उनकी शिक्षा का पालन करना उनके अर्थ को भली प्रकार समझना, और इस प्रकार सद्धर्म की सम्पदा इकट्ठा करना ही धर्मपूजा है।

'इतना ही नहीं, कुलपुत्र, धर्मपूजा धर्मानुसार धर्म (तत्त्व) का ध्यान करना है, धर्मानुसार धर्म की प्रतिपत्ति (अभ्यास) करना है[१२] प्रतीत्यसमुत्पाद (के सिद्धान्त को) अपनाना[१३] है, यह (धर्मपूजा) सभी प्रकार के अन्तग्राह एवं दृष्टियों से रहित है[१४]। यह अनुत्पाद क्षान्ति एवं अनुत्पत्तिक धर्मक्षान्ति है यह नैरात्म्य एवं निःसत्त्व में प्रवेश है, यह हेतु प्रत्यय (तर्क वितर्क) का विरोध न करना है, विवाद एवं कलह का न होना है, यह अहंकार एवं ममकार को समाप्त करना है।

धर्मपूजा अर्थ का अनुसरण करना है न कि व्यंजन का अनुसरण करना, ज्ञान (प्रज्ञा) का अनुसरण (प्रतिसरण) करना है न कि विज्ञान (चित्त) का अनुसरण परमार्थतः नीतार्थ सूत्र का अनुसरण करना है न कि संवृतितः नेयार्थ सूत्र का अनुसरण करना, धर्मता का अनुसरण करना है न कि व्यक्तियों से प्राप्त दृष्टियों के ग्रहण में रहना है[१५], बुद्धधर्म का यथाभूत ज्ञान प्राप्त करना है, अनालय प्रवेश (आलयविज्ञान की अनुप

---

१२ तुलनीय पालि "इमाय धम्मानुधम्मपटिपत्तिया धम्मं पूजेमि।"

१३ धर्म और प्रतीत्यसमुत्पाद समानार्थक माने गये हैं। आचार्य नागार्जुन व आचार्य शान्तरक्षित ने प्रतीत्यसमुत्पाद की शिक्षा को बुद्ध के उपदेशों का हृदय माना है। द्र० **मूलमध्यमककारिका** व **तत्त्वसंग्रहकारिका** के मङ्गलश्लोक। **शालिस्तम्बसूत्र** में कहा गया है—"यो प्रतीत्यसमुत्पादं पश्यति स धर्मं पश्यति। यो धर्मं पश्यति, स बुद्धं पश्यति।" तुलनीय **मज्झिमनिकाय**, खण्ड १, पृ० २४१—"यो पटिच्चसमुप्पादं पस्सति सो धम्मं पस्सति।"

१४ इस प्रकार का मत आचार्य नागार्जुन ने पुनः पुनः व्यक्त किया है।
चतुःस्तव, २.२१—"सर्वसंकल्पहानाय शून्यतामृतदेशना।"
मूलमध्यमककारिका, १३.८—"शून्यता सर्वदृष्टीनां प्रोक्ता निःसरणं जिनैः"
वही, २७.३ —"सर्वदृष्टिप्रहाणाय यः सद्धर्ममदेशयत्।"

१५ शास्त्रों के अनुसार प्रतिशरण चतुर्विध है—
१ अर्थप्रतिशरणेन भवितव्यं न व्यञ्जनप्रतिशरणेन,
२ धर्मप्रतिशरणेन भवितव्यं न पुद्गलप्रतिशरणेन,
३ ज्ञानप्रतिशरणेन भवितव्यं न विज्ञान प्रतिशरणेन,
४ नीतार्थसूत्रप्रतिशरणेन भवितव्यं न नेयार्थसूत्रप्रतिशरणेन।
द्र **धर्मसंग्रह**, ५३, **महाव्युत्पत्ति**, १५४६-१५४९।

जो सूत्र शून्यता का उपदेश करते हैं वे नीतार्थसूत्र हैं जो सूत्र प्राणियों की धर्मचर्या का उपदेश करते हैं वे नेयाथसूत्र हैं।

अक्षयमतिसूत्र (प्रसन्नपदा, पृ० १४) में नीताथ-नेयार्थ की स्पष्ट व्याख्या की गई है— कतमे सूत्रान्ता नेयार्थाः कतमे नीतार्थाः ? ये सूत्रान्ता मार्गावतारय निर्दिष्टा, इम उच्यन्ते नेयार्थाः। ये सूत्रान्ता फलावताराय निर्दिष्टा, इम उच्यन्ते नेयार्थाः। यावद् ये सूत्रान्ता शून्यता-अनिमित्त अप्रणिहित अनभिसंस्कार-अजात अनुत्पाद अभाव निरात्म निःसत्त्व-निर्जीव-निःपुद्गल अस्वामिक विमोक्षमुखा निर्दिष्टा ते उच्यन्ते नीतार्थाः।"

अक्षयमतिसूत्र के भोटीय अनुवाद में नेयार्थ सूत्रों की व्याख्या में निम्नलिखित विस्तार मिलता है जो समीचीन है—"येषु सूत्रान्तेषु आत्म सत्त्व-जीव पोष पुरुष पुद्गल मनुज मनुष्य कारक—वेदका नानाशब्दैराख्याय ते, येषु चास्वामिक स्वामिकत्वेन निर्दिष्टम् ते नेयार्थाः।"

द्र० **अंगुत्तरनिकाय**, खण्ड १, पृ० ५७ ५८ में "नेय्यत्थसुत्तन्त" एव "नीतत्थसुत्तन्त" के मध्य भ्रम न करने की सलाह दी गई है। नेयार्थ को अनीतार्थ भी कहते हैं, जिस सूत्र या गाथा का अथ स्पष्ट नहीं है, जिसका अर्थ ज्ञात करना है। इस प्रकार के सूत्र का उदाहरण **धम्मपद**, गाथा २९४ है—

"मातरं पितरं हन्त्वा, राजानो द्वे च खत्तिये।
रट्ठं सानुचरं हन्त्वा, अनीघो याति ब्राह्मणो॥"

इस गाथा का कुछ भिन्न संस्कृत संस्करण आचार्य असंग के **अभिधर्मसमुच्चय** पृ० १०७ में मिलता है—

"मातरं पितरं हत्वा राजानं द्वौ बहुश्रुतौ।
राष्ट्रं सानुचरं हत्वा नरो विशुद्ध उच्यते॥"

'अभिसन्धिविनिश्चय' की व्याख्या करते हुए आचार्य ने उक्त श्लोक प्रस्तुत किया है और कहा है—"अभिसन्धिविनिश्चय कतम। उक्ताद् योऽर्थ।" उक्त गाथा (श्लोक) में 'पिता' का अथ है 'अविद्या' और 'माता' का अर्थ है 'तृष्णा'। ये माता पिता संसार के मूल हैं। इनकी हत्या करके, इनका विनाश करके, विशुद्धि अथवा विमुक्ति प्राप्त होती है। दो विद्वान राजा कदाचित, 'शाश्वतवाद' एव 'उच्छेदवाद' की दृष्टियाँ हैं। राष्ट्र व अनुचर सम्भवत राग व विषयेन्द्रियाँ हैं।

कुछ विद्वानों का विचार है कि 'नेयार्थ' व 'अभिसन्धिविनिश्चय' की ही भाँति, संधाभाषा ('सन्ध्याभाषा') का भी यही अर्थ है। हमारा मत है कि महायानसूत्रों में जिसको 'संधाभाषा' कहा गया है उसका अर्थ बौद्ध तन्त्रों की 'संधाभाषा' के अर्थ से भिन्न है। तन्त्रों की व्याख्या विवादास्पद है जब कि महायानसूत्रों की व्याख्या सन्देहास्पद व विवादास्पद नहीं कही जा सकती है।

लब्धि का ज्ञान होना) है, आलय का समुद्घात है प्रतीत्यसमुत्पाद के द्वादश अगों का (अर्थात् अविद्यानिरोध से लेकर जरा मरण शोक परिदेव दु ख दौर्मनस्य उपायास के निरोध तक सभी अगो का) निरोध करके उपशम का लाभ होना, सत्त्वो (प्राणियो) की दृष्टियों का कभी अ त नही होता, इस प्रकार की भावना की प्राप्ति से सम्पन्न होना और सभी प्रकार की दष्टियो का अदशन होना (सवदृष्टि प्रहाण करना) —यही, कुलपुत्र, अनुत्तर धमपूजा है।'

''देवे द्र, जब राजपुत्र च द्रच्छत्र ने भषज्यराज तथागत से धमपूजा की इस परिभाषा को सुना तो उसको अनुलोमिकी धमक्षान्ति प्राप्त हो गई। अपने सभी वस्त्रो व आभूषणो को भगवान् भषज्यराज को समर्पित करते हुये उसने कहा—'भगवान् तथागत के परिनिर्वाण के पश्चात् मैं सद्धम की पूजा के लिये, सद्धर्म के परिरक्षण के लिये, सद्धम की सम्पत्ति अपनाना चाहता हूँ। भगवान् मुझे ऐसी शक्ति सामथ्य प्रदान करें जिससे मैं मार को तथा विरोधी प्रवादियो को परास्त कर सकू और सद्धम को अपना सकू।'

'उसका (च द्रच्छत्र राजकुमार का) अध्याशय जानकर तथागत भषज्यराज ने इस प्रकार भविष्णवाणी की— पश्चात्काल मे भविष्य के समय मे, सद्धम के नगर का परिरक्षण करोगे रक्षा करोगे, देख रेख करोगे।'

तत्पश्चात् राजपुत्र च द्रच्छत्र ने तथागत पर प्रतिष्ठित श्रद्धा से प्रेरित होकर गृहस्थ-जीवन छोडकर भिक्षु-जीवन अपना लिया और कुशल कार्यों (धार्मिक गुणो) के सम्पादन में अप्रमादपूवक प्रयत्न करने लगा। अप्रमादपूवक प्रयत्न करके और कुशल धर्मों मे प्रतिष्ठित रहकर धारणियो की गति (शक्ति व अर्थ) को समझकर उसने शीघ्र ही पाँचो अभिज्ञाओ का विकास कर लिया। उसने निर्बाध प्रतिभान का लाभ भी प्राप्त कर लिया। जब तथागत भषज्यराज का परिनिर्वाण हो गया तब च द्रच्छत्र ने अपनी अभिज्ञाओ एव धारणियो के बल से धमचक्र का प्रवतन किया। उसने भगवान् भषज्यराज तथागत की ही भाँति दश अ तरकल्पो तक धमचक्र प्रवतन किया।

'इस प्रकार देवे द्र, जिस समय मे भिक्ष च द्रच्छत्र सद्धमपरिग्रह मे प्रयत्नशील था उस समय मे दश सौ करोड प्राणी अनुत्तर सम्यक सम्बोधि के माग की अवर्वातक भूमि पर पहुँचे थे। चालीस नयुत प्राणी श्रावक प्रत्येकबुद्ध के मार्ग पर विनीत हुये, और असख्य प्राणी स्वग मे उत्पन्न हुये।

''देवेन्द्र, आप कदाचित यह समझ रहे हैं कि उस युग का उस काल का रत्नच्छत्र नामक चक्रवर्ती राजा कोई अन्य व्यक्ति था। आपको ऐसा नहीं समझना चाहिये। ऐसा किस कारण ? यह रत्नार्चि[16] तथागत ही उस युग मे, उस काल में रत्नच्छत्र नामक चक्रवर्ती राजा थे। उस रत्नच्छत्र राजा के जो एक सहस्र पुत्र थ वे इस वतमान भद्रकल्प में बोधिसत्त्व हैं। इस भद्रकल्प मे एक सहस्र पूण बद्धो का आविर्भाव होगा। इनमे से क्रकुच्छन्द आदि चार बुद्ध पहले उत्पन्न हो चुके हैं[17]। शेष अन्य भी उत्पन्न होंगे—ककुत्सुन्द आदि स लेकर रोच तक, रोच नामक तथागत का आविर्भाव अन्त मे होगा।

''देवेन्द्र, आप कदाचित यह समझ रहे हैं कि उस युग का, उस काल का, चन्द्रच्छत्र नामक राजपुत्र जिसने तथागत भषज्यराज के सद्धम का परिग्रह किया था, वह कोई अन्य व्यक्ति था। आपको ऐसा नहीं समझना चाहिये। ऐसा किस कारण ? देवेन्द्र, मैं ही उस युग मे उस काल मे चन्द्रच्छत्र नामक राजपुत्र था। देवेन्द्र, विविध प्रकार से यह ज्ञातव्य है कि तथागत की सवप्रकार की पूजाओं मे से धमपूजा ही उत्तम है, श्रेष्ठ है, परम है, श्रेष्ठ से भी आगे है, निष्पन्न से भी आगे है, और अनुत्तर (पूजा) है। इसलिये, हे देवेन्द्र, आमिष (भौतिक पूजा) द्वारा नही अपितु धर्मपूजा द्वारा मेरी पूजा करनी चाहिये, आमिषसत्कार द्वारा नही अपितु धमसत्कार द्वारा मेरा सत्कार करना चाहिये।'

---

१६ **पञ्चविंशतिसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता**, पृ० १५ में कहा गया है कि रत्नार्चि तथागत उपशान्ता लोकधातु में बुद्धकार्य करते हैं।

१७ यह सुविदित बौद्ध परम्परा है कि हमारे इस भद्रकल्प में एक सहस्र सम्यक् सबुद्धों का आविर्भाव होगा। इन सभी बुद्धों की नामावली **भद्रकल्पिकसूत्र** में उपलब्ध है। द्र० फ्रीड्रिक वेलर कृत जर्मन ग्रन्थ **ताउजेन्ड बुद्धनामिन देस भद्रकल्प**, लाइप्जिग, १९२८। इस ग्रन्थ में १००० बुद्धों के नाम सस्कृत, तिब्बती, चीनी व मगोल भाषाओं में प्रकाशित हैं। **दीघनिकाय**, खण्ड २, पृ० ४ में तथागत गौतम बुद्ध के पूर्व-प्रादुर्भूत बुद्धों में छ बुद्धों के नाम दिये गये हैं—

१ विपश्यिन् २ शिखिन्, ३ विश्वभू ४ क्रकुच्छन्द (कुकुत्सुन्द ?) ५ कनकमुनि ६ काश्यप। शाक्यमुनि सातवें तथागत हैं। इसी कारण उन्हें 'इसीन इसिसत्तमो,' ऋषियों में सातवाँ ऋषि कहा जाता है। द्र० **सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र**, पृ० १२८—"विपश्यिप्रमुखाना सप्तानां तथागताना येषामह सप्तम।" छ पूवप्रादुर्भूत बुद्धों के विषय में विस्तृत सूचना के लिये देखिये मेरा लेख "शाक्यमुनि के पूववर्ती छ बुद्धों की ऐतिहासिक सत्ता और महत्ता" **धर्मदूत** (सारनाथ), वर्ष २९ (१९६४), पृ० १–८।

तत्पश्चात् भगवान् (शाक्यमुनि) ने बोधिसत्त्व महासत्त्व मत्रेय से कहा—"मत्रेय, मैं इस अनुत्तर सम्यक सम्बोधि को जो मुझे असख्य करोड कल्पो के प्रयत्न के फलस्वरूप प्राप्त हुई है[१], आपको सौंपता हूँ ताकि आगे आने वाले भविष्य काल मे इस प्रकार का यह धमपर्याय आपके अधिष्ठान से परिरक्षित होकर जम्बूद्वीप मे सर्वधित हो सके और इसका लोप न होने पाये।[१९] ऐसा किस कारण ? भविष्यकाल में, मत्रेय, ऐसे कुलपुत्र, कुलपुत्रियाँ, देवता, नाग यक्ष, गन्धव एव असुर होगे जो कुशलमूलावरोपण करने के पश्चात् अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति मे अग्रसर होगे यदि वे इस धर्म का श्रवण नही कर सकेंगे तो वे नष्ट हो जायेंगे। परन्तु इस प्रकार के सूत्रान्त (धर्मोपदेश) को सुन कर वे हर्षित होगे, श्रद्धालाभ प्राप्त करेंगे, और सिर नवाकर इसकी वन्दना करके इसे स्वीकार करेंगे। उन भावी कुलपुत्रो एव कुलपुत्रियो की रक्षा के लिये, मत्रेय, आप को उस काल मे इस प्रकार के सूत्रान्त का स्फुरण (प्रसार) करना चाहिये।[२]

---

१८ **सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र**, पृ० १८९-१९० में कहा गया है कि भगवान् शाक्यमुनि को अनुत्तर सम्यक् संबोधि प्राप्त हुये असख्य कल्प बीत चुके हैं (बहूनि मम कल्पकोटीनयुतशत सहस्राण्यनुत्तरा सम्यक्संबोधिमभिसबुद्धस्य)। **सुवर्णप्रभाससूत्र**, पृ० ५ में कहा गया है कि सभी समुद्रों के जल में निहित बूँदों (बिन्दुओं) की गणना की जा सकती है परन्तु शाक्य मुनि बुद्ध की आयु की गणना नहीं की जा सकती है—

"जलार्णवेषु सर्वेषु शक्यन्ते बिन्दुभिगणयितुम्।
न तु शाक्यमुनेरायु शक्य गणयितु क्वचित्॥"

लुम्बिनीवन में जन्म लेकर, बुद्ध होकर, अस्सी वर्ष की अवस्था में कुशीनगर में शरीरत्याग करके कालातीत तथागत ने मानवीय लीला करके केवल लोकानुवतन किया था। इस प्रकार का मत महावस्तु में प्रतिपादित किया गया है।

१९ यद्यपि मध्यकालीन भारत में धमपर्यायों-नेयार्थ एव नीतार्थ सूत्रान्तों-का लोप हो गया था, उस काल में भारत के बौद्ध मारकर्मों की चपेट में और अकाल (प्रतिकूल समय) की महा मारी से ग्रस्त होकर 'भूमिगत' हो गये थे, आधुनिक काल, जो भद्रकल्प का ही भाग है, पुन इन प्राचीन सूत्रान्तों के प्रकाशन का काल है। दो सौ और एक हजार बर्षों तक जम्बू द्वीप में लगभग पूर्णरूप से अज्ञात रहने के पश्चात् **विमलकीर्तिनिर्देश** पुन प्रकाशित होकर यह सिद्ध करता है कि इस भूभाग में बौद्धधर्म दर्शन का लोप नहीं हो सकता है।

२० बोधिसत्त्व मैत्रेय महायानसूत्रों एव शास्त्रों के प्रेरणा-स्रोत हैं। तिब्बती व चीनी बौद्ध परम्पराओं में आचार्य असग के बारे में प्रसिद्ध है कि उन्होंने बोधिसत्त्व मैत्रेय से महायान

'मत्रय, बोधिसत्त्वो की ये दो मुद्राए हैं। कौन सी दो? (१) नाना प्रकार के शब्दो एव वाक्यो मे प्रसन्न रहने की मुद्रा तथा (२) निर्भीकतापूर्वक गम्भीर धर्मनय (तत्त्व के सिद्धान्त) को यथाभूत समझने की मुद्रा।[२१] मत्रेय ये बोधिसत्त्वो की दो मुद्राए हैं। इनमे से जो बोधिसत्त्व नाना प्रकार के पदो व्यजनो (शब्दो एव वाक्यो) मे विश्वास करने मे लगे हुये हैं उन्हें आदिकर्मिक और थोडे समय से धार्मिक साधना से लगे हुये बोधिसत्त्व समझना चाहिये। मत्रेय, जो बोधिसत्त्व इस गम्भीर एव अनुपलिप्त (निर्दोष) सूत्रान्त के ग्रन्थ का अथवा अध्याय का पाठ करते हैं, श्रवण करते है दृढ़ रूप से विश्वास करते हैं, और इसके परस्पर विरोधी यमक वाक्यो की व्याख्या के साथ इसके रहस्यमय योगमार्ग का उपदेश करते हैं, उन्हें दीर्घकाल के धर्माभ्यास के अनुभव से सम्पन्न बोधिसत्त्व जानना चाहिये।

"मत्रेय, जो आदिकर्मिक बोधिसत्त्व हैं वे दो कारणो से अपने को आघात पहुँचाते हैं और गम्भीर धर्म का ध्यान नही करते हैं। कौन से दो? (१) पहले कभी नही सुने हुये गम्भीर सूत्रान्त को सुनकर वे भयभीत होते हैं और सशय मे पड जाते हैं इसलिये उसका अनुमोदन नही करते हैं। पहले कभी नही सुना हुआ यह उपदेश कहाँ से आया है? ऐसा प्रश्न करके वे इसका परित्याग करते हैं। (२) जो कुलपुत्र गम्भीर सूत्रान्त को ग्रहण करते हैं, गम्भीर धर्म के पात्र (भाजन) होते हैं और गम्भीर धर्म का उपदेश देते है—ऐसे (कुलपुत्रो) के साथ मित्रता नही करते हैं ऐसे (कुलपुत्रो) के साथ समागम नही करते हैं, और उनकी सेवा व सत्कार नही करते हैं। यही नही, ऐसे कुलपुत्रो की

को कुछ गम्भीर शिक्षाओं की व्याख्या प्राप्त की थी। यहाँ पर यह कहना उचित जान पडता है कि इन परम्पराओं में ऐतिहासिक महायानाचार्य एव शास्त्रकार मैत्रेयनाथ (चौथी शती ईस्वी) तथा बोधिसत्त्व मैत्रेय को एक ही व्यक्ति समझने की भूल हुई है। तथापि यह एक सुप्रसिद्ध परम्परा है कि अनेक महायानी विचारादर्शों की परम्परा भगवान् शाक्यमुनि से बोधिसत्त्व मैत्रेय के द्वारा अथवा उनके नाम से प्रसारित हुई थी। अध्याशयसंचोदनसूत्र (शिक्षासमुच्चय, पृ० १२) में कहा है—"यत्किंचि मैत्रेयसुभाषितं सर्वं तद्बुद्धभाषितम्।" तुल० सम्राट् अशोक के भाब्रू शिलालेख की एक पंक्ति "ए किंचि भंते भगवता बुधेन भासिते सवे से सुभासिते वा।"

२१ यहाँ पर व्यवहारसत्य एवं परमार्थसत्य की ओर भी संकेत हो सकता है।

आलोचना (बुराई) भी करते हैं। इन दो कारणो से आदिकर्मिक बोधिसत्त्व अपने को स्वय आघात पहुँचाते है और गम्भीर धम[२२] का अवगाहन नही करते हैं।

गम्भीरअधिमुक्ति वाले बोधिसत्त्व भी दो कारणो से स्वय अपने को आघात पहुँचाते हैं और अनुत्पत्तिक धमक्षाति का लाभ प्राप्त नही करते हैं। कौन से दो ? (१) ऐसे बोधिसत्त्व उन आदिकर्मिक थोडे समय से ही पवित्र जीवन साधना मे लगे हुये बोधि सत्त्वो से घृणा करते है उनका अनादर करते हैं उहें प्रेरणा नही देते हैं, उनको दीक्षित नही करते हैं उहें उपदेश नही देते हैं। (२) गम्भीर धम मे अल्प श्रद्धा होने के कारण वे शिक्षा (उपदेश) नही मानते हैं लाक की भौतिक वस्तुए देकर (आमिषदान) सहायता (उपकार) करते हैं न कि धमदान देकर। मैत्रेय गम्भीर, अधिमुक्ति वाले बोधिसत्त्व इन्ही दो कारणो से स्वय अपने को आघात पहुँचाते हैं और अनुत्पत्तिक धम क्षाति का लाभ शीघ्र प्राप्त नही करते हैं।" ऐसा भगवान् शाक्यमुनि ने बोधिसत्त्व मत्रेय से कहा।

बोधिसत्त्व मत्रेय ने भगवान् से कहा—"भगवान् ने जो सुदर वचन कहे हैं, भगवन्, वे आश्चयमय हैं। ठीक हैं, भगवन्। आज से आगे को, भगवन्, मैं इन त्रुटियो का परित्याग (विवजन) करूगा। तथागत ने असख्य शत सहस्र कोटिनयुत कल्पो मे जिस अनुत्तर सम्यक सम्बोधि की प्राप्ति की है[२३], मैं उसको धारण करूगा और उसकी रक्षा करूगा।

"अनागत (भविष्य) काल मे जो कुलपुत्र तथा कुलपत्रियाँ धम भाजन के योग्य हो जाएगी, इस प्रकार के सूत्रात को मैं उनक हाथों मे रखूगा। म उन कुलपत्रों को ऐसी स्मृति प्रदान करूगा जिससे वे इस प्रकार के सूत्रात पर दृढतापूवक श्रद्धा रखकर इसे स्वीकार करेंगे, समझेंगे इसका उपदेश करेंग इसको लिखेंगे और दूसरो के लिए इस का विस्तार पूवक प्रकाशन करेंगे। भगवन् इस प्रकार मैं उनको प्रस्थापित करूगा। भगवन,

२२ बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धम, जिसका विस्तृत रूप में प्रसारण महायान सूत्रों के माध्यम से हुआ है, सवत्र गम्भीर कहा गया है। आचार्य हरिभद्र ने **अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता आलोकव्याख्या**, पृ ४५५ में धर्म की गम्भारता का स्पष्टीकरण करते हुये लिखा है—"अविचारैकरम्यकारणत्वादाकाशगम्भीरतया गम्भीर। तत्त्वेन मायोपमकार्यस्वभावत्वादा त्मगम्भीरतया गम्भीर। उत्पादाभावात् सर्वधर्मानागमनतया गम्भीर। विनाशवियोगात् सवधर्मागमनतया गम्भीर।"

२३ तुलनीय **सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र**, पृ० २६८

"असख्येयकल्पकोटीनयुतशतसहस्रसमुदानीतामनुत्तरा सम्यक्सबोधि।"

उस (भविष्य) काल मे इस प्रकार के इस सूत्रान्त पर जो विश्वास करेंगे और इसमे गहराई तक प्रवेश करेंगे, वे बोधिसत्त्व मैत्रय के अधिष्ठान से अधिष्ठित रहेंगे, ऐसा जानना चाहिये ।"

तत्पश्चात् भगवान् बुद्ध ने बोधिसत्त्व मत्रेय को अपनी सहमति प्रदान करते हुये कहा— 'ठीक है मत्रेय, ठीक है । आपके वचन सुभाषित हैं। तथागत भी आपके वचनों का अनुमोदन करते हैं ।'

तब सभी बोधिसत्त्वों ने एक स्वर से इस प्रकार कहा हम भी, भगवन्, तथागत के परिनिवृत होने पर नाना बुद्धक्षत्रो से आकर तथागत की इस बोधि का सवत्र प्रसार करेंगे । इस वचन पर भी सभी कुलपुत्र एव कुलपुत्रियाँ विश्वास करें ।"

तत्पश्चात् चतुमहाराजिक देवताओ ने भी कहा"—भगवन्, जिन सभी ग्रामो, नगरो, निगमो, राष्ट्रो, व राजधानियो मे इस प्रकार के धमपर्याय का पालन होगा उपदेश होगा, उन सभी स्थानो मे, भगवन् हम चतुमहाराजिक देवता भी अपने वाहनो, सेनाओ एव अनु गामियो सहित धमश्रवण के लिये जायेंगे । और धर्मभाणको (धम का उपदेश करने वाले यक्तियों) की एक योजन पय त रक्षा करेंगे जिससे उन धमभाणको को हानि पहुँचाने अथवा उ हें बाधा पहुँचाने की दृष्टि से षडय त्र रचने वाले प्राणियो को सफलता न मिल सके ।"

तब भगवान् बुद्ध ने आयुष्मान आन द से कहा—"आनन्द, इस धमपर्याय को स्वीकार करो, इसे धारण करो, और दूसरों के लिये इसको भली प्रकार प्रकाशित करो ।'

आन द ने कहा—' मैंने इस धमपर्याय को स्वीकार कर लिया है । भगवन्, इस धमपर्याय का क्या नाम है, किस प्रकार इसे धारण करूँ ?"

भगवान् बुद्ध ने कहा—"आन द, इस धमपर्याय को 'विमलकीर्ति-निर्देश' अथवा 'यमकव्यत्यस्ताभिनिर्हार (परस्पर विरोधी रहस्यो के समवाय की सिद्धि) अथवा 'अचिन्त्यविमोक्षपरिवर्त' नाम से जाना जाता है, इसी प्रकार तुम इसे धारण करो ।

इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने कहा । और लिच्छवि विमलकीर्ति, मजुश्री कुमारभूत, आयुष्मान् आन द, वे सभी बोधिसत्त्व, महाश्रावक, सम्पूर्ण परिषद् सम्पूर्ण लोक देवताओ, मनुष्यों, असुरो एव ग धर्वों सहित, सभी ने प्रसन्नचित्त होकर भगवान् बुद्ध के प्रवचनो का अभिनन्दन किया ।

द्वादश परिवर्त समाप्त ।

विमलकीर्तिनिर्देशसूत्र समाप्त ।

सहायक ग्रन्थों व लेखों की सूची

१ पालि एव सस्कृत ग्र थ

२ भारतीयेतर भाषाओ के विविध ग्र थ तथा लेख

❀ ❀ ❀

अगुत्तरनिकाय, खण्ड १ – ४ सम्पादक भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा नवनालन्दामहाविहार, १९६० ।

अद्वयवज्रसग्रह, सम्पादक हरप्रसाद शास्त्री, बडौदा गायकवाड आरियन्टल सिरीज–४० १९२७ ।

अद्वयसिद्धि, सम्पादक मालती सेंडगे, बडौदा, आरियन्टल इ स्टीटयूट, १९६४ ।

अपदान, सम्पादक भिक्षु ज० काश्यप, नालन्दा नवनालन्दामहाविहार, १९५९ ।

अभिधर्मकोशभाष्य, सम्पादक प्रह लाद प्रधान पटना काशीप्रसाद जायसवाल शोध सस्थान १९७५ ।

अभिधर्मसमुच्चय, सम्पादक प्रह्लाद प्रधान शान्तिनिकेतन विश्वभारती १९५० ।

अभिधर्मसमुच्चयभाष्यम्, सम्पादक नथमल टाटिया पटना काशीप्रसाद जायसवाल शोध सस्थान, १९७० ।

अभिधर्मामृत, शान्तिभिक्षु शास्त्री द्वारा सस्कृत उद्धार शान्तिनिकेतन विश्वभारती पत्रिका भाग ५, १९५३ ।

अभिसमयालकार–आलोकव्याख्या, सम्पादक परशुराम वद्य दरभगा बौद्ध सस्कृत ग्र थावली–४, १९६० ।

अभिसमयालकारवृत्ति, सम्पादक कोरादो पेसा, रोम, सरो आरियन्तले रोमा–३७ १९६७ ।

अर्थविनिश्चयसूत्र, सम्पादक नारायण हमनदास साम्ताणी, पटना, काशी प्रसाद जायसवाल शोध संस्थान १९७१।

अवदानशतक, सम्पादक परशुराम वद्य दरभंगा बौद्ध संस्कृत ग्रंथावली १९ १९५८।

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, सम्पादक परशुराम वद्य दरभंगा, बौद्ध संस्कृत ग्रंथावली-४ १९६०।

अष्टादशसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, सम्पादक एडवड काज रोम सरी ऑरियन्तले रोमा-२६ १९६२।

आगमशास्त्र, सम्पादक विधुशेखर भटटाचार्य, कलकत्ता कलकत्ता विश्वविद यालय, १९४३।

उदान, सम्पादक भिक्षु ज० काश्यप नालंदा, नवनालंदामहाविहार १९५९।

कालचक्रतन्त्र, सम्पादक रघुवीर एवं लोकेशचंद्र, नई दिल्ली, शतपिटक-६९ १९६६।

काश्यपपरिवर्त, सम्पादक बरन ए० फान स्टाइल होल्स्टाइन शांघाई कमर्शियल प्रेस १९२६।

खुद्दकनिकाय, खण्ड १-७ सम्पादक भिक्षु ज० काश्यप नालंदा, नवनालंदा महाविहार १९५९।

गण्डव्यूहसूत्र, सम्पादक परशुराम वैद्य, दरभंगा, बौद्ध संस्कृत ग्रंथावली-५ १९६०।

गान्धारीधर्मपद, सम्पादक जान ब्रफ, लंदन आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस १९६२।

गुह्यसमाजतन्त्र, सम्पादक शीतांशुशेखर बागची दरभंगा बौद्ध संस्कृत ग्रंथावली-९ १९६५।

चतुःशतक एवं चतुःशतकवृत्ति, विधुशेखर भट्टाचार्य द्वारा संस्कृत उद्धार शान्तिनिकेतन, विश्वभारती, १९३१।

चतुःस्तव, पी बी पटेल द्वारा संस्कृत उद्धार, **इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टर्ली,** वाल्यूम ८ कलकत्ता, १९३२।

चण्डमहारोषणतन्त्र, सम्पादक क्रिस्टोफर एस जौज, यु हैवन अमेरिकन आरियन्टल सिरीज–५६, १९७४।

चर्यागीतिकोष, सम्पादक प्रबोधचन्द्र बागची एव शान्तिभिक्षु शास्त्री, शान्ति निकेतन विश्वभारती, १९५६।

चित्तविशुद्धिप्रकरण, सम्पादक पी बी पटेल शान्तिनिकेतन, विश्वभारती, १९४९।

चुल्लवग्ग, सम्पादक भिक्षु ज० काश्यप, नालन्दा नवनालन्दामहाविहार १९५६।

तत्त्वसग्रहकारिका खण्ड १ सम्पादक एम्बर कृष्णामाचार्य, बडौदा, गायकवाड ऑरियन्टल सिरीज ३० ३१ १९२६।

थेरगाथा थेरीगाथा, सपादक भिक्षु ज० काश्यप नालन्दा, नवनालन्दा महाविहार, १९५९।

दशभूमिकसूत्र, सम्पादक परशुराम वद्य, दरभगा बौद्ध सस्कृत ग्रन्थावली ७, १९६७।

दिव्यावदान, सम्पादक परशुराम वद्य, दरभगा, बौद्ध सस्कृत ग्रन्थावली २०, १९५९

दीघनिकाय, खण्ड १–३, सम्पादक भिक्षु ज० काश्यप, नालन्दा, नवनालन्दा महाविहार १९६०।

दोहाकोश, (सरहपाद) सम्पादक राहुल साकृत्यायन पटना राष्ट्रभाषा परिषद १९५७।

धम्मपद, सम्पादक भिक्षु ज० काश्यप नालन्दा नवनालन्दामहाविहार, १९५९।

धर्मसग्रह, सम्पादक परशुराम वद्य दरभगा, बौद्ध सस्कृत ग्रन्थावली–१७, १९३१।

नैरात्म्यपरिपृच्छा, सम्पादक परशुराम वद्य दरभगा, बौद्धसस्कृत ग्रन्थावली १७, १९६१।

पञ्चविंशतिसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता (प्रथम परिवत्त) सम्पादक नलिनाक्ष दत्त, कलकत्ता कलकत्ता आरियन्टल सिरीज,–२८, १९२८।

प्रमाणवार्त्तिककारिका (सस्कृत एव भोटीय सस्करण) सम्पादक यूशो मियासाका

आक्टा इण्डोलोजिका, भाग २ नरितासान सिथोजी, १९७१–७२ ।

प्रमाणसमुच्चय (प्रथम परिच्छद), सम्पादक अनुवादक एम हतोरी, कम्ब्रिज, हावड विश्वविद्यालय प्रेस १९६८ ।

प्रसन्नपदा मध्यमकवृत्ति, सम्पादक परशुराम वद्य दरभगा, बौद्ध सस्कृत ग्र थावली–१०, १९६० ।

प्रज्ञापारमितापिण्डार्थ, सम्पादक परशुराम वद्य, दरभगा, बौद्ध सस्कृत ग्र था वली–४ १९६० ।

प्रज्ञापारमितास्तुति, सम्पादक अनुवादक, लालमणि जोशी, धमदूत' सार नाथ वष ३० (१९६६) ।

प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि, सम्पादक विनयतोष भटटाचाय, बडोदा, गायकवाड आरिय टल सिरीज ४९, १९२९ ।

पूर्वी तुर्किस्तान से प्राप्त बौद्ध सस्कृत ग्रन्थांश, खण्ड १, सम्पादक ए एफ आर होनले आक्सफोड, १९१६ ।

बुद्धचरित, सम्पादक इ० एच० जा सटन, दिल्ली मोतीलाल बनारसीदास, १९७२ (पुनर्मुद्रित) ।

बोधिचर्यावतार, सम्पादक परशुराम वद्य, दरभगा, बौद्ध सस्कृत ग्र थावली १२ १९६० ।

बोधिचर्यावतार पजिका, सम्पादक परशुराम वद्य दरभगा बौद्ध सस्कृत ग्र थावली १२, १९६० ।

बोधिसत्वभूमि, सम्पादक नलिनक्ष दत्त, पटना, काशीप्रसाद जायसवाल शोध सस्थान, १९६६ ।

भावनाक्रम (प्रथम), सम्पादक ज्यूसिप तुची, सेरी रोम आरिय तले रोमा–९, १९५८ ।

भावनाक्रम (तृतीय) सम्पादक ज्यूसिप तुची, रोम, सेरी आरिय तले रोमा–४८, १९७१ ।

भैषज्यगुरुवैदूर्यप्रभराजसूत्र, सम्पादक परशुराम वद्य दरभगा, बौद्ध सस्कृत ग्र थावली–१७, १९६१ ।

मजुश्रीमूलकल्पसूत्र, सम्पादक परशुराम वद्य, दरभगा बौद्ध सस्कृत ग्रन्था वली–१८, (**महायानसूत्रसग्रह,** भाग २) १९६४ ।

महायानकरतलरत्नशास्त्र, एच अय्यस्वामी शास्त्री द्वारा संस्कृत उद्धार, शांतिनिकेतन, विश्वभारती पत्रिका भाग २ १९४९ ।

महायानविंशिका, सम्पादक ज्यूसिप तुची रोम सेरी आरियन्तले रोमा–९ १९५८ ।

मज्झिमनिकाय, खण्ड १–३ सम्पादक भिक्षु ज० काश्यप, नालन्दा, नवनालन्दामहाविहार, १९५८ ।

मध्यमकार्थसंग्रह, सम्पादक–अनुवादक लालमणि जोशी, 'धर्मदूत सारनाथ वर्ष २९ (१९६४)

मध्यान्तविभागटीका, सम्पादक एस यामागुची टोक्यो सुजुकी रिसर्च फाउन्डेशन १९६६ ।

मध्यान्तविभागभाष्य, सम्पादक गदजिन एम नागाओ, टोक्यो, सुजुकी रिसर्च फाउन्डेशन १९६४ ।

महानिद्देस, सम्पादक भिक्षु ज० काश्यप नालन्दा, नवनालन्दामहाविहार, १९६० ।

महापरिनिर्वाणसूत्र (संस्कृत) खण्ड १ ३ सम्पादक ई० वाल्दस्मिट, बर्लिन, १९५०, १९५१ ।

महायानसूत्रालंकार, सम्पादक शीतांशुशेखर बागची दरभंगा, बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली–१३ १९७० ।

महायानसूत्रसंग्रह, खण्ड १, सम्पादक परशुराम वैद्य दरभंगा, बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली–१७, १९६१ ।

महावंसो, सम्पादक एन के भागवत, बम्बई, बम्बई विश्वविद्यालय, १९५९ ।

महावग्ग, सम्पादक भिक्षु ज० काश्यप, नालन्दा, नवनालन्दामहाविहार, १९५६ ।

महावस्तु, खण्ड १ ३, सम्पादक एमिल सेनार, पेरिस, १८८२ १८९७ खण्ड १, सम्पादक शीतांशुशेखर बागची, दरभंगा, बौद्ध संस्कृत, ग्रन्थावली–१४ १९७० ।

महाव्युत्पत्ति, सम्पादक आर सकाकी, टोक्यो, सुजुकी रिसर्च फाउन्डेशन, १९६२ ।

मिलिन्दपञ्हो, सम्पादक आर डी वडकर, बम्बई बम्बई विश्वविद्यालय, १९४० ।

मूलमध्यमककारिका (मध्यमकशास्त्र), सम्पादक परशुराम वैद्य दरभगा, बौद्ध सस्कृत ग्रथावली–१०, १९६० ।

मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तु, खण्ड १–२, सम्पादक शीतांशुशेखर बागची, दरभगा, बौद्ध सस्कृत ग्रथावली १६, १९६७, १९७० ।

योगाचारभूमि, सम्पादक विधुशेखर भट्टाचार्य, कलकत्ता, कलकत्ता विश्वविद्यालय १९५७ ।

रत्नगोत्रविभागमहायानोत्तरतन्त्रशास्त्र, सम्पादक इ एच जास्टन, पटना, बिहार रिसर्च सोसाइटी, १९५० ।

रत्नावली, सम्पादक ज्यूसिप तुची, **जर्नल ऑफ दि रॉयल एसियाटिक सोसाइटी**, लदन, १९३४ बौद्ध सस्कृत ग्रथावली–१० म दरभगा से पुन प्रकाशित, १९६० ।

लंकावतारसूत्र, सम्पादक परशुराम वैद्य, दरभगा, बौद्ध सस्कृत ग्रंथावली–३ १९६३ ।

ललितविस्तर, सम्पादक परशुराम वैद्य, दरभगा, बौद्ध सस्कृत ग्रथावली–१, १९८५ ।

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्र (असग की **टीका** के साथ), सम्पादक एव अनुवादक लालमणि जोशी, सारनाथ केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा सस्थान, १९७८ ।

विग्रहव्यावर्तनी, सम्पादक परशुराम वैद्य दरभगा, बौद्ध सस्कृत ग्रथावली १०, १९६० ।

विसुद्धिमग्ग, सम्पादक धर्मानन्द कोसाम्बी एव एच सी वारेन, केम्ब्रिज, हार्वर्ड विश्वविद्यालय प्रेस १९५० ।

विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिप्रकरणद्वयम्, सम्पादक–अनुवादक थुब्तन छोगडुब एव रमाशंकर त्रिपाठी, वाराणसी, गगानाथ झा ग्रथमाला–५ १९७२ ।

शतपञ्चाशत्कस्तोत्र, सम्पादक डी आर शैक्लेटन बली, कम्ब्रिज, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस, १९५१ ।

शतसाहस्रिकाप्रज्ञापारिमिता (प्रथम परिवत) सम्पादक प्रतापच द्र घोष कलकत्ता एसियाटिक सोसाइटी, १९१४ ।

शालिस्तम्बसूत्र, सम्पादक परशुराम वद्य, दरभगा बौद्ध सस्कृत ग्र थावली–१७, १९६१ ।

शिक्षासमुच्चय, सम्पादक परशुराम वद्य दरभगा बौद्ध सस्कृत ग्र थावली–११ १९६० ।

शिक्षासमुच्चयकारिका, सम्पादक–अनुवादक लालमणि जोशी सारनाथ भारतीय महाबोधि सभा १९६५ ।

सयुत्तनिकाय, खण्ड १–४ सम्पादक भिक्षु ज० काश्यप नाल दा, नवनाल दा महाविहार १९५९ ।

सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, सम्पादक परशुराम वद्य दरभगा बौद्ध सस्कृत ग्र थावली–६ १९६० ।

समाधिराजसूत्र, सम्पादव परशुराम वद्य दरभगा बौद्ध सस्कृत ग्र थावली–२, १९६१ ।

साधनमाला, खण्ड १–२, सम्पादक बिनयतोष भट्टाचाय बडौदा, गायकवाड ओरियन्टल सिरीज २६ ४१, १९२५, १९२६ ।

सुखावतीव्यूहसूत्र, सम्पादक परशुराम वद्य दरभगा, बौद्ध सस्कृत ग्र थावली–१५ १९६१ ।

सुत्तनिपात, सम्पादक भिक्ष ज० काश्यप, नाल दा, नवनाल दामहाविहार १९५९ ।

सुवर्णप्रभाससूत्र, सम्पादक परशुराम वद्य दरभगा बौद्ध सस्कृत ग्र थावली ८ १९६७ ।

सेकोद्देशटीका, सम्पादक एम ई करेली बडौदा गायकवाड आरियन्टल सिरीज ९० १९४१ ।

हेवज्रतन्त्र, खण्ड १–२ सम्पादक डेविड स्नेलग्रोव, ल दन ऑक्सफर्ड यूनिवसिटी प्रेस, १९५९

ज्ञानसिद्धि, सम्पादक बिनयतोष भट्टाचाय बडौदा, गायकवाड ऑरियन्टल सिरीज–४९ १९२९ ।

A A Macdonell, *Practical Sanskrit English Dictionary*, London, Oxford University Press, 1958

Akira Yuyama, "The Vimalakirtinirdeśa quoted by Kamalaśila in his Bhāvanākrama" in *Tohogaku*, no 38, Tokyo, 1969

Banyiu Nanjio *A Catalogue of the Chinese Translation of the Buddhist Tripitaka*, Oxford, Clarendon Press, 1883

Bhikkhu Pāsādika, 'Nāgārjuna's Sūtrasamuccaya" in *The Journal of Religious Studies*, vol VII, no 1, 1979

Bhikkhu Pāsādika, "Some Notes on the Vimalakirti nirdeśasūtra" in *Jagajjyoti, A Buddha Jayanti Annual*, Calcutta, 1972

Bhikkhu Pāsādika, "Some Remarks on the Origin of the Zen School" in *The Journal of Religious Studies*, vol IV, no 1, Patiala, 1972

Bhikkhu Pāsādika, "The Vimalakirtinirdeśasūtra and Tantra" in *Jagajjyoti, A Buddha Jayanti Annual*, Calcutta, 1976

Bhikkhu Pāsādika and Thubten Kalzang, *Excerpts from the Śūraṅgamasamādhi sūtra*, Bangkok, World Fellowship of Buddhists, 1971

Bhikshu Sangharakshita, *The Three Jewels*, London, Rider & Co, 1967

C A F Rhys Davids, *Psalms of the Early Buddhists* (I Psalms of the Sisters, II Psalms of the Brethren), London, Luzac & Co, 1964 (reprint)

Charles Luk, *The Vimalakirti Nirdeśa Sūtra*, Berkeley, 1972, also published in *World Buddhism*, vol XIX, no 9, 1971 to vol XX, no 10, 1972

Chung Chien Pien Chi Pu chu, *New Complete Chinese English Dictionary*, Hong Kong, Chung Chien Pnblishing Co , 1964

D T Suzuki, *Essays in Zen Buddhism*, first series, second series, third series, London, Rider & Co , 1949, 1953

D T Suzuki, *Studies in the Laṅkāvatāra Sūtra*, London, Routledge and Kegan Paul, 1930

D T Suzuki, (General Editor) *Tibetan Tripiṭaka, Peking Edition*, Bkah Hgyur, vol 32, 1 98, Tokyo Kyoto, Tibetar Tripiṭaka Research Institute, 1957

D T Suzuki (General Editor), *Tibetan Tripitaka, Peking Edition*, Bkaḥ Hgyur, Mdo sna tshogs, VIII, vol 34, Tokyo Kyoto, Tibetan Tiipiṭaka Research Institute, 1957

D T Suzuki, *Tibetan Tripiṭaka, Peking Edition, Catalogue and Index*, Tokyo, Suzuki Research Foundation, 1962

D T Suzuki, *Zen and Japanese Culture*, New York, Pantheon, 1959

Edward Conze, *Materials for a Dictionary of the Prajñā pāramitā Literature*, Tokyo, Suzuki Research Found ation, 1967

Edward Conze, *Thirty Years of Buddhist Studies*, Oxford, Bruno Cassirer, 1967

Ètienne Lamotte, *Histoire du Bouddhisme Indien, des origines al'ere Śaka*, Louvain, Universite de Louvain, 1958

Ètienne Lamotte, *La Traite de la Grand Vertu de Sagesse de Nāgārjuna (Mahāprajñāpāramitāśāstra)* tomes, I, II, III, IV, Louvain, Universite de Louvain, 1949, 1970, 1976

Ètienne Lamotte, *L' Enseignement de Vimalakīrti*, Louvain, Universite de Louvain, 1962

Franklin Edgerton, *Buddhist Hybrid Sanskrit Grammar and Dictionary*, vols 1 2, Delhi, Motilal Banarasidass, 1970 (reprint)

Friedrich Weller, "Bemerkungen zum Sogdischen Vimalakirtinirdeśa sūtra" in *Asia Major*, vol X, 1935

Friedrich Weller, *Index to the Indian Text of the Kāśyapa parivarta*, Cambridge, Harvard Yenching Institute, 1935

Friedrich Weller, *Index to the Tibetan Translation of the Kāśyapaparivarta*, Cambridge, Harvard Yenching Institute, 1933

Friedrich Weller, *Tausend Buddhanamen des Bhadrakalpa*, Leipzig, Verlag der Asia Major, 1928

Friedrich Weller, *Tibetisch Sanskritischer Index zum Bodhi caryāvatāra*, Berlin, Akademie-Verlag, 1952

Fukaura Shobun, *Yuima kitsu Shosetu Kyo* (Japanese translation of the *Vimalakīrtinirdeśa*), Kyoto, Shorin Kichudo, 1964

Gadjin M Nagao, *Index to the Mahāyānasūtrālaṅkāra*, Part I, (Sanskrit Tibetan Chinese), Tokyo, Nippon Gakujutsu Shinko kai, 1958

Gadjin M Nagao, Review of *The Teaching of Vimalakīrti* tr by Sara Boin and of *The Holy Teaching of Vimala kīrti* tr by Robert Thurman in *The Eastern Buddhist*, ns vol XI, no 1 (1978)

G P Malalasekera, *Dictionary of Pāli Proper Names*, 2 vols , London, Luzac & Co , 1960 (reprint)

H A Jaschke, *Tibetan English Dictionary*, New York, Frederick Ungar Publishing Co , 1968

Hokei Idzumi, *The Vimalakīrti Sūtra, Vimalakīrti's Dis course on Emancipation*, Kyoto, 1924-1928

Har Dayal, *The Bodhisattva Doctrine in Buddhist Sanskrit Literature* Delhi, Motilal Banarasidass, 1970 (reprint)

Heinrich Dumoulin, *History of Zen Buddhism*, London, Faber and Faber, 1963

Heinz Bechert, Review of *L'Enseignement de Vimalakīrti* in *Zeitschrift der Deutschen Morgelandischen Gesell schaft*, Band 121 Heft 2, 1971

H Hashimoto, ' Concerning the Philosophic Influence of Vimalakīrtinirdeśasūtra upon Chinese Culture" in *Journal of Indian and Buddhist Studies*, vol XXII, no 1 (1973)

H Hashımoto's several artıcles on the *Vımalakīrtınırdeśa* ın Japanese publıshed ın *Journal of Indıan and Buddhıst Studıes (Indogaku Bukkyogaku Kenkyu)* vol 1, no 1 (1952), vol II, no 1 (1953), vol II, no 2 (1954), vol V, no 1 (1957), vol VI, no 2 (1958), vol VII, no 1 (1958), vol VIII, no 1 (1960), vol XXVII, no 1 (1978)

H Reıchelt, *Dıe Sogdıschen Handschrıftenreste des Brıtıschen Museums ın Umschrıft und mıt Ubersetzung*, Teıl I, *Dıe Buddhıstıschen Texte*, Heıdelberg, 1928

H W Baıley, *Khotanese Buddhıst Texts*, London, 1951

Jakob Fısher and Takeno Yokota, *Das Sūtra Vımalakırtı, Das Sūtra Über dıe Erlosung*, Tokyo, 1944

James Legge, *A Record of Buddhıst Kıngdoms* by Fa hıen, New York, 1965 (reprınt)

Jıkıdo Takasakı, *A Study on the Ratnagotravıbhāga*, Rome Serıe Orıentale Roma, vol 33, 1966

Jısshu Oshıka, "Appendıces to the Tıbetan Translatıon of the Vımalakırtınıı deśa" ın *Acta Indologıca*, vol III, Narıtasan Shınshojı, 1973-1975

Jısshu Oshıka, "Index to the Tıbetan Translatıon of the Vımalakīrtınırdeśa" ın *Acta Indologıca*, vol III, Narıtasan Shınshojı, 1973-1975

Jısshu Oshıka, "The Candrottarādārıkā parıpṛcchāsūtra" ın *Journal of Indıan and Buddhıst Studıes*, vol XVIII, no 2 (1970)

Jisshu Oshıka, *Tıbetan Text of Vımalakīrtınırdeśa* (Roman ızed) *Acta Indologıca*, vol I, Narıtasan Shınshojı, 1970

J Nobel, Worterbuch Tibetisch Deutsch Sanskrit (Zweiter Band) *Zum Suvarnaprabhāsottama sūtra*, Leiden, E J Brill, 1950

J Takakusu, *A Record of the Buddhist Religion* by I tsing, Delhi, Munshiram Manoharlal, 1966 (reprint)

J W de Jong, "Fonds Pelliot tibetain Nos 610 et 611" in *Studies in Indology and Buddhology in Honour of Prof S Yamaguchi*, Kyoto, 1955

Kakichi Ohara, *The Vimalakirtinirdeśasūtra (The Discourse of the Wondrous Law of Emancipation)*, Tokyo, 1897 1898

Kenneth K S Chen, *Buddhism in China*, Princeton, Princeton University Press, 1964

L M Joshi, "A Survey of the Conception of Bodhicitta" in *The Journal of Religious Studies*, vol III, Patiala, 1972

L M Joshi, "Nirvāna According to Buddhist Scriptures" in *The Journal of Religious Studies*, vol VII, no 2, Patiala, 1979

L M Joshi, "Social Perspective of Buddhist Soteriology" in *Religion and Society*, vol VIII, no 3, Bangalore, 1971

L M Joshi, *Studies in the Buddhistic Culture of India*, second revised edition, Delhi, Motilal Banarsidass, 1977

L M Joshi, "Tathāgataguhyasūtra and the Guhya samājatantra" in *Journal of Oriental Institute*, vol. XVI, no 2, Baroda, 1966

L M Joshi, "Truth A Buddhist Perspective" in *The Journal of Religious Studies*, vol IV, 1972

L M Joshı, "Prolegomena on Buddhology" ın *Papers of International Semınar on Buddhısm and Jaınısm*, Calcutta, Instıtute of Orıental and Orıssan Studıes, 1976

Lokesh Chandra, *Tıbetan-Sanskrıt Dıctıonary (Bhoṭa Saṃskṛtābhıdhāna)*, Kyoto, Rınsen Book Co Ltd , 1971 (reprınt)

Lucıano Petech, *Northern Indıa Accordıng to the Shuı Chıng chu*, Rome, Serıe Orıentale Roma 2, 1950

Masaakı Nıtta, "Zhıyı's Fundamental Relıgıous Thought as Expressed ın the Commentarıes on the Vımala kīrtınırdeśasutra" ın *Journal of Indıan and Buddhıst Studıes*, vol XXII, no 2 (1974)

Masaharu Anesakı, *Hıstory of Japanese Relıgıon*, London, Kegan Paul, Trench, Trubner & Co 1930

Maurıce Wınternıtz, *Hıstory of Indıan Lıterature*, vol II (Englısh Translatıon), Calcutta, Unıversıty of Calcutta, 1933

Monıer Monıer Wıllıams, *Sanskrıt Englısh Dıctıonary*, revısed edıtıon, Delhı, Motılal Banarsıdass, 1965 (reprınt)

Nalınaksha Dutt, *Aspects of Mahāyāna Buddhısm*, London, Luzac & Co , 1930

Paul Demıèvılle, "Vımalakīrtı en Chıne" ın Lamotte's *L'Enseıgnement de Vımalakīrtı*, pp 438 455

R H Mathew, *Chınese Englısh Dıctıonary*, (revısed Amerıcan edıtıon), Cambrıdge, Harvard Unıversıty Press, 1969

Rıchard H Robınson, *Early Mādhyamıka ın Indıa and China*, Madıson, Unıversity of Wısconsın Press, 1967

Richard H Robinson, *The Buddhist Religion*, Belmont, Dickenson Publishing Co, 1970

Risen Tanigawa, "The Chinese Mode of Thought in Seng Chao's Chu wei miu (Vimalakirtinirdeśa Commentary)" in *Journal of Indian and Buddhist Studies*, vol XXIV, no 1 (1975)

Robert A F Thurman, *The Holy Teaching of Vimalakīrti*, University Park, The Pennsylvania State University Press, 1976

R Tokuoka, *Catalogue of the Lhasa Edition of the Bkah Hgyur of the Tibetan Tripitaka*, Nalanda, Nava Nalanda Mahavihara, 1968

Ryusho Soeda, "A Quotation of the Vimalakīrtinirdeśa sūtra in the Tattvasaṃgrahasūtra" in *Journal of Indian and Buddhist Studies*, vol 26, no 2 (1978)

Samuel Beal, *Si yu chi*, *Buddhist Records of the Western World*, Calcutta, Sushil Gupta, 1958 (reprint)

Sara Boin, *The Teaching of Vimalakīrti* (translated from É Lamotte's French version), London, Pali Text Society, 1976

S C Das, *Tibetan English Dictionary*, Alipore, West Bengal Government Press, 1960 (reprint)

Shigeki Kitamura, "Varient Narrative Texts of the Vimalakirtinirdeśa sūtra", in *Journal of Indian and Buddhist Studies*, vol XXIV, no 2 (1976)

Shingaku Sato, ' Exegetics of the Vimalakirtinirdeśa sūtra in the T'ang Dynasty of China" in *Journal of Indian and Buddhist Studies*, vol XIX, no 2 (1971)

Shıngaku Sato, "Studıes and Lectures of the Vımala kīrtınırdeśı sūtra ın the Suı Dynasty Chına" ın *Journal of Indıan and Buddhıst Studıes*, vol XVIII, no 1 (1969)

S Potınanta, *Wı ma la gear tı nıtesa sūt* (Thaı transla tıon of the Vımalakīrtınırdeśa) Bangkok, Mahā makut Rāchāvıtayālay, 1963

Teresına Rowell, *The Background and Early use of the Buddha kṣetra Concept*, publıshed ın *The Eastern Buddhıst*, vol VI, no 3 (1934), vol VI, no 4 (1935), vol VII, no 2 (1937)

Thıch Huyen Vı "Le Sūtrasamuccaya" ın *Lınh son Publıcatıon d' etudes Bouddhologıques* nos 2 9 (1977 1979)

Thomas Watters, *On Yuan Chwang's Travels ın Indıa*, 2 vols (ın one) Delhı, Munshıram Manoharlal, 1962 (reprınt)

T W Rhys Davıds and W Stede, *Palı Text Socıety's Palı Englısh Dıctıonary*, London, Luzac & Co, 1959

V S Apte, *Practıcal Sanskrıt Englısh Dıctıonary* (revısed edıtıon), Delhı, Motılal Banarsıdass, 1965

W E Soothhıll and L Hodous, *Dıctıonary of Chınese Buddhıst Terms*, revısed by Shıh Sheng kang, Lıı Wu Jong, and Tseng Laı tıng, Taıpeı, Buddhıst Culture Servıce, 1962 (reprınt)

Yamada Mumon Roshı, *Yuıma kyō*, (Japanese Trans latıon of Vımalakīrtınırdeśa), Parts I II, Kobe, Shofuku jı, 1952, 1957, Part III, Kyoto, Myoshınjı, 1959